Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

धम्मं सरणं पवज्जामि

भाग - १

प्रवचनकार : पू. आ. श्री विजयभद्रगुप्तसूरीश्वरजी

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

धम्मं सरणं पवज्जामि

भाग : १

आचार्य श्री हरिभद्रसूरि-विरचित साधक जीवन के प्रारंभ से पराकाष्टा तक के अनन्य सांगोपांग मार्गदर्शन को धराने वाले 'धर्मबिन्दु' ग्रंथ के प्रथम अध्याय पर आधारित रोचक-बोधक और सरल प्रवचनमाला के प्रवचन.

प्रवचनकार

आचार्य श्री विजयभद्रगुप्तसूरिजी महाराज

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पुनः संपादन

ज्ञानतीर्थ-कोबा

तृतीय आवृत्ति

फागण वद-८, वि.सं.२०६६, ८-मार्च-२०१०

वर्षीतप प्रारंभ दिन

मूल्य

पक्की जिल्द : रु. ६००-०० कच्ची जिल्द : रु. २७५-००

आर्थिक सौजन्य

शेठ श्री निरंजन नरोत्तमभाई के स्मरणार्थ

ह. शेठ श्री नरोत्तमभाई लालभाई परिवार

प्रकाशक

श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र

आचार्यश्री कैलाससागरसूरि ज्ञानमंदिर

कोबा, जि. गांधीनगर - ३८२००७

फोन नं. (०७९) २३२७६२०४, २३२७६२५२

email : **gyanmandir@kobatirth.org**

website : **www.kobatirth.org**

मुद्रक : नवप्रभात प्रिन्टर्स, अमदावाद - ९८२५५९८८५५

टाईटल डिजाइन : आर्य ग्राफीक्स - ९९२५८०१९१०

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पूज्य आचार्य भगवंत श्री विजयभद्रगुप्तसूरीश्वरजी

श्रावण शुक्ला १२, वि.सं. १९८९ के दिन पुदगाम महेसाणा (गुजरात) में मणीभाई एवं हीराबहन के कुलदीपक के रूप में जन्मे मूलचन्दभाई, जुही की कली की भांति खिलती-खुलती जवानी में १८ बरस की उम्र में वि.सं. २००७, महावद ५ के दिन राणपुर (सौराष्ट्र) में आचार्य श्रीमद् विजयप्रेमसूरीश्वरजी महाराजा के करमकमलों द्वारा दीक्षित होकर पू. भुवनभानुसूरीश्वरजी के शिष्य बने. मुनि श्री भद्रगुप्तविजयजी की दीक्षाजीवन के प्रारंभ काल से ही अध्ययन-अध्यापन की सुदीर्घ यात्रा प्रारंभ हो चुकी थी. ४५ आगमों के सटीक अध्ययनोपरांत दार्शनिक, भारतीय एवं पाश्चात्य तत्वज्ञान, काव्य-साहित्य वगैरह के 'मिलस्टोन' पार करती हुई वह यात्रा सर्जनात्मक क्षितिज की तरफ मुड़ गई. 'महापंथनो यात्री' से २० साल की उम्र में शुरु हुई लेखनयात्रा अंत समय तक अथक एवं अनवरत चली. तरह-तरह का मौलिक साहित्य, तत्वज्ञान, विवेचना, दीर्घ कथाएँ, लघु कथाएँ, काव्यगीत, पत्रों के जरिये स्वच्छ व स्वस्थ मार्गदर्शन परक साहित्य सर्जन द्वारा उनका जीवन सफर दिन-ब-दिन भरापूरा बना रहता था. प्रेमभरा हँसमुख स्वभाव, प्रसन्न व मृदु आंतर-बाह्य व्यक्तित्व एवं बहुजन-हिताय बहुजन-सुखाय प्रवृत्तियाँ उनके जीवन के महत्त्वपूर्ण अंगरूप थी. संघ-शासन विशेष करके युवा पीढ़ी, तरुण पीढ़ी एवं शिशु-संसार के जीवन निर्माण की प्रकिया में उन्हें रूचि थी... और इसी से उन्हें संतुष्टि मिलती थी. प्रवचन, वार्तालाप, संस्कार शिबिर, जाप-ध्यान, अनुष्ठान एवं परमात्म भक्ति के विशिष्ट आयोजनों के माध्यम से उनका सहिष्णु व्यक्तित्व भी उतना ही उन्नत एवं उज्ज्वल बना रहा. पूज्यश्री जानने योग्य व्यक्तित्व व महसूस करने योग्य अस्तित्व से सराबोर थे. कोल्हापुर में ता. ४-५-१९८७ के दिन गुरुदेव ने उन्हें आचार्य पद से विभूषित किया. जीवन के अंत समय में लम्बे अरसे तक वे अनेक व्याधियों का सामना करते हुए और ऐसे में भी सतत साहित्य सर्जन करते हुए दिनांक १९-११-१९९९ को श्यामल, अहमदाबाद में कालधर्म को प्राप्त हुए.

For Private And Personal Use Only

प्रकाशकीय

यदि आप अपना नैतिक और धार्मिक उत्थान करना चाहते हैं, यदि व्यवहार लोकप्रिय करना चाहते हैं, तो यह पुस्तक आपको सुन्दर और सटीक मार्गदर्शन करेगी. वर्तमान कालीन समस्याओंको सुलझाने के लिए यह ग्रंथ कल्याणमित्र बन सकता है.

पूज्य आचार्य श्री विजयभद्रगुप्तसूरिजी महाराज (श्री प्रियदर्शन) द्वारा लिखित और विश्वकल्याण प्रकाशन, महेसाणा से प्रकाशित साहित्य, जैन समाज में ही नहीं अपितु जैनेतर समाज में भी बड़ी उत्सुकता और मनोयोग से पढ़ा जाने वाला लोकप्रिय साहित्य है.

पूज्यश्री ने १९ नवम्बर, १९९९ के दिन अहमदाबाद में कालधर्म प्राप्त किया. इसके बाद विश्वकल्याण प्रकाशन ट्रस्ट को विसर्जित कर उनके प्रकाशनों का पुनः प्रकाशन बन्द करने के निर्णय की बात सुनकर हमारे ट्रस्टियों की भावना हुई कि पूज्य आचार्य श्री का उत्कृष्ट साहित्य जनसमुदाय को हमेशा प्राप्त होता रहे, इसके लिये कुछ करना चाहिए. **पूज्य राष्ट्रसंत आचार्य श्री पद्मसागरसूरिजी महाराज** को विश्वकल्याण प्रकाशन ट्रस्टमंडल के सदस्यों के निर्णय से अवगत कराया गया. दोनों पूज्य आचार्यश्रीयों की घनिष्ठ मित्रता थी. अन्तिम दिनों में दिवंगत आचार्यश्री ने राष्ट्रसंत आचार्यश्री से मिलने की हार्दिक इच्छा भी व्यक्त की थी. पूज्य आचार्यश्री ने इस कार्य हेतु व्यक्ति, व्यक्तित्त्व और कृतित्त्व के आधार पर सहर्ष अपनी सहमती प्रदान की. उनका आशीर्वाद प्राप्त कर कोबातीर्थ के ट्रस्टियों ने इस कार्य को आगे चालू रखने हेतु विश्वकल्याण प्रकाशन ट्रस्ट के सामने प्रस्ताव रखा.

विश्वकल्याण प्रकाशन ट्रस्ट के ट्रस्टियों ने भी कोबातीर्थ के ट्रस्टियों की दिवंगत आचार्यश्री प्रियदर्शन के साहित्य के प्रचार-प्रसार की उत्कृष्ट भावना को ध्यान में लेकर **श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र, कोबातीर्थ** को अपने ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित साहित्य के पुनः प्रकाशन का सर्वाधिकार सहर्ष सौंप दिया.

इसके बाद **श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र, कोबा** ने संस्था द्वारा संचालित **श्रुतसरिता** (जैन बुक स्टॉल) के माध्यम से श्री प्रियदर्शनजी के

लोकप्रिय साहित्य के वितरण का कार्य समाज के हित में प्रारम्भ कर दिया.

श्री प्रियदर्शन के अनुपलब्ध साहित्य के पुनः प्रकाशन करने की शृंखला में **धम्मं सरणं पवज्जामि** ग्रंथ के चारों भागों को प्रकाशित कर आपके कर कमलों में प्रस्तुत किया जा रहा है.

शेठ श्री संवेगभाई लालभाई के सौजन्य से इस प्रकाशन के लिये **श्री निरंजन नरोत्तमभाई के स्मरणार्थ, हस्ते शेठ श्री नरोत्तमभाई लालभाई परिवार** की ओर से उदारता पूर्वक आर्थिक सहयोग प्राप्त हुआ है, इसलिये हम **शेठ श्री नरोत्तमभाई लालभाई परिवार** के ऋणी हैं तथा उनका हार्दिक आभार मानते हैं. आशा है कि भविष्य में भी उनकी ओर से सदैव उदारता पूर्ण सहयोग प्राप्त होता रहेगा.

इस आवृत्ति का प्रूफरिडिंग करने वाले **श्री हेमंतकुमार सिंघ, श्री रामकुमार गुप्तजी** तथा अंतिम प्रूफ करने तथा अन्य अनेक तरह से सहयोगी बनने हेतु **पंडितवर्य श्री मनोजभाई जैन** का हम हृदय से आभार मानते हैं. संस्था के कम्प्यूटर विभाग में कार्यरत **श्री केतनभाई शाह, श्री संजयभाई गुर्जर व श्री बालसंग ठाकोर** के हम हृदय से आभारी हैं, जिन्होंने इस पुस्तक का सुंदर कम्पोजिंग कर छपाई हेतु हर तरह से सहयोग दिया.

आपसे हमारा विनम्र अनुरोध है कि आप अपने मित्रों व स्वजनों में इस प्रेरणादायक सत्साहित्य को वितरित करें. श्रुतज्ञान के प्रचार-प्रसार में आपका लघु योगदान भी आपके लिये लाभदायक सिद्ध होगा.

पुनः प्रकाशन के समय ग्रंथकारश्री के आशय व जिनाज्ञा के विरुद्ध कोई बात रह गयी हो तो मिच्छामि दुक्कड़म्. विद्वान पाठकों से निवेदन है कि वे इस ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करें.

अन्त में नये आवरण तथा साज-सज्जा के साथ प्रस्तुत ग्रंथ आपकी जीवनयात्रा का मार्ग प्रशस्त करने में निमित्त बने और विषमताओं में भी समरसता का लाभ कराये ऐसी शुभकामनाओं के साथ...

ट्रस्टीगण

श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र, कोबा

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

धम्मँ सरणँ पवज्जामि

१

प्रवचनकार

आचार्य श्री विजयभद्रगुप्तसूरिजी महाराज

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

धनदो धनार्थिनां प्रोक्तः कामिनां सर्वकामदः।
धर्म एवापवर्गस्य पारम्पर्येण साधकः ।।
वचनाद्यदनुष्ठानं-अविरुद्धाद् यथोदितम्।
मैत्र्यादिभावसंयुक्तं तद्धर्म इति कीर्त्यते ।।

- धर्मबिन्दुः

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

- ***श्री हरिभद्रसूरिजी ने प्रस्तुत ग्रन्थ का नाम 'धर्मबिन्दु' रखा है, पर इस बिन्दु में सिन्धु उफन रहा है! श्री मुनिचन्द्रसूरिजी उस सिन्धु की यात्रा करवा रहे हैं!***
- ***मौन, जागृति और अप्रमाद, धर्मश्रवण के लिए ये तीन बातें अनिवार्य है।***
- ***'परमात्मा को प्रणाम' यह भावमंगल है। भावमंगल से विघ्नों का नाश होता हैं।***
- ***सच्चा ज्ञान वही होता है जो 'अहं' को भुला दे! करुणा का तत्त्व ही ऐसा है जो आदमी को सत्कार्य के लिए प्रेरित करे, प्रोत्साहित करे!***

प्रवचन : १

संसार अनादि है।

संसार में जीव भी अनादि है!

जीव और कर्म का सम्बन्ध भी अनादि है।

कर्मों के बंधनों से बँधे हुए अनंत-अनंत जीव इस अनादि संसार की चार गतियों में भटक रहे हैं। कर्मों के प्रभाव से जीव में मोह, अज्ञान, राग-द्वेष, शाता-अशाता, सुख-दुख...इत्यादि तत्त्व सदैव सक्रिय होते हैं। इसमें भी नरक और तिर्यंच योनि में तो प्रगाढ़ रूप से मोह और अज्ञान, राग और द्वेष सक्रिय बने हुए होते हैं।

जहाँ ज्ञान का प्रकाश नहीं हो, अज्ञान का घोर अन्धकार हो, वहाँ सिवाय दुःख, संताप और वेदना के कुछ भी नहीं होता है।

देव गति में भी यदि सम्यक्दर्शन हो, तब तो ठीक है, अन्यथा वहाँ पर तो राग-द्वेष की उद्दीप्त तांडव-लीला ही है। मोह और अज्ञान का कालनृत्य ही चलता रहता है।

शेष रहा मानवजीवन! मानवजीवन में भी संस्कार संपन्न कुल में जन्म मिला हो, सदगुरु का समागम मिला हो, तब तो ज्ञान का प्रकाश मिल जाय...अन्यथा मानवजीवन का कोई महत्त्व नहीं है। सुसंस्कारहीन, मानवतारहित, धर्मभ्रष्ट

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

और पापमय मानवजीवन का क्या महत्त्व है? ऐसे तो करोड़ों मनुष्य नरक गति और तिर्यंच गति में चले जाते हैं।

संसार में सुख की खोज छोड़ दोः

समग्र संसार ही दुःखमय है। कभी कहीं किसी गति में थोड़ा-सा सुख दिखाई देता है, तो उसका परिणाम दुःखरूप होता है! एक-सा सुख-शाश्वत् सुख संसार में है ही नहीं। संसार में सुख की खोज करना छोड़ो।

ऐसे दुःखपूर्ण, वेदनापूर्ण और संतापभरपूर संसार में भी उत्तम आत्माएँ होती रही हैं। ज्यों-ज्यों आत्मा कर्मों के बंधनों से मुक्त होती जाती है, ज्ञान का प्रकाश बढ़ता जाता है। ज्ञान के प्रकाश में आत्मा आत्मा को देखती है, तब कर्मों से, कर्मबंधनों से पैदा हुई अपनी दुर्दशा देखकर उसे घोर पीड़ा होती है, कर्मों के बंधन तोड़ने के लिए वह उठ खड़ी होती है। ज्ञान के प्रकाश में, कर्मों के बंधन तोड़ने के उपाय उसे दिखते हैं, वे उपाय ही 'धर्म' हैं। धर्म-पुरुषार्थ द्वारा आत्मा कर्मबंधनों से मुक्ति पाती है।

'धर्मबिन्दु' ग्रन्थ की उपयोगिता :

परम करुणावंत वे अनंतज्ञानी तीर्थंकर भगवंत संसार की, संसार में भटकते हुए जीवों की दुःखपूर्ण स्थिति देखकर, उनको दुःखों से मुक्त करने के लिए, धर्मतीर्थ की स्थापना करके, जीवों को धर्म का प्रकाश देते हैं। जीवों के प्रति अपार करुणाभाव में से धर्म का आविर्भाव हुआ है और ऐसी ही करुणा में से धर्मतत्त्वों के प्रतिपादक ग्रन्थों का सृजन होता है।

जो वास्तव में ज्ञानी होते हैं, वे अवश्य करुणावंत होते हैं। श्रमण भगवान महावीर परमात्मा के इस धर्मशासन में, ऐसे अनेक करुणावंत ज्ञानी महापुरुष हुए हैं और हो रहे हैं। सैंकड़ो वर्ष पूर्व आचार्य श्री हरिभद्रसूरीश्वरजी ऐसे ही ज्ञानी महापुरुष थे। उन करुणावंत ज्ञानी महर्षि ने अपने जीवनकाल में १४४४ ग्रन्थरत्नों की रचना की थी। आज वे १४४४ ग्रन्थ सबके सब तो नहीं मिल रहे हैं, परन्तु जो भी ग्रन्थ मिल रहे हैं वे अद्भुत और अपूर्व हैं। धर्मबिन्दु ग्रन्थ उन महापुरुष की ही रचना है, जिस पर अपने विवेचना करेंगे।

यह ग्रन्थ उच्च जीवन निर्माण के लिए अत्युत्तम है। यदि आप अपना नैतिक और धार्मिक उत्थान करना चाहते हैं, यदि व्यवहारशुद्धि करना चाहते हैं, तो यह ग्रन्थ आपको सुन्दर और सटीक मार्गदर्शन देगा। भले यह ग्रन्थ

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्राचीन काल में लिखा गया है, परन्तु वर्तमानकालीन मनुष्यों के लिए आज भी उतना ही उपयुक्त है।

तीन महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ :

हाँ, एक बात कह दूँ : आपको नियमित सुनना होगा। दो दिन सुना और दो दिन नहीं सुना, ऐसा मत करना। नियमित सुनने से समग्र विषय का बोध होता है। जिस अर्थ में, जिस सन्दर्भ में मैं बात करूँगा, आपको उसी अर्थ में और उसी सन्दर्भ में बोध होगा। अन्यथा गड़बड़ पैदा हो जायेगी! मैं कहूँगा कुछ, आप समझोगे कुछ!

दूसरी बात : जाग्रत रहकर सुनना! सुनते समय इधर-उधर नहीं देखना, ऊपर-नीचे नहीं देखना। कैसे सुनते हो प्रवचन?

वक्ता के सामने ही देखना चाहिए। हाँ, नींद आ जाय तो फिर कैसे देखोगे? आसन लगाकर बैठें तो नींद भी नहीं आएगी। आधे जाग्रत और आधे नींद में, फिर क्या पल्ले पड़ेगा? धर्मश्रवण करने का आपका ढंग बदलने की जरूरत है।

एक गाँव में एक वृद्धा प्रतिदिन उपाश्रय व्याख्यान सुनने जाया करती थी। वर्षावास रहे हुए गुरुदेव 'भगवती सूत्र' पर नियमित प्रवचन देते थे। भगवती सूत्र में बार-बार भगवान महावीर स्वामी अपने पट्टशिष्य इन्द्रभूति गौतम को 'गोयमा' शब्द से पुकारते हैं। गुरुमहाराज की बोलने की पद्धति भी अच्छी थी। वे 'गोयमा' शब्द जोर से बोलते थे। वह बुढ़िया आधी नींद में और आधी जाग्रत...वैसे ही प्रवचन सुनती थी...कुछ कम सुनती होगी...। एक दिन जब वह बुढ़िया प्रवचन सुनकर घर पहुँची, तो उसकी पुत्रवधू ने पूछा : 'माताजी, आज गुरु महाराज ने प्रवचन में क्या बताया?' बुढ़िया ने कहा : 'महाराज व्याख्यान तो अच्छा देते हैं, परन्तु उनका स्वास्थ्य अच्छा नहीं लगता है...बार-बार 'ओयमा' 'ओयमा'... करते थे।'

बुढ़िया ने कैसा सुना प्रवचन! 'गोयमा' का 'ओयमा' कर दिया! यदि आप स्वस्थता से प्रवचन नहीं सुनेंगे तो अर्थ का अनर्थ करेंगे। इसीलिए कहता हूँ कि जाग्रत बन कर प्रवचन सुनो।

तीसरी बात भी सुन लो : यह बात है खास माताओं के लिए और बहनों के लिए! प्रवचन-सभा में उनकी 'मेजोरिटी' रहती है न! बहनें विशेषरूप से ज्यादा, पुरुष कम। उनसे मुझे कहना है कि वे प्रवचन हॉल में मौन रहकर

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्रवेश करें, मौन धारण कर प्रवचन सुनें और जाते समय भी मौन रखें! बातें नहीं करें। शान्ति से प्रवचन सुनें। अपने छोटे-छोटे बच्चों को साथ नहीं लायें कि जो यहाँ शान्त नहीं बैठ सकते हों। प्रवचन चालू हो और एकदम बच्चा रोने लगता है, तब प्रवचन की धारा टूट जाती है। श्रोताओं का ध्यान उस बच्चे की ओर जाता है...बात बिगड़ जाती है।

इस 'धर्मबिन्दु' ग्रन्थ में बहनों के लिए भी बहुत ही उपयोगी बातें बताई गई हैं। उनकी तमन्ना चाहिए-जीवन को सुधारने की। परन्तु 'हम तो अच्छे हैं, सुधरे हुए ही हैं...' ऐसा माननेवालों को नहीं सुधारा जा सकता। आप लोग तो सुधरे हुए ही हो न? जरा अन्तरात्मा को पूछ लेना। जो रोगी अपने आपको निरोगी मानता हो, उसको निरोगी नहीं बनाया जा सकता। आप अपने आपको अच्छा मान रहे होंगे, तो मैं आपको अच्छा नहीं बना सकूँगा! आपको अपनी बुराइयों का ख्याल होना चाहिए। हाँ, आप भले यहाँ सभा में खड़े होकर अपनी बुराइयाँ प्रकट न करें, परन्तु आपको एकदम स्पष्ट ख्याल होना चाहिए अपनी बुराइयों का। तो 'धर्मबिन्दु' ग्रन्थ का श्रवण आप में अद्‌भुत जीवन परिवर्तन कर सकेगा।

ग्रन्थकार एवं टीकाकार :

यह ग्रन्थ संस्कृत भाषा में लिखा गया है। ग्रन्थकार महर्षि ने श्लोकात्मक रचना नहीं की है, सूत्रात्मक रचना की है। जिस प्रकार महान आचार्यदेव उमास्वाती ने 'तत्त्वार्थ सूत्र' की सूत्रात्मक रचना की है, वैसे आचार्यदेव हरिभद्रसूरिजी ने 'धर्मबिन्दु' की रचना की है। सूत्र अर्थगंभीर हैं। यों भी हरिभद्रसूरिजी की प्रत्येक ग्रन्थरचना अर्थगंभीर ही है। सामान्य विद्वान उनके ग्रन्थों को समझ ही नहीं सकता है। 'धर्मबिन्दु' के सूत्रों को आचार्य श्री मुनिचन्द्रसूरिजी ने सरल टीका लिख कर सुबोध बना दिया है। इन महापुरुष ने अपने जैसे अबोध जीवों पर कितना महान उपकार किया है! अपने ज्ञान को सर्व जीवों के लिए खुला छोड़ गये...'ज्ञान प्राप्त करो और मोक्षमार्ग पर चलते रहो...' ऐसी उदात्त भावना से उन महापुरुषों ने ग्रन्थरचनाएँ की हैं। टीकाकार आचार्यश्री ने कहा है : 'भव्यजनोपकृतिकृते' भव्य जीवों के उपकार के लिए यह टीका उन्होंने लिखी है। यह टीका-ग्रन्थ संस्कृत-साहित्य का अनमोल ग्रन्थ है, ऐसी रसपूर्ण इसकी रचना है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दैनिक प्रवचन-परम्परा :

आज का दिन परम मंगलकारी है, शुभ है और शुक्ल है! आज अपने 'धर्मबिन्दु' ग्रन्थ पर प्रवचनमाला शुरू कर रहे हैं, जो कि संपूर्ण वर्षाकाल में चलती रहेगी। यह भी एक प्राचीन काल से चली आ रही पवित्र परम्परा है कि वर्षाकाल व्यतीत करने हेतु गाँव-नगर में स्थिरता कर रहे मुनिराज संघ के समक्ष प्रतिदिन धर्मोपदेश देते रहें। किसी महाज्ञानी शासनमान्य महापुरुष के ग्रन्थ का आधार लेकर धर्मोपदेश दिया जाता है। इससे अपने जैन संघ में अच्छी धर्मजाग्रति देखने को मिलती है। नियमित चार-चार महीने तक प्रवचन सुनने से श्रोताओं को धर्म का मौलिक बोध प्राप्त होता है। पापाचारों से भय लगता है और सदाचार की प्रवृत्ति बढ़ती है। विविध धर्म-आराधनाएँ होती हैं। दान-शील और तप की आराधना होती है। यह सब नियमित धर्मोपदेश का प्रभाव है।

'मंगल' क्यों करना चाहिए?

अपनी प्रवचन माला का आधारग्रन्थ 'धर्मबिन्दु' रहेगा। चार-चार महीने तक निर्विघ्न प्रवचन माला चलती रहे, इसलिए अपन ने 'मंगल' किया! 'श्रुतज्ञान की पूजा' आपने अभी पढ़ी न? 'धर्मबिन्दु' ग्रन्थ का पूजन भी किया न? यह 'मंगल' किया आप लोगों ने। 'मंगल' में विघ्नों का नाश करने की शक्ति पड़ी है। एक बात हमारे महर्षियों ने अनुभव की बताई है- अच्छे कार्य में ज्यादा विघ्न आते हैं! 'श्रेयांसि बहुविघ्नानि'! यह प्रवचन माला अच्छा पवित्र कार्य है, इसलिए इसमें ज्यादा विघ्न आ सकते हैं-इसलिए ऐसा भावपूर्ण मंगल करें कि विघ्न हमारे कार्य को कुचल नहीं डालें, बल्कि विघ्न स्वयं नष्ट हो जायें।

हाँ, सामाजिक या जासूसी उपन्यास लिखनेवाले 'मंगल' नहीं करते हैं...उनको विघ्न प्रायः नहीं आता है! कैसे आयेगा विघ्न? वह कार्य ही अच्छा नहीं है! विघ्न तो आते हैं अच्छे कार्य में, पवित्र कार्य में! एक धर्मग्रन्थ लिखना पवित्र कार्य है, इसलिए उसके प्रारंभ में मंगल करना ही चाहिए! ग्रन्थकार आचार्यदेव 'मंगल' करने की परंपरा को निभा रहे हैं। भला, अनुभवी महर्षियों द्वारा प्रारंभ की हुई परंपरा कौन नहीं निभायेगा? श्रद्धावान भी निभायेगा और बुद्धिमान भी निभायेगा!

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भावमंगल :

ग्रंथकार एक निर्ग्रंथ जैनाचार्य थे। उनको अपनी आचारमर्यादा में रहना था, इसलिए 'द्रव्यमंगल' वे नहीं कर सकते थे, उन्होंने 'भावमंगल' किया। परमात्मा को प्रणाम ही भावमंगल है। परमात्म-प्रणाम में यह अपूर्व शक्ति है कि सर्व विघ्नों का समूल उच्छेद कर दे। यह है आध्यात्मिक शक्ति। अब सुनिए, ग्रन्थकार मंगल कर रहे हैं :

'प्रणम्य परमात्मानं समुद्धृत्य श्रुतार्णवात्।
धर्मबिन्दुं प्रवक्ष्यामि तोयबिन्दुमिवोदधेः ।।'

धर्मशास्त्रों की रचना करनेवाले ऋषि-महर्षियों की यह मान्यता है : 'शास्त्रमूलं मङ्गलम्'। धर्मशास्त्र का प्रारम्भ मंगल से ही होना चाहिए। इस विधान में दृष्टि एक ही है : विघ्नों का नाश! विघ्न उपस्थित होने की आशंका है, इसलिए पहले से ही उसका उपाय कर लिया! आपको लगता है कि मार्ग में डाकू मिल सकते हैं, आपको जाना अनिवार्य है, आप सुरक्षा का प्रबन्ध करके ही चलेंगे न? फिर आप निश्चिंत बनकर चलते रहेंगे! ग्रन्थकार महात्मा भी वैसा ही कर रहे हैं। विघ्न आएँ ही नहीं, यदि आ जायें तो ग्रन्थरचना के कार्य में रुकावट न हो, इसलिए भावमंगल किया। परमात्मा को प्रणाम किया।

प्रश्न : कार्य के प्रारंभ में ही, भविष्यकालीन विघ्नों की आशंका करना क्या मानसिक कमजोरी नहीं है?

उत्तर : कोई भी कार्य करने से पूर्व जैसे कार्यपद्धति का निर्णय करना चाहिए, वैसे ही उस कार्य में क्या-क्या बाधाएँ-रुकावटें आ सकती हैं, उसका भी विचार करना चाहिए। यह विचार करना मानसिक कमजोरी नहीं है, परन्तु सावधानी है, बुद्धिमत्ता है। संभवित विघ्नों की कल्पना करके उन विघ्नों का उपाय करना - भय अथवा कमजोरी का परिचायक नहीं है, परन्तु कार्यसिद्धि अथवा सफलता का द्योतक है।

आपने एक अच्छा परमार्थ-परोपकार का कार्य शुरू किया, आप कार्य करते चलें और आपकी कल्पना से भी परे कोई विघ्न-अन्तराय उपस्थित हुआ...क्या होगा आपको! यदि आप शक्तिशाली हैं तो उस विघ्न को मिटा देने का भरसक प्रयत्न करेंगे...इससे उस कार्य की सिद्धि में विलम्ब तो होगा न? यदि आपका प्रयत्न असफल रहा तो वह कार्य अधूरा ही रह जायगा न? इसलिए पवित्र

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कार्य करने से पूर्व ही उस कार्य में कोई विघ्न नहीं आये, वैसा प्रबन्ध कर लेना चाहिए। वह प्रबन्ध है भावमंगल!

विघ्नों का नाश करना जरूरी :

विघ्नों का विनाश करने का स्वाधीन उपाय है यह भावमंगल! परमात्मा को प्रणाम करना, स्वाधीन उपाय है...न किसी की पराधीनता, न किसी की परतंत्रता! परमात्मा को प्रणाम करने में हम स्वाधीन हैं, किसी की आज्ञा लेने की, -इजाजत लेने की आवश्यकता नहीं! अरे, मंदिर में भी जाना अनिवार्य नहीं! अपने मन के मंदिर में उस वीतराग अरिहंत परमात्मा की पद्मासनस्थ अवस्था की धारणा करो, चमड़े की आँखें बँद करो और मन की आँखें खोलकर उन परमात्मा की प्रशमरस भरपूर आँखें देखो, उनके चरणों में झुक जाओ, उनकी स्तुति करो, प्रार्थना करो, ध्यान धरो...बस हो गया मंगल! भावमंगल हो गया! इस भावमंगल का असर पड़ेगा उन आनेवाले विघ्नों पर! वे आयेंगे ही नहीं, यदि आने का साहस किया तो बेचारे, आपके पैरों के नीचे कुचले जायेंगे!

'परम' एवं 'अपरम' :

परमात्मा को प्रणाम करने से पूर्व, परमात्मा को जरा पहचानो तो सही! पहचानते हो परमात्मा को? आत्मा दो प्रकार की होती है : परम और अपरम। सर्व कर्ममल का विलय हो जाने से प्राप्त विशुद्ध ज्ञान-प्रकाश में जिन्होंने सकल विश्व को -'लोक' और 'अलोक' को देखा है, स्वयं पूर्ण निष्काम और पूर्ण अपरिग्रही होने पर भी, देव आठ प्रकार की दिव्य शोभा-अष्ट महाप्रतिहार्य की शोभा, उनके चारों ओर प्रस्थापित करते हैं। सब जीव अपनी-अपनी भाषा में समझ जायें वैसी भाषा में जो बोलते हैं और जो उनकी वाणी सुनता है, उसके मन के तमाम संशय दूर हो जाते हैं। वे जहाँ-जहाँ पदार्पण करते हैं वहाँ -वहाँ जीवों को सुख-शान्ति प्राप्त होती है। जिनको कोई ईश्वर कहता है, कोई ब्रह्मा कहता है, कोई शंकर कहता है...भिन्न भिन्न नामों से जो पुकारे जाते हैं-वे हैं अरिहन्त परमात्मा! परम+आत्मा=परमात्मा।

इनके अलावा सब 'अपरम' आत्मा! अपने 'अपरम' आत्मा हैं! अपरम से परम बनने की आराधना ही धर्म-आराधना है। अपरम आत्मा परम आत्मा को प्रणाम करे, उनकी स्तुति-प्रार्थना करे, उनका ध्यान धरे, उनके बताए हुए मार्ग पर चलती रहे-तो अपरम परम बन जाय!!

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कहिए, अपरम ही रहना है? परम-आत्मा बनना है या नहीं? बनना तो है, परन्तु शक्ति नहीं है, क्यों? शक्ति कहाँ से आती है? आकाश से शक्ति गिरती है क्या? परमात्मभक्ति में से शक्ति प्राप्त होती है। इसलिए, परमात्मभक्ति में लीन बनो।

एक असाधारण विशेषता :

ग्रन्थकार ने 'परमात्मा' को नमस्कार किया, कोई नाम नहीं लिया...न भगवान ऋषभदेव का नाम लिया, न वर्द्धमान स्वामी का! नाम कोई भी हो, होने चाहिए परमात्मा! सर्वज्ञ और वीतराग होने चाहिए! अज्ञानता और राग-द्वेष से संपूर्ण मुक्त-ऐसे परमात्मा को प्रणाम किया। जैनधर्म की यही असाधारण विशेषता है! यदि आप और हम इस असाधारण विशेषताको समझ जायें तो आज भी 'जैनं जयति शासनम्' हो सकता है।

ग्रन्थकार की विनम्रता :

महान तार्किक एवं दिग्गज विद्वान आचार्य की विनम्रता देखो, वे कहते हैं : 'मैंने यह 'धर्मबिन्दु' ग्रन्थ मेरी मतिकल्पना से नहीं लिखा है, श्रुतसमुद्र से तत्त्वरत्नों को लेकर इस ग्रन्थ की रचना की है।'

अति महत्त्वपूर्ण है यह बात।

तीर्थंकर परमात्मा महावीरदेव ने जो श्रुतगंगा-ज्ञानगंगा बहाई, उसी पवित्र ज्ञानगंगा में से कुछ बूदें ले लीं और यह ग्रन्थ बन गया! श्रुतसमुद्र अगाध है...दुर्बोध है...अल्प बुद्धिवाले उस समुद्र में कूद नहीं सकते और उसमें से मोती प्राप्त नहीं कर सकते। 'नय', 'निक्षेप', 'भंग', 'गम', 'पर्याय', 'हेतु' इत्यादि ऐसे गहन और गंभीर विषय हैं कि सामान्य बुद्धिवाला समझ ही नहीं सके। समझे हो आप? 'नय' किसको कहते हैं? 'द्रव्य-गुण-पर्याय' किसको कहते हैं? बता सकोगे? समझने की बुद्धि नहीं और तमन्ना भी नहीं! अरे, तत्त्वमार्ग नहीं समझ सको, परन्तु आचारमार्ग का ज्ञान तो प्राप्त कर सकते हो न?

बिन्दु में सिन्धु :

'धर्मबिन्दु' ग्रन्थ आचारमार्ग का ग्रन्थ है। मानवजीवन क्रमशः और कैसे उन्नत और पवित्र बनाया जा सके-इसका क्रमिक मार्गदर्शन इस ग्रन्थ में दिया गया है। ग्रन्थकार ने श्रुतसागर में से तत्त्वों को लेकर, सरल और सुबोध सूत्रों

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

में इस ग्रन्थ की रचना की है। श्रुतसमुद्र की अपेक्षा इस ग्रन्थ में धर्मतत्त्वों के कुछ बिन्दु ही हैं, परन्तु अपने लिए तो यह ग्रन्थ ही बड़ा समुद्र है! ग्रन्थकार ने बिन्दु में सिन्धु भर दिया है। पानी की बूँदे होती हैं न? वैसे ये हैं धर्मतत्त्व की बूँदें! इस प्रकार आचार्यदेव ने इस ग्रन्थ को सर्वज्ञतामूलक बना दिया!

'द्वादशांगी' कि जिसमें १४ पूर्व समाविष्ट है, अगाध समुद्र है! समुद्र का मंथन सब लोग नहीं कर सकते। आपने कभी समुद्र में गोता लगाया है? कभी समुद्र में तैरे हो? मुश्किल है न यह काम आपके लिए? परन्तु होते हैं ऐसे साहसिक मनुष्य कि जो समुद्र में गोता लगाते हैं और समुद्र में से रत्न ले आते हैं! ज्ञान का भी सागर है...लवण समुद्र नहीं, 'अरेबियन' समुद्र नहीं, क्षीरसागर है! दूध का सागर! अमृत का सागर! आचार्यदेव हरिभद्रसूरिजी कहते हैं कि ज्ञान के उस क्षीरसमुद्र में से कुछ बिन्दु लेकर मैंने इस ग्रन्थ की रचना की है।

आपको उस अमृत-सागर का 'सेम्पल' मिलेगा! रसास्वाद करना, चखना, यदि 'टेस्टफुल'-स्वादिष्ट लगे तो फिर बिन्दु नहीं, लोटा भर-भरकर देंगे! हाँ, इस ज्ञानामृत का 'टेस्ट' लग गया, फिर पाँचों इन्द्रिय के विषयसुख नीरस-स्वादरहित लगेंगे। सचमुच ज्ञानानन्द के आगे विषयानन्द कुछ भी नहीं है।

'ज्ञानमग्नस्य यच्छर्म तद्वक्तुं नैव शक्यते'

ज्ञानमग्न आत्मा को जो सुख-संवेदन होता है, वह शब्दों में नहीं कहा जा सकता। ग्रन्थकार महर्षि ऐसे ही ज्ञानमग्न महापुरुष थे। उनकी विनम्रता तो देखो...वे कहते हैं : 'श्रुत (ज्ञान) सागर से कुछ बिन्दु लेकर इस ग्रन्थ की रचना करता हूँ, मेरा इसमें कुछ भी नहीं, मैं तो एक माध्यम मात्र हूँ...।'

सर्वजीवहितकारी जिनशासन के प्रति उनका कैसा अद्‌भुत हार्दिक समर्पण है! 'जिनवचन से भिन्न मेरी स्वतंत्र कोई मतिकल्पना ही नहीं है!' अपने ज्ञान का, अपनी बुद्धि का अपनी जनप्रियता का कोई अभिमान ही नहीं! सच्चा ज्ञान इसको कहते हैं, जो 'अहं' को भुला देता है।

ग्रन्थरचना का प्रयोजन :

एक प्रश्न यह होता है कि आचार्यश्री ने ग्रन्थरचना ही क्यों की? क्या आवश्यकता थी ग्रन्थ लिखने की? बुद्धिमान और ज्ञानी पुरुष बिना प्रयोजन कोई काम नहीं करते, ग्रन्थरचना भी बिना प्रयोजन नहीं होती। तो बताइए, आचार्यदेव का क्या प्रयोजन होगा? क्या पैसा कमाना था? क्या ख्याति-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्रसिद्धि पाना था? हाँ, संसार में ऐसे उद्देश्यों से भी ग्रन्थरचनाएँ होती हैं! पैसा कमाने का उद्देश्य गृहस्थों का होता है, साधु-पुरुषों का नहीं। कंचन और कामिनी के त्यागी ऐसे श्रमण धनार्जन के लिए ग्रन्थरचना नही करते हैं, उनको धन-संपत्ति से कोई प्रयोजन नहीं होता। तो क्या ख्याति-प्रसिद्धि के लिए आचार्यश्री ने ग्रन्थरचना की है? अपन यह भी नहीं मान सकते हैं। प्रसिद्धि के प्रेमी लोग तो स्वप्रशंसा करने से बाज नहीं आते! आचार्यदेव ने कहीं पर भी स्वप्रशंसा नहीं की है... अपने ज्ञान या बुद्धि का गुणगान कहीं पर भी नहीं किया है। धर्मग्रन्थों की रचना में प्रायः ऐसा उद्देश्य रहता भी नहीं।

प्रश्न : साहब! आजकल तो कुछ साधु-साध्वियों की छपी हुई ऐसी किताबें देखने को मिलती हैं, जिसमें अपने नाम की प्रसिद्धि के अलावा कुछ भी नहीं दिखता!

उत्तर : ऐसी नाम की प्रसिद्धि क्या काम की? उस नाम की प्रसिद्धि आपके मन पर किस प्रकार हुई? अच्छी या बुरी? प्रसिद्धि दो प्रकार की होती है : सुप्रसिद्धि और कुप्रसिद्धि। कोई सुख्यात होता है और कोई कुख्यात होता है! ऐसी किताबें कि जिनमें कोई तत्त्वज्ञान नहीं, जिनमें कोई सत्प्रेरणा देनेवाली बातें नहीं अथवा इधर-उधर की किताबों में से कुछ अंश लेकर अपने नाम से छपवा देना...इत्यादि प्रवृत्ति करनेवाले लोग ख्यात तो होते हैं, परन्तु कुख्यात!

ऐसी भी किताबों के कुछ इने-गिने लोग प्रशंसक होते हैं...आप लोग जैसे भगत! सही बात है न? संतों की ग्रन्थरचना प्रसिद्धि के लिए नहीं! एक बात समझ लो : साधुपुरुष कभी भी प्रसिद्धि के उद्देश्य से ग्रन्थरचना नहीं करते, प्रसिद्धि हो जाय, दूसरी बात है। हरिभद्रसूरिजी ने प्रसिद्धि के प्रयोजन से ग्रन्थरचना नहीं की थी, परन्तु प्रसिद्धि हो गई! आप अच्छी, उत्तम वस्तु देंगे, आपकी प्रसिद्धि होगी ही! लोग आपकी प्रशंसा करेंगे ही। हाँ, लोगों से अपनी प्रशंसा सुनने की वासना नहीं चाहिए, यह वासना भयानक होती है। स्वप्रशंसा सुनने की लालसा कभी सत्कार्यों से मनुष्य को दूर कर देती है। जब उसके सत्कार्य की प्रशंसा लोग नहीं करेंगे, वह सत्कार्य ही छोड़ देगा! मनुष्य के सभी सत्कार्यों की प्रशंसा हो ऐसा कोई नियम नहीं है। यदि आपके 'अपयश-नामकर्म' का उदय हो तो आपकी प्रशंसा नहीं होगी, आपकी लोग निन्दा करेंगे, भले ही आपने काम अच्छा किया हो!

श्री हरिभद्रसूरिजी तो आत्मज्ञानी महर्षि थे। ग्रन्थरचना का उनका लक्ष्य था 'सत्वानुग्रह'। जीवों के प्रति उपकार की बुद्धि से ग्रन्थरचना की है। मुमुक्षु

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आत्माओं को, तत्त्वरसिक मनुष्यों को धर्मतत्त्व का बोध हो, मोक्षमार्ग का ज्ञान हो, मानवजीवन के महान कर्तव्यों का बोध हो, उस बोध से चित्त की प्रसन्नता प्राप्त हो, आत्मानन्द का अनुभव हो, त्याग-वैराग्य की भावनाएँ जाग्रत हों...इस पवित्र परोपकार की भावना से प्रेरित होकर ग्रन्थकार आचार्यदेव ने ग्रन्थ की रचना की है।

करुणा का तत्त्व ही ऐसा है जो परोपकार के लिए मनुष्य को उत्तेजित कर देता है! दूसरे जीवों के दुःख, करुणा सहन नहीं कर सकती। परदुःख का नाश करने का पुरुषार्थ वह करवाएगी ही।

अन्तरात्मा को जगाइए!

सर्वज्ञ-वीतराग जिनेश्वरों का यह निर्णय है कि संसार में जीवात्माएँ ज्ञान के अभाव में भटक रही हैं, ज्ञान के अभाव में ही दुःख-त्रास और अशान्ति है। ग्रन्थकार ने इसी निर्णय को अपना निर्णय बनाकर, जीवों को ज्ञान-प्रकाश देने का पवित्र कार्य किया है, सैंकड़ों ग्रन्थों की रचना की है। यह उनका भव्य उपकार है, मानते हो उपकार? मानते हो ऐसे ज्ञानी महापुरुषों को उपकारी? आप बताओगे कि आप किस-किसको उपकारी मानते हो? धन देनेवाला उपकारी या धर्म देनेवाला उपकारी? समृद्धि देनेवाला उपकारी या सद्‌बुद्धि देनेवाला उपकारी? धन-मान और समृद्धि देनेवालों को भले आप उपकारी मानो, परन्तु धर्म-ज्ञान और सद्‌बुद्धि देनेवालों को भी उपकारी मानो, मानते हो क्या? ज्ञान और ज्ञानी पुरुषों के प्रति श्रद्धा, प्रेम और भक्ति है? अपनी अन्तरात्मा को टटोलो।

ज्ञान के लिए जान भी कुरबान :

चीन का एक प्रवासी 'ह्यु-एन-त्सांग' भारत के प्रवास के लिए आया था। मध्ययुग की यह बात है। नालंदा विद्यापीठ में उसने बौद्ध धर्म का अध्ययन किया और जब वह वापस अपने देश जाने लगा तब उसने बौद्ध धर्म के कई हस्तलिखित ग्रन्थ साथ ले लिए। बंगाल के उपसागर से वह चीन जा रहा था, बौद्ध धर्म के दो पंडित-ज्ञानगुप्त और त्यागराज उनको विदा देने के लिए उनके साथ जहाज में जा रहे थे। जहाज आगे बढ़ रहा था, अचानक आकाश में बादल घिर आए। आँधी और तूफान ऐसे घिरे कि सबके प्राणों को खतरा हो गया। जहाज के कप्तान ने यात्रियों को आदेश दे दिया कि 'जिसके भी पास भारी सामान हो, समुद्र में फेंक दें।' ह्यु-एन-त्सांग के पास उन हस्तलिखित

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

बौद्ध धर्म के ग्रंथों का बंडल था! वह समुद्र में फेंकने के लिए तैयार हो गया, तब ज्ञानगुप्त और त्यागराज ने कहा : 'यह तो ज्ञान का अमूल्य खजाना है, इसे आप समुद्र में मत फेंकिए, उसके बदले हम दोनों समुद्र में कूद पड़ते हैं...मनुष्य देह नश्वर है, ज्ञान शाश्वत् है, ऐसे अपूर्व धर्मग्रन्थों का त्याग नहीं करें। इन ग्रन्थों से तो हजारों-लाखों मनुष्यों को निर्वाण का मार्ग मिलेगा, परम सुख प्राप्त होगा...' यह कहते हुए उन दोनों भारतीय पंडितों ने अपने आपको उस तूफानी समुद्र में झोंक दिया।

दुःख का कारण-अज्ञान :

ज्ञान के प्रति कैसा प्यार! धर्मग्रन्थों के प्रति कैसी अद्‌भुत श्रद्धा! क्योंकि दोनों ने उन धर्मग्रन्थों को पढ़ा था, उन्होंने ज्ञानामृत का आस्वाद लिया था। आपने कभी ज्ञानामृत चखा भी है? घोर अज्ञान और अधर्म से मनुष्य आत्मा को भूल ही गया है, महात्माओं को भी भूल गया है, परमात्मा तो उसे याद ही नहीं आते! दिन-प्रतिदिन दुःख-त्रास और असंख्य विडंबनाओं के दलदल में मनुष्य फँसता जा रहा है। ऐसे मनुष्यों को देखकर करुणावंत महापुरुषों का हृदय करुणार्द्र बन जाता है और उन मनुष्यों को दुःखमुक्त करने के लिए वे ज्ञान का प्रकाश देते हैं। इसीलिए आचार्यदेव ने 'धर्मबिन्दु' ग्रन्थ की रचना की है।

निर्मल बुद्धि अनिवार्य :

धर्मतत्त्व को समझना-यथार्थ रूप में समझना सरल नहीं है। इसके लिए बुद्धि सूक्ष्म चाहिए, निर्मल चाहिए, अर्थात् बुद्धि कोई दुराग्रह से ग्रस्त नहीं होनी चाहिए। शान्त चित्त से, सूक्ष्मता में, गहराई में जाकर धर्मतत्त्व का चिन्तन करें। है न बुद्धि में सूक्ष्मता? है न बुद्धि में निर्मलता? यदि 'धर्म' को समझना है और सही धर्माराधना करनी है, तो ऐसी बुद्धि अवश्य चाहिए।

जिस ग्रन्थ की रचना ऋषि-मुनि या आचार्य करते हैं, जिनको संसार के भौतिक सुखों का आकर्षण या ममत्व नहीं होता, उनका लक्ष्य जैसे जीवों के प्रति उपकार का,आत्मिक उपकार का होता है वैसे स्वयं के प्रति भी उनके विशेष ध्येय होते हैं। एक ध्येय होता है तत्त्वचिन्तन, शास्त्र-अनुप्रेक्षा। दूसरा ध्येय होता है कर्मनिर्जरा का, अर्थात् आत्मा को कर्मबंधनों से मुक्त करने का। शास्त्र-स्वाध्याय से, तत्त्वचिंतन से विपुल कर्मनिर्जरा होती है। निर्जरा होते

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

होते क्षय हो जाता है कर्मों का, और आत्मा परम विशुद्ध बन जाती है। ऋषि-मुनियों का यही ध्येय, यही आदर्श और यही लक्ष्य होता है-अपनी संपूर्ण धर्म-आराधना का।

'धर्मबिन्दु' ग्रन्थ की रचना करनेवाले आचार्यश्री हरिभद्रसूरिजी असाधारण प्रज्ञावाले महर्षि थे। उनका हृदय करुणा का सागर था, उनका लिखा हुआ एक-एक शब्द, एक-एक सूत्र हमारी आत्मा को छूता है-हमारे हृदय तक पहुँचता है। आप लोग यदि ध्यान से इस ग्रन्थ को सुनेंगे, तो आपका हृदय नाच उठेगा, आपकी आत्मा अपूर्व आनन्द अनुभव करेगी।

ग्रन्थकार ने परमात्मा को नमस्कार करके ग्रन्थरचना का प्रारंभ किया है। अपने भी परमात्मा को प्रणाम कर और ग्रन्थकार को भी नमस्कार करके 'धर्मबिन्दु' ग्रन्थ पर प्रवचन शुरू करते हैं। मेरी अल्प बुद्धि से, अति अल्प ज्ञान से मैं ग्रन्थ और ग्रन्थकार को पूर्णरूपेण तो न्याय नहीं दे सकूँगा, जो कुछ मैं समझ पाया हूँ... आपको बताऊँगा। मुझे ग्रन्थकार के प्रति पूर्ण श्रद्धा है, ग्रन्थ मेरा अतिप्रिय है, इसीलिए मैंने प्रवचन हेतु इस ग्रन्थ को चुना है। ग्रन्थ और ग्रन्थकार के प्रति मेरे हृदय में जो प्रेम और श्रद्धा है, वही मुझे मुखरित करते हैं, मुखरित होने में भी आनन्द आता है!

जिनेश्वर भगवन्त के अचिन्त्य अनुग्रह से और गुरुजनों की कृपा से मैं इस महान ग्रन्थ की विवेचना करने में समर्थ बनूँ...यही मेरी कामना है।

धर्म के अचिन्त्य प्रभाव का वर्णन करके ग्रन्थकार 'धर्मबिन्दु' का किस प्रकार प्रारम्भ करते हैं-वह कल बताया जाएगा।

आज, बस इतना ही।

❖ ❖ ❖

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

- ***धर्म से धन मिलता है...! धर्म से भोगसुख मिलते हैं! धर्म से स्वर्ग मिलता है और धर्म से मोक्ष भी मिलता है! धर्म का प्रभाव अचिन्त्य है! परन्तु धर्म के पास तुम गलती से भी सांसारिक सुखभोग मत माँगना!***
- ***'जो नफा मिले उसमें से कुछ हिस्सा शुभ कार्य में खर्च करना' एक बुजुर्ग आदमी विलियम कोलगेट को सलाह देता है, कोलगेट उस सलाह को मानता है और वह दुनिया का एक उदार दानवीर धनकुबेर बनता है।***
- ***केवल खीर के दान से वह ग्वाले का लड़का शालिभद्र नहीं बन गया था...वह सुपात्र दान तो था प्रेम का! साधु के प्रेम ने उसको शालिभद्र बनाया।***
- ***धर्म को केवल अर्थ-काम का साधन मत बनाओ, 'आत्मकल्याण' को ही जीवन का ध्येय बनाओ और उसीके लिए धर्मपुरुषार्थ करते रहो।***

प्रवचन : २

आध्यात्मिक शक्ति का प्रभाव :

परम करुणावंत आचार्यभगवंतश्री हरिभद्रसूरिजी ने 'धर्मबिन्दु' ग्रन्थ का प्रारंभ करते हुए परमात्मा को प्रणाम किया। परमात्मप्रणाम भावमंगल है। भावमंगल में इतनी अपार 'स्पिरिच्युअल एनर्जी-आध्यात्मिक-शक्ति है कि भावमंगल करने वाले मनुष्य के सभी उपद्रव, सभी दुःख आमूल नष्ट हो जाते हैं। सभी विघ्न दूर हो जाते हैं। कैसे होता है, यह सब? यह बात मत पूछो!

आध्यात्मिक-शक्ति को हमने पहचाना ही नहीं है। आत्मशक्ति के विषय में शायद आप लोगों ने सोचा भी नहीं होगा। आत्मशक्ति के आगे 'एटमिक एनर्जी' भी कुछ नहीं है। आणविक शक्ति से आत्मशक्ति काफी बढ़कर है। परमात्मप्रणाम की आन्तरिक क्रिया उस आत्मशक्ति का आविर्भाव करती है। उस शक्ति से विघ्ननाश होता है, दुःखनाश होता है, चिन्ताओं का नाश होता है। मनुष्य का जीवनपथ निष्कंटक बनता है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय निर्देश :

जिस प्रकार मंगल किया वैसे 'अभिधेय' भी बता दिया, यानी इस ग्रंथ में वे जो लिखने जा रहे हैं उस विषय को भी बता दिया। उनका विषय है धर्म। वे धर्म के विषय में कुछ लिखना चाहते हैं। ग्रन्थ के प्रारंभ में ग्रन्थ का विषय बता देना उचित ही है। इस विषय के जो जिज्ञासु होंगे, इस विषय को जानने की जिस मनुष्य की इच्छा होगी, वे इस ग्रन्थ को पढ़ेगे, सुनेंगे। मुझे जिज्ञासा थी, इसलिए मैंने पढ़ा। आपको जिज्ञासा है, इसलिए आप इधर सुनने के लिए आए हो। जिस विषय को जानने की जिज्ञासा होती है, उस विषय पर सुनने से आनन्द होता है। तृप्ति होती है। आपको तृप्ति का अनुभव होगा। ग्रन्थकार ने इतने अच्छे ढंग से धर्म समझाया है कि अपनी जिज्ञासा संतुष्ट हो जाती है। संतुष्टि ही आनन्द है!

ग्रन्थ का प्रयोजन :

अभिधेय बता कर उन्होंने प्रयोजन भी बता दिया। किसलिए उन्होंने इस ग्रन्थ की रचना की, एकदम स्पष्ट शब्दों में उन्होंने कह दिया : जीवों पर उपकार करने के लिए! जीवों को ज्ञानप्रकाश देने के लिए! यह प्रयोजन तो तात्कालिक प्रयोजन है। अंतिम प्रयोजन है मुक्ति की प्राप्ति! निर्वाण की प्राप्ति! हाँ, कोई भी पवित्र क्रिया हो, उसका फल निर्वाण होता है। क्रिया पवित्र हो, क्रिया करनेवाले का भाव निर्मल हो-निर्वाण-फल मिलेगा ही। वक्ता और श्रोता-दोनों की क्रियाएँ बोलने की और सुनने की यदि निर्मल हैं, शुद्ध हैं, तो फल निर्वाण है। आपका ध्येय और मेरा ध्येय-अंतिम ध्येय मुक्ति ही है। मैं बोलता हूँ, बोलने की क्रिया करता हूँ, मेरी यह क्रिया पवित्र आशयवाली चाहिए-मेरी वाणी से जीवों को तत्त्वबोध हो, मेरी वाणी से जीवों के आत्मभाव निर्मल हों, इस प्रकार का मेरा आशय होना चाहिए। तो मेरी यह बोलने की क्रिया निर्वाण का फल अवश्य देगी। आप लोग सुनने की क्रिया करते हो न? हाँ, सुनना भी एक महत्त्वपूर्ण क्रिया है। आप किस आशय से सुनते हो? कैसा आशय हो तो आपकी सुनने की क्रिया मुक्तिफलदायिनी बन सके? सोचा है कभी? सुनते हो पर सोचते नहीं! इस जिनवाणी से मुझे आत्मज्ञान हो, इस जिनवाणी के श्रवण से मेरे रागद्वेष मंद हों, कर्मों के बंधन तोड़ने का पुरुषार्थ प्रगट हो...इस आशय से सुनें तो सुनने की क्रिया मुक्ति का फल अवश्य देगी।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ग्रन्थ का सम्बन्ध :

प्रयोजन के साथ-साथ ग्रन्थकार ने 'सम्बन्ध भी बताया है। अभिधेय-अभिधानरूप सम्बन्ध है इसका। धर्मतत्त्व यहाँ अभिधेय है यानी धर्म कथनीय है और यह ग्रन्थ अभिधान है। धर्मतत्त्व के साथ ग्रन्थ का सम्बन्ध बताया गया। उसका शाश्वत् धर्म से क्या लेना-देना? है लेना-देना! ग्रन्थ उस धर्म को बताता है, धर्म का अभिधान करता है। धर्मतत्त्व स्वयं मूक है, ग्रन्थ बोलता है! इसलिए ग्रन्थ उपादेय है, आवश्यक है।

इस प्रकार 'मंगल', 'अभिधेय', 'प्रयोजन' और 'सम्बन्ध' बताकर ग्रन्थकार धर्म का फल बताते हैं! धर्म का स्वरूप अभी नहीं बताते, फल बताते हैं। आचार्यश्री ने मानव-मन का गहरा अध्ययन किया होगा, ऐसा इससे प्रतीत होता है। मानव मन का यह स्वभाव है-कोई भी काम करना होगा, 'इस काम का फल क्या है? इस कार्य से क्या मिलेगा? क्या लाभ होगा?' मन में निर्णय हो जाएगा कि इस कार्य का मुझे इस प्रकार का फल मिलेगा... अच्छा फल मिलेगा' इसके बाद ही वह उस कार्य का स्वरूप जानना चाहेगा।

धर्म करने से फायदा क्या?

'धर्म क्यों करना चाहिए? धर्मकार्य करने से हमें क्या लाभ होगा?' यह प्रश्न बुद्धिमान मनुष्य के मन में पैदा होगा ही। बुद्धिमान मनुष्य फल का विचार किये बिना कोई कार्य नहीं करेगा। आप इस दृष्टि से अपने जीवन की तमाम प्रवृत्तियों को देखो। सोचो, आपकी तमाम क्रियाएँ किसी न किसी फलप्राप्ति के लक्ष्य से होती होंगी। आप भोजन करते हैं, इसलिए कि भोजन से क्षुधा का दुःख दूर होता है, क्षुधा शान्त होती है। यदि भोजन करने से क्षुधा शान्त नहीं होती तो आप भोजन नहीं करते! आप पानी पीते हो, इसलिए कि आपका प्यास का दुःख पानी पीने से दूर होता है। आप दान देते हो, क्यों? आपको फल का ज्ञान है : दान देने से कीर्ति बढ़ती है, पुण्यकर्म बंधता है अथवा धन की लालसा कम होती है, इसलिए आप दान देते हो। आप वस्त्र धोने की क्रिया करते हो-क्यों? धोने से वस्त्र साफ होता है, उज्ज्वल होता है-यह हुआ फल का ज्ञान।

जिस फल को पाने की आपकी इच्छा होगी, उस फल को देनेवाली क्रिया आप करेंगे। आपके मन को विश्वास हो जाना चाहिए कि 'यह क्रिया करने से मेरा इच्छित फल मुझे मिल जायेगा।' हम सब करते हैं इस प्रकार सारी

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

क्रियाएँ! हाँ, मन का निर्णय गलत हो गया हो और उस क्रिया से इच्छित फल नहीं मिले, वह बात दूसरी है। मनकी इच्छा है धनवान बनने की, संपत्ति पाने की। उसको लगा कि 'यह 'धंधा-बिजनेस' करने से मुझे ज्यादा धन मिलेगा।' धंधा किया, धन नहीं मिला, ऊपर से स्वयं का धन खोया। हो सकता है ऐसा। परन्तु धंधा किया उसने धन पाने की इच्छा से। धंधा करने से धन मिलता है; इस विचार से ही वह धंधा करता है।

बुद्धिमान फल के बारे में सोचे :

आचार्यदेव की भावना है जीवों के पास धर्म करवाने की। उनका पूर्ण विश्वास है कि धर्म करने से जीव शिव बन सकता है, पूर्ण सुख और अनन्त आनन्द पा सकता है। उनकी भावना है 'सब जीवों को पूर्ण सुख और अनन्त आनन्द प्राप्त हो!' इस प्रबल भावना से प्रेरित होकर जब वे जीवात्माओं को उपदेश देते हैं : 'धर्म करना चाहिए, धर्म करो।'तूरन्त ही बुद्धिमान पूछता है : 'हमें क्यों धर्म करना चाहिए? धर्म करने से हमें क्या मिलेगा? कौन-सा फल मिलेगा?'

बुद्धिमान मनुष्य के सामने कोई भी नया काम आयेगा, तुरन्त ही वह उसके लाभ के विषय में सोचेगा। उसे विश्वास हो जायेगा कि 'इस काम से मुझे कुछ लाभ होगा...अच्छा फल मिलेगा, तो ही वह नया काम करेगा। उसको लगेगा कि 'इस काम के करने से मुझे नुकसान होगा, लाभ नहीं होगा,' तो वह काम नहीं करेगा। मानव-मन की यह स्वाभाविकता है। इतना ही नहीं, जिस कार्य से मनुष्य को लाभ होता है, इच्छित सुख मिल जाता है, उस कार्य के स्वरूप को जानने में उसकी दिलचस्पी भी कम ही रहती है। कार्य कैसे करना, कैसे करने से लाभ हो सकता है, इस बात की जानकारी तो प्राप्त करेगा, परन्तु यह कार्य अच्छा है या बुरा-शायद नहीं सोचेगा। क्योंकि उसकी दृष्टि फल की ओर होती है। लाभ कमाने की ओर होती है। मानव-मन का यह स्वभाव देखते हुए ग्रन्थकार महात्मा धर्म के लाभ, धर्म का फल बताते हैं। वे कहते हैं :

धनदो धनार्थिनां प्रोक्तः कामिनां सर्वकामदः।
धर्म एवापवर्गस्य पारम्पर्येण साधकः ।।

आइए, धर्म का फल जानना चाहते हैं? तुम ही कहो, तुम्हें क्या चाहिए? धन चाहिए? धर्म धन देता है!

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हाँ, धर्म से धन मिलता है :

तुम्हें पाँच इन्द्रिय के विषयसुख चाहिए? शब्द-रूप-रस-गंध और स्पर्श के मनोहर सुंदर श्रेष्ठ विषय चाहिए?

धर्म देता है इन श्रेष्ठ विषयों को। बोलते चलो, क्या चाहिए तुम्हें?

देवलोक के दिव्य सुख चाहिए? देव बनना है? धर्म देवलोक के दिव्य सुख भी देता है। अवश्य देता है।

अच्छा, तुम्हें ऐसे सुख नहीं चाहिए, मोक्षसुख चाहिए? मोक्ष के अनन्त, अक्षय सुख चाहिए? मिलेंगे वे सुख, धर्म ही देगा। धर्म के अलावा मोक्ष का सुख कोई दे ही नहीं सकता।

अर्थप्रधान और कामप्रधान जीवों को आश्चर्य होता है यह बात सुन कर! जिनके जीवन में अर्थ-धनसंपत्ति ही सर्वस्व है और इन्द्रियों के विषयसुख ही सब कुछ हैं, ऐसे जीवों को धर्म की ओर मोड़ना आसान काम नहीं है। ऐसे जीवों को मोक्षमार्ग के पथिक बनाना सरल काम नहीं है। संसार में ज्यादातर लोग अर्थप्रेमी और कामभोगप्रेमी ही होते हैं। उनको धर्मप्रेमी बनाना है। मिटाना है उनका अर्थप्रेम और कामभोगप्रेम, इसके लिए बताते हैं धर्म का फल अर्थप्राप्ति और कामप्राप्ति! स्वर्गप्राप्ति और मोक्षप्राप्ति!

धर्म-सुख की 'फैक्टरी' :

यह मत समझना कि जीवों को लालच दे रहे हैं! धर्म की ओर खींचने के लिए यह कोई लालच नहीं बताई गई है। धर्म की शक्ति का सच्चा परिचय दिया गया है। धर्म सभी प्रकार के सुख दे सकता है। संसार में और मोक्ष में, जितने भी सुख हैं, सभी के सभी सुख धर्म का ही उत्पादन है। धर्म का ही 'प्रोडक्शन' है। सुखों का उत्पादन धर्म की फैक्टरी में ही होता है। फैक्टरी जो होती है, घटिया, बढ़िया सभी प्रकार का माल निकालती है। धर्म की फैक्टरी में से घटिया, बढ़िया सभी प्रकार का सुख निकलता है। कैसा उत्पादन करना, आप पर निर्भर करता है। पैदा होगा सुख ही। धर्म की फैक्टरी में से दुःख का उत्पादन होता ही नहीं। दुःख का उत्पादन होता है पाप की फैक्टरी में। यह वास्तविकता है। जीवों को लुभाने के लिए आचार्य ने यह कोई सफेद झूठ नहीं बोला है। पूर्ण सत्य है। धर्म धन देता है, कामभोग देता है, स्वर्ग और मोक्ष देता है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मनुष्य को जो पसन्द होता है, वही लेना चाहता है। जो पाने की इच्छा होती है, वही पाना चाहता है। कपड़े की दुकान में सब प्रकार का कपड़ा मिलता है। घटिया 'क्वालिटी' का और बढ़िया 'क्वालिटी' का। कम मूल्य का, ज्यादा मूल्य का। 'सेल्समेन' सभी प्रकार का कपड़ा दिखाएगा और ज्यादा मूल्य का, बढ़िया प्रकार का कपड़ा खरीदने का आग्रह करेगा। परंतु लेनेवाला प्रायः अपनी पसन्द का, अपनी 'चोइस' का ही कपड़ा खरीदेगा। आपको यहाँ धर्म से प्राप्त सभी प्रकार के सुख बताए गए हैं। घटिया सुख और बढ़िया सुख! हम तो बढ़िया-उत्तम 'क्वालिटी' का सुख लेने का ही आग्रह करेंगे! आपकी पसन्दगी क्या है-आप बताइए!

सुख माँगो मत :

धर्म का फल है सुख, यह बात तो मानते हो न? सुख धर्म से ही मिलता है, यह बात हृदय में जँची है न? 'धर्मात् सुखम्' धर्म से सुख ही मिलता है- इस बात का निर्णय आपके मन में हो जाय, इसके बाद मैं बताऊंगा कि धर्म से कौन-सा सुख, कैसा सुख आपको प्राप्त करना चाहिए। मेरी बात जँचे तो सुख प्राप्त करना, नहीं जँचे तो फिर जैसी आपकी इच्छा! दूसरी बात तो यह है कि सुख माँगने की आवश्यकता ही नहीं है। बिना माँगे जो वस्तु मिल जाती हो, माँगने की जरूरत ही क्यों? आप धर्म करते रहें, सुख स्वतः मिल जाएगा!

जिस मनुष्य के मन में प्रबल धनेच्छा होगी, जो मनुष्य स्वयं के जीवन में पैसे की तीव्र कमी अनुभव करता होगा, वह मनुष्य प्रायः धर्म करेगा तो धर्मक्रिया से भी धनप्राप्ति की ही कामना करेगा! क्योंकि 'संसार-व्यवहार पैसे के बिना चल नहीं सकता,' ऐसा उनका खयाल होता है। कर्मसिद्धान्त का उसे ज्ञान नहीं होता और भाग्य पर भरोसा रख कर निष्क्रिय रह नहीं सकता है वह! मैंने एक घटना पढ़ी थी कुछ वर्ष पूर्व :

'जो मुनाफा हो, उसमें से कुछ हिस्सा अच्छे कार्य में खर्च करना!'

बुजुर्ग की सलाहः

'विलियम कोलगेट' अमेरिका का निवासी था। कोलगेट गरीब था। उसके माता-पिता अपने घर साबुन बनाते थे और शहर की गलियों में जा कर बेचते थे। गरीब लोग साबुन खरीदते, क्योंकि उनको कम दाम में साबुन मिलता था। एक दिन निराश कोलगेट को पिता ने कहा : बेटे, तुम न्यूयोर्क जाओ, तुम्हारा भाग्य वहाँ जाकर आजमाओ।' विलियम घर से निकला। गाँव की

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सीमा पर एक बुजुर्ग आदमी मिला। उसने विलियम से पूछा : 'कहाँ जा रहे हो बेटा?' विलियम ने कहा : 'न्यूयोर्क जा रहा हूँ।'

'क्यों?'

'भाग्य आजमाने के लिए।'

'अच्छा है बेटा, चल मुझे भी न्यूयोर्क ही आना है।' वृद्ध और विलियम न्यूयोर्क की तरफ आगे बढ़े। रास्ते में उस वृद्ध पुरुष ने विलियम को कहा : 'देख विलियम, धंधे में कुछ बातें अनिवार्य रूप से ध्यान में रहनी चाहिए। पहली बात है 'ऑनेस्टी' की, प्रामाणिकता की। धंधे में प्रामाणिकता का चुस्त पालन करना। दूसरी बात है वस्तु में मिलावट कभी नहीं करना। वस्तु में मिलावट करने से धंधा लंबे अर्से तक नहीं चलता। कभी न कभी ग्राहकों को अविश्वास हो ही जाएगा! तीसरी बात यह है कि ग्राहक को माल पूरा देना, धोखा कभी नहीं करना। वजन कम नहीं देना। चौथी बात कहता हूँ कि मनुष्य को जो कुछ मिलता है, परमात्मा की कृपा से मिलता है। इसलिए तुझे व्यापार में जो भी 'प्रोफिट' नफा हो, मुनाफा हो, उसमें से भगवान का एक हिस्सा अलग निकालना और उस हिस्से को सत्कार्य में खर्च कर देना।'

रास्ते में एक चर्च आया। विलियम ने वृद्ध के साथ भगवान को प्रार्थना की : 'ओ गोड', मैं धंधे में जो कुछ कमाऊँगा, मुझे जो मुनाफा होगा, उसमें से दसवाँ हिस्सा सत्कार्यों में व्यय करूँगा।'

विलियम ने न्यूयोर्क में साबुन बनाने की फैक्टरी डाली-छोटा-सा कारखाना। उसको जो नफा होता था, उसमें से दसवाँ हिस्सा वह सत्कार्यों में खर्च कर देता था।

परमात्मा को प्रार्थना करना, प्रतिज्ञा करना, सत्कार्य में पैसा खर्च करना, यह सब एक प्रकार की धर्मक्रियाएँ ही हैं। इन धर्मक्रियाओं से विलियम को अनाप-सनाप धन मिलता गया। उसने साबुन का नाम 'कोलगेट' रखा! दंतमंजन भी उसने बनाया। कोलगेट का दंतमंजन और साबुन विश्व के हर देश में फैल गया। विलियम ने करोड़ों डोलर कमाया, उसने दान भी खुले हाथों दिया।

अपने देश में तो यह प्राचीन परंपरा चलती रही है! व्यापार-धंधे में 'शुभ खाते' में लोग पैसा अलग निकालते ही हैं। भगवान का कुछ न कुछ हिस्सा रखते ही हैं और उस हिस्से की द्रव्यराशि में से सत्कार्य करते रहते हैं। 'धर्म

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

से धन मिलता है'-यह विश्वास है। झूठा विश्वास नहीं है, सच्चा विश्वास है! हरिभद्रसूरिजी जैसे महान ज्ञानी आचार्य कहते हैं कि धर्म धन देता है! गूर्जरेश्वर कुमारपाल के पूर्व जन्म का वृत्तांत पढ़ने को मिलता है। पूर्व जन्म में नौकर था। एक श्रीमंत परमात्म-भक्त सेठ के वहाँ नौकर था। सेठ रोजाना परमात्मा की पूजा करते थे। एक दिन इस नौकर को भी परमात्मा की पूजा करने की इच्छा हुई। उसने अपने पैसों से पुष्प खरीदे और भावपूर्वक पूजा की। इस परमात्मपूजा के धर्म से उसको गुजरात का साम्राज्य मिला! धर्म से धन नही मिला तो क्या मिला? मिला न धन? परन्तु एक बात याद रखना। उस नौकर ने परमात्मपूजा का धर्म किया था निष्काम भावना से। धन पाने की इच्छा से पूजा नहीं की थी। यही रहस्य है धर्मतत्त्व का! मेरे खयाल से तो यदि वह पूजा का धर्म कर के धन माँगता, तो उसे गुजरात का राज्य नहीं मिलता! मिल जाती थोड़ी संपत्ति...थोड़ी जमीन या पैसे।

धर्म की ताकत :

धर्म की शक्ति क्या है, कितनी है, यह बताया जा रहा है। आप इस बात पर ध्यान केन्द्रित करना। अभी दूसरी उलझन में नहीं फँसना। जैसे धर्म धन दे सकता है वैसे भोगसुख भी धर्म देता है। धन मिलना एक बात है, भोगसुख मिलना अलग बात है। जो धनवान होते हैं उनको भोगसुख मिले ही, ऐसा कोई नियम नहीं है। धनवान है परन्तु बीमार ही रहता है! पाँच इन्द्रिय के प्रिय विषयों का उपभोग कैसे करेगा?

ऐसे धनवान क्या आप लोगों ने नहीं देखे हैं कि जो अँधे हैं, जो पक्षाघात से, 'पेरेलेसीस' से पीड़ित हैं, सुन नहीं सकते, चल नहीं सकते, केन्सर हो गया हो। ऐसे श्रीमन्त प्रिय विषयों का उपभोग नहीं कर सकते। शरीर निरोगी होना, पाँचों इन्द्रियों का अखंड और कार्यशील होना धर्म की ही देन है। मानते हो न?

कल का ग्वाला-आज का शालिभद्र :

प्रश्न : निरोगी शरीर और इन्द्रियों की पूर्णता पुण्यकर्म की देन है न?

उत्तर : पुण्यकर्म किसकी देन है? पुण्यकर्म का बन्ध कैसे होता है? पापाचरण से या धर्माचरण से? धर्म से ही पुण्यकर्म बँधता है। इसका अर्थ क्या? जो पुण्यकर्म से मिलता है वह धर्म की ही देन है। इसका अर्थ यह है कि भोगसुख पाने के साधन-निरोगी शरीर, इन्द्रिय, मन... वगैरह धर्म से ही मिलते हैं। जो मिला है वह धर्म का ही फल है और भविष्य में जो मिलेगा वह

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भी धर्म का ही फल होगा। धर्म के प्रभाव से ही भोगसुख मिलेंगे। मिले थे न शालिभद्र को भोगसुख?

भगवान महावीर के समय में हो गया था वह भोगीभ्रमर। रोजाना-प्रतिदिन दैवी भोगसुख के साधन उसको मिलते थे। बत्तीस औरतों का वह पति था। भोगसुख भोगने में-पाँचों इन्द्रिय के प्रिय विषयों के उपभोग में वह इतना मग्न था कि मगधसम्राट श्रेणिक का नाम भी नहीं जानता था! जिसके राज्य में, जिसके नगर में वह रहता था! इतने भोगसुख उसको कैसे मिले थे? धर्म से! सुपात्रदान के धर्म से! पूर्व जन्म में शालिभद्र ग्वाले का पुत्र था। गरीब था। एक दिन खीर खाने की इच्छा हुई, तो उसकी माँ ने इधर-उधर से दूध-चावल-शक्कर एकत्र की और खीर बनाकर बच्चे को दी। थाली में बच्चे को खीर परोस कर वह पानी भरने बाहर चली गई। इधर एक तपस्वी मुनि भिक्षा लेने आ गए। बच्चे को तपस्वी मुनि के प्रति प्रीति हुई, अपने घर बुलाया और खीर दे दी मुनि को! जिस खीर के लिए वह रोया था, रो-रोकर खीर पाई थी... दे दी मुनिराज को! प्रसन्न चित्त से दी थी उसने, यह मत भूलना। देने के बाद, मुनि के चले जाने के पश्चात् भी अफसोस नहीं किया था उसने। 'अरे, मैंने क्यों सारी की सारी खीर दे दी...थोड़ी देता और थोड़ी रखता तो अच्छा होता' ऐसा कोई विचार नहीं आया। मुनि के जाने बाद भी उसकी मनःकल्पना से मुनि नहीं जाते हैं। मुनि की शान्त-प्रशान्त मुखमुद्रा और कृपापूर्ण आँखें...बच्चा भूल नहीं पाता है।

केवल खीर का दान नहीं था, प्रेम का दान था! :

वह प्रीति-दान था। मात्र कर्तव्यपालन नहीं था। 'अपने घर पर मुनिराज आए हैं तो बुलाना चाहिए, कुछ भिक्षा देनी चाहिए...' यह हुआ कर्तव्य का विचार। इस विचार में प्रेम या स्नेह की स्निग्धता नहीं होती। रूक्ष विचार होता है।

मात्र दानधर्म ही नहीं था, वह मुनिप्रेम का भी वहाँ धर्म था। मुनिप्रेम, साधुप्रेम, त्यागप्रेम... यह उत्तम भावधर्म है। उत्तम भावधर्म का फल भी उत्तम मिलता है। मात्र खीर का दान करने से वह शालिभद्र नहीं बना था। यदि ऐसे शालिभद्र बना जाता हो तो आप लोग एक थाली भर के खीर क्या, एक टंकी भर के खीर का दान दे दो! इतने महान दानवीर बन जाओ! परन्तु ऐसे दान देने मात्र से शालिभद्र नहीं बना जाता। वह गोपालक बच्चा उसी रात को शूलरोग से मर गया था। मृत्यु के समय भी उसका मन उस मुनिराज में था।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मन ही मन किए हुए दान-सुकृत की अनुमोदना कर रहा था। माँ पास ही बैठी थी, परन्तु बच्चे का मन महात्मा में खोया हुआ था। कितना परिचय था महात्मा का? परिचय था ही नहीं, मात्र दर्शन किए थे! परन्तु मुनिदर्शन बच्चे के लिए महान धर्म बन गया! उस महान धर्म ने बच्चे को 'ट्रान्सफर' कर दिया गोभद्र श्रेष्ठी की हवेली में! भद्रा सेठानी की कुक्षि में। धन-वैभव तो मिला था शालिभद्र को, परन्तु भोगसुख कैसे मिले थे? वात्सल्यपूर्ण पिता मिले, स्नेहपूर्ण माता मिली और प्रेमपूर्णा ३२ पत्नियाँ मिलीं। निरोगी और सर्वांगसुन्दर शरीर मिला। परिपूर्ण अखंड पाँच इन्द्रियाँ मिलीं... यह सब मिला तब जाकर शालिभद्र भोगसुख, विपुल भोगसुख भोग सका था। 'कामिनां सर्वकामदः' धर्म सभी प्रकार का भोगसुख देता है। धर्म में यह शक्ति है।

धर्म किस प्रकार देता है?

धर्म चक्रवर्ती के भोगसुख दे सकता है। धर्म बलदेव-वासुदेव के भोगसुख दे सकता है। दिये हैं भूतकाल में, देता है वर्तमानकाल में और देगा भविष्यकाल में। धर्म ही देगा, दूसरा कोई तत्त्व संसार में है ही नहीं कि जो भोगसुख दे सके। यह मत पूछना कि कैसे देता है धर्म धन और भोगसुख? धर्म की देने की पद्धति निराली है! हम नहीं समझ पायेंगे उसकी देने की 'मेथड'! उस पद्धति को समझने के लिए हमें योगी बनना होगा! अध्यात्म-योगी बनना पड़ेगा। विशिष्ट-ज्ञान संपादन करना होगा।

सोचो, विचारो, उस ग्वाले के बच्चे को कोई कल्पना भी नहीं थी कि 'मैं खीर का दान दूँगा तो मैं श्रेष्ठीपुत्र बनूँगा और अपार धन-संपत्ति एवं विपुल भोगसुख मुझे मिलेंगे।' धर्म का फलविषयक ज्ञान उसे नहीं था, फिर भी फल मिला! हाँ, यदि फल का ज्ञान होता तो शायद वह फल नहीं मिलता! उसने धर्म किया था सहज रूप से, निष्काम भाव से। उसे श्रेष्ठ भोगसुख मिल गये! बिना माँगे मिल गये! धर्म से जो भीख नहीं माँगता है, धर्म उसको समृद्ध कर देता है। माँगनेवाले को जरूर टुकड़ा भी डाल देता है। देता है जरूर।

धर्म को भिखमंगे पसंद नहीं!

धर्म धन देता है, भोग-सुख देता है, स्वर्ग के सुख देता है - सब प्रकार के सुख देता है; परंतु माँगनेवाले उसे जरा भी पसन्द नहीं! मनुष्य को माँगने की आदत पड़ गई है। भिखारी बन गया है मानव। जहाँ जाता है वहाँ माँगता है! कभी जबान से माँगता है तो कभी मन से माँगता है! कभी काया से भी माँगता

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

है! बुद्धिमान मानव की भीख माँगने की पद्धति निराली होती है! वह भीख माँगेगा परन्तु भिखारी नहीं दिखेगा! वह पाप करेगा परन्तु पापी नहीं दिखेगा! बुद्धिमान है न! यह बुद्धिमत्ता नहीं है। जहाँ बिना माँगे मिलता हो, वहाँ माँगना बुद्धिमत्ता नहीं है, मूर्खता है।

मनुष्य जन्मता है तभी से माँगने लगता है। छोटा होता है, बोलना नहीं आता है, तो रोकर माँगेगा। बच्चा रोता है तो माता समझ लेती है कि बच्चे को दूध चाहिए। फिर, जब बोलना सीखता है, तब बोलकर माँगता है। माता से और पिता से माँगता है। भाई से, बहन से, मित्रों से, स्वजनों से, बस माँगता ही रहता है! कुछ न कुछ माँगता है। गुरु से भी माँगता है और परमात्मा से भी माँगता है! जब तक यह भिखारीपन दूर न होगा, मनुष्य धर्म का सर्वोच्च फल, वास्तविक फल नहीं पा सकेगा। मेरी राय मानोगे? सब जगह भिखारी मत बनो। परमात्मा के आगे, गुरुजनों के आगे और धर्म के आगे भिखारी मत बनो। धन के भिखारी मत बनो, भोगसुख के भिखारी मत बनो। धर्म को, धर्मसत्ता को भिखारी पसन्द नहीं। माँगनेवालों के प्रति सख्त नफरत है धर्म को। जो मन से भी कुछ नहीं माँगता है और धर्म करता है, धर्म की शरण में आता है, तो धर्म उसको इतना देता है, ऐसा अद्‌भुत देता है कि जिसकी कल्पना भी नहीं कर सकता वह जीवात्मा। उस ग्वाले के बेटे को कल्पनातीत धन-संपत्ति और भोगसुख दिए न?

धर्म सब कुछ देता है, परन्तु जीवों की योग्यता अपेक्षित होती है। ज्यों-ज्यों जीव की योग्यता का विकास होता जाता है, त्यों-त्यों धर्मतत्त्व की निकटता बढ़ती जाती है और उत्तरोत्तर उच्च-उच्चतर सुखों की स्वतः उपलब्धि होती जाती है। जब तक जीवात्मा अर्थ-काम का अभिलाषी है, मात्र साधन के रूप में नहीं, लेकिन अर्थ-काम ही साध्य है, अभ्युदय ही उसका लक्ष्य है; तब तक समझना चाहिए कि उसकी योग्यता परिपक्व नहीं हुई है।

आत्मकल्याण को ही जीवन का ध्येय बनाइए :

अर्थ - काम जीवमात्र के जीवन में, मनुष्यमात्र के जीवन में आवश्यक होंगे, अपने अर्थ-काम के बिना नहीं रह सकते हैं, जीवन नहीं जी सकते हैं, हो सकता है, परन्तु हमारा लक्ष्य, हमारा ध्येय अर्थ-काम ही नहीं हो। अभ्युदय मात्र साधन के रूप में उपादेय है, साध्य के रूप में कभी भी उपादेय नहीं बन सकता है। साध्य तो रहेगा निःश्रेयस् ही! क्या लक्ष्य बनाया है आप लोगों ने?

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मात्र धनदृष्टि और भोगदृष्टि तो नहीं है न? अर्थप्रधान और कामप्रधान तो नहीं बने हो न?

सभा में से : महाराजश्री, ऐसे ही बन गए हैं।

महाराजश्री : ऐसा लगता है आपको कि अर्थप्रधान और कामप्रधान जीवन अच्छा नहीं है? धन-दौलत और भोगसुख का ही आदर्श बनाकर जीवन जीना, मानवजीवन की बर्बादी है? आप गृहस्थ हैं, आप संसारी जीवन जीते हैं, आपको पैसा चाहिए और भोगसुख भी चाहिए, परन्तु आपकी दृष्टि क्या होनी चाहिए? आपका लक्ष्य क्या होना चाहिए? निःश्रेयस्! आत्मकल्याण! धन कमाना और बात है, धन का ममत्व और चीज है। भोगसुख भोगना एक बात है, भोगसुख में आसक्ति दूसरी बात है। बहुत बड़ा अन्तर है इन दो बातों में। आप अनासक्त बनने का आन्तरिक पुरुषार्थ करो। इस ग्रन्थ में आगे यह पुरुषार्थ बताया है। करना है न? ध्यान रखना, अर्थपुरुषार्थ में ही मानवजीवन समाप्त हो गया, तो मरकर दुर्गति के शिकार हो जाओगे। पशु योनि, नरक योनि या निम्नस्तर की मनुष्य योनि के अलावा दूसरी गति नहीं मिलेगी। दुःख और संताप के अलावा वहाँ कुछ नहीं है।

धर्म को अर्थ-काम का माध्यम मत बनाइए :

'धर्म धन देता है, धर्म भोगसुख देता है' - यह प्रतिपादन मनुष्य के मन में धर्म के प्रति, धर्म की शक्ति के प्रति श्रद्धा-सद्भाव पैदा करता है। 'धर्म करूँगा तो धन मिलेगा, धर्म करने से भोगसुख मिलेंगे...' यह भावना खतरनाक है। इससे मनुष्य धर्म के प्रति आकर्षित नहीं होता, परन्तु अर्थ-काम के प्रति आकर्षित होता है। वह धर्म को अर्थ-काम का साधन बना देता है! धर्मसाधना में अर्थ-काम को साधनरूप में इस्तेमाल करना उचित है, परन्तु अर्थ-काम की साधना में धर्म को साधनरूप में ग्रहण करना बिल्कुल अनुचित है, मूर्खता है।

कोई भी बात हो, अच्छी हो या बुरी हो, आप उस बात को किस दृष्टि से ग्रहण करते हैं-यह महत्त्वपूर्ण है। स्त्री तो वही की वही है, एक मनुष्य उसको सती-महासती की दृष्टि से देखता है, दूसरा पुरुष उसी स्त्री को रूपवती यौवना की दृष्टि से देखता है। इसी प्रकार पुरुषों की बातें हम सुनते हैं, हमारी बुद्धि के अनुसार हम उन बातों को समझेंगे। यदि हमारी दृष्टि अर्थप्रधान है तो हम सोचेंगे : 'आचार्यश्री ने कहा है कि धर्म से धन मिलता है, तो मैं धर्म करूँगा तो मुझे धन मिलेगा। धन पाने के लिए धर्म किया जा सकता

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

है।' हमारी दृष्टि कामप्रधान है यानी भोगप्रधान है तो हम सोचेंगे : 'आचार्यश्री ने कहा कि धर्म से भोगसुख मिलते हैं, मुझे भोगसुख चाहिए, मैं धर्म करूँगा तो मुझे भोगसुख मिलेंगे!' हमारी दृष्टि मोक्षप्रधान होगी तो सोचेंगे : 'आचार्यश्री ने कहा है कि धर्म मोक्ष देता है। मुझे तो मोक्ष-मुक्ति ही चाहिए, मैं धर्मपुरुषार्थ करूँगा तो मुझे मोक्ष मिलेगा।'

संसार में सभी प्रकार के जीव होते हैं। अर्थप्रधान, भोगप्रधान और मोक्षप्रधान-मुख्य रूप से तीन प्रकार के जीव होते हैं। ग्रन्थकार आचार्य इन तीनों प्रकार के जीवों को लक्ष्य बनाकर कहते हैं : तुम्हें जो भी चाहिए, धर्म देगा! पाप नहीं देगा। धन पाप से अर्थात् हिंसा करने से, झूठ बोलने से या चोरी करने से नहीं मिलेगा, यह बात समझ लो। धन भी धर्म से ही मिलेगा! बिना माँगे मिलेगा। संसार के सारे के सारे श्रेष्ठ भोगसुख भी धर्म से ही मिलेंगे, पापों से नहीं मिलेंगे। यदि हिंसा वगैरह पापों से अर्थ और काम मिलते होते तो दुनिया में पाप करनेवाले सभी धनवान होते, सभी को भोगसुख मिले हुए होते। परन्तु ऐसा दिखता है? आप दुनिया में देखते हो न? दुनिया में पाप करनेवाले ज्यादा हैं कि धर्म करनेवाले?

सभा में से : पाप करने वाले ही ज्यादा हैं।

महाराजश्री : यदि पापों से धन मिलता होता तो धनवान ज्यादा होने चाहिए संसार में! संसार में धनवान ज्यादा हैं कि गरीब?

सभा में से : गरीब ज्यादा हैं! धनवान थोड़े ही हैं।

महाराजश्री : इसका अर्थ यह होता है कि संपत्ति और भोगसुख पापों से नहीं मिलते, धर्म से ही मिलते हैं। सर्वप्रथम आपको पापों का त्याग करना होगा। धर्ममार्ग पर आना होगा। धन चाहिए या भोगसुख चाहिए, आप पापों को छोड़कर धर्ममार्ग पर आ जाइए। इससे आपकी पाप-प्रवृत्ति समाप्त होगी। फिर समाप्त करनी होगी पापवृत्ति। धनेच्छा और भोगेच्छा पापवृत्ति है। धर्ममार्ग पर आने से सद्गुरुओं के समागम से पापवृत्ति भी नष्ट हो जायेगी। आपका लड़का है, पढ़ाई नहीं करता है, दोस्तों के साथ दिनभर खेलता रहता है। आप उसको पढ़ाना चाहते हैं, क्या करेंगे? आप उसे पढ़ाई की महत्ता समझायेंगे और खेलने की बुराई करेंगे, तो बच्चे के दिमाग में बात नहीं जँचेगी। वह आपकी बात नहीं मानेगा। आपको सर्वप्रथम उसे बाहर जाने से रोकना होगा। उसको कहोगे कि 'खेलना हो तो घर में खेलो, बाहर मत

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जाओ!' आप उसको घर में खेलने दो थोड़े दिन। आवारा मित्र घर में आयेंगे नहीं। आप उन आवारा मित्रों को घर में मत आने दो। लड़का भले घर में खेले, आँगन में खेले। फिर आप उसे थोड़ा समय पढ़ने के लिए कहो। वह मान जाएगा। धीरे-धीरे पढ़ाई में मन लग जाएगा। फिर अपने आप खेलना छूट जाएगा और पढ़ाई करने लग जाएगा।

धर्मक्रिया को अमृतक्रिया बनाइए :

पापों के विषय में ऐसा ही है। मनुष्य धनप्रिय है, काम-भोगप्रिय है, वह पापों के पास जाता है-हिंसा करता है, झूठ बोलता है, चोरी करता है, दुराचार-व्यभिचार सेवन करता है। यदि ऐसे मनुष्य को धर्म के मार्ग पर लाना है तो उसको कहो - 'भाई, तुझे धन चाहिए? तुझे कामभोग चाहिए? क्यों दुनिया में भटकता है? आ जा इधर, धर्म-आराधना कर, धर्म से तुझे धन भी मिलेगा और भोगसुख भी मिलेंगे।' जब वह धर्ममार्ग पर आये-भले वह धनेच्छा से और भोगेच्छा से धर्म करे, तत्काल आप उसको मत छेड़ो। थोड़ा समय जाने दो। फिर उसको प्रेम से समझाओ कि 'धनेच्छा और भोगेच्छा अच्छी नहीं है। ऐसी इच्छाएँ करना पाप है। मानवजीवन में तो मुक्ति पाने की ही इच्छा होनी चाहिए। धर्मपुरुषार्थ से मोक्ष ही पाना है। धनेच्छा से भोगेच्छा से धर्मक्रिया विषक्रिया हो जाती है। अमृतक्रिया नहीं होती।'

यदि वह मनुष्य बुद्धिमान होगा, तो आपकी बात समझेगा और धर्मक्रिया को अमृत क्रिया बनाएगा। यदि मूर्ख होगा, तो भी धर्मक्रिया तो करेगा न? पापक्रियाओं से तो दूर रहेगा न? उसको भी सुख तो मिलेंगे ही। भले अल्पकालीन सुख मिलो, घटिया 'क्वोलिटी' के सुख मिलो। किया है धर्मपुरुषार्थ, किसी भी दृष्टि से किया हो, उसको धन का सुख, कामभोग का सुख मिलेगा जरूर! हम सोच रहे हैं धर्म के प्रभाव के विषय में, धर्म के फल के विषय में। भौतिक या आत्मिक, सुख मिलेगा धर्म से ही। धर्म से ही मिलेगा सुख! धर्म से सुख मिलता ही है।

धर्म जिस प्रकार धन और भोगसुख देता है, उसी प्रकार स्वर्ग सुख और मोक्षसुख भी देता है। इस विषय में आगे विवेचन करूँगा।

आज, बस इतना ही।

❖ ❖ ❖

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

- ***स्वर्ग और नरक निरी कल्पना नहीं है, अपितु वास्तविकता है। हम जिसे नहीं देख सकते या समझ नहीं सकते, इसका अर्थ यह नहीं होता कि हम उसका अस्तित्व ही नहीं मानें!***
- ***जो वस्तु होती है उसीकी मनाई की जाती है। 'नरक' शब्द तभी बोला जाता है जबकि नरक हो!***
- ***विज्ञान के 'परा मनोविज्ञान' ने पुनर्जन्म के सिद्धान्त को प्रयोगसिद्ध करके आत्मा के अस्तित्व को स्वीकारा है।***
- ***मजे से पाप करना है और सुख चाहिए? कभी नहीं मिल सकता! सुख चाहिए तो पापों का त्याग करना होगा।***
- ***जीवराज सेठ की बाहरी धर्मक्रियाओं को देखकर नारदजी जैसे देवर्षि भी खिंच गए। जिन्हें मोक्ष चाहिए ही नहीं, उन्हें खुद भगवान भी मोक्ष में नहीं ले जा सकते!***

प्रवचन : ३

धर्मतत्त्व का फल बताते हुए याकिनीमहत्तरासुनु आचार्यश्री हरिभद्रसूरिजी फरमाते हैं :

धनदो धनार्थिनां प्रोक्तः कामिनां सर्वकामदः।
धर्म एवापवर्गस्य पारम्पर्येण साधकः ।।

इस 'धर्मबिन्दु' ग्रन्थ की रचना आचार्यश्री हरिभद्रसूरिजी ने की है और इस ग्रन्थ पर टीका की रचना आचार्यश्री मुनिचन्द्रसूरिजी ने की है। ये दोनों महान आचार्य जिनशासन के, जिनदर्शन के प्रकृष्ट प्रज्ञावंत ज्योतिर्धर आचार्य हो गए।

जब ग्रन्थकार ने धर्म का स्वरूप, धर्म की परिभाषा पहले नहीं बताते हुए पहले धर्म का प्रभाव, धर्म का फल बताया; तब टीकाकार ने इस पद्धति को सुयोग्य सिद्ध करते हुए कितना अच्छा तर्क दिया! उन्होंने कहा : 'फलप्रधानाः प्रारम्भा मतिमतां भवन्ति।' उन्होंने बुद्धिमान मनुष्यों की ओर देखा। उनका मनोविश्लेषण किया। बुद्धिमान मनुष्य कोई भी कार्य करने से पूर्व यह सोचेगा कि 'इसका फल क्या?' फलरहित निरर्थक प्रवृत्ति बुद्धिमान मनुष्य नहीं

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

करेगा। आप लोग बुद्धिमान हो न? जो भी कार्य करते हो, फल का अनुसंधान करके करते हो न? परिणाम का विचार करते हो न?

सभा में से : हमारे भीतर बुद्धि ही नहीं है!

महाराजश्री : तो क्या मूर्ख हो? आपको कोई मूर्ख कहे तो मान लेते हो न? बुरा नहीं मानते न? जानता हूँ आप लोगों को! मेरे सामने मूर्खता का स्वीकार कर लेते हो, क्योंकि जवाब देना भारी पड़ रहा है। पापाचरण करना है, पापों के फल का विचार करते नहीं। 'मैं यह पाप करता हूँ इसका क्या फल मिलेगा?' सोचते हो?

सभा में से : फल का विचार तो करते हैं, परन्तु तात्कालिक फल का!

महाराजश्री : अच्छा कोई आपको कहे यह मिठाई खाइए, स्वादिष्ट है। परन्तु है विषमिश्रित, जहर का असर अभी तत्काल नहीं होगा, 'स्लो पोइज़न' है... आप खा लोगे न? तात्कालिक फल स्वाद का मिलेगा। क्यों नहीं खाओगे? दीर्घकालीन दुष्परिणाम का विचार तुरंत आ जाता है। पाप करते समय दीर्घकालीन दुष्परिणाम का विचार नहीं करते! बुद्धि तो है परन्तु निर्मल बुद्धि नहीं है, विशुद्ध बुद्धि नहीं है। मलिन और अशुद्ध बुद्धि पापों के फल का विचार या धर्म के फल का विचार नहीं कर सकती। ऐसी बुद्धि तो निरन्तर सुख और दुःख के द्वन्द्वों में ही उलझी हुई रहती है।

बुद्धि को जाँच लो : मलिन है या स्वच्छ?

जिस मनुष्य की बुद्धि निर्मल है, विशुद्ध है वह मनुष्य तो अवश्य फल का विचार करेगा ही। इहलौकिक फल का और पारलौकिक फल का। अल्पकालीन फल का और दीर्घकालीन फल का। जिस प्रवृत्ति का फल वर्तमान जीवन में अच्छा मिलता हो, परन्तु पारलौकिक जीवन में बुरा मिलता हो, तो बुद्धिमान मनुष्य वैसी प्रवृत्ति नहीं करेगा। जिस कार्य का तात्कालिक फल अच्छा मिलता हो, परन्तु कुछ समय के बाद उसका दुष्परिणाम आनेवाला हो, तो मनुष्य वैसा कार्य नहीं करेगा। निर्मल बुद्धिवाला मनुष्य तो सर्वप्रथम वैसा कार्य ही करना पसन्द करेगा कि जिसका फल उभयलोक में-वर्तमान जीवन में और भविष्यत्कालीन जीवन में अच्छा मिलनेवाला हो। इहलोक और परलोक दोनों जगह अच्छा परिणाम, उत्तम फल प्राप्त होनेवाला हो। समझ गए न? अब देख लेना अपनी-अपनी बुद्धि को! समल है कि निर्मल, अशुद्ध है कि विशुद्ध!

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

धर्म का फल बताया जा रहा है। धर्म का फल-इहलौकिक और पारलौकिक, दोनों फल अच्छे हैं। इहलौकिक फल में धनप्राप्ति और भोगसुखों की प्राप्ति है। पारलौकिक फल में स्वर्ग प्राप्ति और मोक्ष प्राप्ति है।

लालच या भय नहीं, पर निरी वास्तविकता :

प्रश्न : मनुष्य को धार्मिक बनाने की भावना से क्या स्वर्ग और नरक की कल्पना नहीं की गई है? धार्मिक बनाने की भावना अच्छी है, परन्तु स्वर्ग की लालच और नरक का भय बताना कहाँ तक उचित है?

उत्तर : आप अपने बच्चे को डॉक्टर, वकील या 'एन्जिनियर' बनाना चाहते हो। लड़का पढ़ना ही नहीं चाहता। कॉलेज में ही नहीं जाना चाहता। आप क्या कहते हो उसको? 'इस जमाने में नहीं पढ़ेगा तो भूखा मरेगा। कोई चपरासी की भी नौकरी नहीं मिलेगी। भटक जाएगा दुनिया में। मेरा कहा मान और पढ़ाई कर।' क्या आपने लड़के को भूखा मरने का भय बताया? या वास्तविकता बताई? आप और भी ज्यादा कहते हो : 'अच्छी पढ़ाई करेगा तो अच्छी सर्विस मिलेगी, अच्छा व्यवसाय कर सकेगा, पैसा कमाएगा, बंगला बनेगा, गाड़ी-कार आएगी...।' कहते हो न? क्या आप लालच कहोगे इस बात को? या वास्तविकता?

प्रश्न : ऐसा तो हम देखते हैं हमारे सामने, इसलिए वास्तविक ही है। परन्तु आप जो स्वर्ग और नरक की बात करते हैं, हम नहीं देख पाते इसलिए संदेह होता है।

उत्तर : ऐसा क्यों मान लेना चाहिए कि हम जो नहीं देख पाते हैं, उसको कोई भी नहीं देख पाता है? हम जो नहीं देख सकते या नहीं समझ सकते, वह हो ही नहीं सकता ऐसा क्यों मान लेते हो? स्वर्ग को और नरक को हम नहीं देख पाते हैं, इससे क्या? स्वर्ग-नरक को प्रत्यक्ष देखनेवाले भी हैं! देखने की विशिष्ट दृष्टि चाहिए। पानी के बिन्दु में आपने चलते-दौड़ते जीव देखे हैं? छाने हुए पानी में? आप अभी देखने जाओगे तो नहीं दिखेंगे, परन्तु 'माइक्रोस्कोप' से देखनेवालों को हजारों जीव दिखाई देंगे! अनछाने पानी में ज्यादा दिखते हैं जीव, छाने हुए पानी में कम दिखते हैं। मैंने स्वयं 'माइक्रोस्कोप' से देखा है। वैसे ही अवधिज्ञानी-केवलज्ञानी आत्मा स्वर्ग-नरक को प्रत्यक्ष देख सकती है। ऐसे ज्ञानी पुरुषों ने देखकर बताया है दुनिया को। स्वर्ग-नरक को देखा इतना ही नहीं, उन्होंने यह भी देखा कि कौन-सा जीव स्वर्ग में जाता है,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कौन-सा जीव नरक में जाता है। स्वर्ग का भौतिक सुख देखा और नरक की घोर शारीरिक वेदनाएँ देखीं। देखकर उन्होंने हमें कहा : 'धर्मपुरुषार्थ' से ही स्वर्ग मिलेगा, पापाचरणों से नरक मिलेगा।' इसको भय और लालच नहीं कह सकते। वास्तविक मार्गदर्शन है यह। जीवों को दुःखों से बचाने के लिए सावधान करना, भय बताना नहीं है परंतु भयमुक्त-दुःखमुक्त करने का प्रयत्न है। उसी प्रकार, स्वर्ग के सुख बताना जो कि वास्तव में हैं, कोई अपराध नहीं है। दूसरों को, सुख पाने का मार्ग बताना अपराध नहीं है।

स्वर्ग और नरक कल्पना नहीं, सत्य है :

प्रश्न : तो, आप कहते हैं स्वर्ग है, नरक है। क्या आप इस बात को बुद्धिगम्य हो, उस प्रकार से समझाने की कृपा करेंगे?

उत्तर : अवश्य, क्यों नहीं? जो तत्त्व इन्द्रियातीत होते हैं यानी इन्द्रियों से प्रत्यक्ष नहीं होते जो तत्त्व, उन तत्त्वों का निर्णय अनुमान प्रमाण से किया जाता है। जैसे प्रत्यक्ष प्रमाण है वस्तुनिर्णय में, वैसे अनुमान भी प्रमाण है वस्तुनिर्णय में। अनुमान यानी तर्क। स्वर्ग और नरक का अस्तित्व सिद्ध हो सकता है तर्क से, अनुमान से। अच्छा, आप मुझे बताइए कि एक व्यक्ति ने किसी मनुष्य की हत्या कर दी, वह हत्यारा 'रेड हेन्डेड' पकड़ा गया, तो उसे ज्यादासे ज्यादा क्या सजा होगी?

सभा में से : फांसी, देहांत दंड!

महाराजश्री : ठीक है, उस हत्यारे को फांसी की सजा होगी, परन्तु दूसरे एक व्यक्ति ने पाँच मनुष्यों की हत्या कर दी, वह भी पकड़ा गया, अपराधी सिद्ध हो गया, तो उसको क्या सजा होगी?

सभा में से : उसको भी फांसी ही मिलेगी!

महाराजश्री : क्यों? एक मनुष्य की हत्या करनेवाले को फांसी और पाँच मनुष्यों की हत्या करनेवाले को भी फांसी? पाँच मनुष्य की हत्या करनेवाले को ज्यादा सजा होनी चाहिए न? इस दुनिया में मृत्युदंड से बढ़कर कोई सजा ही नहीं! सजा तो होनी ही चाहिए। अपराध के अनुरूप सजा होनी चाहिए! यदि इस प्रकार सजा न हो तो वह अन्याय कहलाएगा। हिटलर का साथी आइकमेन था, उसने लाखों की संख्या में मनुष्यों की हत्या कर दी थी। क्या एक बार फांसी देने से उस आइकमेन को पूरी सजा मिल गई? ऐसी अधूरी सजा जहाँ मिलती है, वह है नरक! जो जीव नर्क में उत्पन्न होता है वहाँ

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कम-से-कम दस हजार वर्ष तो भयंकर दुःख उसे सहने ही पड़ते हैं। क्योंकि नरक में जीव का कम-से-कम दस हजार वर्ष का आयुष्य तो होता ही है।

जैनधर्म ने जो विश्वव्यवस्था बताई है, आपने अध्ययन किया है? जैनधर्म में विश्व को 'लोक' कहा गया है। लोक के तीन विभाग हैं : ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक और अधोलोक। सात नरक जो हैं, वे अधोलोक में हैं। इस विश्वव्यवस्था का आधार है गणित! 'लोक' कितना चौड़ा है, कितना ऊँचा है, उसका कैसा आकार है... सब आंकड़ों में बताया गया है। 'लोक' चौदह राज लंबा है और सात राज चौड़ा है। 'राज' एक माप का-'मेजरमेन्ट' का नाम है। नरकों का व्यवस्थित वर्णन प्राचीन ग्रंथों में प्राप्त होता है। शास्त्र भी प्रमाण माना गया है। क्योंकि शास्त्रों की रचना करनेवाले ऋषि-महर्षि प्रामाणिक थे। प्रामाणिक इसलिए थे क्योंकि वे निःस्वार्थी और निःस्पृही थे। वे क्यों झूठ बोलते? स्वार्थी और लालची मनुष्य ही झूठ बोलते हैं, निःस्वार्थी एवं निःस्पृही महात्मा तो सत्य के ही प्रतिपादक होंगे।

जो बात हो, उसीकी मनाई होती है :

एक तर्क तो गजब का है! जो वस्तु होती है, उसी का निषेध किया जाता है! जिस वस्तु का कहीं भी अस्तित्व नहीं होता है उसका निषेध भी नहीं किया जा सकता है। यदि 'नरक' जैसा स्थान ही नहीं होता तो 'नरक' नहीं है, ऐसा प्रतिपादन नहीं हो सकता। 'नरक नहीं है-' ऐसा बोलते हो, इससे ही नरक का अस्तित्व सिद्ध हो जाता है। हाँ, इधर मध्यलोक में नरक नहीं है, ऊर्ध्वलोक में नरक नहीं है, यह बात सही है; परन्तु नरक ही नहीं है, ऐसा मानना पूरी तरह गलत है।

शब्द जो होता है, अर्थ का बोधक होता है। 'पुस्तक' ऐसा शब्द है तो पुस्तक जैसा अर्थ यानी द्रव्य है! शब्द हो और शब्दवाच्य अर्थपदार्थ न हो, ऐसा कोई शब्द नहीं मिलेगा! बताइए आप लोग ऐसा एक भी शब्द! शब्द है परन्तु उस शब्द से वाच्य पदार्थ न हो। है ऐसा कोई शब्द? सोचो, विचार करके जवाब दो! हाँ, दो शब्दों के संयोजन से बना हुआ शब्द नहीं बताना, स्वतंत्र शब्द बताना! आप तो कह दोगे 'खरशृंग' शब्द है, परन्तु शब्दवाच्य अर्थ-गधे का सींग नहीं है! ऐसा शब्द नहीं चलेगा। 'गधा' शब्द है तो 'गधा' नाम का जानवर भी है। 'सींग' ऐसा शब्द है तो 'सींग' नाम का अवयव भी है।

है न यह अकाट्य तर्क? इस तर्क का प्रति-तर्क है ही नहीं। इसका कोई

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जवाब ही नहीं। 'नरक' ऐसा स्वतन्त्र शब्द है, यही नरक के अस्तित्व को सिद्ध करता है। अब तो माना न नरक के अस्तित्व को? नरक में कौन जीव जाता है, क्या करने से नरक में जाना पड़ता है और नरक में कैसी-कैसी यातनाएँ-वेदनाएँ सहनी पड़ती हैं-यह बात पूछो अब! ध्यान रखना, धर्म के विचार और धर्म के आचार नहीं अपनाए और पापविचार एवं पापाचारों में रमते रहे, तो नरक में जाना ही पड़ेगा। हजारों-लाखों-करोड़ों वर्ष तक, असंख्य वर्ष तक उस नरक की घोर, भयंकर वेदनाएँ परवश-पराधीन-असहाय बन कर सहन करनी पड़ेंगी। परमज्ञानी और परम करुणावंत ज्ञानीपुरुषों ने जीवों की ऐसी करुणास्पद स्थिति देखी थी, देखकर जीवों को दुःखों से बचा लेने के लिए उन्होंने धर्ममार्ग बताया। धर्ममार्ग पर चलनेवाला जीव, धार्मिक विचार और धार्मिक आचारों का पालन करनेवाला मनुष्य नरक में नहीं जाता। समझे न? धर्म का जन्म करुणा में से हुआ है। जीवों को दुःखों से मुक्त करने और सुख प्रदान करने हेतु धर्म बताया गया है।

जैसे नरक का अस्तित्व तर्कों से सिद्ध किया जा सकता है वैसे स्वर्ग का अस्तित्व भी तर्कों से सिद्ध किया जा सकता है। स्वर्ग को 'देवलोक' भी कहते हैं। है, देवलोक भी है। अब तो विज्ञान को भी स्वर्ग का अस्तित्व मानना पड़े, ऐसी अद्भुत घटनाएँ बन रही हैं। उन घटनाओं का समाधान भौतिक विज्ञान के पास है ही नहीं।

सैकड़ों को गतजन्म की स्मृति :

थोड़े वर्षों से विज्ञान ने 'परा-मनोविज्ञान' शाखा को मान्यता प्रदान की है। अंग्रेजी में इसको 'पेरा-सायकोलॉजी' कहते हैं। जब विश्व में पुनर्जन्म की सैंकड़ो घटनाएँ बनने लगीं, पूर्व जन्म की स्मृतियाँ आने लगीं लोगों को, तो 'सायन्टिस्ट' घबरा उठे। शरीरविज्ञान, पदार्थविज्ञान और मनोविज्ञान पूर्व जन्म की स्मृति के कारण खोजने में असमर्थ रहे। भारत में और अमेरिका, रशिया, इंग्लैन्ड, ईरान, इराक-जैसे देशों में भी पूर्व जन्म की स्मृतिवाले लोग मिलने लगे। पूर्व जन्म और पूर्व जन्म की स्मृति की वैज्ञानिक जाँच करने के लिए 'परा-मनोविज्ञान' नाम की विज्ञान की शाखा का जन्म हुआ।

एक घटना अमेरिका में ऐसी बनी है कि 'रथसीमोन्स' नाम की स्त्री को पूर्व जन्म की स्मृति हो आई वह है देवलोक की स्मृति! वह स्त्री पूर्व जन्म में स्वर्ग की देवी थी या देव थी। अमेरिका के डॉ. 'अलेकझेंडर कानन,' जो कि परा-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मनोवैज्ञानिक डॉक्टर हैं, जिन्होंने अभी तक एक हजार तीन सौ बयासी मनुष्यों पर संशोधन किया है, कि जिनको पूर्व जन्म की स्मृति हो आई है!

परा-मनोविज्ञान के क्षेत्र में 'एज-रीग्रेशन' का एक प्रयोग होता है। इस प्रयोग के माध्यम से उस स्त्री को पूछा गया कि अभी तुम कहाँ हो? उसने कहा : मैं 'एस्ट्रल वर्ल्ड' में हूँ। यहाँ मुझे भूख नहीं लगती है, नींद नहीं आती है और मैं थकान भी महसूस नहीं करती हूँ।

उसको पूछा कि-वहाँ तुम अपना समय कैसे व्यतीत करती हो? उसने कहा : मैं यहाँ देखती ही रहती हूँ। मुझे बहुत आनन्द आता है। यहाँ समय ही नहीं है! नहीं है दिन, नहीं है रात!

तीसरा प्रश्न पूछा गया कि वहाँ से इस पृथ्वी पर 'ब्रिआन ए' (रथसीमोन्स की मित्र) के घर में क्या हो रहा है, क्या जानती हो? उसने कहा : यदि मेरा ध्यान उस तरफ चला जाय तो मैं जान सकती हूँ!

तुम देख भी सकती हो?

हाँ, हमारी इच्छा हो तो!

क्या इच्छा करने मात्र से देख सकती हो?

हाँ, विचार करूँ और जान लूँ! देख लूँ।

क्या तुम दूसरों के मन के विचार जान सकती हो?

हाँ, दूसरों की इच्छाएँ और विचारों को भी जान सकती हूँ।

'वहाँ 'एस्ट्रल वर्ल्ड' में वृद्धावस्था, रोग, मृत्यु का अस्तित्व है?' नहीं, वहाँ वृद्धावस्था नहीं है, रोग नहीं है और मृत्यु भी नहीं है! वहाँ से अदृश्य होते ही दूसरे जीवन में परिवर्तन हो जाता है!'

'उस दुनिया में जब तुम थी उस समय इस दुनिया के मनुष्यों का भविष्य तुम देख सकती थी क्या?'

'हाँ, मैं देख सकती थी, इतना ही नहीं उस दुनिया के जीव को मालूम हो जाता था कि उसको वहाँ से कहाँ जाना है!'

इस अमेरिकन महिला ने अपने पूर्व जन्म का जो वर्णन किया है, ठीक देवलोक का-स्वर्ग का ही वर्णन है। अपने धर्मग्रन्थों में देवलोक के देवों का जो वर्णन आता है, ऐसा ही आता है। इससे सिद्ध होता है कि स्वर्ग का अस्तित्व है। देवलोक है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

नरक में दुःख की बेबसी तो स्वर्ग में सुख की लाचारी!:

सब देव एक समान नहीं होते हैं। अधोलोक में, इस पृथ्वी के नीचे जो देव रहते हैं वे व्यंतर-वाणव्यंतर और भवनपति कहलाते हैं। ऊर्ध्वलोक में जो देव होते हैं वे वैमानिक देव कहलाते हैं। ऊपर-ऊपर बारह देवलोक हैं। उनके ऊपर 'नवग्रैवेयक' देवलोक आए हुए हैं और उसके भी ऊपर 'पाँच अनुत्तर' देवलोक आए हुए हैं। प्राचीनतम ग्रन्थों में देवलोक का इतना सूक्ष्म और यथार्थ वर्णन मिलता है कि पढ़ने के बाद मन में निर्णय हो जाता है कि देवलोक होना ही चाहिए। देवों का आयुष्य, उनके शरीर की रचना, शरीर की ऊँचाई, उनकी शक्ति, उनके निवासस्थान, वहाँ के देव-देवी के यौन संबंध, निवासों की रचना, संख्या, स्तंभ, आकार... इत्यादि सैंकड़ों बातें आंकड़ों के साथ बताई गई हैं। मात्र कल्पना होती तो इस प्रकार का इतना वर्णन नहीं हो सकता था।

धर्म से स्वर्ग मिलता है, अर्थात् धर्म स्वर्ग भी देता है। क्योंकि स्वर्ग में भौतिक सुखों की भरमार है। वहाँ जन्म का दुःख नहीं, मृत्यु की वेदना नहीं! वहाँ व्याधि नहीं, रोग नहीं। वहाँ देव किसी देवी के पेट से पैदा नहीं होता है! मनुष्य और पशु की तरह देव को माँ के पेट में नहीं रहना पड़ता है। वहाँ तो होती है पुष्पशय्या! आत्मा उस शय्या में ही देव का शरीर धारण कर लेती है। वहाँ बाल्यावस्था या वृद्धावस्था नहीं होती है, वहाँ तो होता है नित्य यौवन! पैदा होते ही युवान! वहाँ धन-दौलत कमानी नहीं पड़ती! अर्थ और काम तैयार 'रेडीमेड' ही मिल जाते हैं! देवों को वे भौतिक सुख भोगने ही पड़ते हैं। हाँ, कुछ देव सम्यग्दृष्टि होते हैं, वे भौतिक सुखों को अच्छा नहीं मानते हैं, सुखभोगों को अनर्थकारी मानते हैं, फिर भी वे सुखभोगों का त्याग नहीं कर सकते। देवगति ही ऐसी है। नरक के जीव दुःखों से मुक्त नहीं हो सकते हैं और स्वर्ग के जीव सुखों से मुक्त नहीं हो सकते हैं!

पाप करना है और सुख भी चाहिए?

सुख चाहे भौतिक हो या आध्यात्मिक, मिलेगा धर्म से ही। पापों से कभी भी सुख नहीं मिलता। पापों से दुःख ही मिलेंगे। क्या चाहिए आपको? सुख चाहिए न? तो पापों का त्याग तो करना ही पड़ेगा। पाप करना है और सुख पाना है-क्यों? पापों का त्याग नहीं करना है और दुःखों से बचना है-नहीं? ऐसा संभव ही नहीं। भौतिक सुख पाने के लिए भी पापों का त्याग तो करना

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ही पड़ेगा! पापों का त्याग करने की तैयारी है? हिंसा, असत्य, चोरी, दुराचार, परिग्रह वगैरह पापों का त्याग करने को तत्पर हो न?

सभा में से : संसार में पाप तो करने ही पड़ते हैं...।

महाराजश्री : कितने पाप करने पड़ते हैं? जितने पाप अनिवार्य हैं, उतने ही करते हो? ज्यादा पाप नहीं करते हो न? निष्प्रयोजन पाप नहीं करते हो न? टटोलो अन्तरात्मा को। पूछो अपनी आत्मा को कि 'आत्मन्, तुझे पाप प्यारे नहीं लगते हैं न? पाप करने जैसे नहीं हैं-यह बात सतत स्मृति में रहती है न? पाप करने पर दुःख होता है न? 'अररर...मैंने कितने सारे पाप कर डाले? तीव्र देवना होती है? पूछते हो कभी अन्तरात्मा को? पूछो तो जवाब मिले न! कभी पूछते ही नहीं! क्योंकि पाप करने में मज़ा जो आ रहा है! ध्यान रखो, जब तक पापों के प्रति घृणा नहीं होगी, तिरस्कार पैदा नहीं होगा, तब तक धर्म के प्रति प्रेम नहीं होगा, श्रद्धा नहीं होगी।

मै आपको पूछता हूँ कि आप किस दृष्टि से पाप करते हो? क्यों पाप करते हो? सुख पाने के लिए न? 'झूठ बोलने से पैसा मिलेगा'-इस मान्यता से झूठ बोलते हो न? चोरी करने से ज्यादा धन मिलेगा-इस मान्यता से चोरी करते हो न? क्या झूठ बोलना और चोरी करना पाप नहीं है? मानते हो न पाप है? अब कहिए-पाप करने से सुख मिले या दुःख मिले?

कर्म विज्ञान का सनातन सिद्धान्त :

सभा में से : पाप से तो दुःख ही मिलता है!

महाराजश्री : तो दुःख पाने के लिए पाप करते हो? कितनी घोर अज्ञानता है? चाहिए सुख और करते हैं पाप!

सभा में से : पाप करते हैं और सुख मिलता है-ऐसा प्रत्यक्ष देखते हैं-इसलिए सुख पाने को पाप करने लगते हैं!

महाराजश्री : अच्छा, ऐसा कार्य-कारण भाव देखने को मिला, इसलिए पापाचरण नहीं छोड़ते-यह कहना है न?

सभा में से : जी हाँ!

महाराजश्री : सच बोलते हो दुकान पर बैठकर, तो कम रूपये कमाते हो और झूठ बोलते हो तो ज्यादा कमाते हो-ऐसा आपका अनुभव है। ऐसा अनुभव सभी का है? सब झूठ बोलने वाले ज्यादा कमाई करते हैं? सब चोरी

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

करनेवाले धनवान बन जाते हैं? जिसका पुण्यकर्म उदय में होता है वह कमाता है! पुण्यकर्म उदय में नहीं हो और लाख झूठ बोले, तो एक पैसा नहीं कमाएगा और कमाना तो दूर, जो होगा वह भी गवाँ देगा! पुण्यकर्म के सहारे के बिना पापकार्य भी सफल नहीं हो सकते! पुण्योदय नहीं होगा और चोरी करने जाएगा, तो पकड़ा जाएगा और जेल में बंद हो जाएगा! पूर्वसंचित पुण्यकर्म के उदय से ही सुख मिलता है। पापों से तो नया पापकर्म बँधता है।

पुण्यकर्म धर्म से ही बँधते हैं। 'कर्मसिद्धान्त' पढ़े हो? कर्मों का बँध आत्मा के साथ किस प्रकार होता है, कर्मों का उदय कब आता है? कर्मों के प्रकार कितने? कर्मों का संक्रमण-'ट्रांसफोर्मेन' कैसे होता है? कर्मों का क्षय, नाश कैसे किया जा सकता है? ये सारी बातें जानते हो? किया है कर्म-फिलोसॉफी का अध्ययन?

सभा में से : आप करवाइए अध्ययन, हम करेंगे!

महाराजश्री : आप लोगों को वास्तव में अध्ययन करना है तो मैं अवश्य करवाऊँगा। नाइटक्लास-रात्रिवर्ग शुरू करेंगे। परन्तु हाँ, अध्ययन करना पड़ेगा। मात्र प्रवचन सुनकर चले जाओगे, यह नहीं चलेगा! नोट्स लिखनी पड़ेगी, तैयारी करनी पड़ेगी। रात्रि वर्ग में नियमित आना पड़ेगा, समयसर आना पड़ेगा, बोलो, है कबूल?

सभा में से : हम लोग तैयार हैं!

महाराजश्री : कितने? कम-से-कम पचास पुरुष चाहिए, तो मेरे समय का सदुपयोग हो सके। आप प्रयत्न करें, अपने शुरू करेंगे तत्त्वज्ञान-वर्ग। जब तक 'आत्मा' और 'कर्म' को नहीं समझेंगे, तब तक धर्म को भी नहीं समझ पायेंगे। अनादिकाल से आत्मा कर्मों के बँधनों से बँधी हुई है, कर्मों के आवरणों से आवृत्त है। धर्म से, धर्म की वृत्ति और प्रवृत्ति से हमें आत्मा को निर्बंधन... कर्ममुक्त करना है। धर्म से आत्मा मुक्त बन सकती है, इसलिए तो ग्रन्थकार ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि 'धर्म मोक्ष भी देता है!'

एक प्रकार के धर्म से पुण्यकर्म बंधते हैं, एक प्रकार के धर्म से पापकर्म और पुण्यकर्म नष्ट होते हैं! जैसे पुण्यकर्म के उदय से भौतिक सुख मिलते हैं वैसे कर्मों के क्षय होने से आध्यात्मिक सुख मिलते हैं! ज्यों-ज्यों आत्मा पर लगे हुए कर्मों का नाश होता जाता है, त्यों-त्यों आत्मा का-स्वयं का स्वाधीन सुख प्राप्त होता जाता है। पुण्यकर्म के उदय से जैसे स्वर्ग मिलता है, वैसे पापकर्म और

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पुण्यकर्म के क्षय से-नाश होने से मोक्ष मिलता है! पापकर्म और पुण्यकर्म का नाश भी धर्म से ही होता है। करना है कर्मों का समूल नाश?

सभा में से : मोक्ष पाना है तो कर्मक्षय करना ही पड़ेगा।

महाराजश्री : मोक्ष पाना है आप लोगों को? संसार के भौतिक सुख अब आपको पसन्द नहीं? पाँचों इन्द्रियों के विषयसुख अब अच्छे नहीं लगते हैं न? पुण्यकर्म के उदय से मिलनेवाले अर्थ, काम और स्वर्ग के सुख अब नहीं भाते हैं न? तब तो काम हो गया आप लोगों का! हाँ मुझे खुश करने के लिए तो नहीं कह रहे हो न? 'मोक्ष पाने की बात करेंगे तो महाराज साहब खुश हो जायेंगे और वे मानेंगे कि ये मोक्षाभिलाषी जीव हैं, उनकी निगाहों में अपने अच्छे आदमी के रूप में दिखेंगे' ऐसी तो कोई बात नहीं है न? अच्छा, आपको मोक्ष पाना है, मुक्ति में जाना है-यह बात आप अपने घर में भी करते होंगे? पत्नी को, बच्चों को, मित्रों को... करते हो न? 'देखो, यह संसार दुःखरूप है, असार है, संसार में मिलनेवाले सुख भी भोगने योग्य नहीं हैं। मैं तो अब संसार छोड़ना चाहता हूँ। कर्मों के बन्धन तोड़ने के लिए चारित्र्य वीकार करना चाहता हूँ। तुम लोग भी सोच लो, अपने सब साथ ही चारित्र्यधर्म अंगीकार कर लें।' ऐसी बातें घर में चलती रहती हैं न?

सभा में से : घर में ऐसी बातें करें तो भयंकर धमाका हो जाय!

महाराजश्री : इसलिए ऐसी बातें नहीं करते? मेरे सामने भी झूठ? कभी कही है ऐसी बात? कभी हुई धमाल? योंही कैसे मान लिया कि चारित्र्यधर्म-साधुधर्म स्वीकार करने की बात करेंगे, तो धमाका हो जाएगा? करके देखो प्रयोग! अथवा यूँ कहो कि 'हम लोग मोक्ष पाने की मात्र बात ही करते हैं, मोक्ष पाने की कोई तमन्ना नहीं है! वह जीवराज सेठ था न! नारदजी के साथ मोक्ष की, वैकुंठ में जाने की बातें ही वह किया करता था!

एक था सेठ, उसे प्यारा था वैकुंठ :

पुराने समय की बात है। उस समय यह शहर इतना बड़ा नगर नहीं था। छोटा-सा शहर था। पानी के नल नहीं थे, बिजली नहीं थी। बड़ी-बड़ी बिल्डिंगें नहीं थीं। बड़ी कपड़ा मारकीट भी नहीं थी। वहाँ तो था बड़ा मैदान। मैदान के किनारे जीवराज सेठ की दुकान थी। जीवराज सेठ धनवान थे। बड़ी हवेली में रहते थे। सेठ जैसे अर्थपुरुषार्थ करते थे, कामभोग भोगते थे, वैसे धर्म भी किया करते थे। धर्मक्रियाएँ करने का सेठ का शौक था। ललाट में

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आठ-दस तिलक चंदन के लगाकर, सेठ दुकान की गद्दी पर बैठते। जब कोई ग्राहक न हो, हाथ में रुद्राक्ष की माला लेते और भगवान का नाम जपते।

एक दिन की बात है। नारदजी का विमान इस नगर के ऊपर से गुजर रहा था। नारदजी को नगर देखने की इच्छा हुई। उन्होंने विमान को उस मैदान में उतारा। विमान को छोड़कर नारदजी शहर देखने चले। मैदान के किनारे ही जीवराज सेठ की दुकान थी। दुकान पर सेठ जीवराज हाथ में रुद्राक्ष की माला लिए राम-नाम जप रहे थे। नारदजी ने सेठ को देखा, वे देखते ही रह गए! 'ओहो! कैसा भक्त जीव है...!' नारदजी ने सेठ के ललाट में चंदन के आठ-दस तिलक देखे, हाथ में माला देखी... बस, भक्त मान लिया सेठ को। नारदजी दुकान के पास आए। सेठ ने नारदजी को देखा। बड़े खुश हो गए। दुकान से नीचे उतरे और नारदजी के चरणों में साष्टांग दंडवत् किया। नारदजी ने सेठ को अपने दोनों हाथों से उठाया। सेठ ने हर्ष के आँसू बहाए और कहने लगे :

'हे देवर्षि, आप मेरे द्वार पर पधारे, धन्य बन गया मैं! कल्पवृक्ष मेरे आँगन में आया, कामघट-कामधेनु मिल गए मुझे! पधारिए मेरी इस झोंपड़ी में गुरुदेव!'

नारदजी तो पानी-पानी हो गए सेठ के विनयभाव से, सेठ के भक्तिपूर्ण वचनों से। नारदजी ने सेठ की दुकान में प्रवेश किया। सेठ ने नारदजी को बढ़िया गलीचे पर बिठाया और स्वयं दो हाथ जोड़कर खड़े रहे। नारदजी ने कहा :

'सेठ, तुम इस संसार में कैसे रह गए? तुम्हारे जैसे भक्त को तो वैकुंठ में स्थान मिलना चाहिए!'

सेठ ने कहा : 'प्रभु, मेरे ऐसे भाग्य कहाँ कि मुझे वैकुंठ में स्थान मिले? अभागा हूँ प्रभो!'

'नहीं, नहीं सेठ, ऐसा नहीं चल सकता। भगवान तुम्हारे जैसे भक्त को वैकुंठ में स्थान नहीं देंगे तो किसको देंगे? मैं वैकुंठ में जाकर भगवान को कह देता हूँ कि 'फलाँ शहर के उस भक्त को शीघ्र वैकुंठ में प्रवेश देने की कृपा करो।' भगवान दयालु हैं, वे शीघ्र प्रवेश दे देंगे। चलोगे न वैकुंठ में सेठ?'

नारदजी ने जीवराज सेठ के सामने देखा। जीवराज सेठ ने नारदजी के चरणों में अपना सिर लगाकर कहा : 'भगवंत! क्या बताऊँ ? मेरे रोम-रोम में

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भगवान का नाम गूँज रहा है, मुझे संसार में क्षण का भी चैन नहीं है। यदि मुझे वैकुंठ में स्थान मिल जाय... अहा प्रभो! मेरी भव भव की फेरी मिट जाय। कृपा करो देवर्षि! वैकुंठ के अलावा मुझे कुछ भी नहीं चाहिए।'

नारदजी सेठ की बात सुनकर प्रसन्न हो गए। क्यों न होते प्रसन्न? आप ऐसी बात करो तो मैं भी प्रसन्न हो जाऊँ! कैसी मज़ेदार बात की जीवराज सेठ ने? कितना विनय? आता है कुछ ऐसा? भले हृदय के शुद्ध भाव से न सही; अभिनय करना भी आता है? कोई साधुपुरुष आपकी दुकान के आगे से गुजर रहे हों, आप देख लो, क्या दुकान से नीचे उतरते हो?

विनय-विवेक के बिना धर्म अशक्य :

सभा में से : साधुमहाराज की बात छोड़ो, हम तो भगवान की रथयात्रा जा रही हो, तो भी दुकान से नीचे नहीं उतरते!

महाराजश्री : धन्यवाद! परमात्मा का भी विनय नहीं करते, फिर साधुपुरुषों का तो करोगे ही कैसे? विनय और विवेक के बिना तो धर्म हो ही नहीं सकता। भगवान महावीर स्वामी ने कहा है : 'विणयमूलो धम्मो।' धर्म का मूल विनय है। धर्म का प्रारंभ विनय से होता है। परमात्मा का विनय और साधुपुरुषों का विनय करना तो दूर रहा, क्या माता-पिता का विनय करते हो? बड़ों का विनय करते हो? दिनमें तीन बार माता-पिता के चरणों में नमन करते हो? 'त्रिसन्ध्यं नमनक्रिया' प्रातः, मध्याह्न और शाम-तीन संध्या में माता-पिता को नमन करना चाहिए, यह जानते हो? कैसे करोगे नमन? नम्रता के बिना नमन नहीं हो सकता। नम्रता है नहीं। अभिमान-मिथ्या अभिमान काफी बढ़ गया है।

सभा में से : नमन करने में शरम आती है!

महाराजश्री : किसको? आपको या आपके बच्चों को? आएगी शरम बच्चों को तो। क्योंकि आप लोगों ने-माता-पिताओं ने आदर्श नहीं दिया अपने बच्चों को। यदि आपके बच्चे आपको आपके माता-पिता को नमन करते हुए देखते, तो वे बच्चे आपको अवश्य नमन करते! आप लोगों ने आदर्श ही नहीं दिया। दिया है आदर्श? हाँ, दिया है आदर्श अपमान करने का, तिरस्कार करने का और गालियाँ बकने का'। ध्यान रखो, आपके माता-पिता के साथ आप जैसा व्यवहार करोगे, आपके बच्चे आपके साथ वैसा ही व्यवहार करेंगे। थोड़ा अधूरा था, तो आपने काम पूरा कर दिया बच्चों को कॉन्वेन्ट स्कूलों में भेजकर

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

और 'कालेजों' में भेजकर! बन गए अभिमान के पुतले। अभिमानी में नम्रता कहाँ से आएगी? नम्रता के बिना विनय कैसे करेगा? विनय के बिना धर्म कैसे होगा? विनय की शिक्षा बाल्यकाल से मनुष्य को मिलनी चाहिए।

विनय तो नींव है :

माता-पिता का विनय करनेवाला बच्चा स्कूल में अध्यापकों का भी विनय करेगा। समाज में बड़ों का विनय करेगा। धर्मस्थान में साधुपुरुषों का विनय करेगा और मंदिर में परमात्मा का विनय करेगा। विनय का अभ्यास बचपन से होना चाहिए। जीवराज सेठ ने नारदजी का कैसा विनय किया? कितना विवेक? नारदजी प्रसन्न हो गए।

नारदजी ने वापस वैकुंठ जाने का सोचा। जीवराज सेठ को वैकुंठ में प्रवेश कराने का निर्णय कर, नारदजी विमान में बैठे और विमान वैकुंठ की तरफ उड़ा। जीवराज सेठ विमान को जाते देखते रहे और गहरे विचार में डूब गए।

नारदजी वैकुंठ में पहुँच गए। भगवान के पास गए। भगवान ने पूछा : 'कहो नारदजी, क्या खबर लाए हो मृत्युलोक की?'

नारदजी का मुँह चढ़ा हुआ था। कुछ क्षण मौन रहे, फिर बोले : 'भगवान, मुझे मालूम नहीं था कि आपके राज्य में इतना अन्धेर होगा?'

नारदजी ने जोरदार 'बम्बार्डमेन्ट' कर दिया। भगवान भी क्षणभर स्तब्ध रह गए। परन्तु मुख पर स्मित लाकर भगवान ने पूछा : 'ऐसी क्या बात है देवर्षि?'

'भगवान, आप अन्तर्यामी होकर मुझसे क्या पूछते हो? जब पूछते ही हो तो बताता हूँ। अभी मैं मृत्युलोक में गया था, उस फलाँ शहर को देखने नीचे उतरा। वहाँ के जीवराज सेठ को मैंने देखा। भगवान कैसा वह भक्त जीव है, दिन-रात आपका नाम ही जपता है, ललाट में कितने चन्दन के तिलक करता है, पूजा-पाठ करता है... अहा, कैसा उसका विनय और विवेक! कितनी उसकी वैकुंठ में आने की तमन्ना प्रभो! आप नाराज मत होना, परन्तु आपको ऐसे भक्तों की कोई परवाह नहीं है! आप पापियों को पावन करेंगे, ऐसे भक्तों की...' नारदजी जोश में बोल रहे थे। भगवान ने आँखें मूँदी और उन्होंने शहर को देखा। उस मैदान को देखा, सेठ की दुकान देखी और जीवराज सेठ को देखा। बाहर देखा, भीतर से देखा।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

'नारदजी!'

'भगवंत!'

'उस शहरवाला वह सेठ वैकुंठ में नहीं आएगा!'

'आएगा, अवश्य आएगा भगवान! मैं उसे पूछकर आया हूँ...।'

भगवान ने कहा : 'ठीक है देवर्षि, आप पूछकर आए हो, लेकिन मैं कहता हूँ कि वह सेठ वैकुंठ में नहीं आएगा!'

'मैं नहीं मान सकता आपकी बात भगवंत! माफ करना, आप सीधी बात कह दीजिए कि वैकुंठ में उस सेठ के लिए जगह ही नहीं है! कोई कमरा खाली नहीं है!' नारदजी को गुस्सा आ गया। भगवान को हँसी आ गई। उन्होंने कहा :

'अच्छा, तो आप ले आइए उस सेठ को। वैकुंठ में उसके लिए तेरह नंबर का कमरा खाली रहेगा... बस!'

नारदजी खुश हो गए। उन्होंने कहा : 'भगवान, मैं आपका विमान लेकर जाऊँगा वहाँ और ले आऊँगा उस सेठ को!' भगवान ने कहा : 'अच्छा, ले जाना मेरा विमान...।' नारदजी प्रसन्न होकर अपने स्थान चले गए। भगवान नारदजी को देखते रहे! 'भक्तवत्सल हैं परन्तु भावुक हैं। मनुष्य की बाहरी भक्ति देखकर बह जाते हैं। जाने दो लेने के लिए उस सेठ को...।'

आपको भी मोक्ष में जाना है न? मोक्ष में जाने की तमन्ना है न? धर्म मोक्ष भी देता है। परन्तु वह धर्म कैसा होना चाहिए-यह कभी सोचा है? 'धर्म मोक्ष देता है'-इतनी बात तो समझ ही लेना। 'मोक्ष' के विषय में आगे विवेचन करेंगे और नारदजी के विषय में भी आगे बात करेंगे।

आज, बस इतना ही।

❖ ❖ ❖

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

- ***धर्म की प्रक्रियाएँ दो प्रकार की होती हैं : एक प्रक्रिया होती है पुण्यकर्म के बंध की और दूसरी प्रक्रिया होती है पापकर्मों को नष्ट करने की। पुण्यकर्म से भौतिक सुख-सामग्री मिलती है, पापकर्मों को नष्ट करने से आत्मगुणों का आविर्भाव होता है!***
- ***धर्म का मर्म समझनेवाला आदमी कभी भी भौतिक सुखों के पीछे पागल नहीं होगा। वह भोगी होगा, पर भोगदृष्टिवाला या भोगासक्त नहीं होगा। योगगदृष्टि खुले बिना धर्मतत्त्व नहीं समझा जा सकता! भोगदृष्टिवाला जीव धर्मक्रियाएँ करता है, पर उसे मोक्ष नहीं मिलेगा...क्योंकि वह चाहता ही नहीं!***
- ***मोक्ष को जाने बिना मोक्ष अच्छा लग सकता है क्या? मोक्ष पसंद आए बिना मोक्ष माँगा जा सकता है क्या? आदमी को जो पसंद होता है, वही माँगता है। जो पसंद नहीं, उसे वह माँगता नहीं है।***
- ***आठ कर्मों के क्षय से आत्मा में आठ अक्षय गुण प्रकट होते हैं। जानते हो आत्मा के उन अद्भुत गुणों को?***

प्रवचन : ४

एक हजार चारसो चँवालीस धर्मग्रन्थों के रचयिता महान आचार्यश्री हरिभद्रसूरिजी धर्म का प्रभाव बताते हुए 'धर्मबिन्दु' ग्रन्थ में फरमाते हैं :

धनदो धनार्थिनां प्रोक्तः कामिनां सर्वकामदः।
धर्म एवापवर्गस्य पारम्पर्येण साधकः ।।

'कोई धन-संपत्ति को चाहता है, धर्म उसे धन-संपत्ति देता है। कोई वैषयिक सुखभोग चाहता है, धर्म उसे वैषयिक सुखभोग देता है। कोई स्वर्ग चाहता है, उसे स्वर्ग देता है और कोई मोक्ष माँगता है, तो उसे मोक्ष देता है।'

पर महानुभाव, धर्म को जादू मत समझ लेना! यह बात कोई जादूगरी की बात नहीं है। यह बात सुनकर आप ऐसा मत समझ लेना कि 'हम धर्म के पास जाकर धर्म से प्रार्थना करें कि 'मुझे लाख रूपया चाहिए, मुझे दे दो! मुझे मेरी

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मनपसन्द पत्नी चाहिए, मुझे दे दो! मुझे स्वर्ग में जाना है, वहाँ ले चलो! मुझे मोक्ष चाहिए, मुझे मोक्ष दे दो।' इस प्रकार माँगने से कुछ मिलने का नहीं। धर्म के पास माँगने से कुछ नहीं मिलेगा, धर्म का आचरण करने से सब कुछ मिलेगा।

जटाशंकर बीमार पड़ा। अकेला था, दवाई कौन लाकर दे उसको? इतने में एक फकीर भिक्षा माँगने जटाशंकर के घर आया। जटाशंकर को बीमार देखकर फकीर ने कहा : 'दवाई से अच्छा हो जाएगा।' इतना कहकर फकीर चला गया। जटाशंकर ने सोचा : 'दवाई से अच्छा होगा, तो मुझे दवाई के पास जाना चाहिए।' वह बिस्तर से उठा और धीरे-धीरे दवाई की दुकान पर गया। दवाइयों के सामने हाथ जोड़कर बोला : 'तुम्हारे प्रभाव से बीमारी चली जाती है, तो हे दवा देवी, तुम कृपा करके मेरी बीमारी दूर कर दो!'

धर्म की बातें करने से सुख नहीं मिलेगा :

धर्म के विषय में ऐसी मूर्खता मत करना। धर्म से सभी प्रकार के सुख मिलते हैं, परन्तु मात्र बातें करने से नहीं मिलेंगे। आज मनुष्य बातें तो बहुत करता है। धर्म की बातें काफी हो रही हैं, परन्तु धर्माचरण कम हो गया है। यदि धर्म की क्रियाएँ होती हैं तो धर्म के विचार नहीं होते! विचार होते हैं पाप के और क्रिया होती है धर्म की!

'धर्म से धन मिलता है', यह सुनकर आपने क्या सोचा? आज सुबह परमात्मा की पूजा करो और मध्याह्न जब बाजार में जाओ तब ढेर सारे रूपये मिल जाय ऐसा आज प्रातः दान दिया और आज ही संपत्ति मिल जायँ-ऐसा? आज उपवास किया, आयंबिल किया और आज ही किसी मनचाही लड़की से सगाई हो जाय ऐसा? आज अणुव्रत या बारह व्रत धारण किए और आज ही स्वर्ग में चले जाओ-ऐसा? क्या सोचते हो आप? आज चारित्र्यधर्म स्वीकार किया और आज ही मोक्ष मिल जाय ऐसा? दिमाग तो ठिकाने है न? 'धर्म से मोक्ष मिलता है-' इस विधान का मर्म समझे हैं आप? धर्म से स्वर्ग मिलता है- इस प्रतिपादन का रहस्य समझे? ज्ञानी पुरुषों के वचन बहुत गंभीर होते हैं। मात्र शब्द का अर्थ कर लेने से सच्चा रहस्य नहीं मिलता। शब्द पर गंभीरता से, सूक्ष्मता से चिन्तन-मनन करना होगा।

आपको तो सुख पाने की जल्दबाजी है! तत्काल सुख मिल जाय वैसा उपाय आपको चाहिए-सच है न? डॉक्टर कैसा पसन्द करते हो आप? 'दवा

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कैसी भी दो, रोग जल्दी दूर होना चाहिए!' ऐसा ही कहते हो न? फिर 'रि-एक्शन' प्रतिक्रिया कैसी भी आए! सुख आपको तत्काल चाहिए न? दुःखमुक्ति भी शीघ्र चाहिए! आपको लगे कि 'यह सुख सच बोलने से शीघ्र नहीं मिलेगा, झूठ बोलने से मिल जाएगा...' तो क्या करोगे? झूठ ही बोलोगे न? आपको लगे कि 'प्रामाणिकता से-नीति से यह धंधा करने से ज्यादा मुनाफा नहीं होगा, जल्दी लखपति नहीं बन पायेंगे, अनीति करने से काम जल्दी बन जाएगा,' तो क्या करोगे? अनीति न? क्योंकि आपको धनवान जल्दी बनना है! आपको धन शीघ्र चाहिए, भोगसुख शीघ्र चाहिए, स्वर्ग शीघ्र चाहिए और मोक्ष भी शीघ्र चाहिए? मेरे खयाल से मोक्ष पाने की इतनी जल्दी नहीं होगी?

धर्म सुख देता है, परन्तु अपनी जल्दबाजी काम नहीं आएगी! सुख देने का एक लम्बा 'प्रोसीजर' होता है धर्म का! एक लम्बी प्रक्रिया में से गुजरना पड़ता है। आज अपने पास जो भी सुख हैं, सब धर्म से ही मिले हैं। अपन एक लम्बी प्रक्रिया से गुजरे हैं! जन्म-जन्मान्तरों की बातें अपने को याद नहीं रहतीं, परन्तु अपने अनेक जन्मों में धर्म की उस प्रक्रिया में से गुजरे हैं, तभी आज अपने पास कुछ सुख हैं। सुख के साधन हैं। सुख का अनुभव है। आज इस जीवन में पुनः धर्म की उस प्रक्रिया को करेंगे, तो आगे के जीवन में सुख प्राप्त होगा।

धर्म की दो प्रक्रियाएँ हैं :

धर्म की एक प्रक्रिया है पुण्यकर्मों के बंध की, और दूसरी प्रक्रिया है पापकर्मों के क्षय की। पुण्यकर्म के बंध से भौतिक सुख मिलते हैं, और पापकर्मों के क्षय से आत्मिक सुख मिलता है। धर्म से तात्कालिक पापकर्मों का क्षय हो सकता है, इसलिए आत्मिक सुख तो शीघ्र मिल सकता है। परन्तु पुण्यकर्म जो बंधते हैं, वे बंधे हुए पुण्यकर्म जब उदय में आयेंगे, तब भौतिक सुख मिलता है। आज जो पुण्यकर्म बंधा धर्म के माध्यम से, वह पुण्यकर्म तात्कालिक उदय में नही आ सकता है। ऐसा नियम है। अमुक निश्चित समय के बाद ही उदय में आता है। जब तक वह पुण्यकर्म उदय में नहीं आए तब तक धैर्य रखना होगा! अधीर बनने से काम नहीं चलेगा। संभव है कि इस जीवन में वह पुण्यकर्म उदय में न भी आए। आएगा जरूर उदय में और शुभ फल भी देगा, परन्तु दूसरे भवों में! यह भी जरूरी नहीं कि आगे आनेवाले दूसरे भव में ही फल मिल जायँ! इस भव में बाँधा हुआ कर्म पच्चीस भव के बाद भी उदय में आए।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

इसका अर्थ समझे? धर्म से सुख जो मिलते हैं, धर्म जो सुख देता है वह 'डायरेक्ट' - सीधा नहीं देता। पुण्यकर्म के माध्यम से देता है। अग्नि से भोजन बनता है-पकता है, परन्तु Direct-सीधा नहीं पकता। चावल पकाने हैं, आप चावल को अग्नि में डाल दो तो पक जायेंगे क्या? जल जायेंगे न? आपको बरतन में चावल को डालकर आग पर रखना होगा, तभी चावल पकेंगे, वह भी तुरन्त नहीं, कुछ तो समय लगेगा ही। धर्म सुख देता है, परन्तु पुण्यकर्म द्वारा देता है। भौतिक सुखों की बात करता हूँ। आध्यात्मिक सुख तो पापकर्मों के क्षय से, नाश होने से मिलता है। हाँ, यदि आपको मानसिक और आध्यात्मिक सुख तात्कालिक चाहिए तो धर्म तात्कालिक देगा। परन्तु पापकर्मों के क्षय की भी एक प्रक्रिया है! उस प्रक्रिया में से तो गुजरना ही पड़ेगा।

सभा में से : हम लोगों को तो तत्काल भौतिक सुख चाहिए!

महाराजश्री : वैसे पुण्यकर्म लेकर जन्मांतर से आत्मा आई होगी, तो तत्काल भौतिक सुख मिलेंगे। यदि पुण्यकर्म ऐसा नहीं है आत्मा के पास, तो लाख उपाय करें, सुख मिलने का नहीं। यदि मकान की टंकी में पानी नहीं है, तो नल को कितना भी घुमाओ, नल के ऊपर सर पटको; तो भी पानी नहीं आएगा नल में से! हाँ, सर में से खून जरूर आएगा।

योगदृष्टि खुले बिना धर्मतत्त्व नहीं आएगा समझ में :

मनुष्य की इच्छानुसार भौतिक सुख नहीं मिल सकते। आध्यात्मिक सुख मिल सकता है तत्काल। आध्यात्मिक सुख यानी आत्मिक शान्ति। मानसिक प्रसन्नता का सुख मिल सकता है धर्म से! एक बात समझ लो : जब तक हृदय में शारीरिक-ऐन्द्रिक और भौतिक सुखों की ही कामना भरी पड़ी है, आत्मा की बिल्कुल विस्मृति है, तब तक धर्म को समझे ही नहीं हैं।

धर्म का मर्म समझनेवाला मनुष्य शारीरिक और भौतिक सुखों के पीछे पागल नहीं बनता। वह भोगी हो सकता है, भोगदृष्टिवाला नहीं हो सकता। योगदृष्टि खुले बिना धर्मतत्त्व को जीव समझ नहीं सकता। हाँ, धर्मक्रियाएँ तो भोगदृष्टिवाला भी करता है, उस जीवराज सेठ की तरह! जीवराज पूजा-पाठ करते थे, माला-जाप करते थे...करते थे धर्मक्रिया, परन्तु उनके हृदय में क्या था? जब नारदजी भगवान का विशेष विमान लेकर पुनः उस शहर में आए, उस मैदान पर विमान को छोड़कर नारदजी जीवराज की दुकान पर गए। सेठ ने स्वागत किया नारदजी का। नारदजी ने सेठ को कहा : 'सेठ, चलो

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वैकुंठ में! भगवान से झगड़ा कर आपके लिए एक कमरा रिजर्व करवा कर, भगवान का विमान लेकर आया हूँ आपको लेने के लिए!'

'देवर्षि, आप कितने करुणावंत हैं। मेरे जैसे अभागे के लिए आपने कितना कष्ट उठाया प्रभु? आप दयालु हैं, परहितकारी हैं। आपका उपकार मैं कभी नहीं भूलूँगा...।' सेठ ने गद्-गद् स्वर में नारदजी की प्रशंसा की और नारदजी के चरणों में साष्टांग दंडवत् प्रणाम किया।

नारदजी ने कहा : 'जीवराज, अब अपने को चलना चाहिए, भगवान अपना इन्तजार करते होंगे।'

'भगवन्! वैकुंठ में चलने की मेरी आकंठ इच्छा है। मुझे संसार में कोई रस नहीं, आसक्ति नहीं... मुझे तो अब वैकुंठ के सपने आने लगे हैं...'

'तुम सच्चे भक्त हो जीवराज, इसलिए तो मैं तुम्हें लेने आया हूँ। अब चलें अपने।'

'महात्मन्! जब आप यहाँ पहली बार पधारे और वैकुंठ में मुझे ले जाने की बात की थी, तब मुझे अपूर्व आनन्द हुआ था। मैंने घर जाकर उसी समय लड़के की माँ को कह दिया था कि 'अब मैं संसार में नहीं रहूँगा, मैं वैकुंठ में चला जाऊँगा, नारदजी मुझे लेने आयेंगे!' मेरी बात सुनकर लड़के की माँ रो पड़ी। उसने कहा : आपको वैकुंठ में जाना है तो जाइए, परन्तु लड़के की शादी करके जाइए। अब आपकी वृद्धावस्था है, आपको मैं वैकुंठ में जाने से कैसे रोकूँ? यह तो शादी का समय नजदीक है-माघ महीने का मुहूर्त है, शादी करवाकर आप वैकुंठ पधारें।'

'आपने क्या कहा?' नारदजी ने पूछा।

'मैंने कहा कि लड़के की शादी करना है तो वह करेगा, मेरा मन क्षणभर भी संसार में नहीं लगता है, मुझे तो वैकुंठ में जाने की तीव्र इच्छा है।' मेरी बात सुनकर लड़के की माँ को गुस्सा आ गया और क्या बताऊँ आपको। वह ऐसा बोलने लगी कि मुझे बड़ा दुःख हुआ। प्रभो, औरत की जात! आपको भी गालियाँ बकने लगी, तो मैंने कहा : 'अच्छा बाबा, मैं लड़के की शादी करवा कर वैकुंठ जाऊँगा...। तब जाकर वह शान्त हुई। भगवन्त, मैं आपकी निन्दा कैसे सुन सकता हूँ? मैं तो अभी चल दूँ आपके साथ, परन्तु लोग आपको गालियाँ देंगे...'

नारदजी सेठ की बात सुनकर विचार में पड़ गये। उन्होंने कहा : 'तो सेठ अब क्या करना है?'

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

'प्रभो, आप माघ महीने में पधारने की कृपा करें। मेरे लिए इतना कष्ट करें। मैं अवश्य चलूँगा आपके साथ। मुझे तो यह संसार जहर लगता है जहर...।'

'अच्छा तो, ठीक है मैं चलता हूँ...' कहकर नारदजी विमान के पास आये और विश्वयात्रा करने चले गये। जीवराज सेठ को शान्ति हुई! वैकुंठ में जाना नहीं था, परन्तु 'वैकुंठ ही मुझे प्यारा है', ऐसा दुनिया को दिखाना था। क्योंकि जिसको वैकुंठ प्यारा होता है, दुनिया उसको सम्मान की दृष्टि से देखती है, उसकी इज्जत करती है। जीवराज को इसलिए दुनिया की निगाह में धर्मात्मा बनना था। उसको लोगों का सम्मान चाहिए था। आप लोग भी कहते हो न कि 'हमें मोक्ष चाहिए, हमें वैकुंठ में जाना है...।' जाना है वैकुंठ में? महाविदेह क्षेत्र में से सीमंधरस्वामी किसी देव को भेजे आपके पास और देव आकर कहे : 'चलो महाविदेह में सीमंधरस्वामी भगवान के पास, वे तुम्हें वैकुंठ में भेज देंगे!' तो देव के साथ तुरंत ही चले जाओगे न?

चाहना हो उसी की माँग की जाती है :

सभा में से : लेकिन हमें मोक्ष ही माँगना चाहिए न?

महाराजश्री : माँगने से क्या? जो चाहते नहीं वह कभी माँगा जाता है? चाहते हो संसार और माँगते हो मोक्ष! वाह, अच्छी करी बात! दुनिया में कभी आपने, जो आप नहीं चाहते वह माँगने गये किसी के पास? पहले मोक्ष को चाहो, फिर माँगो। चाहते हो मोक्ष को? मोक्ष में क्या है, क्या नहीं है; वहाँ आत्मा कैसी हो जाती है, क्या करती है; वहाँ कैसा सुख होता है... वगैरह जानते हो? कैसी मूर्खतापूर्ण बात करते हैं लोग? मुझे बड़ा आश्चर्य होता है। जो आत्मा को नहीं जानते वे मोक्ष की बातें करते हैं! जो मोक्ष के स्वरूप को नहीं जानते वे मोक्ष की बातें करते हैं! क्यों करते हैं जानते हो? मोक्ष की बातें करनेवालों की दुनिया इज्जत करती है! 'हम तो मोक्ष में जाने के लिए धर्म करते हैं,' ऐसी बातें करनेवालों को समाज सम्मान की दृष्टि से देखता है।

परन्तु ऐसी 'बोगस' बातें करनेवालों को जब समाज के लोग सिनेमागृहों में देखते हैं, होटलों में देखते हैं, शराब पीते देखते हैं... अनीति, अन्याय और दुराचार करते देखते हैं; तब क्या होता है? मोक्ष की बातें करनेवालों के प्रति तिरस्कार हो जाता है। धर्म के प्रति अभाव हो जाता है लोगों को। जिनको मोक्ष का सही ज्ञान नहीं, मोक्ष पाने की कोई चाह नहीं, ऐसे लोगों को दुनिया

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

के आगे मोक्ष की बातें नहीं करनी चाहिए। एक ऐसा ही 'भगत' कुछ दिन पहले मेरे पास आया था। किसी उपदेशक ने उसको 'मोक्ष' शब्द सिखा दिया होगा!

मैंने उससे पूछा : 'आप धर्मक्रिया किस उद्देश्य से करते हो?

उसने कहा : मोक्ष के उद्देश्य से करता हूँ?'

मैंने कहा : 'मोक्ष का स्वरूप जानते हो? मोक्ष में आत्मा का रंग काला होता है या लाल?'

फटाक से उसने जवाब दिया : 'वहाँ तो आत्मा सिद्ध होती है, सिद्ध का रंग लाल होता है।'

मुझे हँसी आ गई। उसको इतना भी ज्ञान नहीं था कि मोक्ष में आत्मा अरूपी होती है। आत्मा के शुद्ध स्वरूप का यथार्थ ज्ञान हुए बिना मोक्ष की चाह हो ही नहीं सकती। चाह के बिना माँग कैसे हो सकती है? इसलिए कहता हूँ कि जिस मोक्ष को आप चाहते नहीं उसको माँगने का दंभ छोड़ दो। ऐसा अभिनय करने से क्या फायदा ? दंभ से कमायी हुई इज्जत मिट्टी के महल जैसी है। ऐसा दंभ करने में समय बरबाद करने के बजाय मोक्ष का स्वरूप समझने का प्रयत्न करो। आत्मा का शुद्ध स्वरूप समझो। वह शुद्ध स्वरूप पसन्द आ जाये तो मोक्ष पसन्द आ गया! फिर मोक्ष माँगो!

सभा में से : आप मोक्ष का स्वरूप समझाइए न!

महाराजश्री : मोक्ष के अस्तित्व पर तो श्रद्धा है न? 'मोक्ष है' ऐसा तो मानते हो न? है, संसार है तो मोक्ष होना ही चाहिए। अशुद्ध आत्मा है तो शुद्ध आत्मा होनी ही चाहिए। अशुद्ध है तो शुद्ध का अस्तित्व हो सकता है। संसार में जीव अशुद्ध होते हैं, मोक्ष में जीव शुद्ध होते हैं। अशुद्धि है कर्मों की। आठ कर्मों की अशुद्धि है तब तक आत्मा संसारी है। आठों कर्मों का क्षय आत्मा का मोक्ष है! कर्मों का जिससे क्षय होता हो, उसका नाम धर्म है। इसलिए ग्रन्थकार ने कहा कि 'धर्म मोक्ष देता है।'

सर्व कर्मों का क्षय होने से आत्मा परम विशुद्ध हो जाती है। उस विशुद्ध आत्मा का अनन्त गुणमय स्वरूप होता है। मुख्य कर्म आठ होते हैं, उनके क्षय होने से मुख्य आठ गुण आत्मा में प्रकट होते हैं।

ज्ञानावरण कर्म के क्षय से अनन्त ज्ञान प्रगट होता है। दर्शनावरण कर्म के क्षय से अनन्त दर्शन प्रगट होता है। मोहनीय कर्म के क्षय से वीतरागता प्रगट

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

होती है। अन्तराय कर्म के क्षय से वीर्य प्रगट होता है। नाम कर्म के क्षय से अरूपीपन प्राप्त होता है। गोत्र कर्म के क्षय से अगुरु-लघु अवस्था प्रगट होती है। आयुष्य कर्म के क्षय से अक्षय स्थिति प्रकट होती है और वेदनीय कर्म के क्षय से अव्याबाध स्थिति प्रकट होती है। मोक्ष में आत्मा की स्थिति-अवस्था ऐसी शाश्वत् गुणमय अवस्था होती है। गुणमूलक अनन्त आनन्द की सर्वदा अनुभूति होती है। ऐसी स्थिति प्राप्त होने के पश्चात् कभी भी आत्मा कर्मों के बंधनों से बंधती नहीं है, अतः उसको पुनः संसार में अवतरित होना नहीं पड़ता।

अशरीरी, अमोही, अद्वेषी आत्मस्थिति प्राप्त करने की अभिलाषा है? परमानन्दपूर्ण सच्चिदानन्दमय आत्मस्थिति प्राप्त करने के मनोरथ जाग्रत हुए हैं? 'हमारी मोक्ष पाने की भावना है,' ऐसा बोलने मात्र से मोक्ष मिलने का नहीं। किसी को नहीं मिला है! आपको बोलने मात्र से कैसे मिलेगा? थोड़े क्षण हवा नहीं मिले तो कैसी बेचैनी हो जाती है? कैसी अकुलाहट हो जाती है? वैसी बेचैनी, अकुलाहट मोक्ष के बिना कभी हुई? अशरीरी बनने की बातें करो और शरीर का अपरंपार मोह करो! अरागी-अद्वेषी बनने की बातें करो और दिन-रात राग-द्वेष की होली खेलो! अनन्त ज्ञानमय आत्मस्थिति प्रकट करने की बातें करो और घोर अज्ञान दशा में जीवन पूर्ण करो! ऐसी है मोक्ष पाने की आपकी इच्छा! आत्मवंचना क्यों करते हो?

शरीर से मुक्त बनने की कल्पना भी कभी आई? मुक्ति की इच्छा ही नहीं और मोक्ष की बातें करते हो। परमात्मा से मोक्ष माँगते हो। क्या कर रहे हो आप लोग? संसारसुखों में ही निमग्न रहना और मोक्ष पाने की बात करना-कैसा विसंवाद है यह? कल्पना में, ध्यान में भी शुद्ध आत्मद्रव्य देखा है? 'मैं शुद्ध आत्मद्रव्य हूँ' ऐसी कल्पना भी आई है कभी? यदि ऐसी कल्पना आती रहती है, पुनः पुनः आती रहती है, तो मोक्षप्रीति प्रकट होगी। मोक्ष के प्रति प्रीति प्रकट होने पर धर्म का प्रभाव अनुभव में आएगा। धर्म से मोक्ष मिल जाएगा। मेरा कहने का तात्पर्य यह है कि मोक्षदशा को समझो, मोक्षदशा की चाहना प्रकट करो, फिर देखो धर्म का प्रभाव! उस जीवराज सेठ को मोक्षदशा का ही ज्ञान नहीं था! मोक्ष की चाहना भी नहीं थी। मोक्षार्थी का दिखावा करने की प्रबल इच्छा थी, क्योंकि इससे वह नारदजी की दृष्टि में सम्मानपात्र बन सकता था! बन गया न सम्मानपात्र? नारदजी ने भगवान के आगे भी जीवराज के गुण गाये!

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जीवराज सेठ का दूसरा वचन :

नारदजी विश्वयात्रा करके लौटे। जब वे वैकुंठ में भगवान के पास गये, भगवान ने पूछा : 'क्यों उस सेठ को ले आये नारदजी?' नारदजी ने कहा : 'भगवंत, उसके लड़के की शादी करने के बाद में आएगा।' भगवान ने कहा : 'नारदजी, शादी के बाद भी नहीं आएगा!' नारदजी ने हिम्मत से कहा : 'भगवंत, संसार में जीव को अपने-अपने व्यवहारों को तो निभाना पड़ता है न! सेठ के हृदय में तो आप ही बसे हो, वह तो अनासक्त भाव से शादी का व्यवहार करेगा! परम भक्त है आपका...।'

माघ महीना गया, फाल्गुन आया। नारदजी भगवान का विमान लेकर पहुँच गये वापस सेठजी के पास। सेठजी नारदजी को देख, तुरंत ही दुकान से नीचे उतर गये और एकदम नम्रता से, विनय से नारदजी का सन्मान किया। नारदजी ने कहा : 'सेठ, अब चलो वैकुंठ के लिए, मैं लेने आया हूँ।'

सेठ ने कहा : 'हे उपकारी महापुरुष, आपकी करुणा कितनी है? आप निष्कारण वत्सल हो, मेरे परम श्रद्धेय हो! प्रभो, वैकुंठ में चलने की संपूर्ण भावना है। संसार में मुझे कोई रस नहीं, स्वप्नवत् संसार में...।'

'सेठ, तुम्हारी बात मैंने समझ ली, अब देर मत करो और बैठ जाओ विमान में, चलें वैकुंठ में।'

सेठ ने कहा : 'प्रभो, मैंने घर पर बात की थी कि लड़के की शादी हो गई, तुम्हारी बात मैंने मान ली, अब मैं नारदजी के साथ वैकुंठ जाऊँगा ही।' मेरी बात सुनकर लड़के की माँ ने कहा : 'आप तो मन से वैकुंठ में ही हो। आपके लिए वैकुंठ और घर समान ही है। मेरी यह इच्छा है कि लड़के के वहाँ लड़का हो जाय, इसके बाद आप भले वैकुंठ जायँ। अभी जायेंगे शायद वहाँ वासना जाग्रत हो जाये कि 'मेरे लड़के को लड़का हुआ होगा या नहीं...' तो अच्छा नहीं। एक साल रुक जाइए...'

नारदजी सेठ की बात सुनकर विचार में पड़ गये। उन्होंने सेठ से पूछा : 'फिर आपने क्या निर्णय किया?'

सेठ ने कहा : 'महर्षि, जिनके साथ जीवन बिताया, उनकी इच्छा को कुचलकर अभी वैकुंठ में चलना मुझे उचित नहीं लगा। हाँ, मुझे तो कोई राग नहीं है। उनके लिए एक वर्ष यहाँ रुक जाऊँ तो फिर किसी का मन दुःखी नहीं होगा। आप कृपा करके एक वर्ष के बाद पधारें, तो आपका उपकार कभी नहीं भूलूँगा।'

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

नारदजी को भगवान के वचन याद आये। 'वह सेठ वैकुंठ में नहीं आएगा।' परन्तु फिर भी नारदजी ने प्रयत्न जारी रखने का निर्णय किया! क्योंकि अब तो उनकी प्रतिष्ठा का प्रश्न बन गया था! नारदजीने भगवान की बात को मिथ्या कर, सेठ को वैकुंठ में ले आने की प्रतिज्ञा की थी! प्रश्न जब प्रतिष्ठा का विषय बन जाता है, तो मनुष्य अपनी पूरी ताकत लगा देता है उस प्रश्न को सुलझाने के लिए। 'यदि मैं सेठ को वैकुंठ में नहीं ले गया तो भगवान के आगे मेरी हँसी होगी, मेरी प्रतिष्ठा की हानि होगी...।' स्वयं वैकुंठ में जाना फिर भी सहज है, दूसरों को वैकुंठ में ले आना बड़ा दुष्कर कार्य है!

नारदजी वास्तव में फँस गये थे। ऐसे व्यक्ति से उनका पाला पड़ा था कि जो दंभी था! बाहर से भक्त का दिखावा करता था, भीतर से पूरा संसार का रागी था। नारदजी ने बाह्य दिखावे को सच्चा मान लिया और फँस गये! दुनिया में जो मनुष्य किसी के फंदे में फँसते हैं वे बाह्य दिखावे के चक्कर में ही फँसते हैं। हालाँकि दुनिया में ही ज्यादातर लोग स्वार्थवश, लोभवश फँसते हैं, लेकिन नारदजी को ऐसा कोई स्वार्थ नहीं था, परमार्थ था। परमात्मभक्त को मुक्ति दिलाने का भाव था। परन्तु बात पकड़ी गई!

नारदजी ने सेठजी की एक वर्ष की मोहलत मान्य कर ली और सीधे वैकुंठ चले गये। भगवान ने कहा : 'अब छोड़ दो उस सेठ को नारदजी, वह आनेवाला नहीं इधर! परन्तु नारदजी ने नहीं माना। उन्होंने सेठ को वैकुंठ में लाने का संकल्प दोहरा दिया। नारदजी भगवान की बात मानने को तैयार नहीं थे! जिद ऐसी ही वस्तु है। जिद के भीतर 'अहं' बैठा हुआ होता है। अहंकार मनुष्य को कितना गिरा देता है? जमाली मुनि को किसने गिराया था? भगवान महावीर जो कि सर्वज्ञ थे, वीतराग थे, उनकी बात भी जमाली ने नहीं मानी! जानते हो न जमाली की वह घटना?

अहंकार आग है :

भगवान महावीर की पुत्री प्रियदर्शना की शादी राजकुमार जमाली के साथ हुई थी। बाद में दोनों ने भगवान के चरणों में चारित्र्यधर्म स्वीकार कर लिया था और भगवान के श्रमणसंघ में सम्मिलित हो गए थे। जमाली मुनि ग्यारह अंगों के वेत्ता बन गए थे। एक दिन जमाली अस्वस्थ हो गए, बीमार हो गए। शाम को प्रतिक्रमण करने के बाद दूसरे श्रमण जमाली मुनि का संस्तारक बिछा रहे थे। जमाली मुनि ने पूछा : 'क्या संस्तारक तैयार हो गया?' श्रमण

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ने कहा : 'हाँ, हो गया संस्तारक।' तुरन्त जमाली मुनि खड़े हुए और सोने के लिए संस्तारक के पास आये। उन्होंने देखा कि अभी श्रमण संस्तारक बिछा रहे हैं, बिछाने की क्रिया चालू है। जमाली को गुस्सा आ गया, वे बोले : 'तुम श्रमण हो, मृषावाद का तुमने त्याग किया है, तुम महाव्रतधारी हो, तुमने झूठ क्यों बोला? संस्तारक तैयार नहीं है फिर भी तुमने कहा कि संस्तारक तैयार है...।'

श्रमण ने हाथ जोड़कर विनय से कहा : 'हे महामुनि, भगवान महावीर स्वामी ने कहा है कि जो क्रिया हो रही हो, कहा जा सकता है कि क्रिया हो गई! यह व्यवहारभाषा है और सर्वमान्य भाषा है। भगवान ने कहा है 'कडेमाणे कडे' यानि क्रियमाण-क्रिया को कृत-क्रिया कह सकते हैं।

जमाली ने कहा : 'जहाँ प्रत्यक्ष विरोध दिखता है, वहाँ सिद्धान्त की बात नहीं टिक सकती। क्रिया अपूर्ण है, पूर्ण नहीं हुई है, तो कैसे कह सकते हो कि क्रिया हो गई? मैंने प्रत्यक्ष देखा कि संस्तारक (ऊनी बिछौना) अभी पूरा बिछाया नहीं है, फिर भी कैसे माना जाये कि संस्तारक बिछ गया?'

श्रमणों के साथ जमाली ने काफी चर्चा की। बात भगवान के पास पहुँची। भगवान ने जमाली को खूब समझाया कि क्रिया भले ही चल रही हो, क्रिया हो गई-वैसा व्यवहारभाषा में बोला जा सकता है। जैसे तुम राजगृही से कौशाम्बी जाने को यहाँ से रवाना हुए, अभी तो तुम राजगृही के ही प्रदेश में हो, कोई आकर यहाँ किसी श्रमण से पूछे कि 'जमाली मुनि कहाँ हैं?' तो श्रमण जवाब देगा : 'वे तो कौशाम्बी गये हैं!' अभी तुम कौशाम्बी नहीं पहुँचे हो फिर भी बोला जाता है कि 'कौशाम्बी गये हैं!' भगवान ने अनेक उदाहरण और अनेक तर्क देकर जमाली को समझाने का भरसक प्रयत्न किया, परन्तु जमाली मुनि नहीं माने! क्योंकि बात पकड़ी गई थी। हजारों मुनियों के सामने वाद-विवाद करने से अहंकार पुष्ट हुआ था। अहंकार ने भगवान की सर्वज्ञता को भुला दिया! भगवान के प्रति जो श्रद्धाभाव था, उस श्रद्धाभाव को नष्ट कर दिया। जमाली भगवान को छोड़ कर चले गये।

अहंकारयुक्त जिद का भयंकर परिणाम आता है। ज्ञानयुक्त जिद और अहंकारयुक्त जिद में बहुत अंतर है। ज्ञानयुक्त जिदवाला मनुष्य जब अपनी गलती समझेगा, तुरन्त अपनी जिद छोड़ देगा। अहंकारयुक्त जिदवाला आदमी अपनी गलती समझने पर भी जिद नहीं छोड़ेगा। विभीषण ने रावण को श्रीराम को सीता सम्मान के साथ सौंप देने को कितना समझाया था? फिर भी रावण

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ने अपनी जिद नहीं छोड़ी, तो परिणाम क्या आया? राक्षसकुल का कैसा विनाश हुआ?

साध्वी प्रियदर्शना जो जमाली मुनि का पक्ष लेकर चली गई थी, उसकी भी जिद तो थी ही। परन्तु एक प्रज्ञावंत महाश्रावक ढंक कुम्हार ने जब प्रयोगात्मक ढंग से प्रियदर्शना को 'कडेमाणे कडे' का सिद्धान्त समझाया, तो प्रियदर्शना समझ गई, जिद छूट गई और भगवान के चरणों में वापस लौट आई। सत्य समझने के पश्चात् भी असत्य की जिद नहीं छूटती है तो परिणाम अच्छा नहीं आता है। नारदजी ने जिद कर ली थी उस सेठ को वैकुंठ में ले आने की! देखना, परिणाम क्या आता है?

कहनेवाले कौन हैं? धर्म की महिमा बतानेवाले कौन हैं? यह सोच लो। पापों की जिद छोड़कर धर्म के मार्ग पर चलो। धर्म पर पूर्ण विश्वास स्थापित करो। धर्म बतानेवाले भवतारक तीर्थंकर परमात्मा हैं। धर्म का प्रभाव बतानेवाले करुणावंत अरिहंत परमात्मा हैं। पापों का आग्रह छोड़ना चाहिए। पापों से मुक्त होने का आग्रह लक्ष्य बन जाना चाहिए। 'मुझे पापमुक्त होना ही है', ऐसा संकल्प हो जाना चाहिए। धर्म पापमुक्त करता है जीवों को। पापमुक्त होने के लिए धर्म की शरण लेनी ही पड़ेगी। कहिए, होना है पापमुक्त? पाना है मुक्ति? पापों से मुक्ति पाने की अभिलाषा नहीं, पुरुषार्थ नहीं और चाहिए आपको सिद्धशिलावाली मुक्ति? कैसे मिलेगी वह मुक्ति?

सेठ मर कर बिल्ला हो गये :

जीवराज सेठ को मुक्ति से बचना था! इसलिए बना रहा था युक्ति और प्रयुक्ति! एक साल के बाद जब नारदजी जीवराज की दुकान पर गये तो गद्दी खाली थी! गद्दी पर सेठ नहीं थे। दुकान के भीतर सेठ का लड़का बैठा था, उसने नारदजी को देखा। नारदजी ने लड़के से पूछा : 'भाई, सेठजी कहाँ हैं? लड़के ने कहा : 'वह तो पिछले साल स्वर्गवासी हो गए।'

'अरे! सेठ स्वर्गवासी हो गए? मर गए?' नारदजी चिंता के सागर में डूब गए। किस बात की चिंता हुई नारदजी को, समझे? सेठ मर गया, इस बात की चिंता नहीं हुई थी, परन्तु अब मैं सेठ को वैकुंठ में नहीं ले जाऊँगा तो भगवान के आगे मेरी इज्जत क्या बचेगी? इस बात की चिंता हुई! नारदजी ने सोचा : सेठ तो मर गया, परन्तु मर कर वह कहाँ पैदा हुआ होगा? कहीं न कहीं पैदा तो हुआ ही होगा। वहाँ जाकर सेठ को पकडूँ और ले जाऊँ

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वैकुंठ में! भगवान के पास जाकर पूछ लूँ सेठ का पता...नया 'एड्रेस'!

नारदजी गये भगवान के पास। भगवान के मुख पर मुस्कराहट थी। नारदजी शरमिंदा थे। भगवान ने कहा : 'नारदजी, सेठ मर गया न? नहीं आएगा वह वैकुंठ में, छोड़ दो अब उस बात को।'

'भगवंत, वह सेठ मर कर कहाँ पैदा हुआ होगा? आप तो जानते हैं, मुझे बता दो! मैं वहाँ जाकर ले आता हूँ उस सेठ को। क्या करे बेचारा सेठ? आयुष्य पूर्ण हो गया उसका, अन्यथा वह भक्त अवश्य यहाँ आता।' नारदजी ने सेठ के गुण गाये! भगवान तो जानते ही थे नारदजी के स्वभाव को! उन्होंने कहा : 'देवर्षि, वह सेठ मर कर बिल्ला हुआ है!' नारदजी तो सुनकर स्तब्ध हो गये, आँखें चौड़ी हो गईं। वह बोले : 'क्या फरमाते हो भगवान? सेठ मर कर तिर्यंचयोनि में गया? बिल्ले का भव?'

हाँ, बिल्ले का भव मिला है। वह बिल्ला अभी सेठ के लड़के के अनाज के 'गोडाउन' में है। लड़के ने अनाज का बड़ा व्यापार किया है, अनाज के बड़े बड़े कोठार भरे हैं, वहाँ पर है वह सेठ!' नारदजी ने वहाँ जाकर बिल्ले को प्रतिबोध देने का सोचा अपने मन में। 'क्या हो गया बिल्ला हुआ तो? आखिर है तो आत्मा। ज्ञानी पुरुषों की दृष्टि में तो देव हो या मानव हो, तिर्यंच पशु हो या नारकी का नारक जीव, सब समान होते हैं। कलेवर बिल्ले का है, लेकिन है तो सच्चिदानन्द रूप आत्मा न!

नारदजी पहुँचे उसी शहर में उस सेठ के लड़के के पास। लड़के से कहा : 'भाई तेरे अनाज के कोठार में मुझे कुछ देखना है, चाबी लेकर मेरे साथ चलेगा?'

लड़के ने कहा : 'महाराज, आपको अनाज चाहिए न? आप कहिए, मैं यहाँ मँगवाकर देता हूँ अनाज।'

'नहीं भाई, नहीं, मुझे अनाज नहीं चाहिए, मुझे तो कोठार देखना है। लड़के ने मुनीमजी को कोठार की चाबी लेकर भेजा नारदजी के साथ। मुनीम ने कोठार खोल दिया। मुनीम को बाहर खड़ा कर, नारदजी पहुँचे भीतर। भीतर अँधेरा था, अनाज के हजारों बोरे भरे पड़े थे कोठार में। नारदजी चलते ही रहे, जब एकदम भीतर पहुँचे, तो उन्होंने बिल्ले की रेडियम' जैसी चमकती आँखें देखी। नारदजी को संतोष हुआ, आनन्द हुआ क्योंकि उनके सेठ मिल गये थे न!

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

'अरे, सेठजी!' नारदजी ने आवाज लगाई।

'ओहो, प्रभु आप यहाँ पधार गये?' वह बिल्ला बोल उठा। कितने दयालु हैं आप! मेरे जैसे पापी का उद्धार करने की कैसी उच्चतम भावना।' नारदजी को थोड़ा-सा गुस्सा आ गया। उन्होंने कहा : 'सेठजी, अब ये सारी बातें छोड़ दो और चलो वैकुंठ में। यदि नहीं चलना है तो साफ-साफ मना कर दो।'

बिल्ले ने कहा : 'ओह प्रभु, मुझे तो वैकुंठ ही प्यारा है, मुझे इस संसार पर कोई राग नहीं रहा। मैं तो अभी आपके साथ चलने को तैयार हूँ...'

'तो चलो, अब देर मत करो। कितनी मुश्किल से आपको ढूँढ़ निकाला है...।'

'देवर्षि, मुझे यहाँ रहना कतई पसन्द नहीं। मैं यहाँ बिल्कुल अपरिग्रही जीवन जी रहा हूँ। मात्र लड़के के प्रति करुणा से यहाँ रह रहा हूँ। लड़के ने अनाज का धन्धा किया है, हजारों बोरे अनाज के भरे हैं। यहाँ चूहों का बड़ा उपद्रव है। मैं बैठा हूँ इधर तो चूहे नहीं आते हैं, अनाज का नुकसान नहीं हो रहा है। प्रभो, 'परोपकाराय सतां विभूतयः' के सिद्धांत का पालन कर रहा हूँ। है न सच बात?'

देखी न सेठजी की दया! कैसे करुणावंत हैं बिल्ला सेठ? नारदजी सुनते ही रहे।

'तो क्या तुम नहीं चल रहे हो?' नारदजी ने जरा तीखे स्वर में पूछा। 'भगवंत, पंद्रह दिन में ही यह सारा अनाज चला जाएगा यहाँ से। लड़के ने माल बेच दिया है। पार्टी पंद्रह दिन में माल की 'डिलिवरी' ले लेगी...बस, प्रभो, फिर अपने चले चलेंगे आपके वैकुंठ में। ठीक है न?' बिल्ले ने कैसी तरकीब लड़ाई? आती है आपको ऐसी तरकीबें? आती हैं, इससे भी ज्यादा युक्तियाँ आती हैं, इसलिए तो धर्म से बचे हो? अभी तक मोक्ष में जाना नहीं पड़ा है। अन्यथा कभी के मोक्ष में पहुँच जाते! जाना ही नहीं है मोक्ष में। मात्र मोक्ष पाने की, आत्मा को विशुद्ध करने की बातें ही करते रहते हैं।

क्या कभी किसी सद्गुरु ने मुक्ति का उपदेश नहीं दिया? मोक्ष में चलने को नहीं कहा? किसी ने नहीं कहा हो तो मैं कहता हूँ : 'चलो मेरे साथ, अपने सब साथ-साथ मोक्षमार्ग पर चलते रहेंगे, तो एक न एक दिन पहुँच जायेंगे मोक्ष में। चलना है न? बोलिये अब मेरे सामने! चलाइए आप तरकीबें!

सभा में से : आपके सामने हमारी तरकीबें नहीं चलेंगी।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

महाराजश्री : तब तो मजा आ जाएगा! यहाँ वे तरकीबें नहीं चलेंगी तो मुक्ति की तरकीब मिल जाएगी! आत्मा की मुक्तावस्था प्राप्त होने में देर नहीं लगेगी। परन्तु 'उपाश्रय में, प्रवचन में जायेंगे, तो फँस जायेंगे; इसलिए प्रवचन सुनने जाना ही नहीं...' ऐसा तो नहीं करोगे न? परन्तु अभी तो आना ही पड़ेगा, उस जीवराज सेठ की तरकीबें जानने के लिए! बताऊँगा आगे सेठ की चालबाजी! नारदजी तो चले गये पंद्रह दिन की विदेशयात्रा पर। उनको लौट कर आने दो वापस।

धर्म मोक्ष देता है, परन्तु उस मनुष्य को देता है कि जिसको मोक्ष के बिना चैन नहीं हो। मोक्ष पाने को जो आतुर हो, लालायित हो! धर्म के अचिन्त्य प्रभाव के विषय में आगे सोचेंगे।

आज, बस इतना ही।

❖ ❖ ❖

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

- *अज्ञानता का स्वीकार ही ज्ञान की भूमिका है। मूर्ख आदमी, अपने आपको महा बुद्धिमान समझता है! पागलखाने का पागल अपने आपको पागल नहीं मानता!*
- *तान में भान कहाँ रहता है? जोश में होश अक्सर खो जाता है। जवान पीढ़ी रूप के पीछे पागल बनी हुई है, तो पुरानी पीढी रूपयों के पीछे लार टपकाती हुई भटक रही है। धर्मस्थानों में भी जैसे फैशन-शो परेड़वाली हालत हुई जा रही है। वेशस्पर्धा, केशस्पर्धा और रूपस्पर्धाएँ मची हुई हैं।*
- *सभी सुखों का कारण निष्पाप जीवन है। भौतिक और आध्यात्मिक, सभी सुखों का असाधारण कारण निष्पाप जीवन है।*
- *जब तक संसार में जन्म लेना पड़ेगा, तब तक दुःख तो रहेंगे ही!*
- *अब तो वैसा पुरुषार्थ कर लेना चाहिए कि, वापस जन्म लेना ही न पड़े! वह पुरुषार्थ है सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चरित्र का।*

प्रवचन : ५

महान श्रुतधर आचार्यदेवश्री हरिभद्रसूरीश्वरजी 'धर्मबिन्दु' ग्रन्थ के प्रारंभ में धर्म का प्रभाव बताते हैं :

'धनदो धनार्थिनां प्रोक्तः कामिनां सर्वकामदः।
धर्म एवापवर्गस्य पारम्पर्येण साधकः ।।'

जिस तत्त्व के प्रति मनुष्य की दृष्टि नहीं गई हो, जिस वस्तु का मनुष्य को कोई परिचय नहीं हो, उस तत्त्व के प्रति यदि मनुष्य को आकर्षित करना है, उस तत्त्व के प्रति प्रेम और आदर पैदा करना है; तो उस मनुष्य को उस तत्त्व का प्रभाव समझाना ही पड़ेगा। उस तत्त्व का असर बताना ही पड़ेगा। यदि मनुष्य को समझ में आ जाय कि 'मैं जो चाहता हूँ वह इससे मुझे प्राप्त होगा, तो मनुष्य तुरन्त उसे अपनायेगा। मनुष्य की, साधारण मनुष्य की फलेच्छा बलवान होती है। फलेच्छा के बिना प्रवृत्ति करनेवाला या तो मूर्ख होता है

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अथवा योगी होता है! फल की, परिणाम की इच्छा रखे बिना आप लोग कोई प्रयत्न, कोई प्रवृत्ति करते हो? फलेच्छा जीव का स्वभाव है! 'ह्युमन नेचर' है। मूर्ख मनुष्य, पागल मनुष्य फल का, प्रवृत्ति के परिणाम का विचार कर ही नहीं सकता। उसकी बुद्धि का विकास ही नहीं होता कि वह फल की कल्पना कर सके। अच्छे या बुरे परिणाम की भेदरेखा वह नहीं खींच सकता।

जो अनासक्त योगी होते हैं, वे तो आत्मस्वरूप में ही लीन रहते हैं; फल का, परिणाम का कोई विचार ही उनको नहीं उठता है! कोई जिज्ञासा नहीं, कोई शंका नहीं। सहज-स्वाभाविक रूप से वे आत्मरमणता करते रहते हैं। ऐसे योगी पुरुषों के सामने धर्म का प्रभाव नहीं बताया जा रहा है! वे तो समझे हुए ही हैं। वैसे मूर्ख, पागल मनुष्य भी इस उपदेश का लक्ष्य नहीं है। मूर्ख को उपदेश नहीं दिया जाता। विक्षिप्त चित्तवाले को उपदेश नहीं दिया जाता। जो योगी भी नहीं हैं और मूर्ख भी नहीं हैं, ऐसे लोगों को लक्ष्य बनाकर यहाँ धर्म का प्रभाव बताया गया है! मैं आप लोगों को जैसे योगी नहीं मानता हूँ, वैसे मूर्ख भी नहीं मानता हूँ।

अज्ञानता का स्वीकार ही ज्ञान की भूमिका है :

सभा में से : हम लोग तो मूर्ख ही हैं!

महाराजश्री : मूर्ख कभी अपने आपको मूर्ख नहीं मानता! पागल आदमी कभी अपने आपको पागल नहीं मानता! कभी पागलखाने में गये हो? पागल के रूप में नहीं, दर्शक के रूप में गये हो? पूछना कभी पागलखाने के डॉक्टर को कि 'पागलखाने में आनेवाले लोग क्या मानते हैं कि 'हम पागल हैं...?' मूर्ख मनुष्य अपने आपको बहुत बड़ा बुद्धिमान मानता है! जिसको यह बात समझ में आ जाती है कि 'मैं मूर्ख हूँ,' मैं समझता हूँ कि वह बुद्धिमान है। अपनी मूर्खता का ज्ञान होना, अपनी अज्ञानता का ज्ञान होना, मामूली बात नहीं है, बहुत गंभीर बात है, महत्त्वपूर्ण बात है। अज्ञानता का, मूर्खता का स्वीकार ही तो ज्ञानी बनने की भूमिका है। दंभ नहीं होना चाहिए, कपट नहीं होना चाहिए। मेरे पास आप मूर्खता का स्वीकार कर लो और यहाँ से बाहर जाते ही 'मैं तो बड़ा बुद्धिमान हूँ,' ऐसा गर्व करो तो दंभ होगा। अज्ञानता का स्वीकार ही तो नम्रता है। नम्रता में से विनय पैदा होता है। विनय को धर्म का मूल बताया गया है। यदि सच्चे हृदय से कहते हो कि 'हम लोग मूर्ख हैं' तो बहुत बड़ी बात की है आपने। बहुत सुन्दर-'वेरी नाइस' बात कही है आपने। धर्मतत्त्व को पाने की योग्यता प्राप्त कर ली आपने।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आप और मैं, अपने तो अज्ञानी हैं ही, कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचन्द्रसूरिजी परमात्मा के सामने गद्गद् स्वरों में क्या कहते हैं? पढ़ा है उनका वीतराग स्तोत्र?

'क्वाहं पशोरपि पशुः? पशु से, जानवर से भी गया बीता जानवर हूँ मैं!' क्या कह दिया उस महान आचार्य ने? कौन थे वे महापुरुष? जानते हो हेमचन्द्रसूरि को? कलिकाल में सर्वज्ञ के समान परम तेजस्वी ज्ञानी महात्मा पुरुष थे। वे कहते हैं कि 'मैं तो पशु का भी पशु हूँ!' परमात्मा के सामने, परमात्मा की तुलना में उनको अपना व्यक्तित्व पशु का व्यक्तित्व लगा। कितना गहरा आत्मनिरीक्षण होगा उन महापुरुष का?

यदि आप लोग अपने आपको मूर्ख मानते हो, अज्ञानी मानते हो और यहाँ प्रवचन सुनने आते हो, तब तो आपका काम हो जाएगा! आप धर्मश्रवण के अधिकारी बन गए। जिसको अपनी अज्ञानता का भान होता है उसको ज्ञान पाने की जिज्ञासा होती है। जिस मनुष्य को अपनी दरिद्रता का भान होता है, उस मनुष्य को धन पाने की इच्छा होती है। धनप्राप्ति में वह प्रमाद नहीं करेगा, पुरुषार्थ करेगा। जो मनुष्य स्वयं को रोगी मानता है वह निरोगी बनना चाहेगा और सावधानी से दवाई करेगा, उपचार करेगा। आपको यदि धर्मविषयक अज्ञानता का भान हो गया है, तो धर्मविषयक ज्ञान पाने का पुरुषार्थ करेंगे ही।

वह मूर्ख है कि जो अपने आपको ज्ञानी मान बैठा है! अपने आपको बड़ा बुद्धिमान मान बैठा है! ऐसे मूर्खों को धर्म का उपदेश नहीं देना चाहिए। उनको दिये हुए उपदेश का अमृत बह जाएगा, वह ग्रहण नहीं कर पायेगा। जापान के झेन-सम्प्रदाय के धर्मगुरु 'नान-ईन' के पास एक प्राध्यापक पहुँचा। उसने नान-ईन से कहा : 'पहले चाय पियो, बाद में बात करेंगे।' नान-ईन ने कप में चाय डाली, डालते ही रहे, चाय नीचे गिरने लगी तो उस प्राध्यापक ने कहा : 'चाय नीचे गिर रही है, अब कप में चाय नहीं टिकेगी।' नान-ईन ने बड़ी शान्ति से कहा : 'इसी तरह आप अपनी मान्यताओं से और अनुमानों से इतने भरे हुए हो कि जब तक आप अपने दिमाग का कप खाली नहीं करोगे, तब तक मैं आपको क्या बताऊँ मेरे 'झेन' धर्म के बारे में? आप समझ ही नहीं पायेंगे कुछ!

प्रवचन में माला क्यों फेरते हो?

धर्मतत्त्व की जानकारी के दावेदार बहुत हैं संसार में। अपने यहाँ भी ऐसे

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दावे करनेवाले होते हैं, वे कहते हैं : 'हम धर्म की ये सारी बातें जानते हैं, हम तो यहाँ आते हैं सामयिक करने, माला फेरने!' देखो, यहाँ प्रवचन चल रहा है और ये जानकार लोग माला फेर रहे हैं! देखो, है न 'सेम्पल' सामने! क्योंकि इन लोगों ने मान लिया है कि हम धर्म की सारी बातें जानते हैं, अब हमें कुछ भी जानना शेष नहीं रहा! चौदहपूर्वधर हो गये हैं ये लोग! पूछ लो इनको कि 'आप व्याख्यान के समय माला क्यों फेरते हो? आप प्रवचन क्यों नहीं सुनते? बैठते हैं व्याख्यानसभा में और फेरते हैं माला!' ऐसे मूर्खों को धर्म का उपदेश नहीं दिया जाता।

सभा में से : क्या व्याख्यान के समय माला नहीं फेरनी चाहिए?

महाराजश्री : एक साथ दो काम हो सकते हैं क्या? माला फेरनी यानी क्या? परमेष्ठिपदों का ध्यान किए बिना माला-जाप होता है क्या? मन या तो मन्त्रजाप में रहेगा या तो प्रवचन सुनने में। यदि धर्मश्रवण करने आए हो तो एकाग्रता से श्रवण ही करना चाहिए। यदि मन्त्रजाप करना है, तो मंदिर में जाकर करो, घर में कर लो। व्याख्यान सभा में माला-जाप करना सर्वथा अनुचित है। परंतु ये भक्त लोग मानेंगे यह बात? जानकार हैं न! महान ज्ञानी हैं न!

सभा में से : अब नहीं करेंगे माला-जाप, आज दिन तक नहीं जानते थे...।

महाराजश्री : अच्छा है मान जायेंगे तो। उनको अपनी गलती समझ में आ जाएगी, अपनी भूल समझ में आ जाएगी तो सुधार करेंगे। मेरे भय से माला छोड़ देंगे तो मेरे जाने के बाद वही की वही स्थिति रहेगी। समझ कर सुधार करेंगे तो पुनः गलती नहीं करेंगे।

धर्म के उपदेश के लिए अयोग्य व्यक्ति कौन-कौन?

जैसे विक्षिप्त चित्तवाले मनुष्य को धर्म का उपदेश नहीं देना चाहिए, वैसे उन्मत्त चित्तवालों को भी धर्मोपदेश नहीं देना चाहिए। उन्माद भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं। कोई भी उन्माद हो, उन्मत्त मनुष्य धर्मतत्त्व को नहीं समझ पाएगा। धर्म का प्रभाव या धर्म का स्वरूप उसके पल्ले नहीं पड़ सकता। मात्र शराब का ही उन्माद नहीं है, दूसरे अनेक उन्माद होते हैं। धन-संपत्ति का उन्माद, बल का उन्माद, जाति का उन्माद, रूप का उन्माद, बुद्धि का उन्माद, ज्ञान का उन्माद! ऐसे अनेक उन्माद हैं। हाँ, ऐसे उन्मादी लोग धर्मस्थानों में भी आते हैं! धर्म सुनने या धर्म करने नहीं, अपनी सम्पत्ति का प्रदर्शन करने!

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अपने रूप का प्रदर्शन करने के लिए 'हम धर्म करनेवाले हैं,' ऐसा समाज को दिखाने के लिए।

'उन्माद ज्ञान का प्रतिबन्धक है। धर्मतत्त्व का अवरोधक है। चित्त में किसी भी प्रकार का उन्माद होगा, वास्तविक रूप में धर्म-आराधना नहीं होगी। देखो न, धर्मस्थानों में भी रूप और रूपये के प्रदर्शन कितने बढ़ गए? युवा पीढ़ी रूप के प्रदर्शन में पागल बनी है और आप लोग रूपयों के प्रदर्शन में पागल बने हो। धर्मस्थानों में कैसे वस्त्र पहन कर आते हो? है कोई मर्यादा का खयाल? भान हो कैसे? तान में हो! जोश में होश नहीं रहता। फिल्म के एक्टर-एक्ट्रेसों का अन्धा अनुकरण चल पड़ा है। धर्मस्थानों में जैसे वेश-स्पर्धा और रूपस्पर्धा के कार्यक्रम हों, वैसे लोग वेश बनाकर, केश बनाकर और रूप बनाकर आते हैं। ऐसे लोगों को हमें उपदेश देना! धर्मतत्त्व समझाना! समझ पायेंगे ऐसे लोग? जैसे वस्त्र पहनकर, जैसी साजसज्जा कर आप लोग गार्डन में घूमने जाते हो या कोई शादी में जाते हो, वैसी साजसज्जा के साथ धर्मस्थानों में-मंदिर और उपाश्रय में आते हो-क्या यह उचित है? धर्म के अनुरूप है? परन्तु उन्माद छा गया है जीवन में।

जानकारी का भी एक उन्माद है। 'मैं तो सब कुछ जानता हूँ, मैंने तो हजारों प्रवचन सुन लिए...' यह उन्माद भी खतरनाक है। इससे ज्ञान-प्राप्ति के द्वार बन्द हो जाते हैं। कोई अभिनव ज्ञान प्राप्त नहीं होता। प्राप्त किया हुआ ज्ञान आत्मसात् नहीं होता। जीवन में ज्ञान का फल जो 'विरति' है, वह नहीं आती। जानकारी का अभिमान लेकर मनुष्य घूमता रहता है। सर्वप्रथम ज्ञान होना चाहिए अपने घोर अज्ञान का। अपने कितने अज्ञानी हैं, इस बात का ज्ञान होना चाहिए। तब ज्ञान पाने का सही पुरुषार्थ होगा।

धर्म का प्रभाव :

धर्म का प्रभाव बताया जा रहा है। यह ज्ञान होना नितांत आवश्यक है। फिर जिज्ञासा होगी कि 'धर्म का स्वरूप क्या है? प्रभाव का ही ज्ञान नहीं होगा, तो धर्म का स्वरूप जानने का विचार तक नहीं आएगा। इसलिए ग्रन्थकार महात्मा धर्म का प्रभाव बता रहे हैं। कुछ लोगों का तो प्रभाव से ही सम्बन्ध होता है! उनको स्वरूप जानने का जिज्ञासा ही नहीं होती! जैसे एक बच्चा है, उसे दूध पिलाया जाता है। बच्चे को दूध का प्रभाव ही बताया जाता है न? कि 'दूध पीने से शरीर अच्छा बनता है।' दूध का स्वरूप जानने से उसे

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कोई मतलब नहीं! 'दूध कहाँ से आता है, गाय-भैंस वगैरह दूध कैसे देते हैं? वे खाते हैं घास देते हैं दूध, यह कैसे? दूध में कौन-कौन से-तत्त्व होते हैं? यह दूध का स्वरूपज्ञान सबको नहीं होता। दूध पीनेवाले सबको यह ज्ञान नहीं होता। उनका मतलब होता है शरीर के स्वास्थ्य से!' 'दूध से शरीर अच्छा बनता है।' इतना ज्ञान इनके लिए पर्याप्त बन जाता है।

हमारे जीवन में प्रतिदिन उपयोग में आनेवाली ऐसी कई वस्तुएँ हैं, जिनका अपने कई बार उपयोग करते हैं; परन्तु उन वस्तुओं का स्वरूपज्ञान अपने को नहीं है। अपने नित्य प्रति उपयोग में आनेवाली वस्तुओं पर सोचें : जैसे साबुन है। कौन-सा साबुन वस्त्रों को ज्यादा स्वच्छ करता है, कौन-सा साबुन शरीर की चमड़ी को नुकसान नहीं करता है और शरीर का मैल साफ करता है-इतना ही सोचते हैं यानी साबुन का प्रभाव ही जानते हैं। परन्तु क्या यह सब लोग जानते हैं कि साबुन बनता कैसे है? किन-किन वस्तुओं को मिलाने पर साबुन बनता है? कितनी मात्रा में वस्तुएँ मिलाई जाती हैं...इत्यादि बातों का विचार सब लोग करते हैं क्या? हम केवल उसके उपयोग से, उसके प्रभाव से ही सरोकार रखते हैं। दूसरी बात : आपके घर में 'लाईट' है न? 'स्विच' दबाते हो और प्रकाश होता है। आपको प्रकाश चाहिए, 'स्विच' दबाने से प्रकाश मिलता है-इतना आपको ज्ञान है, बस! 'इलेक्ट्रिसिटी' का ज्ञान हो या नहीं हो! विद्युत कैसे पैदा होती है, कैसे आपके घर में आती है और प्रकाश करती है-ये सारी बातें सब लोग नहीं जानते हैं और जानने की तत्परता भी नहीं होती है! बहुत थोड़े लोग ऐसे बुद्धिमान और जिज्ञासावाले होते हैं, जो वस्तु का स्वरूप जानते हैं और जानने को आतुर होते हैं।

एक लड़की थी। प्रतिदिन प्रातः वह दूध पीती थी। एक दिन प्रातः जब समय पर दूध नहीं मिला, तो उसने रोना शुरू किया। उसकी माँ ने पूछा : क्यों रोती है? लड़की ने कहा : 'मुझे भूख लगी है, दूध दो।' माँ ने कहा : 'अभी गाय का दूध नहीं आया है, आते ही दे दूँगी।' माँ बच्चों को हमेशा गाय का दूध पिलाती थी। लड़की को तो दूध से मतलब था-गाय का हो या भैंस का। उसने कहा : 'जो भी दूध हो भैंस का, बकरी का, गाय का, अभी दे दे, मुझे भूख जोरों की लगी है!' लड़की को भूख लगी थी, भूख मिटाने के लिए वह दूध माँगती थी। क्योंकि उसे दूध के प्रभाव का ज्ञान था। 'दूध से भूख मिटती है।' गाय-भैंस के दूध के गुण-दोष वह नहीं जानती थी, न जानने की तत्परता थी।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

निष्पाप जीवन-सभी सुखों का कारण :

संसार में जीवों को सुख चाहिए। जीवों का समग्र पुरुषार्थ सुख पाने के लिए ही है। चाहे वे सुख भौतिक हों या आध्यात्मिक। तीर्थंकर भगवंत सब प्रकार के सुख पाने का मार्ग बताते हैं-वह मार्ग है धर्म का। उन्होंने विश्व के सर्व मनुष्य को लक्ष्य बनाकर कहा कि सुख धर्म से मिलेगा, पापों से नहीं। सुख पाना है तो पापों का त्याग करो। हिंसा, झूठ, चोरी, व्यभिचार, परिग्रह इत्यादि पापों का त्याग करना ही पड़ेगा, यदि सुखी होना है तो। धन-संपत्ति पाने के लिए पाप करने की आवश्यकता नहीं है। प्रिय विषयसुख पाने के लिए पापाचरण करने की जरूरत नहीं है। वैसे स्वर्ग के सुख पाने के लिए भी पाप करने, पशुयज्ञ इत्यादि आवश्यक नहीं है। मोक्ष तो पापों से प्राप्त हो ही नहीं सकता। निष्पाप जीवन ही सर्व सुखों का असाधारण कारण है।

क्या चाहिए? आप लोग कहेंगे : मोक्ष चाहिए। चाहिए मोक्ष? मोक्ष की चाहना है? मोक्ष पाने की भावना प्रकट हो, ऐसी इच्छा है? क्यों चाहिए मोक्ष? संसार में-संसार की चारों गतियों में दुःख है इसलिए न? उस जीवराज सेठ को भी मोक्ष की चाहना थी! उसको वैकुंठ में जाने की कैसी भावना थी? मरकर पशुयोनि में चला गया तो वहाँ भी नारदजी पहुँच गये! क्योंकि सेठ को वैकुंठ में ले जाना था। नारदजी ने सेठ के वचनों पर, उनकी बाह्य धर्मक्रियाओं पर विश्वास कर लिया था! सेठ नारदजी को चकमा दे रहा है! देते हो न आप लोग साधु-पुरुषों को चकमा? आप लोगों की बातों में हम लोग आ जाएँ तो?

सभा में से : हम डूबें और आपको भी डुबो दें।

महाराजश्री : ऐसा काम आप जैसे सज्जन लोग करते हैं क्या? सज्जन मायावी नहीं होता। सज्जन कपट नहीं करता। दूसरों को धोखा नहीं देता। हाँ, कभी स्वयं दुःखी होगा परन्तु दूसरों को दुःखी नहीं करेगा। स्वयं गिर सकता है, दूसरों को नहीं गिराएगा। यह तो अच्छा था कि नारदजी थे। सावधान थे। सेठ ने दो महीने के बाद आने का वादा किया। नारदजी चले गए। दो महीने बीतने में क्या देरी? बीत गये दो महीने और नारदजी पहुँच गए वापस। पहुँचे जीवराज सेठ की दुकान पर। लड़के ने स्वागत किया नारदजी का और आने का प्रयोजन पूछा। नारदजी ने अनाज के 'गोडाऊन' की चाबी माँगी। लड़के ने कहा : 'गोडाऊन अभी खुला ही पड़ा है, उसमें माल नहीं है।' नारदजी वहाँ से सीधे 'गोडाऊन' पहुँचे। गोडाऊन खुला ही था। भीतर गए, जहाँ वह बिल्ला मिला था, उस जगह पर गए। बिल्ला

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दिखाई नहीं दिया, सारे 'गोडाऊन' में ढूँढ़ा, फिर भी नहीं मिला। नारदजी को चिंता हुई। वे बाहर आये। इधर-उधर देखते हैं, वहाँ कुछ मजदूर थे, वे आये और नारदजी को प्रणाम किया। मजदूरों ने पूछा :

'महाराज, क्या ढूँढ़ते हो आप?'

'भाई, इस 'गोडाऊन' में एक बिल्ला था, तुम लोगों में से किसी ने देखा था क्या?'

'नहीं महाराज, हमने तो नहीं देखा?'

मजदूर विचार में पड़ गए कि 'नारदजी को बिल्ले से क्या काम होगा?' बेचारे मजदूर? उनको कहाँ पता था कि इस 'गोडाऊन' के मालिक का पिता ही बिल्ला था। नारदजी को देखकर दूसरे भी मजदूर जो दूर बैठे थे, वहाँ आये और एक मजदूर ने बताया कि जब 'गोडाऊन' से अनाज के बोरे उठाकर वह बाहर आ रहा था उस समय एक बिल्ला बीच में आया था और अनाज का बोरा उस पर गिर पड़ा था। बिल्ला वहीं पर दबकर मर गया था और उस मजदूर ने उसको बाहर फेंक दिया था। नारदजी सोच में पड़ गये। वे अपने विमान के पास आये। 'अब उस सेठ को कहाँ ढूँढ़ने जाऊँ? मरकर कहाँ पैदा हुआ होगा? भगवान को पूछना पड़ेगा...' भगवान का विचार आते ही नारदजी काँप गये। 'भगवान को मैं क्या मुँह दिखाऊँगा? भगवान तो मना ही कर रहे हैं कि वह सेठ वैकुंठ में नहीं आएगा, आना ही नहीं चाहता...।' फिर भी नारदजी हिम्मत करके पहुँचे भगवान के पास वैकुंठ में।

भगवान ने कहा : 'कहो नारदजी, क्या हुआ उस जीवराज सेठ का? ले आये? १३ नंबर का कमरा खाली है...।'

नारद ने कहा : 'भगवंत, वह बिल्ला तो मर गया, मेरे जाने से पहले ही।'

'वह नहीं आएगा वैकुंठ में! उसे वैकुंठ के सुख नहीं चाहिए! उसे तो संसार के विषयसुख ही चाहिए!'

'परन्तु भगवंत, वह तो आपका नाम जपता था, आपका पूजन करता था, आपका स्तवन करता था...'

'हाँ, सही बात है। उसको मालूम था कि यह सब करने से संसार के प्रिय विषयसुख मिलते हैं...।'

'तो क्या वह वैकुंठ में आने की तीव्र इच्छा प्रदर्शित करता था, वह...'

'मात्र दंभ! मात्र बोलने में था वैकुंठ! हृदय में संसार...।'

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

'क्षमा करना भगवंत, परन्तु मुझे लगता है कि अभी भी मैं प्रयत्न करूँ... एक बार, बस?'

'करो प्रयत्न नारदजी, वह मरकर उसी नगर के बाहर जो गटर है, जहाँ सारे नगर की गंदगी बहती है, वहाँ सुअर हुआ है। गडुरिया हुआ है।'

'क्या कहते हो भगवान? गटर में सुअर?'

'हाँ, वैषयिक सुखों की गटर ही उसे पसंद है न! दूसरों की दृष्टि में उसका जीवन कितना दुःखमय होता है? परन्तु उस सुअर को तो वहाँ भी सुख लगता है। आप जाइए, ले आइए उसे इधर!'

नारदजी सोच में पड़ गये। भगवान की बात नारदजी को जँच रही थी, परन्तु फिर भी उस सेठ की एक और मुलाकात करने की इच्छा हुई। नारदजी को कई तरह के विचार आये संसारी जीवों के विषय में। मानवजीवन मिला था सेठ को।

ऐसी कौन-सी गलती कर दी सेठ ने कि जिसके परिणामस्वरूप पशुयोनि में उनको भटकना पड़ रहा है? दुनिया जिसको धर्म कहती है, वैसा धर्म तो वे करते ही थे। क्रियात्मक धर्म तो था उनके पास। हाँ, भगवान के कहने के अनुसार भावात्मक धर्म नहीं था उनमें। उनमें। क्षमा, नम्रता, सरलता, निर्लोभता नहीं होगी। संसार से वे विरक्त नहीं होंगे। उनका हृदय विषयराग और कषायों से भरपूर होगा। खाने-पीने की आसक्ति होगी। अन्यथा ऐसी पशुयोनि में कैसे जन्म होता? कोई बात नहीं, अब भी समझ जायँ तो अच्छा है। ले आऊँ वैकुंठ में...।

वैकुंठ-निर्माण स्वयं करना पड़ता है :

'किसी के लाने-ले जाने से वैकुंठ में जाया जा सकता होता तो संसार में कोई जीव नहीं रहता, सब जीव मोक्ष में होते! क्योंकि प्रत्येक तीर्थंकर की यही भावना होती है कि सब जीव मोक्षदशा प्राप्त करें। तीर्थंकरों की शक्ति भी होती है! वे क्यों नहीं ले गये सब जीवों को मोक्ष में? चाहे तीर्थंकर हो या अवतार हो! अल्लाह हो या ईश्वर हो-कोई भी हो, जीवात्मा की प्रबल भावना के बिना कोई उसको मोक्ष में नहीं ले जा सकते, निर्वाण नहीं दिला सकते।

सभा में से : क्या भावना होने मात्र से मोक्ष मिल सकता है? कोई मोक्ष दिला सकता है?

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

महाराजश्री : मोक्ष पाने की प्रबल भावना मोक्षपुरुषार्थ को भी प्रबल बना देती है। मोक्षमार्ग की आराधना जब प्रबल बनती है, कर्मों का क्षय होता है, जब सर्व कर्मों का क्षय हो जाता है, आत्मा को मोक्ष-दशा प्राप्त हो जाती है। वास्तव में देखा जाय तो मोक्ष पाने की, मुक्ति पाने की भावना कहाँ है? वह मुक्ति तो अभी दूर है, क्या आप लोग घर और दुकान से मुक्ति पाना चाहते हो? धन-संपत्ति और भोगविलास से मुक्ति पाना चाहते हो? जब तक यहाँ के भौतिक वैषयिक सुखों से मुक्ति पाने की भावना नहीं, कर्मक्षयजन्य मुक्ति की बात करना आत्मवंचना नहीं है? अन्तरात्मा में टटोलो। आत्मनिरीक्षण करो। यदि सचमुच मुक्ति की भावना होगी तो धर्म अवश्य मुक्ति देगा।

मोक्ष-मुक्ति-निर्वाण - कुछ भी कहो, है भावना वह पाने की? कल्पना भी है मोक्ष की आपके पास? कल्पना में हैं संसार के वैषयिक सुख और बातें करनी हैं मोक्ष की! हाँ, मैंने ऐसे लोग देखे हैं, जो बोलते हैं कि उनको मोक्ष पाना है! परन्तु मोक्ष के स्वरूप का उनको जरा भी ज्ञान नहीं! कहते रहते हैं कि उनको मोक्ष में जाना है, परन्तु वहाँ जाकर क्या करना है, वे कुछ भी नहीं जानते। कौन मानेगा उनकी बातें? उनका ही मन नहीं मानता है तो दूसरा कौन मानेगा? प्रियजनों का सहवास प्रिय लगता है, उनके मीठे वचन प्रिय लगते हैं, रूपवानों के रूप देखने अच्छे लगते हैं, रसनेन्द्रिय के प्रिय पदार्थ भोगने हैं, भोगविलास के बिना चैन नहीं पड़ता है, और बातें करनी है मोक्ष की!

सुअर के दो सवाल :

नारदजी का उत्साह तो मंद पड़ ही गया था। फिर भी एक दिन वे पहुँच ही गये! विमान को उस मैदान में छोड़कर नारदजी नगर के बाहर जहाँ गटर बहती थी वहाँ पहुँच गये। उन्होंने देखा उस सेठजी को! गटर में झूम रहे थे सेठानी के साथ! बच्चे भी थे पाँच-सात!

नारदजी ने दूर से चिल्लाया : 'सेठजी?'

उस सुअर ने नारदजी की ओर देखा और बोले :

'ओह! देवर्षि, आप इधर भी पधार गये?'

'आना ही पड़े न, आपको लेने? चलो वैकुंठ में चलना है न?'

'भगवन्! वैकुंठ में चलने की मेरी भावना पूरी है, परन्तु...'

'परन्तु क्या? अब बहाना मत बनाओ, सेठ...'

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

'भगवन्, मुझे वैकुंठ के विषय में दो-तीन प्रश्न पूछने हैं। कभी से पूछना था, परन्तु शर्म का मारा नहीं पूछ सका...'

'पूछ लो, जल्दी पूछ लो।' नारदजी ने प्रश्न पूछने की इजाजत दी।

'देवर्षि, आप बुरा मत मानना, मैं यह पूछता हूँ कि आप जिस वैकुंठ की बात करते हैं, क्या उस वैकुंठ में ऐसी गटर मिलेगी? दूसरी बात यह है कि वहाँ ऐसा परिवार मिलेगा? अथवा मेरे इस परिवार के साथ मैं वहाँ आ सकता हूँ?'

सुने न सेठजी के प्रश्न? ठीक है न उनके प्रश्न? नारदजी तो स्तब्ध रह गये सेठजी के प्रश्न सुनकर। उन्होंने कहा :

'सेठजी, यदि आपको यह गटर ही पसंद है और यह परिवार ही प्रिय है, तो वैकुंठ में आने की जरूरत क्या है? आपको आपकी गटर मुबारक हो! बस, मैं जाता हूँ...।'

नारदजी तुरन्त ही वहाँ से चल दिये। विमान में बैठकर रवाना हो गये। बस, उसके बाद नारदजी वापस नहीं आये! आये क्या कभी देखा किसी ने? क्यों आये अब?

सभा में से : आप पधारे हो न!

महाराजश्री : अच्छा, तो आप इस कथा का उपनय समझ गये? भले ही यह कथा काल्पनिक हो, परन्तु कितनी मार्मिक है? कितनी उद्बोधक है? बाहर से धर्मक्रिया करते हैं इसलिए हम मोक्षाभिलाषी हैं-ऐसा मान लेना कितना खतरनाक है?

समझते हो न? धर्म सब कुछ देता है, मोक्ष भी देता है, परन्तु हम यदि मोक्ष पाना चाहते ही नहीं, तो धर्म मोक्ष कैसे देगा? जिस भावना से आप धर्म के पास जाओगे, धर्म आपकी भावना पूर्ण करेगा। यह बात निश्चित है। पुण्यकर्म के माध्यम से धर्म धन देता है, भोगसुख देता है, स्वर्ग देता है। कर्मक्षय के माध्यम से धर्म मोक्ष देता है।

जन्म है वहाँ तक दुःख ही दुःख है!

जिस धर्म-आराधना से पुण्यकर्म बंधते हैं, वह धर्म-आराधना और कर्मक्षय जिस धर्म-आराधना से होता है वह धर्म-आराधना, दोनों भिन्न हैं। आगे बताऊँगा। आज तो अपने इस बात का विचार कर रहे हैं कि धर्म का प्रभाव कितना महान है? कितना अद्भुत है? कितना व्यापक है? सोचना पड़ेगा,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

गहराई में जाकर सोचना पड़ेगा। बिना सोचे समझे गतानुगतिक धर्म-आराधना करने से कोई विशेष लाभ नहीं है। वैसे तो अपनी आत्मा ने गत जन्मों में, अनन्त अनन्त जन्मों में काफी धर्म किया हुआ है। फिर भी आज दुःखपूर्ण, वेदनापूर्ण संसार में भटक रहे हैं। कोई शाश्वत् सुख, पूर्ण आनन्द प्राप्त नहीं हुआ। इस जीवन में भी सोचेंगे नहीं तो क्या होगा? आधि-व्याधि और उपाधि का अन्त नहीं आएगा। जन्म और मृत्यु का अंत नहीं आएगा। जन्म जब तक लेना पड़ेगा, दुःख आयेंगे ही। धर्म से अपने को जन्म मिटाना होगा। पुनः पुनः जन्म नहीं लेना पड़े, वैसा धर्मपुरुषार्थ करना होगा।

परन्तु यह कार्य क्रमशः होगा। हो सकता है, पाँच-सात भव भी हो जायँ। प्रारंभ तो करना पड़ेगा न? दृष्टि खुल जानी चाहिए। तो फिर दुर्गतियों में यानी नरकगति और तिर्यंचगति में तो जाना बंद ही समझो। धर्म आपको उच्च मनुष्यगति और उच्च देवगति में ही ले जायेगा...!

सम्यक्‌दृष्टि-आमूल परिवर्तन का अंजन :

प्रश्न : क्या धर्म करनेवालों के लिए सद्‌गति ही है?

उत्तर : हाँ, यदि जीवात्मा की ज्ञानदृष्टि खुल गई है, जीवात्मा को सम्यक्‌दर्शन प्राप्त हो गया है, तो वह सद्‌गति का ही आयुष्यकर्म बांधेगा। सम्यक्‌दर्शन की उपस्थिति में 'आयुष्यकर्म' देवगति का ही बंधता है, ऐसा नियम है। सम्यक्‌दर्शन एक विशिष्ट गुण है, आत्मा का। यह गुण प्रगट होने पर आत्मा के विश्वदर्शन में, जड़-चेतन पदार्थों के दर्शन में आमूल परिवर्तन आ जाता है। कषायों की तीव्रता नहीं रहती और आत्मदर्शन, परमात्मदर्शन की एक झलक आ जाती है। संसार का भीतरी रूप उसे दिखाई देता है। वह संसार को हृदय से चाहता नहीं है, धिक्कारने लगता है। हाँ, ऐसा जीव बाह्य दृष्टि से संसार के पापों में भी उलझा हुआ हो सकता है। संसार के वैषयिक सुखों में लीन दिखाई देगा, परन्तु उसका हृदय अनासक्त होता है। क्योंकि वह जानता है कि 'मैं जो कर रहा हूँ, वह करने जैसा नहीं है।' ऐसी जाग्रत अवस्था में जीव दुर्गति में नहीं जा सकता। वह जाएगा सद्‌गति में, देवगति में।

देवगति में उस जीवात्मा को विपुल सुख-भौतिक सुख प्राप्त होते हैं। वहाँ किसी प्रकार का भौतिक, शारीरिक दुःख होता ही नहीं। धर्म का यह प्रभाव है। ऐसे अद्‌भुत ऐश्वर्य और सुखों के बीच भी आत्मा यदि 'सम्यक्‌दर्शन' गुण को बनाए रखती है, जाग्रत रहती है, तो देवभव का आयुष्य पूर्ण होने पर वह

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सु-मनुष्यत्व प्राप्त करती है। देवलोक के दिव्य सुखों के उपभोग में भी अनासक्ति का परिचय करानेवाली आत्मा का सत्त्व बहुत बढ़ जाता है। मनुष्यजीवन पाकर वह संयम के कठिन मार्ग पर चल पड़ती है। दुःख उसको भयभ्रान्त नहीं कर सकते, सुख उसको ललचा नहीं सकते। प्राप्त भौतिक-शारीरिक सुखों का भी स्वेच्छा से त्याग करने का महान धर्मपुरुषार्थ, जिसको चारित्र्यधर्म कहते हैं, वह धर्मपुरुषार्थ कर्मों का क्षय करके जीव को शिव बना देता है। बन्धनग्रस्त को बन्धनमुक्त कर देता है।

'पारम्पर्येण साधकः' का यह अर्थ क्रमशः जीव को मोक्ष प्राप्त करवाता है। क्रमिक विकास करता हुआ, आध्यात्मिक विकास करता हुआ जीव परमपद को पा लेता है। इस ग्रन्थ में आचार्यदेवश्री हरिभद्रसूरिजी ने क्रमिक धर्मपुरुषार्थ बताया है। यदि मनुष्य इस क्रम से धर्मपुरुषार्थ करता चले, तो अवश्य वह अपने जीवन में धर्म का प्रभाव अनुभव किये बिना रहे नहीं। लेकिन लोग प्रायः क्रमिक धर्म-आराधना करते ही नहीं। ज्ञान ही नहीं है क्रमिक धर्मपुरुषार्थ का। जिसके मन में जो आया, वह कर लिया धर्म! जिसको जो जँचा, कर लिया धर्म! क्या स्कूल या कॉलेज में ऐसा चल सकता है? जिसको जो कोर्स-अभ्यासक्रम करना हो, कर सकता है क्या? नहीं, वहाँ तो क्रमिक अभ्यास ही करना पड़ता है। पहली कक्षा में पढ़ते हो, पास हो तो दूसरी कक्षा में प्रवेश मिलेगा। दूसरी कक्षा में पढ़ते हो, पास हो, तब तीसरी कक्षा में प्रवेश मिले। शिक्षा के क्षेत्र में जैसे क्रमिक विकास मान्य किया है, वैसे धर्मक्षेत्र में भी क्रमिक विकास को मान्य करो और धर्म-आराधना करो, तो धर्म का अचिन्त्य प्रभाव अनुभव करोगे।

धर्म-जहर उतारनेवाला परम मंत्र :

जैसे इस ग्रंथ में धर्म का प्रभाव बताया गया है वैसे दूसरे धर्मग्रन्थों में भी धर्म का प्रभाव और दृष्टि से बताया गया है। 'पंचसूत्र' ग्रन्थ में धर्म के प्रभाव का वर्णन करते हुए आचार्यदेव ने बताया है कि 'धर्म सुर और असुरों से भी पूजित है। देव और दानव भी धर्म का आदर करते हैं। धर्म मोहान्धकार को मिटानेवाला सूर्य है। धर्मरूपी सूर्य का जीवन के गगन में उदय होते ही मोह का अन्धकार नष्ट हो जाता है। यह राग और द्वेष के जहर को उतारनेवाला परम मंत्र है! धर्म को परम मंत्र बताया गया है! राग-द्वेष के तीव्र जहर को उतारनेवाला मंत्र! धर्म सब प्रकार के कल्याणों का कारण है। कोई भी कार्य

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

बिना कारण नहीं होता। यदि अपने को कल्याण प्राप्त करना है, तो धर्म का आलंबन लेना होगा। धर्म से कल्याण-प्राप्ति अवश्य होती है। धर्म ज्वाला है, अनन्त-अपार कर्मवन को जला देता है। धर्म सिद्धिगति-मोक्ष को दिलाता है। कितना अद्‌भुत प्रभाव बताया है धर्म का? कितना वास्तविक प्रतिपादन किया है ज्ञानीपुरुष ने!'

परन्तु यह सब किस धर्म से हो सकता है? उस धर्म का स्वरूप क्या है? दुनिया में अनेक प्रकार के धर्म हैं, क्या उन सब धर्मों से ये सारे प्रभाव पैदा हो सकते हैं? अपनी कल्पना में जो आया, उस धर्म को करने से ये सब प्रभाव अनुभव में आ सकते हैं? ये सारी बातें हमें ध्यान से सोचनी पड़ेंगी। ग्रन्थकार महर्षि इसलिए अब धर्म का स्वरूप समझायेंगे। धर्म का प्रभाव बताने के पश्चात्, जब जीव धर्माभिमुख होता है, धर्म-पुरुषार्थ करने के लिए तत्पर होता है, तब धर्म का स्वरूप समझाना आवश्यक होता है। अब आगे धर्म का स्वरूप समझाया जाएगा।

आज, बस इतना ही।

❖ ❖ ❖

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

- ***करुणा, सर्वज्ञत्व एवं वीतरागता-ये तीनों उच्चतम तत्त्व जिस आत्मा में परिपूर्णरूप से विकसित हो जाते हैं, वही आत्मा धर्मतत्त्व का यथार्थ प्रतिपादन कर सकती है।***
- ***बुद्ध ने कहा : आत्मा अनित्य ही है! कपिलऋषि ने कहा : आत्मा नित्य ही है! भगवान महावीर ने कहा : आत्मा नित्य भी है, अनित्य भी है! द्रव्यदृष्टि से नित्य और पर्यायदृष्टि से अनित्य है।***
- ***हमें वेदों से कोई दुश्मनी नहीं है या आगमों में आसक्ति नहीं है। अनेकान्त दृष्टि से जहाँ प्रतिपादन होता है, वहाँ पर हमें प्रेम होता है, वहाँ हमारी श्रद्धा होती है।***
- ***प्रेम जड़ में चेतन का दर्शन करवाता है! परमात्मप्रेमी पत्थर में भी परमात्मा का दर्शन कर सकता है! प्रेम में वहम नहीं होता है! प्रेम में अहम् भी नहीं रहता है!***

प्रवचन : ६

वचनाद् यदनुष्ठानमविरुद्धाद् यथोदितम्।
मैत्र्यादिभावसंयुक्तं तद्धर्म इति कीर्त्यते।।

परम करुणानिधान पूज्य आचार्यदेव हरिभद्रसूरीश्वरजी धर्म का स्वरूप समझा रहे हैं। धर्म का द्विविध स्वरूप बताया गया है। एक है क्रियात्मक स्वरूप, दूसरा है भावात्मक स्वरूप। क्रियात्मक धर्म मनःकल्पना के अनुसार नहीं किया जा सकता है। नाम मात्र धर्म का, फिर मनःकल्पित क्रिया करें, जब चाहें तब करें, जहाँ चाहें वहाँ करें, यह कोई धर्म नहीं है। पापक्रिया, धर्म के वस्त्र पहन ले, इससे वह धर्मक्रिया तो बन नहीं जाती।

सर्वज्ञ और वीतराग पर ही विश्वास करना चाहिए :

जिनवचन के अनुसार क्रियानुष्ठान होना चाहिए। 'जिन' ही सर्वज्ञ होते हैं, वीतराग होते हैं। सर्वज्ञता और वीतरागता होने से उन्होंने जो धर्म बताया, यथार्थ बताया, बड़ा ही वास्तविक बताया। उन्होंने जो धर्मतत्त्व का प्रतिपादन किया, उसमें कोई विरोध नहीं। अर्थात् तर्क की भूमिका पर कोई विसंगति

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

नहीं मिलती। जो अपने अंतरंग राग-द्वेष आदि दोषों का समूल नाश कर देते हैं, उनको अपने पूर्ण ज्ञान में जो द्रव्य जैसा दिखता है, वैसा ही बता देते हैं, जो वस्तु जैसी दिखती है, वैसी ही बता देते हैं। गलत तो तब बताएँ जबकि किसी वस्तु या व्यक्ति के प्रति उन्हें राग हो या द्वेष हो। हम कोई भी बात गलत तब बताते हैं, जबकि हमारे पास पदार्थ को देखने का-जानने का पूर्ण ज्ञान नहीं होता है अथवा किसी के प्रति राग अथवा द्वेष होता है।

जैसे कि आपके पास स्वर्णहार है। कुछ वर्ष पूर्व आपने उस हार को कहाँ रख दिया है। आप भूल गये हैं कि आपके पास हार है। आज आपका मित्र आकर पूछता है 'तेरे पास स्वर्णहार है? दो दिन के लिए मुझे चाहिए।' आप क्या कहेंगे? 'मेरे पास स्वर्णहार नहीं है।' आपके पास स्वर्णहार है, परन्तु 'है' ऐसा ज्ञान नहीं है। इसलिए आपने बात गलत बताई। वैसे आपके पास हीरे का हार है, आपको ज्ञान नहीं कि ये हीरे सच्चे हैं या 'इमिटेशन'! आप हीरे का स्वरूप सही नहीं बता सकेंगे-अज्ञानता होने के कारण!

अज्ञान एवं राग-द्वेष असत्य बुलवाते हैं :

आपके पास स्वर्णहार है, आपको ज्ञान है कि 'मेरे पास स्वर्णहार है, परन्तु स्वर्णहार पर आपको राग है! राग है इसलिए आप किसी को भी देना नहीं चाहते। आपके मित्र ने स्वर्णहार माँगा, आप क्या कहेंगे? 'अभी मेरे पास नहीं है' अथवा टूट गया है या कोई ले गया है, ऐसा ही कहोगे न? क्यों? राग है! राग झूठ बुलवाता है। वैसे, हार पर इतना राग नहीं है, परन्तु जो व्यक्ति माँगने आया है, उस पर द्वेष है। उसको आप नहीं चाहते, तो भी गलत बात करेंगे! तात्पर्य क्या है?

अज्ञान, राग और द्वेष से मनुष्य गलत बात बताता है, झूठ बोलता है। इसलिए अज्ञानी और रागी-द्वेषी मनुष्य की बात पर बहुत भरोसा नहीं किया जा सकता है। भरोसा किया, तो धोखा होगा, दगा होगा।

धर्मस्थापना कौन कर सकता है?

'धर्म' तत्त्व इतना महान है, उसका कोई मूल्य नहीं। सोना, जौहरात, रेडियम, प्लेटिनम इत्यादि संसार की अतिमूल्यवान धातुओं से भी धर्म का मूल्य नहीं किया जा सकता। ऐसे अमूल्य 'धर्म' को क्या अज्ञानी और रागी-द्वेषी मनुष्य समझ सकता है? और जो स्वयं धर्म को नहीं जानता हो, दूसरों को क्या सही रूप में बता सकता है? हाँ, अज्ञानी और रागी-द्वेषी मनुष्यों के

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पास बुद्धि का वैभव हो सकता है, तर्कजाल बिछाने में कुशाग्र बुद्धि हो सकती हैं, परन्तु 'धर्म' मात्र बुद्धि से जानने की वस्तु नहीं, मात्र बुद्धि से संसार को बताने की वस्तु नहीं।

अज्ञान थोड़ा दूर हुआ हो, कुछ शास्त्रों का-ग्रन्थों का ज्ञान प्राप्त हुआ हो, राग-द्वेष भी कम हो गये हों, त्याग वैराग्य भी हो; परन्तु अतीन्द्रिय ज्ञान नहीं हो, आत्मप्रत्यक्ष ज्ञान नहीं हो, वीतरागता नहीं हो-ऐसा मनुष्य ठीक है। कुछ लोगों की दृष्टि में 'महापुरुष' दिखता हो, फिर भी उसकी धर्मस्थापना निर्दोष नहीं हो सकती। उसके द्वारा अभिनव धर्म बताया जाता हो, वह दोषमुक्त हो नहीं सकता। धर्मस्थापना के लिए अज्ञान और राग-द्वेष का समूल उच्छेद होना अनिवार्य है। संसार के सर्व जीवों के प्रति अत्यन्त करुणा होना भी अनिवार्य है।

करुणा, सर्वज्ञता और वीतरागता-ये तीनों उच्चतम तत्त्व जिस आत्मा में पूर्णरूपेण विकसित हो जाएँ, वही आत्मा धर्मतत्त्व का वास्तविक-यथार्थ प्रतिपादन कर सकती है। उसका वचन 'अविरुद्ध' होता है। ऐसी आत्मा ही 'जिन' कहलाती है। श्रमण परमात्मा महावीर ऐसे जिन थे, इसलिए उनका उपदेश अविरुद्ध है! सूक्ष्म, निर्मल एवं उत्कृष्ट बुद्धिवालों को भगवान महावीर का वचन यथार्थ और विरोधरहित प्रतीत होता है।

'जिन' कैसे बना जाता है?

परमात्मा महावीर 'जिन' बने थे। 'जिन' का अर्थ होता है विजेता। महावीर स्वामी विजेता बने थे! अनन्त अनन्त जन्मों से आत्मभूमि पर डेरा डालकर बैठे हुए राग और द्वेष, मोह और अज्ञान इत्यादि असंख्य शत्रुओं के साथ वे लड़े थे, भीषण युद्ध किया था और उन भीतरी शत्रुओं को अपनी आत्मभूमि से खदेड़ दिया था। उन्होंने आत्मस्वतन्त्रता प्राप्त कर ली थी, वे विजेता बने थे। अन्तरंग शत्रुओं के साथ महावीर ने महावीर बनकर जो प्रचण्ड युद्ध खेला था, उसका रोमांचक इतिहास आप पढ़ोगे, तब आपको यथार्थ खयाल आएगा कि 'जिन' कैसे बनते हैं! मात्र भाषण झाड़ देने से और नाचने-कूदने से 'जिन' नहीं बन सकते!

तत्त्वप्रतिपादन में सर्वज्ञता अनिवार्य है:

जो जिन नहीं हैं, जिन्होंने अपने राग-द्वेष और अज्ञान का समूल नाश नहीं किया है, उनका वचन 'अविरुद्ध' नहीं हो सकता। मोक्षमार्ग के विरुद्ध होता है, आत्मकल्याण के विरुद्ध होता है, उनके वचन परस्पर विरोधी होते हैं। हाँ,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जो सर्वज्ञ नहीं थे और वीतराग नहीं थे, उनका उपदेश करुणाप्रेरित था, त्याग और वैराग्य की बातें बतानेवाला भी था, काम-क्रोधादि आंतर शत्रुओं पर विजय पाने के लिए था। परन्तु वे सर्वज्ञ नहीं थे, जिन नहीं थे, इसलिए अगोचर-अतीन्द्रिय 'आत्मा' 'कर्म' जैसे तत्त्वों को यथार्थ नहीं बता पाए। उन आत्मा वगैरह अतीन्द्रिय तत्त्वों के प्रतिपादन में विरोध आ गया, तर्क की कसौटी पर वे खरे नहीं उतर पाए। अनुभव ज्ञान में भी वे तत्त्व उनके बताए अनुसार खरे नहीं उतरे। कपिल, बुद्ध, ईसा वगैरह ने करुणा से धर्म का उपदेश तो दिया, परन्तु वे 'जिन' नहीं थे, वीतराग सर्वज्ञ नहीं थे, इसलिए अतीन्द्रिय विषयों में कहीं न कहीं विरोध आ ही गया! एकान्त दृष्टिवाले बन गए, वे आत्मा वगैरह अतीन्द्रिय तत्त्वों के स्वरूप निर्णय में एकान्तवादी बन गए! वस्तु का बहुविध स्वरूप होता है, एक स्वरूप पकड़ कर 'यह पदार्थ ऐसा ही है' ऐसा प्रतिपादन कर दिया, दूसरी ओर 'यह पदार्थ ऐसा है ही नहीं' ऐसा विरोध कर दिया।

जैसे बुद्ध ने कहा : 'आत्मा क्षणिक ही है, अनित्य ही है!' साथ-साथ 'आत्मा नित्य है ही नहीं' ऐसा विरोध भी किया। उसी प्रकार वेदान्तवालों ने कहा : 'आत्मा नित्य ही है!' साथ ही 'आत्मा अनित्य नहीं है' ऐसा विरोध कर दिया। एक ने आत्मा का अनित्यत्व ही देखा, नित्यत्व नहीं देखा! दूसरे ने आत्मा का नित्यत्व ही देखा, अनित्यत्व नहीं देखा! इसलिए उनका उपदेश परस्पर विरोधी हो गया!

सर्वज्ञता का साक्षी अनेकान्तवाद :

भगवान महावीर 'जिन' थे, 'सर्वज्ञ' थे, उन्होंने ऐसा नहीं किया। उन्होंने आत्मा के सब गुणों को, सब पर्यायों को देखा और बताया कि आत्मा द्रव्य से नित्य है, पर्याय से अनित्य है! आत्मा तो वही की वही रहती है, उसकी अवस्थाएँ बदलती रहती हैं। वस्तु की अवस्थाएँ बदलती रहना उसकी अनित्यता है! कोई विरोध नहीं, कोई विसंवाद नहीं! भगवान महावीर ने जो अनेकान्त दृष्टि दी, वही उनकी सर्वज्ञता की साक्षी है।

भगवान महावीर जब सर्वज्ञ और वीतराग बन गए थे, उनके पास उस काल के बहुत बड़े ब्राह्मण विद्वान इन्द्रभूति गौतम आए थे। श्रद्धाभक्ति से नहीं आये थे, महावीर को वाद-विवाद में पराजित करने आए थे। महावीर जानते थे, मात्र जानते थे; उस जानकारी में राग-द्वेष नहीं था, मात्र वे ज्ञाता थे। महावीर ने उनको आदर से बुलाया और उनके मन में जो अतीन्द्रिय तत्त्व के

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विषय में संदेह था, जिस संदेह को वह स्वयं नहीं मिटा सके थे, भगवान महावीर ने संदेह भी बता दिया, संदेह का निराकरण भी कर दिया! इन्द्रभूति को कुछ भी बोलना नहीं पड़ा। उनके मन में जो तात्त्विक विरोध चल रहा था, भगवान महावीर ने उस विरोध को मिटा दिया, अविरोध स्थापित कर दिया, विवाद मिटा दिया, संवाद पैदा कर दिया! इन्द्रभूति को अनेकान्त दृष्टि दी, जो तत्त्वों का संवाद स्थापित करने की दिव्य दृष्टि है।

इन्द्रभूति को भगवान महावीर से अविरुद्ध वचन मिल गया, उसके मन के तत्त्वविषयक सब विरोध मिट गए! वही वचन अविरुद्ध है, जो जीवों के मन के विरोधों का उपशम कर दे। हालाँकि इसका दूसरा अर्थ भी है : जिस वचन में अव्याप्ति-अतिव्याप्ति-असंभव दोष नहीं हो!

जीवन में धर्म को स्थान दो :

'अव्याप्ति' वगैरह दोषों का ज्ञान है? नहीं है न? कौन अध्ययन करे? यदि अध्ययन करने से पैसा मिलता हो तो? सब कुछ पैसे के लिए ही करने का! जीवन का लक्ष्य भौतिक सुख और भौतिक सुखों के लिए पैसा! फिर आत्मा का क्या होगा? परलोक में क्या होगा? मृत्यु के बाद पुनः जन्म कहाँ लेना है? कुछ सोचते हो या नहीं? जिस मनुष्य ने अपने जीवन में धर्म को स्थान नहीं दिया, उसका पुनर्जन्म कहाँ होगा? दुर्गति में न? तिर्यंचयोनि और नरकयोनि में न? वहाँ फिर पाँच इन्द्रिय के विषयसुख मिलेंगे न? शान्त चित्त से सोचो। जीवन में धर्म को स्थान दो, इसलिए धर्म को समझो। धर्म का स्वरूप समझो, इसलिए ज्ञानी गुरुजनों के चरणों में बैठकर कुछ अध्ययन करो।

अव्याप्ति : अतिव्याप्ति : असंभव :

धर्मतत्त्व का स्वरूप-निर्णय करने के लिए सूक्ष्म बुद्धि से विचार करना चाहिए। किसी भी वस्तु का लक्षण इन अव्याप्ति आदि तीन दोषों से मुक्त होना चाहिए। दोषों का ज्ञान प्राप्त करना मुश्किल नहीं है, घबराओ मत! 'अव्याप्ति' उसे कहते हैं कि जो लक्षण जिस वस्तु का बनाया, उस वस्तु में वह लक्षण थोड़ा दिखता हो, थोड़ा नहीं दिखता हो! जैसे 'गाय सफेद होती है' ऐसा लक्षण बनाया, कुछ गायें सफेद होती हैं, कुछ काली भी! काली गाय में वह लक्षण नहीं रहा! इसलिए 'अव्याप्ति' दोष आया। 'अतिव्याप्ति' उसे कहते हैं कि जिस वस्तु का जो लक्षण बनाया, उस वस्तु में तो वह लक्षण रहेगा, परंतु दूसरी वस्तु में भी वह लक्षण चला जाय! जैसे 'जिसको सींग हो वह बैल! सींग बैलों के तो

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

होते ही हैं, सब बैलों को होते हैं; परन्तु भैंस और गाय वगैरह के भी सींग होते हैं-लक्षण गाय-भैंस में भी चला गया। इसलिए यह लक्षण 'अतिव्याप्ति' दोषवाला हो गया। 'असंभव' दोष समझना तो काफी सरल है। किसी ने गधे का लक्षण बताया-'जिसको सींग होता है वह गधा..' किसी भी गधे को सींग दिखाई नहीं देता, गधे को सींग असंभव! अर्थात् लक्ष्य में लक्षण रहे ही नहीं।

जिनवचन में इन तीन दोषों में से एक भी दोष नहीं होता है। इसलिए जिनवचन में किसी प्रकार का विरोध नहीं है। हाँ, कुछ अन्य धर्मस्थापकों की बातें भी ऐसी अविरुद्ध हो सकती हैं-भले वे धर्मस्थापक जिन नहीं थे, सर्वज्ञ नहीं थे!

अनेकान्त दृष्टि में ही संवादिता :

प्रश्न : इसका क्या कारण? अविरुद्ध वचन तो जिनेश्वर का ही हो सकता है न?

उत्तर : दूसरे धर्मस्थापक धर्म की बातें लाये कहाँ से? मूल स्रोत तो है जिनेश्वर का ही वचन! जिनवचन में से कुछ बातें एकान्त दृष्टि से पकड़ लीं और चलाया अपना अलग मत, अलग धर्म। है उसमें मूलभूत जिनवचन, इसलिए मार्गानुसारी बुद्धिवाले मनुष्य को कुछ बातें जिनवचन जैसी ही लगेंगी; परन्तु एकान्तदृष्टि होगी, इसलिए आगे चलकर विरोध आएगा ही! एकान्तवादियों की बातें अविरुद्ध हो नहीं सकतीं।

प्रश्न : वेदों को 'अपौरुषेय' मानते हैं-क्या वेदवचन अविरुद्ध नहीं हैं?

उत्तर : एक बात आप समझ लो, एकान्तवादिता जहाँ भी हो, अविरोध-संवादिता हो नहीं सकती। अपने को वेदों से बैर नहीं है, आगम से प्यार नहीं हैं! जहाँ अनेकान्त दृष्टि से तत्त्वों का प्रतिपादन हो, अपने को प्रेम है, श्रद्धा है। दूसरी बातः कोई भी वचन 'अपौरुषेय' हो नहीं सकता! बिना पुरुष, वचन आया कहाँ से? मनुष्य बोले ही नहीं, मुँह खोले ही नहीं, वचन आयेगा कहाँ से? कहते हैं कि वेद किसी ने बनाए नहीं! अनादिकाल से हैं! ऐसा कहनेवाले दूसरी तरफ कहते हैं कि इस सृष्टि की रचना ईश्वर ने की! तो क्या जब सृष्टि नहीं थी तब 'वेद' थे? किसलिए थे? मान्यता में घोर विरोध उपस्थित हुआ तब कुछ लोगों ने कहा : 'वेद ईश्वरोच्चरित हैं!' अर्थात् ईश्वर ने वेदों की रचना की। भले ईश्वर ने रचना की, क्या वेदों में अनेकान्त दृष्टि से तत्त्वव्यवस्था है? यदि है, तो वेदों को मानने में कोई ऐतराज नहीं! परन्तु अनेकान्त दृष्टि नहीं है! इसलिए तत्त्वों में संवादिता नहीं है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जिनवचन की यही विशेषता है : अनेकान्त दृष्टि। इसीलिए जिनवचन श्रेष्ठ है। भगवान महावीर के धर्मशासन में ऐसी अविरुद्ध तत्त्व-व्यवस्था देखने को मिलती है, इसलिए तो महावीर के धर्मशासन को 'जैनं जयति शासनम्' कहते हैं। सब धर्मशासनों पर जैनशासन विजेता है! अनेकान्त दृष्टि से वह विजेता बना है!

अविरुद्ध वचन ही उपादेय :

जिनवचन अविरुद्ध है, इसलिए उपादेय है, स्वीकार्य है। ऐसे जिनवचन के अनुसार अनुष्ठान-क्रिया की जाय, वह धर्म है। कोई भी अनुष्ठान-क्रिया करो, जिनवचनानुसार होना चाहिए, बस यही धर्म है! धर्म का क्रियात्मक रूप यह है। यहाँ एक सावधानी रखना : वह क्रिया जैसे-तैसे नहीं करने की है, अपनी कल्पनानुसार नहीं करने की है-'यथोदित' रूप से करने की है। जिस प्रकार क्रिया करने को जिनवचन में कहा गया है, उस प्रकार करने की है!

धर्म का स्वरूप बतलाते हुए आचार्यश्री कहते हैं कि धर्म 'अविरुद्ध जिनवचन के अनुसार अर्थात् जिस प्रकार जो अनुष्ठान करने को कहा है, उसी प्रकार वह अनुष्ठान किया जाय, वह धर्म है।' मैत्री-करुणा-प्रमोद और मध्यस्थ भावों से धर्म करनेवाले मनुष्य का हृदय नवपल्लवित होना चाहिए।

कोई भी धर्मक्रिया हो, जिनवचन-जिनाज्ञा के अनुसार होनी चाहिए। जिस प्रकार वो धर्मक्रिया करने को कही हो, उसी प्रकार करनी चाहिए। हाँ, प्रत्येक धर्मक्रिया को लेकर ज्ञानी महापुरुषों ने मार्गदर्शन दिया है। कौन-सी धर्मक्रिया कहाँ करना, कब करना, कौन-से उपकरणों से करना और किस प्रकार के भावों से करना!

जिनवचन को समझा है?

आप लोग जैनपरिवार में जन्मे हो और जन्म से ही आपको अरिहंत परमात्मा मिले हैं, उनका धर्मशासन मिला है, इसलिए जिनवचन की अविरुद्धता का तो विचार भी करने की आवश्यकता नहीं है। जिनवचन सहज रूप से मिल गया है, तो जाँच करने की जरूरत ही नहीं रही! वंशपरंपरा से सच्चा हीरा घर में है, जौहरी को बताने की कोई आवश्यकता नहीं अर्थात् आप लोगों को जिनवचन तो मिल ही गया है। हाँ, घर में मूल्यवान रत्न पड़े हों, परन्तु आप उन रत्नों को देखो नहीं, उपयोग करो नहीं और भटकते फिरो-दूसरी

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

बात है। जिनवचन अर्थात् जिनशासन आपके पास है, आपने कभी उस जिनशासन को देखा? कभी उसको समझा? कभी मूल्यांकन किया?

रोग की दवाइयाँ-धर्मक्रियाएँ :

कितना अपूर्व, कितना अद्‌भुत है जिनवचन! अनेकान्तवाद की दिव्य दृष्टि देनेवाला जिनशासन ही एक ऐसा धर्मशासन है कि जो विश्व में संवादिता ला सकता है। समाज में और परिवार में संवादिता स्थापित कर सकता है। मनुष्य के मन का समाधान कर सकता है। जिनवचन ने जो मोक्षमार्ग बताया है- कितना स्पष्ट, कितना व्यवस्थित और कितना सरल बताया है। जिनशासन ने जो अनेक धर्मक्रियाएँ-धर्मानुष्ठान बताए हैं, कितने वैज्ञानिक हैं! कभी तुम लोगों ने सोचा ही नहीं, तुम लोग कभी धर्म की बात सोचते ही नहीं! धर्मक्रिया करते हो, परन्तु धर्म के विषय में सोचते नहीं। अरे, सोचो नहीं, पर समझो तो सही!

इतनी समझ तो आप में होनी चाहिए कि कौन-सा धर्मानुष्ठान कब करना चाहिए, कहाँ करना चाहिए, कौन-कौन-से उपकरणों से करना चाहिए, कैसे कैसे भाव होने चाहिए? यदि आप इतना भी सोचना पसंद नहीं करते, समझना नहीं चाहते, तो आप धर्म नहीं कर सकते। भले आप मानो कि हम धर्म करते हैं, तो वह आपकी भ्रमणा है, मिथ्या कल्पना है। आपके घर में आपका लड़का बीमार हो गया, आपका पारिवारिक डॉक्टर आया, लड़के को देखा और दवाइयाँ लिख दीं, आप बाजार से दवाइयाँ ले आए, डॉक्टर ने दवाइयाँ कब, कितनी और किस प्रकार लेनी-सब बताया, डॉक्टर चला गया। लड़का यदि दवाइयाँ लेता है, परन्तु डॉक्टर की सूचनाओं पर ध्यान नहीं देता है और जब इच्छा हो तब दवाई लेता है, जितनी इच्छा हो इतनी दवाई खाता है; जो अनुपान पसंद हो, उस अनुपान के साथ दवाई लेता है; तो क्या होगा? क्या यह उपचार उपचार कहा जाएगा? क्या इस प्रकार ली हुई दवाई रोग को मिटा सकेगी? निरोगिता प्राप्त होगी? क्या आप लड़के को इस प्रकार दवाई लेने दोगे? रोकोगे नहीं? यदि लड़का कहे कि 'दवाई लेने से काम है न? मैं दवाई लेता तो हूँ...' तो आप क्या कहोगे? चलने दोगे न? नहीं, वहाँ तो आप लड़के को डॉक्टर की सूचनाओं की याद दिलाओगे! 'जैसे तैसे दवाई लेने से आराम नहीं होगा मर जाएगा...' कहोगे! जरा तो सोचो, शरीर के रोग मिटाने के लिए जिस प्रकार डॉक्टर दवाई लेने को कहे उसी प्रकार लेनी पड़ती है और आप लोग लेते भी हो, पूरी सावधानी से! तो फिर अनन्त जन्मों

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

से आत्मा पर लगे हुए राग-द्वेष, काम-क्रोध, मद-मान इत्यादि असंख्य रोगों को मिटानेवाला धर्म जिनाज्ञानुसार नहीं करना चाहिए क्या? जिनाज्ञा को ध्यान में लिए बिना जैसे-तैसे धर्मक्रियाएँ करने से राग-द्वेष आदि रोग मिट जायेंगे क्या? रोग मिटेंगे तो नहीं, परंतु ऐसी प्रतिक्रिया आ जाएगी कि बुरी तरह मारे जाओगे!

जटाशंकर का झमेला :

जटाशंकर के पेट में दर्द हुआ। उसको मालूम था कि हिंग्वाष्टक चूर्ण लेने से दर्द मिट जाता है। पढ़ा होगा किसी किताब में, अथवा सुन लिया होगा किसी वैद्य से। गया बाजार में और १० तोले की हिंग्वाष्टक चूर्ण की शीशी ले आया, शीशी के ऊपर लेबल लगा हुआ था, उस पर लिखा था 'सुबह-शाम पाव तोला लेना।' जटाशंकर ने 'पाव' का अर्थ किया 'सवा पाँच तोला!' दो समय में पूरी शीशी खाली कर दी। रात में भयंकर जलन उठी, दर्द काफी बढ़ गया, तो दौड़ा दौड़ा गया वैद्यराज के पास। जटाशंकर की बात सुनकर वैद्यराज बहुत हँसे और कहा : जटाशंकर, दवाई इस प्रकार स्वयं अपनी कल्पना से नहीं ली जाती, जिस प्रकार हम कहें उस प्रकार लेनी चाहिए, पाव तोला लेने की जगह सवा पाँच तोला चूर्ण तूने खा लिया! अच्छा किया कि अभी तू मेरे पास आ गया।'

लिखा हुआ पढ़ना भी तो आना चाहिए। पढ़ना आता हो फिर भी सही रूप में समझना आवश्यक होता है। जटाशंकर ने लेबल पढ़ तो लिया, पर समझ नहीं सका, गलत समझा, इसलिए गलत को सही समझकर दस तोला हिंग्वाष्टक चूर्ण एक दिन में खा गया। कैसा 'रिएक्शन' आया?

'सेल्फ ड्राइविंग' न आता हो तो 'ड्राइवर' रख लोः

धर्म को, धर्मग्रन्थों को पढ़ते आना चाहिए और समझ में आना चाहिए। पढ़ने के लिए संस्कृत, प्राकृत आदि भाषाओं का ज्ञान चाहिए, समझने के लिए धर्मग्रन्थों के ज्ञाता गुरुओं का सहवास चाहिए, बुद्धि सूक्ष्म चाहिए। अथवा ऐसे धर्ममय जीवन जीनेवाले त्यागी एवं शास्त्रज्ञ सद्‌गुरु के चरणों में ऐसा समर्पण चाहिए कि वे जिस ढंग से धर्मानुष्ठान करने को कहें, बिना शंका किए, बिना तर्क-वितर्क किए, कर लें। कार चलाना नहीं आता है, तो ड्राइवर जैसा ड्राइविंग कर के आपको ले जाय, आप चले जाएँ, कार में बैठे रहें! ड्राइविंग आता नहीं हो और करने जाओगे तो मारे जाओगे! इसीलिए या तो ड्राइविंग सीख लो,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अथवा कार में चुपचाप बैठे रहो-ड्राइवर पर भरोसा करो! क्या करना है, बोलो?

सम्मूर्च्छिम धर्मक्रियाओं पर भी अभिमान :

जिनवचन जिनग्रन्थों में, जिनआगमों में भरे पड़े हैं-आपको पढ़ना है? समझना है? तो आइए मेरे पास! हाँ, फिर घर और दुकान की ममता छोड़नी पड़ेगी! दिन-रात अध्ययन करना पड़ेगा! जिंदगी तक! यदि यह विचार नहीं हो, तो फिर जैसे आपको धर्मानुष्ठान करने को कहा जाय, वैसे करना मान लो! मानोगे? जिस समय, जिस स्थान में और जिन-जिन उपकरणों से धर्मक्रियाएँ करने की हैं, उसी प्रकार आदरपूर्वक करोगे धर्मक्रिया? धर्मक्रिया करने का कोई ढंग नहीं, कोई आदर नहीं, समय का खयाल नहीं, भावों की तो पूरी शून्यता...ऐसी सम्मूर्च्छिम क्रिया करते हो और उस पर अभिमान-अहंकार कितना? रुक जाओ, सावधान हो जाओ, अन्यथा भयंकर 'रिएक्शन' आएगा!

गलती करने का अहसास है दिल में?

अच्छा, यह बताओ कि आप लोग जिनवचनानुसार धर्म-आराधना नहीं करते हैं-यह ज्ञान भी है आपको? यदि ज्ञान है तो इस बात का दुःख है? आप सच्चे हृदय से इस बात का स्वीकार करते हो कि 'मैं जिनवचनानुसार धर्मक्रिया नहीं करता हूँ, भावशून्य और विवेकशून्य धर्मानुष्ठान कर रहा हूँ। जो मनुष्य जिनाज्ञानुसार धर्म करते हैं, वे धन्य हैं। मैं भी कब जिनवचनानुसार धर्मानुष्ठान करूँगा? मेरा वैसा सौभाग्य कब आएगा?'

इस प्रकार सोचते हो क्या? गलत करते हो, उसको गलत भी नहीं मानते? फिर गलत करने का दुःख कैसे होगा? सही रूप से धर्मआराधना करनेवालों के प्रति बहुमान कैसे होगा? यथाविधि धर्मानुष्ठान करने का लक्ष ही नहीं, तो इस जीवन में आप धर्म पा ही नहीं सकते। हरिभद्रसूरिजी धर्मानुष्ठान 'यथोदितं' करने को कहते हैं, 'यथोदितं' करो तो ही धर्म, अन्यथा नहीं!

जिनाज्ञा का अनादर मत करो :

धर्म का स्वरूप बताया जा रहा है। धर्म के साथ मात्र इस वर्तमान जीवन का ही प्रश्न जुड़ा हुआ नहीं है, किंतु भविष्य का, जनम-जनम का सवाल जुड़ा हुआ है। मगर गफलत हो जाय, तो भविष्य के अनेक जन्म बिगड़ जायेंगे। मेरा ऐसा कोई आग्रह नहीं है कि आप आज ही आज सबके सब धर्मानुष्ठान करना प्रारम्भ कर दो। मेरा यह आग्रह है कि जो भी धर्मक्रिया करो, जिनाज्ञा

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

को समझ कर करो। कौन-सी धर्मक्रिया कब करनी? कहाँ करनी? किस भाव से करनी? कौन-कौन-से उपकरणों से करनी...इत्यादि बातों का खयाल करो। हाँ, कभी भूल हो जाय, हो सकती है, परन्तु ऐसा कभी मत मानो और कभी मत बोलो कि 'सब चलता है, सब लोग अविधि से ही करते हैं, इस जमाने में इतना भी धर्म कौन करता है? हम तो ऐसे ही करेंगे। शास्त्रों में तो सब लिखा ही है, हमसे सब नहीं हो पाता' ऐसी तुच्छ बातें मत करो। जिनाज्ञा का कभी भी अनादर मत करो, धर्म नहीं करना हो तो मत करो, परन्तु धर्मानुष्ठान में अविधि की स्थापना तो मत करो।

ध्यान रखो, अविधि से धर्मक्रिया हो जाना, बड़ा अपराध नहीं है, परन्तु अविधि को उपादेय मानना, विधि का अनादर-तिरस्कार करना, घोर पाप है। अधर्म ही है। जीवन में अनजाने में पाप हो जाना बड़ा पाप नहीं है; परन्तु पाप को कर्तव्य मानना, पाप मजे से करना बहुत खतरनाक है। इससे निकाचित कर्मबन्ध हो जाता है, उस कर्म के उदय को भोगे बिना, दुःख भोगे बिना छुटकारा नहीं होता।

धर्मक्रियाओं में विधि का पालन कब होगा?

आजकल सर्वत्र यह दिखाई देता है कि धर्मानुष्ठान करनेवाले लोग प्रायः विधि का पालन नहीं कर रहे हैं। इतना ही नहीं, अविधि करते हैं और विधि मानते हैं। कोई विधि बताने जाये तो अनादर करते हैं, चिढ़ते हैं। ऐसे लोग वास्तव में धर्मप्रेमी नहीं होते हैं, धर्मद्वेषी होते हैं। उनके हृदय में धर्म के प्रति प्रेम नहीं होता है, द्वेष होता है। जहाँ प्रेम होता है वहाँ विधि की उपेक्षा नहीं होती है, स्वाभाविक ही विधि का पालन हो जाता है।

परमात्मपूजन करते समय परमात्मप्रेम जरूरी है :

मेरा कहने का मतलब समझें। जो भी धर्मानुष्ठान आप करें, उस धर्मानुष्ठान के प्रति हार्दिक प्रीति हो और वह धर्मानुष्ठान जिस प्रकार करने की जिनाज्ञा हो, उस प्रकार करें। जैसे : परमात्मपूजन का अनुष्ठान करना है, आपके हृदय में परमात्मा के प्रति प्रीति का भाव होना चाहिए, स्वार्थरहित प्रीति का भाव! निरूपाधिक प्रीति का भाव! परमात्मा से कुछ पाने का भाव नहीं, परमात्मा को ही पाने का भाव! और जब परमात्मा को ही पाने की तीव्र वासना जाग्रत होगी, आप अपना सब कुछ उनके पावन चरणों में न्यौछावर कर देने के लिए तत्पर हो जायेंगे! अरे, उस समय परमात्मा के अलावा दूसरा कुछ भी

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आपको अच्छा ही नहीं लगेगा! परमात्मप्रेम की जब हृदय में बाढ़ आ जाएगी, तब भौतिक वासनाएँ उस बाढ़ में बह जाएँगी। परमात्मा के प्रति ऐसी प्रीति, ऐसा प्रेम हो गया, फिर उनकी प्रतिमा, उनकी मूर्ति के दर्शन किए बिना चैन नहीं पड़ेगा, उनका पूजन किए बिना भोजन नहीं भाएगा!

प्रेम, जड़ में भी चेतन का दर्शन करवाता है!

प्रातःकाल में उठते ही आपको परमात्मा की स्मृति हो आएगी, आप आँखें मूँदकर उनके नामस्मरण में लीन हो जायेंगे। नाम जपते-जपते आपका हृदय उनकी मुखाकृति का दर्शन करने को उत्कंठित हो जाएगा। शारीरिक बाधाओं को दूर कर, शुद्ध वस्त्र पहनकर आप परमात्मा के मन्दिर की ओर चल पड़ेंगे। दूसरी तो कोई जगह नहीं कि जहाँ आप परमात्मा के दर्शन पा सको! आप यदि यह कहते हो कि 'मन्दिर में परमात्मा कहाँ होते हैं, वहाँ तो पाषाण की प्रतिमा होती है।' हाँ होती तो है पाषाण की प्रतिमा, पाषाण में परमात्मा के दर्शन करता है परमात्मा का पागल प्रेमी! यही तो प्रेम का परिचय है! लक्ष्मणजी के मृत कलेवर में श्रीराम जीवित लक्ष्मण को देखते थे। जैन रामायण के अनुसार छह महीने तक लक्ष्मण के मृतदेह को अपने कंधे पर लेकर श्रीराम अयोध्या में घूमे थे! क्या था यह? श्रीराम का लक्ष्मण पर प्रेम! प्रेम जड़ में चैतन्य देखता है, प्रेम से शून्य हृदय चैतन्य में भी जड़ का ही दर्शन करता है।

पाषाण में परमात्मा का दर्शन करनेवाला परमात्मप्रेमी ही जीवमात्र में सच्चिदानन्द आत्मा का दर्शन कर सकता है। जिस पाषाण ने परमात्मा का आकार पा लिया, परमात्मप्रेमी के लिए वह आराध्य, पूज्य और दर्शनीय बन जाता है। वह मनुष्य उस प्रतिमा के सहारे परमात्मा के पास पहुँच जाता है, परमात्मभाव में बह जाता है, हर्षाश्रु से भरीभरी आँखें डबडबा जाती हैं, हृदय रोमांचित हो जाता है और वाणी गद्‌गद्‌ बन जाती है तथा भावलोक में परमात्मा साकार बन जाते हैं।

परमात्मा के प्रेमी बन जाइये, फिर इसमें कोई तर्क-कुतर्क पैदा ही नहीं होंगे। प्रेम की परिभाषा को नहीं समझनेवाले लोग, प्रेमामृत की अनुभूति नहीं करनेवाले लोग मिथ्या तर्कों के जाल में फँस जाते हैं।

आपका हृदय यदि परमात्मप्रेम से भरा हुआ है, तो आप प्रातःकाल में परमात्मा के दर्शन करेंगे ही। आप जानते हैं महामनीषी शास्त्रकारों ने परमात्मदर्शन का काल भी प्रभात का ही बताया है! और प्रीति-अनुष्ठान में

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मुख्यताः 'भाव' की होती है। काल का महत्त्व गौण होता है। प्रीति और भक्ति आ गई, तो 'द्रव्य' और 'काल' आ ही जायेंगे। वह परमात्मप्रेमी जब भी उसको 'चान्स' मिलेगा, परमात्मा के दर्शन-हेतु मन्दिर में पहुँच ही जाएगा। मध्याह्न को और शाम को भी। कभी किसी दिन मानो कि मंदिर नहीं जा सका, तो उसकी आत्मा व्यथित रहेगी। उसकी आत्मा तड़पेगी।

जहाँ प्रेम वहाँ विधि का आदर :

ऐसे परमात्मप्रेमी को, परमात्मभक्त को यदि कोई ज्ञानी पुरुष परमात्मपूजन की विधि बताये; तो वह भक्त गुस्सा नहीं करेगा, अनादर नहीं करेगा; परन्तु उत्सुकता से सुनेगा, उस विधि को अपनाएगा। जैसे : जिनमन्दिर में 'निसीहि' बोलकर प्रवेश करना, तीन प्रदक्षिणा देना, तीन बार प्रणाम करना, तीन प्रकार की पूजा करना (अंगपूजा, अग्रपूजा, भावपूजा), परमात्मा की तीन अवस्थाओं का चिन्तन करना (छद्मस्थ अवस्था, कैवल्य अवस्था और रूपातीत अवस्था), परमात्मा की मूर्ति की ओर ही देखना; सूत्र, अर्थ और प्रतिमा का अवलंबन लेना...इत्यादि बातों की ओर उसका ध्यान जाएगा ही।

जहाँ प्रेम वहाँ समर्पण :

जिसको परमात्मा से प्रेम हो गया, अपने प्रियतम परमात्मा के पास क्या खाली हाथ जाएगा? क्या गंदे वस्त्र पहनकर जाएगा? आप लोग मन्दिर जाते हो न? मन्दिर में किसके पास जाते हो? पाषाण के पास या परमात्मा के पास? परमात्मा से लेने जाते हो या कुछ देने? कैसे द्रव्य लेकर जाते हो? अपने घर से समग्र पूजन सामग्री लेकर जाते हो न? मन्दिर में रखे हुए लाल-पीले कपड़े पहनकर तो पूजा नहीं करते हो न? स्वच्छ और सुन्दर वस्त्र पहनकर पूजा करते हो न? चन्दन, केसर, दीपक, धूप, फल, नैवेद्य वगैरह लेकर परमात्मा के मन्दिर जाते हो न?

परमात्मा के पास लेने जाते हो या देने?

सभा में से : हम तो कुछ भी लेकर नहीं जाते मन्दिर में! कपड़े भी मन्दिर के ही पहनते हैं!

महाराजश्री : आप लोग या तो गरीब होंगे, इसलिए पूजन की सामग्री नहीं ले जाते होंगे! अथवा आप लोग स्वार्थी होंगे! लेने जाते होंगे, स्वार्थी लेने में ही समझता है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जटाशंकर को एक दिन भगवान शंकर ने दर्शन दिए और कहा : 'बेटा, मैं तुझ पर प्रसन्न हो गया हूँ, तू कुछ माँग मुझसे।'

जटाशंकरने पूछा : 'भगवान आपका देने का तरीका क्या है?'

भगवान ने कहा : 'वत्स! मैं एक का सौ देता हूँ। तू मुझे एक रूपया देगा, मैं तुझे १०० रूपये दूँगा!' जटाशंकर ने सोचा कि भगवान की यह प्रथम मुलाकात है। सुना है कि भगवान जो होते हैं क्षणभर में अदृश्य भी हो जाते हैं... एकदम कैसे भरोसा किया जाये! मैं एक रूपया दे दूँ और रूपया लेकर भगवान अदृश्य हो जायें तो? मेरा तो रूपया भी चला जाएगा। जटाशंकर बुद्धिमान था। उसने कुछ सोचा और भगवान से कहा :

'भगवान! आप दयालु हो, एक रूपये के बदले में सौ रूपये देते हो, इसलिए आप ऐसा ही कीजिए कि एक रूपया काटकर ९९ रूपये मुझे दे दीजिए!' भगवान शंकर तो देखते ही रह गए!

आप क्या कर रहे हैं?

जटाशंकर को तो लेना ही था! देने में वह समझता ही नहीं था। आप लोगों की क्या स्थिति है? भगवान के पास लेने जाते हो या देने? क्या देने जाते हो? पूजन करने जाते हो-उत्तम द्रव्य लेकर जाते हो? सुन्दर वस्त्र पहनकर जाते हो? मन्दिर में रखे हुए लाल-पीले गंदे कपड़े पहनकर पूजा करते हो न? फिर भाव कहाँ से आयेंगे?

उत्तम क्षेत्र में-तीर्थभूमि में जाओ, वहाँ तो अपने द्रव्य से ही पूजा करते हो न? वहाँ तो नीति-नियमों का पालन करते हो न? तीर्थयात्रा की विधि का ज्ञान है न? कुछ नहीं। कोई जिनाज्ञा का ज्ञान नहीं, कोई भी धर्मानुष्ठान के विधि-विधान का ज्ञान नहीं, न परमात्मप्रीति और न परमात्मभक्ति! फिर भी आप 'धर्म करते हो' ऐसा मान रहे हो। कितना घोर अज्ञान!

जिनवचनानुसार अनुष्ठान-क्रिया करने की, परन्तु 'यथोदित' का पूर्णरूपेण ध्यान रखना है। द्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव से 'यथोदित' धर्मक्रिया करोगे तो परमपद प्राप्त करोगे और आत्मा सिद्ध-बुद्ध-मुक्त बन जाएगी।

आज, बस इतना ही!

❖ ❖ ❖

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

- ***धर्मग्रन्थों की सत्यता-असत्यता का भेद जानने के लिए सूक्ष्म बुद्धि चाहिए। निपुण प्रज्ञा चाहिए।***
- ***सूक्ष्म बुद्धि भी यदि स्वच्छ एवं आग्रहरहित-दुराग्रहमुक्त नहीं है, तो धर्मक्षेत्र में भी वाद-ववाद खड़े कर देती है। स्वयं के जीवन में तो अनिश्चितता एवं चंचलता पैदा करती ही है!***
- ***जैन-श्रमणपरंपरा में अन्य धर्मों के अध्ययन की परंपरा थी, आज भी है। जबकि अन्य किसी भी धर्म में जैनधर्म या दर्शन के अध्ययन की परंपरा है ही नहीं।***
- ***बुद्धिशाली को तर्क और प्रेम से ही समझाया जा सकता है। गुस्सा करने से या बौखलाने से तो वह विद्रोही हो उठेगा।***
- ***पारलौकिक और परोक्ष तत्त्वों के विषय में रागी-द्वेषी मनुष्यों की तर्कयुक्त बातें भी नहीं मानी जा सकतीं। कभी-कभी तर्क आत्मघाती बन जाते हैं, जब वे कुतर्क का रूप लेते हैं।***

प्रवचन : ७

महान श्रुतधर आचार्यश्री हरिभद्रसूरीश्वरजी 'धर्मबिन्दु' ग्रन्थ में धर्म का प्रभाव बताकर अब धर्म का स्वरूप समझा रहे हैं :

वचनाद्यद्नुष्ठानमविरुद्धाद्यथोदितम्।
मैत्र्यादिभावसंयुक्तं तद्धर्म इति कीर्त्त्यते ।।

कितने मार्मिक ढंग से धर्म का स्वरूपदर्शन कराया है! धर्म के अद्भुत प्रभावों को सुनकर या देखकर, धर्मक्षेत्र में प्रवेश करने आए हुए मनुष्य को आचार्यश्री द्वार पर रोकते हैं और कहते हैं : धर्मक्षेत्र में प्रवेश करना है? धर्म के अपूर्व प्रभावों का अनुभव करना है? तो सर्वप्रथम आपको आगम यानी शास्त्र मानने पड़ेंगे। धर्मतत्त्व के प्रतिपादक शास्त्रों की मान्यता स्वीकार करनी ही होगी। हर क्षेत्र में प्रमाणित शास्त्रों के, ग्रन्थों की मान्यता आवश्यक मानी गई है। न्याय के क्षेत्र में न्याय शास्त्रों की, ग्रन्थों की मान्यता आवश्यक मानी गई है। न्याय के क्षेत्र में न्याय शास्त्रों की विज्ञान के क्षेत्र में विज्ञान के मान्य ग्रन्थों की, आयुर्वेद में आयुर्वेद के ग्रन्थों की और 'एलोपथी' में 'एलोपथी' के

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ग्रन्थों की मान्यता को स्वीकार करना ही पड़ता है। धर्म के विषय में धर्मग्रन्थों को प्रामाणिक मानने ही पड़ेगा।

धर्मक्षेत्रों में धर्मग्रन्थों को ही मान्य रखना होगा :

जैसे दूसरे क्षेत्रों में मनुष्य मनमानी नहीं कर सकता, वैसे धर्मक्षेत्र में भी मनमानी नहीं चल सकती। विज्ञान के क्षेत्र में सिद्धान्त के आधार पर ही प्रयोग किए जाते हैं। प्रयोगसिद्ध सिद्धान्त सर्वमान्य शास्त्र बन जाता है, प्रामाणिक ग्रन्थ बन जाता है। जिस प्रकार विश्व में पदार्थविज्ञान है, शरीरविज्ञान है, मनोविज्ञान है, उसके प्रामाणिक ग्रन्थ हैं और उन ग्रन्थों के आधार पर अध्ययन होता है, प्रयोग होते हैं, वैसे ही एक परोक्ष विज्ञान है : आत्मविज्ञान! प्रत्यक्ष विज्ञान और परोक्ष विज्ञान दो प्रकार के विज्ञान होते हैं। प्रत्यक्ष विज्ञान के प्रतिपादक ग्रन्थों को हमलोग मान्य करने में हिचकिचाते नहीं हैं। परोक्ष आत्मविज्ञान के प्रतिपादक धर्मग्रन्थों को मान्य करने में क्यों हिचकिचाना?

जिन्होंने धर्म करने का उपदेश दिया है, उन्होंने 'धर्म किस प्रकार करना चाहिए' यह भी बताया होगा न? यह जाने बिना धर्म कैसे हो सकता है? वह जानने के लिए प्रामाणिक धर्मग्रन्थों का सहारा लेना ही पड़ेगा। प्रामाणिक धर्मग्रन्थों का सहारा लिए बिना आप धर्म का आचरण सही रूप से नहीं कर सकेंगे, करने जाओगे धर्म, हो जाएगा अधर्म! देखादेखी या अन्ध-अनुकरण से धर्म करनेवालों के जीवन देखो! न कोई धर्मचेतना का आविर्भाव, न कोई ऊर्ध्वमुखी जीवन-परिवर्तन है।

अन्धानुकरण : एक दृष्टांत :

एक गाँव में एक साधु मुनिराज पधारे। राजस्थान का पिछड़ा हुआ गाँव था। गाँव में कुछ जैन परिवार भी थे। साधु-मुनिराज को देखकर उनको बड़ा आनन्द हुआ। वे उपाश्रय गए, मुनिराज को वंदन किया, भिक्षा के लिए सब घर ले गए, अच्छी आवभगत की मुनिराज की। मुनिराज ने भी उन भक्तों को कहा : 'शाम को प्रतिक्रमण करने आना, मेरे साथ प्रतिक्रमण की धर्मक्रिया करना।' उन लोगों ने कहा : 'जैसे मैं करूँ वैसे ही तुम करना!' वे लोग सहमत हो गए। शाम को उपाश्रय में पहुँच गए। प्रतिक्रमण की क्रिया शुरू हुई। जैसे वे मुनिराज धर्मक्रिया करते हैं, उनको देख-देखकर वे लोग भी क्रिया करते हैं। मात्र क्रिया करते हैं समझते कुछ नहीं! परन्तु उन लोगों को तो क्रिया करने में भी तकलीफ हो गई।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मुनिराज को 'फिट' (मिरगी) का दर्द था। प्रतिक्रमण चालू था और उनको फिट-मिरगी का दौरा पड़ा। वे लम्बे होकर सो गए, हाथ-पैर पटकने लगे, उनके मुँह से झाग निकलने लगा। उन भक्तों ने यह भी प्रतिक्रमण की ही क्रिया होगी, ऐसा समझकर वे लोग भी लम्बे होकर लेट गए, हाथ-पैर पटकने लगे; परन्तु मुँह से झाग नहीं निकल रहा था!

जब प्रतिक्रमण पूरा हुआ, मुनिराज ने भक्तों से पूछा : 'कहो, जैसे मैंने किया प्रतिक्रमण, तुमने भी वैसे ही देख-देखकर किया न?' तो एक भक्त ने कहा : 'महाराज साहब, सब क्रिया तो की, परन्तु एक क्रिया अधूरी रह गई।' महाराज ने पूछा : 'कौन-सी क्रिया रह गई?' भक्त ने कहा : 'आपके मुँह से झाग निकला था, हमारे मुँह से झाग नहीं निकला। हम लम्बे होकर सो गए थे, हाथ-पैर भी हमने पटके थे। सब कुछ किया था, मात्र झाग नहीं निकला मुँह से, इतनी अविधि हो गई।'

समझ करके धर्मक्रियाएँ करें :

देखादेखी धर्मक्रिया करनेवालों ने तो धर्मक्रिया का रूप ही कुरूप कर दिया है। भले इन लोगों ने प्रतिक्रमण की धर्मक्रिया की, परन्तु वे लोग प्रतिक्रमण का अर्थ भी नहीं जानते होंगे! प्रतिक्रमण करनेवालों को 'आवश्यक सूत्र' को प्रमाणित ग्रन्थ मानकर, उस ग्रन्थ का अच्छा अध्ययन करके सूत्र और अर्थ को प्राप्त करके, प्रतिक्रमण की क्रिया करनी चाहिए।

सभा में से : हम लोग 'प्रतिक्रमण' का शब्दार्थ भी नहीं जानते!

महाराजश्री : इसलिए प्रतिक्रमण की क्रिया करने पर भी पापों के प्रति नफरत पैदा नहीं हुई। जीवन में से पापाचरण कम नहीं हो रहे हैं। 'पाप करने जैसे नहीं हैं-'यह विचार भी दृढ़ नहीं हुआ। प्रतिक्रमण की धर्मक्रिया का प्रतिपादन करनेवाले शास्त्र पढ़े बिना, सुने बिना, समझे बिना, मात्र गतानुगतिक क्रिया करने से आपने क्या पाया?

रोजाना 'प्रतिक्रमण' करनेवाले लोग थोड़े ही मिलेंगे। पर्युषण महापर्व जैसे पवित्र दिनों में तो लाखों जैन स्त्री-पुरुष सुबह-शाम प्रतिक्रमण की धर्मक्रिया करते हैं न? कैसी होती है वह धर्मक्रिया? क्रिया तो आप कैसे भी कर लेते हो, परन्तु उस क्रिया को बतानेवाले शास्त्र के प्रति श्रद्धा और आदर है? यदि नहीं, तो वह क्रिया 'धर्म' नहीं बन सकती। जो भी धर्मानुष्ठान करना हो, उस धर्मानुष्ठान को बतानेवाले शास्त्रों को हमें मान्य करना ही होगा और उस शास्त्र में बताए अनुसार ही धर्मानुष्ठान करना होगा।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

धर्म को समझने के लिए बुद्धि सूक्ष्म चाहिए :

आचार्यश्री ने विशाल और उदार दृष्टिबिन्दु से 'अविरुद्धाद् वचनाद्' कहा है। वचन का अर्थ है शास्त्र। कोई भी शास्त्र हो, किसी का भी बनाया हुआ शास्त्र हो, चाहिए वह अविरुद्ध! उस शास्त्र में विरोध नहीं होना चाहिए। शास्त्र की युक्ति समझने के लिए और शास्त्र की परीक्षा करने के लिए बुद्धि चाहिए। स्थूल बुद्धि नहीं, सूक्ष्म बुद्धि चाहिए। इसीलिए इन्हीं आचार्यश्री ने अन्यत्र कहा है : 'धर्मो सूक्ष्मबुद्धिग्राह्यः' धर्मतत्त्व को समझने के लिए सूक्ष्म बुद्धि चाहिए। धर्मग्रन्थों की सत्यता-असत्यता का भेद करने के लिए सूक्ष्म बुद्धि यानी तीक्ष्ण-निपुण बुद्धि चाहिए।

संस्कृत-प्राकृत भाषा का ज्ञान अनिवार्य है :

प्रश्न : अपने धर्मग्रंथ तो संस्कृत और प्राकृत भाषा में लिखे गए हैं, हमें उन भाषाओं का ज्ञान ही नहीं है। हम कैसे वे ग्रन्थ पढ़ सकते हैं? समझने की बात तो दूर रही!

उत्तर : आपको विज्ञान के उच्चकोटि के ग्रन्थ पढ़ने हों, शरीर विज्ञान के या भौतिक विज्ञान के ग्रन्थ पढ़ने हों, और वे ग्रन्थ अंग्रेजी भाषा में हैं, तो आप अंग्रेजी भाषा का ज्ञान प्राप्त करते हो या नहीं? वैसे आपको धर्मग्रन्थों को समझना है तो संस्कृत और प्राकृत भाषा का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। आज तो उन ग्रन्थों के अध्ययन के लिए विशेष सरलता हो गई है! कुछ ग्रन्थ गुजराती और हिन्दी भाषा में अनूदित भी हो गए हैं। अपनी भाषा में तो पढ़ सकते हो न? है तमन्ना पढ़ने की? यदि धर्मग्रन्थों की बातें समझ नहीं सको तो समझानेवाले विद्वान साधुपुरुष भी मिलते हैं, जाओ उनके पास और समझो! बुद्धि तो है आपके पास। बुद्धि को सूक्ष्म बनाना चाहिए, तीक्ष्ण बनाना चाहिए। इसलिए थोड़ा तर्कशास्त्र का भी अध्ययन करना चाहिए।

सभा में से : यह तो अध्ययनकाल में हो सकता था, अब पढ़ने का समय ही नहीं है और पढ़ने की अभिरुचि भी नहीं है। क्या किया जाए?

आज का आदमी : अर्थ-काम का दास :

महाराजश्री : अध्ययन काल जिनका है, वे भी संस्कृत-प्राकृत भाषा कहाँ पढ़ते हैं? पढ़ते हैं तो मात्र पास होने के लिए! धर्मग्रन्थों का अध्ययन स्कूल के भाषाज्ञान से नहीं हो सकता। अंग्रेजों के शासनकाल में संस्कृत-प्राकृत भाषाओं

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

का अध्ययन नहींवत् हो गया। अध्ययन का ध्येय मात्र अर्थप्राप्ति हो गया। मनुष्य अर्थप्रधान और कामप्रधान बन गया। धर्मपुरुषार्थ का जीवन में स्थान ही नहीं रहा! देखो, अपने देश की किसी भी 'युनिवर्सिटी' में धर्मज्ञान की शाखा नहीं है! कानून, विज्ञान, वाणिज्य, कला...इत्यादि शाखाएँ हैं, धर्मज्ञान की शाखा ही नहीं है। प्रादेशिक भाषाओं के साथ अंग्रेजी भाषा पढ़ाई जाती है, संस्कृत-प्राकृत भाषाओं के प्रति दुर्लक्ष्य किया गया है। हमारे देश के तमाम धर्मों के ग्रन्थ ज्यादातर संस्कृत और प्राकृत भाषा में हैं, इन भाषाओं के विद्वान कितने मिलेंगे? यदि भाषाज्ञान दिया भी जाए, तो भी पढ़ने की इच्छावाले कितने? संसार के किसी भी व्यवसाय में संस्कृत-प्राकृत भाषा की उपयोगिता नहीं! धर्मपुरुषार्थ का लक्ष्य नहीं! फिर संस्कृत-प्राकृत कौन पढ़ेगा? जीवन में धर्मपुरुषार्थ की अनिवार्यता समझे बिना धर्मग्रन्थों के अध्ययन की अभिरुचि प्रकट नहीं होगी।

समग्र जीवन पर अर्थ और काम छा गए हैं। जीवन में धर्म का कहाँ और कितना स्थान है? धर्म को समझे भी नहीं हो फिर स्थान कैसे बनेगा? धर्म का स्वरूप समझो, क्योंकि आपके पास समझने की बुद्धि है।

सभा में से : बुद्धि तो है, परंतु सूक्ष्म बुद्धि नहीं है!

महाराजश्री : बुद्धि है तो सूक्ष्म बनेगी! सूक्ष्म बनाने का पुरुषार्थ करना पड़ेगा। इसलिए कहता हूँ कि तर्कशास्त्र (लॉजिक) पढ़ो। परन्तु पढ़ने की फुरसत ही किसको है? प्रयत्न-पुरुषार्थ किए बिना तो कार्यसिद्धि कैसे होगी?

सूक्ष्म बुद्धि भी निर्मल होनी चाहिए :

दूसरी बात सुन लो। बुद्धि सूक्ष्म होने मात्र से भी धर्मतत्त्व की यथार्थता और सत्यता सिद्ध नहीं हो सकती है। बुद्धि सूक्ष्म होनी चाहिए, साथ ही साथ निर्मल होनी चाहिए। धर्म कोई वाद-विवाद की वस्तु तो है नहीं। निर्मलता नहीं होती है, धर्मतत्त्व का निर्णय करने की जिज्ञासा नहीं होती है तब सूक्ष्म-तीक्ष्ण बुद्धि धर्मक्षेत्र में भी वाद-विवाद पैदा कर देती है। आज जितने अलग-अलग पंथ और संप्रदाय दिखते हैं, वे कहाँ से निकले हैं? बुद्धिमानों की पैदाइश ही तो हैं! सूक्ष्म बुद्धि भी जब दुराग्रही बन जाती है, हठाग्रही बन जाती है, तब धर्मक्षेत्र में विवाद पैदा कर देती है। मनुष्य के स्वयं के जीवन में भी अनिश्चितता, चंचलता पैदा कर देती है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जैन श्रमणपरंपरा में अन्य धर्मों के अध्ययन की परंपरा :

जैन श्रमणपरंपरा के इतिहास में इसका एक अनूठा उदाहरण मिलता है, सिद्धर्षिगणि का। यौवन में सिद्धर्षि श्रमण बने थे। कुशाग्र बुद्धि थी उनकी। जैन-दर्शन का अध्ययन करने के बाद उन्होंने भारतीय अन्य षड्दर्शनों का अध्ययन किया। जैन परंपरा की यह असाधारण विशेषता है। जैन साधु-साध्वी मात्र जैन परंपरा के और जैन-दर्शन के ही ग्रन्थ पढ़ते हैं, ऐसा नहीं है। जो सूक्ष्म बुद्धिवाले साधु-साध्वी होते हैं उनको अन्य भारतीय धर्मों का और दर्शनों का अध्ययन भी कराया जाता है। यह बहुत पुरानी परंपरा है। आज भी यह परंपरा चल रही है। जैनाचार्यों ने षड्दर्शन का प्रामाणिक निरूपण किया है। यदि खंडन भी किया है तो पूर्वपक्ष की प्रामाणिक स्थापना करके खंडन किया है। दूसरी ओर देखें तो दूसरे धर्म के संन्यासी या साधु जैन-दर्शन का प्रायः अध्ययन नहीं करते हैं, इसलिए वे लोग जैन-दर्शन की बातों का प्रामाणिक निरूपण नहीं कर पाते। डॉ. राधाकृष्णन् जैसे विश्वप्रसिद्ध दार्शनिक तत्त्वचिंतक ने 'हिस्ट्री ऑफ फिलोसॉफी' में जैन-दर्शन के 'अनेकान्तवाद' के विषय में प्रामाणिक निरूपण नहीं किया है। क्योंकि उन्होंने जैन-दर्शन का अध्ययन ही नहीं किया था। जिस प्रकार शंकराचार्य ने अनेकान्तवाद की परिभाषा की है, वैसी ही राधाकृष्णन् ने कर दी है।

प्रश्न : दूसरे धर्मवाले जैन-दर्शन का और बौद्ध-दर्शन का अध्ययन क्यों नहीं करते?

उत्तर : क्योंकि वेदान्ती लोग जैन और बौद्ध को नास्तिक मानते हैं। आस्तिक और नास्तिक की उनकी अपनी ही अलग परिभाषा है! जो वेदों को माने वह आस्तिक, जो वेदों को नहीं माने वह नास्तिक! नास्तिक दर्शनों के ग्रन्थ पढ़ने से वे लोग बचते हैं। शायद नास्तिक दर्शन पढ़कर वे नास्तिक बन जाएँ तो! भय होगा मन में! जैन परंपरा में ऐसा भय नहीं है। जो बुद्धिमान हो, तर्कशास्त्र पढ़ा हुआ हो, सत्य-असत्य का तार्किक भूमिका से निर्णय कर सके वैसा हो, उसको सभी धर्मों का अध्ययन करने की इजाजत है। अपनी विवेकदृष्टि खुल गई हो, फिर किसी भी धर्म के ग्रन्थों को पढ़ लो, कोई बुराई आपको चिपकनेवाली नहीं! निर्भय होकर पढ़ो।

सिद्धर्षि को बौद्ध-दर्शन का आकर्षण जगा :

सिद्धर्षि ने जैन धर्म-दर्शन का अध्ययन कर लिया, उसके बाद वेदान्तदर्शन,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

बौद्ध-दर्शन आदि का भी अध्ययन किया। उनकी सूक्ष्म बुद्धि को बौद्ध-दर्शन का तर्कजाल बहुत पसंद आया। बौद्ध-दर्शन का अध्ययन वे एक बौद्ध-आचार्य के पास जाकर किया करते थे। बौद्ध-आचार्य भी सिद्धर्षि की पारदर्शी प्रज्ञा से काफी प्रभावित थे। उनके मुँह में पानी आ गया था, यदि सिद्धर्षि बौद्ध धर्म स्वीकार ले तो! बौद्धाचार्य ने सोचा कि 'सिद्धर्षि बौद्ध-दर्शन की बातों से एकदम प्रभावित होता जा रहा है और बौद्ध धर्म की प्रशंसा करने लग गया है।' एक दिन उस आचार्य ने सिद्धर्षि को प्रेम से, पास में बिठाकर कहा : 'सिद्धर्षि, तुम्हें बौद्ध धर्म अच्छा लगता है न?' सिद्धर्षि ने कहा : 'हाँ, मुझे बौद्ध धर्म-दर्शन की बातें काफी बुद्धिगम्य लगती हैं।' 'तो फिर तुम सत्य को स्वीकार कर लो न? बौद्ध संघ तुम्हारा स्वागत करेगा। तुम बौद्ध धर्म के महान आचार्य बन सकते हो। दुनिया को तथागत का निर्वाणमार्ग बतला सकते हो।'

बौद्ध-आचार्य की प्रेमपूर्ण बातों ने सिद्धर्षि को मोह लिया। उनके मन में आया : 'मुझे जैनधर्म से भी बौद्ध धर्म ज्यादा तर्कसंगत और बुद्धिगम्य लगता है, बुद्ध का मध्यममार्ग श्रेष्ठ लगता है, तो फिर बौद्ध धर्म मुझे अंगीकार कर ही लेना चाहिए। परन्तु मेरे गुरु का इस तरह विश्वासघात करके मुझे यहाँ नहीं रह जाना चाहिए। मैं अपने गुरुदेव के पास जाकर, उनसे मेरे मन की बात बताकर, यहाँ आ जाऊँगा और बौद्ध धर्म अंगीकार करूँगा।' ऐसा सोचकर उन्होंने बौद्ध-आचार्य को अपने विचार बता दिए। बौद्ध-आचार्य भी बड़े बुद्धिमान थे! उन्होंने सोचा : 'सिद्धर्षि जाकर जैनाचार्य से बौद्ध धर्म की बात करेगा, बौद्ध धर्म स्वीकार करने की बात करेगा, तब जैनाचार्य अनेकान्तवाद के अकाट्य तर्कों से बौद्ध-दर्शन का खंडन करेगा। इसको वे तर्क पसंद आ जायेंगे, फिर वह जैनधर्म को श्रेष्ठ मानने लगेगा।' ऐसा सोचकर बौद्धाचार्य ने कहा : 'देखो सिद्धर्षि, तुम भले अपने जैनाचार्य से बात करो, वे भी जैन-दर्शन के तर्कों से तुम्हें प्रभावित कर सकते हैं। उस समय तुम्हें जैन धर्म ही श्रेष्ठ लग सकता है। यदि तुम्हें बौद्ध धर्म स्वीकारना नहीं हो, तो भी तुम यहाँ आकर मुझे कह जाना...!'

सिद्धर्षि वापस जैनाचार्य के पास आते हैं :

सिद्धर्षि का हृदय सरल था। उन्होंने बौद्ध-आचार्य की बात मान ली और अपने गुरुदेव के पास गए। गुरुदेव को उन्होंने बौद्ध-दर्शन के तर्क बताए और बौद्ध धर्म की श्रेष्ठता बताई। गुरुदेव ने शान्त चित्त से सुन ली सारी बातें। जरा भी गुस्सा नहीं आया, जरा भी वात्सल्य कम नहीं हुआ गुरुदेव का! हाँ,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

यह बहुत बड़ी बात है हमारे श्रमण संघ में। अपना शिष्य दूसरे धर्म की प्रशंसा करे, दूसरे धर्म को श्रेष्ठ कहे, यह कैसे सहन हो सके? आगबबूला हो जाए, यदि आज ऐसी घटना बन जाए तो!

सिद्धर्षि के गुरु महान ज्ञानी और स्थितप्रज्ञ जैसे थे। एक तीव्र बुद्धिमान शिष्य के मन में बौद्ध-दर्शन के तर्क हलचल पैदा कर सकते हैं, यह बात वे अच्छी तरह जानते थे। तीव्र बुद्धिवालों को तर्क से और प्रेम से ही समझाया जा सकता है। गुस्सा करने से और तिरस्कार करने से तो ऐसे शिष्य विद्रोही मनवाले बन जाते हैं। मात्र पूर्वपक्ष सुनकर ही आवेश में आ जानेवाले विद्वान, श्रेष्ठ उत्तरपक्ष स्थापित नहीं कर सकते। सिद्धर्षि वास्तव में महान भाग्यशाली थे कि उनको ऐसे बहुमुखी प्रतिभावाले गुरु मिले थे। यदि ऐसे गुरु नहीं मिलते तो जैन परंपरा को सिद्धर्षि जैसे महान् विद्वान् साधुपुरुष नहीं मिलते।

गुरुदेव ने सिद्धर्षि की बातें सुनीं। फिर एक-एक बात लेकर अकाट्य तर्कों से उन बातों का सफाया कर दिया! सिद्धर्षि तो चकित रह गए! 'ओह! जैन-दर्शन के तर्क भी गजब के हैं, बौद्ध-दर्शन तो इसके आगे कुछ नहीं है!' उन्होंने अपने गुरुदेव से कहा : 'गुरुदेव, जैन-दर्शन श्रेष्ठ है। अब मैं बौद्ध धर्म स्वीकारना नहीं चाहता, परन्तु मुझे अपना यह निर्णय बौद्धाचार्य को बताने जाना पड़ेगा।'

गुरुदेव ने इनकार नहीं किया। उनको भय नहीं था शिष्य के चले जाने का! 'अब यह जाएगा और फिर बौद्ध-आचार्य ने तर्कजाल में फँसा दिया तो?' गुरुदेव निश्चिंत थे। उनको विश्वास था सिद्धर्षि पर कि 'यह मुझे सूचित किए बिना वहाँ नहीं रह जाएगा। वहाँ की बातों से प्रभावित होगा तो भी मुझे निवेदन करेगा ही और मेरे पास आने के बाद मैं उसको वापस सम्हाल लूँगा।'

सिद्धर्षि आए बौद्धाचार्य के पास :

ऐसा ही हुआ। सिद्धर्षि बौद्धाचार्य के पास गए। उन्होंने बौद्धाचार्य को जैन धर्म की श्रेष्ठता को सिद्ध करनेवाले तर्क दिए। बौद्धाचार्य ने प्रति तर्क देकर बौद्ध धर्म की श्रेष्ठता सिद्ध कर दी। तर्कप्रिय सिद्धर्षि को वे तर्क पसन्द आ गए। पुनः वे अपने धर्माचार्य के पास गए। बौद्धाचार्य ने जो तर्क दिए थे वे उनको सुनाये। जैनाचार्य ने उन तर्कों का खंडन किया और जैनधर्म की श्रेष्ठता सिद्ध की! सिद्धर्षि को ये तर्क अकाट्य लगे! सिद्धर्षि की सूक्ष्म बुद्धि भी चंचल हो गई। इक्कीस बार वे इस प्रकार बौद्धाचार्य और जैनाचार्य के पास आए, गए।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सिद्धर्षि 'ललितविस्तरा' पढ़ते हैं :

जब इक्कीसवीं बार सिद्धर्षि अपने गुरुदेव के पास आए, गुरुदेव ने उनसे वाद-विवाद नहीं किया, तर्क का जाल नहीं बिछाया। अपने आसन पर एक धर्मग्रन्थ छोड़कर वे बाहर चले गए। सिद्धर्षि ने सोचा : 'गुरुदेव को वापस लौटने में एक घंटा लग जाएगा, क्या करूँ?' उन्होंने गुरुदेव के आसन पर पड़े हुए धर्मग्रन्थ को उठाया और पढ़ने लगे। उस ग्रन्थ का नाम था 'ललितविस्तरा'। 'नमोत्थुणं' सूत्र पर लिखी हुई विवेचना थी। लिखनेवाले कौन थे? ये थे महान आचार्य हरिभद्रसूरिजी! जिन्होंने 'धर्मबिन्दु' ग्रंथ की रचना की है।

सिद्धर्षि 'ललितविस्तरा' को पढ़ते ही चले गये। गुरुदेव ने जान-बूझकर वापस लौटने में देरी की। उनका पक्का अनुमान था कि सिद्धर्षि 'ललितविस्तरा' को पढ़ेगा ही। ज्यों-ज्यों वे 'ललितविस्तरा' पढ़ते गए, धर्मतत्त्व की यथार्थता का बोध होता गया। 'जिनवचन' यथार्थता पर श्रद्धा दृढ़ होती गई। उस धर्मग्रंथ के सहारे उनकी बुद्धि को, मन को, अन्तरात्मा को समाधान प्राप्त होता गया। उन्होंने परम संतोष पाया। 'जिनवचन ही श्रेष्ठ है' - ऐसी प्रतीति हो गई।

सिद्धर्षि जैन-दर्शन में स्थिर हुए :

जब गुरुदेव वापस लौटे, सिद्धर्षि उनके चरणों में गिर गए, आँखों में से आँसू बहते चले। गुरुदेव ने सिद्धर्षि को गले लगाया। सिद्धर्षि ने कहा : 'गुरुदेव! आपने मुझ पर परम करुणा की है। अपार धैर्य से आपने मुझे सम्हाला है। आपका यह अनंत उपकार है मुझ पर...।' इसके बाद सिद्धर्षि ने जो 'उपमितिभवप्रपंच कथा' लिखी है, विश्व का अद्वितीय उपनय-ग्रंथ है वह। आप पढ़ना कभी उस ग्रंथ को।

कुछ समझे इस घटना में से? 'ललितविस्तरा' ने सिद्धर्षि को जिनवचन के प्रति पूर्ण श्रद्धावान बना दिया। उनका जीवन धर्ममय बन गया। चरित्रधर्म की आराधना से उन्होंने जीवन सफल बना दिया। 'जिनवचन अविरुद्ध है-'इसका निर्णय करना है तो सूक्ष्म बुद्धि चाहिए। यदि निर्णय नहीं करना है तो विश्वास कर लो कि जिनवचन अविरुद्ध ही होता है। जिनमें राग नहीं और द्वेष नहीं ऐसे वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा का वचन विरुद्ध हो ही नहीं सकता, ऐसा विश्वास कर लो। रागी और द्वेषी मनुष्य के वचन विश्वसनीय नहीं बन सकते। हाँ, अत्यंत महत्त्व की बात बताता हूँ यह।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

रागी-द्वेषी का तर्क भी कुतर्क :

आजकल रागी-द्वेषी मनुष्यों की बातों पर आप लोग ज्यादा विश्वास कर रहे हैं। भले आपके सांसारिक क्षेत्र में आपको विश्वास करना हो, आप जानो, पर आत्म-कल्याण के क्षेत्र में, पारलौकिक और परोक्ष तत्त्वों के विषय में रागी और द्वेषी मनुष्यों की तर्कयुक्त बातें भी मानी नहीं जा सकती। क्योंकि वे तर्क भी कुतर्क होते हैं। कुतर्क के जाल भी ऐसे गूँथे जाते हैं कि थोड़े समय के लिए सत्य भी हार जाय! मेरे खयाल से तो आप लोगों को इस प्रपंच में फँसना ही नहीं चाहिए। वाद और प्रतिवाद से पारलौकिक और पारमार्थिक तत्त्वों का निर्णय नहीं किया जा सकता। यदि ऐसे तर्क-प्रति तर्क से तत्त्वनिर्णय होता तो कभी का सर्वसम्मत तत्त्वनिर्णय हो जाता। परन्तु नहीं हुआ।

तत्त्वज्ञान के लिए इधर-उधर मत भटको :

आप लोगों को यदि धर्म की आराधना करनी है, आराधना करने के लिए धर्म का स्वरूप जानना है, तो इधर-उधर भटकने की आवश्यकता ही नहीं है। आपको परमात्मा जिनेश्वरदेव का धर्मशासन मिला है। सर्वज्ञ वीतराग परमात्मा का धर्मशासन मिला है। आप इस धर्मशासन के तत्त्वों को समझने का प्रयत्न करें।

घोर अज्ञान के घनघोर अंधकार को मिटानेवाला कितना अपूर्व तत्त्वज्ञान देता है जैनशासन! अन्तरात्मा के क्लेश, संताप और विषाद सब मिट जाते हैं इस तत्त्वज्ञान से। परस्पर विरोधी विचारों में भी सामंजस्य स्थापित करनेवाला 'अनेकान्तवाद' पढ़ो! अपने-अपने मन्तव्यों को दृढ़ता से प्रदर्शित करनेवाले नयवाद का अध्ययन करो। समग्र जीवसृष्टि का परिचय करानेवाला जीवविज्ञान पढ़ो। नौ तत्त्वों की सर्वांगसम्पूर्ण व्यवस्था समझो। जो तत्त्वज्ञान आपको सरलता से मिल सकता है, उसके प्रति आप ध्यान देते नहीं और इधर-उधर का तत्त्वज्ञान पाने दौड़ते हो, ध्यान रखना, गुमराह हो जाओगे।

प्रश्न : जहाँ अच्छा सुनने को मिले वहाँ तो जा सकते हैं न?

उत्तर : अच्छा किसको कहते हो? सुनने में मज़ा आ जाय, वह अच्छा? सुनने में आनन्द आ जाय, वह अच्छा? अच्छा क्या और बुरा क्या, इसका भेद करना आता है? ऊपर से अच्छा लगनेवाला कभी भीतर से बुरा होता है, यह जानते हो? जहरमिश्रित लड्डू छोटे बच्चे को अच्छा लगता है, क्योंकि वह लड्डू देखता है, उसको जहर नहीं दिखता है। धर्म की बातों में भी ऐसा होता है। ऊपर से तो लगे धर्म की बात, भीतर में हो अधर्म की बात! हाँ, आप समझदार

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विवेकी बन जाओ...फिर चिन्ता नहीं। विवेकबुद्धि महत्त्वपूर्ण वस्तु है। ऐसी विवेकबुद्धि जब तक जाग्रत न हो तब तक इधर-उधर सुनने मत जाया करो। इधर-उधर का साहित्य भी मत पढ़ो। अन्यथा उलझ जाओगे। जहाँ आत्मा का प्रश्न है, परलोक का प्रश्न है, वहाँ उलझन नहीं चाहिए। वहाँ तो स्पष्टता चाहिए। रास्ता साफ दिखना चाहिए। परमात्मा जिनेश्वर देव का शासन, आत्म-कल्याण का स्पष्ट रास्ता दिखाता है। परन्तु शासन को समझना पड़ेगा, इसलिए धर्मग्रन्थों का श्रवण-अध्ययन और चिन्तन-मनन करना होगा।

आचार्यश्री धर्म का स्वरूप समझा रहे हैं, उसमें वे कह रहे हैं कि अविरुद्ध शास्त्र के अनुसार जो प्रवृत्ति होती है उसको धर्म कहते हैं। धर्मप्रवृत्ति की प्रामाणिकता धर्मशास्त्र पर निर्भर करती है। वीतरागसर्वज्ञप्रणीत शास्त्र ही प्रामाणिक माने जा सकते हैं। अप्रामाणिक बनानेवाले होते हैं राग, द्वेष और मोह! असत् प्रवृत्ति करानेवाले भी ये ही राग वगैरह होते हैं।

राग-द्वेष व अज्ञान खतरनाक है :

राग पक्षपात करवाता है। द्वेष दूसरों के प्रति तिरस्कार करवाता है। दूसरे सही हों, फिर भी द्वेष उस सत्य को स्वीकार नहीं करने देता है। अपनी गलत बात हो, परन्तु राग गलत को भी सही सिद्ध करने देता है। अपनी गलत बात हो, परन्तु राग गलत को भी सही सिद्ध करने का प्रयत्न करवाता है। मोह यानी अज्ञान। अज्ञान तो सभी दोषों का उद्‌भवस्थान है। आत्मा के अज्ञान से ही जीव दुःखी होते हैं संसार में। जिन लोगों में राग-द्वेष और मोह भरा हो, उनकी बात विश्वसनीय नहीं हो सकती, क्योंकि वे गलत बात भी बता सकते हैं।

मरिचि ने उस राजकुमार कपिल को गुमराह कर दिया था न? जब राजकुमार ने मरिचि से पूछा कि ‘आपके पास धर्म नहीं है? आप मुझे क्यों अपना शिष्य नहीं बनाते? आप क्यों मुझे भगवान ऋषभदेव के श्रमणों के पास भेजते हो?’ उस समय मरिचि ने क्या सोचा था? उनका सोचना रागदशा से रंगा हुआ था। ‘मैं बीमार हूँ, भगवान के साधु मेरी सेवा करते नहीं, मुझे एक शिष्य की आवश्यकता है। यह राजकुमार मेरा शिष्य बन सकता है। मुझे जैसा चाहिए वैसा शिष्य मिला है।’ यों शिष्यराग से प्रेरित होकर मरिचि ने कहा : ‘कपिल, धर्म जैसे ऋषभदेव के श्रमणों के पास है वैसे मेरे पास भी है।’ जब कि वास्तव में मरिचि श्रमण नहीं था, श्रमणपन उसने त्याग दिया था, फिर भी रागदशा ने असत्य बोलने को प्रेरित किया।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मरिचि ने तो असत्य भाषण करके अपनी अधोगति की, परन्तु कपिल को भी गुमराह किया। इसलिए आचार्यदेव कहते हैं कि वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा का वचन ही विश्वसनीय है। वीतराग को असत्य बोलने का कोई प्रयोजन ही नहीं रहता। न होता है राग और न होता है द्वेष! फिर वे मिथ्याभाषण क्यों करेंगे?

धर्मानुष्ठान की पहली शर्त यह है कि वह धर्मानुष्ठान अविरुद्ध शास्त्र के अनुसार होना चाहिए। अविरुद्ध शास्त्र, उसका प्रमाण होना चाहिए। मनःकल्पित अनुष्ठान धर्म नहीं कहलाएगा। जिनप्रणीत शास्त्रों को प्रमाणभूत मानकर, उन शास्त्रों की आज्ञा के अनुसार आपकी त्याग और स्वीकार की प्रवृत्ति होनी चाहिए।

धर्मशास्त्रों का ज्ञान प्राप्त करना ही होगा :

क्यों ये सारी बातें सुनकर स्तब्ध हो गए? धर्म का प्रभाव सुनकर तो मुँह में पानी आ गया था! धर्म से मिलनेवाले उत्तम फल की बात सुनकर प्रसन्न हो गए थे! अब क्यों ढीले पड़ रहे हो? तो क्या जैसे-तैसे, मनमाने ढंग से आप जो क्रियाएँ करते हो, अनुष्ठान करते हो, उसको धर्म मानते हो? और ऐसे धर्म का फल स्वर्ग और मोक्ष मानते हो ऐसी धर्मशास्त्रनिरक्षेप धर्मक्रियाओं से यह फल नहीं मिल सकता। धर्मशास्त्रों के अनुसार धर्मक्रियाएँ, धर्मानुष्ठान करने होंगे। इसलिए धर्मशास्त्रों का ज्ञान प्राप्त करना पड़ेगा। इतना ही नहीं, दूसरी बातों को भी ध्यान में लेना पड़ेगा, जो आचार्यदेव इस ग्रन्थ में बता रहे हैं। आप शान्ति से सुनें, इन बातों पर विचार करें और धर्म का स्वरूप अच्छी तरह समझें।

आज, बस इतना ही।

❖ ❖ ❖

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

- ***परमात्मपूजन करके आप***
  (१) दुःखों के भय से मुक्त हुए हो?
  (२) गुणवान पुरुषों के प्रति अद्वेषी बने हो?
  (३) पवित्र कार्यों में हमेशा प्रवृत्तिशील रहे हो?
- ***अन्य व्यक्तियों की प्रगति-उन्नति देखकर खुश होनेवाले लोग बहुत कम होते हैं। ईर्ष्या से प्रेरित होकर व्यक्ति गलत व झूठी आक्षेपबाजी में उतर जाता है।***
- ***भय एवं प्रलोभन पर संपूर्णतया अंकुश रखे बगैर साधु भी स्मशान या निर्जन में रात्रिनिवास नहीं कर सकते फिर साध्वी तो कैसे कर सकती है?***
- ***'जहा सुक्खं' जैन श्रमणपरंपरा का अनूठा एवं अनुपम सूत्र है। कितना सुंदर भाव है इस सूत्र का! समझाना था उतना समझा दिया...फिर भी आप नहीं मानते हो 'आपको सुख हो वैसा करो' अपनी बात नहीं माननेवाले के लिए भी सुख की ही कामना!***

प्रवचन : ८

याकिनीमहत्तरासुनु महान श्रुतधर आचार्यदेव श्री हरिभद्रसूरिजी 'धर्मबिन्दु' ग्रन्थ में धर्म का स्वरूप समझा रहे हैं :

वचनाद्यदनुष्ठानमविरुद्धाद्यथोदितम्।
मैत्र्यादिभावसंयुक्तं तद्धर्म इति कीर्त्यते ।।

कोई भी क्रिया, कोई भी अनुष्ठान, सफलता की दृष्टि से किया जाता है। इच्छित परिणाम पाने की दृष्टि से किया जाता है। किसी भी कार्य को सफलता तभी प्राप्त होती है जब वह कार्य ठीक उसी प्रकार किया जाय कि जिस प्रकार होना चाहिए। कार्य करने की पद्धति वगैरह की हमें जानकारी नहीं होती है तो उस कार्य के विशेषज्ञ के पास चले जाते हैं और संपूर्ण जानकारी प्राप्त करते हैं। उस जानकारी के अनुसार कार्य करते हैं, तभी सफलता प्राप्त होती है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वकील का कहा मानते हो तो फिर ज्ञानी का क्यों नहीं? :

मान लो कि आप कोई मामले में उलझ गए, आपको कोर्ट में जाना पड़ा। आपको ज्ञान नहीं है कि जज के सामने क्या बोलना, कैसे बोलना। आप चाहते हो कि आप निर्दोष सिद्ध हो जायँ और उलझन से छुटकारा पा लें। आप किसके पास जाओगे?

सभा में से : वकील के पास!

महाराजश्री : क्योंकि कोर्ट के मामले में आप वकील को प्रामाणिक मानते हो। वकील आपका केस लेता है, समझता है और कोर्ट में आपको कैसे बोलना, वगैरह बताता है। जैसे वह कहता है वैसे ही आप कोर्ट में बोलते हो न?

सभा में से : वैसे ही बोलना पड़ता है, अन्यथा काम बिगड़ जाए!

महाराजश्री : आपकी दृष्टि कार्यसिद्धि की होती है। आप मानते हो कि केस जीतने के लिए वकील के कहे अनुसार ही बोलना होगा, चलना होगा...वगैरह। धर्मानुष्ठान, धर्मक्रिया के विषय में भी आपकी यह दृष्टि खुल जाय तो काम सिद्ध हो जाय, नैया पार लग जाय! 'यथोदितं अनुष्ठानम्' धर्म बनता है! जिस प्रकार अनुष्ठान करने को कहा गया है शास्त्रों में, उस प्रकार अनुष्ठान किया जाय तो वह अनुष्ठान धर्म कहला सकता है। धर्मग्रन्थों में सब प्रकार के अनुष्ठान बताए गए हैं। वे अनुष्ठान कब करने चाहिए, कितने समय में करने चाहिए, किस प्रकार करने चाहिए...वगैरह विस्तार से बताया गया है। सोचना यह है कि धर्म से हमें कार्यसिद्धि करनी है या नहीं? कार्यसिद्धि की जहाँ तमन्ना होती है वहाँ हम सब कुछ करने को तत्पर हो जाते हैं।

एक भाई थे, मेरे परिचित थे। 'ग्रेज्युएट' थे। धर्मस्थान और धर्मगुरुओं से परिचय नहीं था। पैसे ठीक ठीक कमाते थे। पत्नी भी अनुकूल मिली थी। शरीर निरोगी था। सब काम ठीक चल रहे थे। उस समय वे कहते थे : 'मैं धर्मक्रियाएँ करने में नहीं मानता, यह क्रिया इस प्रकार करनी चाहिए और इस प्रकार नहीं करनी चाहिए, धर्म के विषय में ऐसे बंधन नहीं होने चाहिए...' ऐसी तो वे कई बातें करते। परन्तु एक दिन उनकी पत्नी को कोई व्यंतर या भूत लग गया। पत्नी का स्वाथ्य बिगड़ने लगा। वे महाशय चिंतित हो गए। डॉक्टरों की दवाइयों से कोई फायदा नहीं हुआ। हकीमों के इलाज कामियाब नहीं बने। किसी ने राय दी : 'तुम अमुक पीर की दरगाह पर जाओ, वहाँ फकीर जैसे कहे वैसे करना।' ये भाई चले गए उधर! पत्नी को निरोगी और स्वस्थ करने का लक्ष्य था, तमन्ना थी, कहीं भी जाने को तैयार थे, कुछ भी

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

करने को तैयार थे। जो-जो क्रिया-अनुष्ठान करने पड़े, करने की तैयारी थी। जैसे फकीर ने अनुष्ठानादि करने को कहा, उन महाशय ने सब कुछ किया।

धर्मक्रिया में विधि का आदर करना जरूरी है :

धर्मक्रिया जिस प्रकार करनी चाहिए, उस प्रकार क्यों नहीं करते? धर्मानुष्ठान से कोई कार्यसिद्धि करने की तमन्ना ही नहीं है। इसलिए जैसे-तैसे मनचाहे ढंग से धर्मक्रियाएँ करते हैं। वह भी इसलिए कि 'ऐसी भी प्रमादयुक्त धर्मक्रिया करने से, पुण्यकर्म बंधता है...'ऐसा कहीं से सुन लिया है! ऐसे कुछ उदाहरण सुन लिए हैं, बस, आप विश्वस्त हो गए। आसन, मुद्रा, काल, शुद्धि, क्षेत्र इत्यादि बातों का लक्ष्य रखे बिना भी धर्मक्रिया करने लग गए! उसमें संतोष भी कर लिया! कुछ अहंकार भी कर लिया! सही बात है न? अविधि और अबहुमान से की हुई धर्मक्रियाओं पर भी अभिमान! 'मैंने इतनी धर्मक्रियाएँ कीं।' यह मिथ्या अभिमान है। मत करो अभिमान, अन्यथा डूब जाओगे भवसागर में।

विधि की उपेक्षा विधि के प्रति अनादर है। यह उपेक्षा और अनादर शत्रुता है धर्मक्रियाओं के प्रति। परमात्मा के मंदिर में जाते हो न? परमात्मा के प्रति प्रीति और भक्ति से प्रेरित होकर जाते हो? परमात्मा के प्रति प्रेम है तो उनके मंदिर के प्रति भी आदर होना स्वाभाविक है। कैसे जाते हो मंदिर? किस समय? कैसे वस्त्र पहनकर? क्या लेकर? परमात्मा के दर्शन-पूजन की विधि का ज्ञान प्राप्त किया है क्या? मंदिर में कैसे खड़े रहना, कैसे बैठना, कैसे बोलना, कैसे मंदिर से बाहर निकलना...वगैरह का ज्ञान लिया है?

धर्मक्रिया में उल्लास कब पैदा होगा? :

सभा में से : हमें तो ऐसा कोई ज्ञान नहीं! यों ही चले जाते हैं मंदिर!

महाराजश्री : इतने बड़े हुए और इतने वर्षों से मंदिर जाते हो, फिर भी ज्ञान प्राप्त नहीं किया...दुःख की बात है। अब आपकी बात समझ में आती है कि मंदिर में जाने पर भी हृदय शुष्क क्यों बना रहता है? भावोल्लास क्यों प्रकट नहीं होता है?

परमात्मा का दर्शन एक अनुष्ठान है। परमात्मपूजन एक अनुष्ठान है। अनुष्ठान यानी क्रिया। उस अनुष्ठान को 'धर्म' बनाने के लिए 'यथोदितं' यानी जिस प्रकार वह अनुष्ठान करने का ज्ञानी पुरुषों ने कहा है उस प्रकार करना होगा। उस प्रकार करने के लिए आपके मन में कोई कार्यसिद्धि का ध्येय होना

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

चाहिए। विश्वास होना चाहिए कि 'इस अनुष्ठान से मेरी कार्यसिद्धि अवश्य होगी।' है न विश्वास? कार्यसिद्धि का ध्येय है न? कौन-सा कार्य सिद्ध करना है? सुख पाना है या शुद्धि पाना है? ज्ञानी पुरुषों ने, अनुभवी पुरुषों ने बताया है कि परमात्मपूजन से चित्त की व्याकुलता दूर होती है और अपूर्व प्रसन्नता प्राप्त होती है।

वीतराग के पूजन से राग-द्वेष के तूफान शान्त होते हैं। इससे चित्त प्रसन्न बनता है। कोई भय नहीं, कोई विह्वलता नहीं। बनाना है ऐसा चित्त? होना है निर्भय? परमात्मपूजन से अवश्य यह कार्य हो सकता है।

लक्ष्य निश्चित करके धर्मक्रिया करो :

भौतिक सुखों के पीछे पागल मत बनो। इन्द्रियों के विषयसुखों में मत उलझ जाओ। वैषयिक सुखों में तो घोर अशान्ति और संताप ही मिलनेवाला है। वैषयिक सुखों की वासना को वीतराग भक्ति के द्वारा जलाकर भस्म कर दो। लक्ष्य का निर्धारण करना ही होगा। उस लक्ष्य की सिद्धि के लिए जाओ परमात्मा के मन्दिर में। दर्शन-पूजन की विधि के प्रति आदर होगा ही। परमात्मा को अपना परम प्रियतम मानो, उनकी शरण ले लो। जँचती है मेरी बात? यदि मेरी यह बात जँचेगी तो परमात्मपूजन का अनुष्ठान 'धर्म' बन जाएगा। अन्यथा अनुष्ठान मात्र अनुष्ठान ही रहेगा। फालतू क्रिया बनी रहेगी। कोई विशेष लाभ नहीं ऐसी क्रियाओं से।

आप लोग संसार में जगह-जगह विधि का पालन करते हो या नहीं? व्यापार करना है तो 'लायसेन्स' लेते हैं न? 'सेलटैक्स' नंबर लेते हो न? 'इन्कमटैक्स' का 'फॉर्म' भरते हो न? कितनी लंबी-चौड़ी विधि होती है इन सब में? पर आप करते हो! पसंद न भी हो, तो भी करते हो। क्योंकि आपको व्यापार करना है, पैसा कमाना है। लक्ष्य है, ध्येय है, कुछ पाने की प्रबल इच्छा है। इधर धर्म के विषय में भी यही बात है। कुछ पाने की प्रबल इच्छा जाग्रत होने पर विधि के प्रति अनादर, तिरस्कार या अरुचि नहीं रहेगी, परन्तु आदर और अभिरुचि जाग्रत होगी। अनुष्ठान को ठीक रूप से समझ कर यदि करोगे तो समय, आसन, मुद्रा आदि का पालन करोगे ही।

परमात्मा की पूजा कब करते हो आप?

'इस अनुष्ठान में कौन-सा समय अपेक्षित है,' यह विचार होना चाहिए। 'मुझे परमात्मपूजन करना है, परन्तु मुझे तो सुबह का ही समय मिलता है,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दोपहर में मुझे समय नहीं है। भाई, अपना मन पवित्र चाहिए, परमात्मा का पूजन किसी भी समय कर लो...!' आज ऐसी मूर्खतापूर्ण बातें करनेवाले बुद्धिमान ज्यादा दिखते हैं। ऐसे लोग संसार में सर्वत्र समय की पाबंदी समझते हैं, धर्म के विषय में वे समयातीत बन जाते हैं! क्योंकि ऐसे लोगों को धर्मक्रिया मात्र दिखावे के लिए अथवा किसी के आग्रह से करने की होती है। हृदय में नहीं होता है परमात्मा के प्रति प्रेम या भक्ति का भाव। अपनी अनुकूलता से धर्मानुष्ठान करने वालों में ज्यादातर प्रीति-भक्ति का अभाव ही दिखेगा। बम्बई जैसे बड़े नगरों में तो अब सूर्योदय से भी पूर्व भक्त लोग मन्दिर में पहुँचकर पूजन करने लगते हैं! न पूजनपद्धति का ज्ञान, न भक्तिभाव का उल्लास। 'वही रफ्तार बेढंगी', वही गतानुगतिकता! परमात्मपूजन में न एकाग्रता, न प्रसन्नता, न पवित्रता! जैसे गए थे मन्दिर में, वैसे ही निकले मन्दिर से कोरे के कोरे। कहते हैं कि 'कुछ पुण्य तो कमाते होंगे ये लोग?' कमाने दो उनको पुण्य। कमाते होंगे पुण्य, परन्तु पाप तो कमाते ही हैं। अविधि और अनादर से पापकर्म बंधते ही हैं। पाप-पुण्य की बात अभी जाने दें, इस जीवन पर परमात्मपूजन के श्रेष्ठ धर्मानुष्ठान का क्या प्रभाव पड़ा?

१. दुःखों के भय से मुक्त बने?

२. गुणवान पुरुषों के प्रति अद्वेषी बने?

३. धर्मानुष्ठानों में, पवित्र कार्यों में हमेशा उल्लसित बने?

यदि आप विधिपूर्वक 'यथोदितं' परमात्मपूजा करते रहो तो ये तीन प्रभाव आपके जीवन पर अवश्य पड़ेंगे। मुझे इस विषय में महामंत्री पेथड़शाह के जीवन का एक प्रसंग याद आता है। मालवदेश के यशस्वी महामंत्री परमात्मा जिनेश्वरदेव के परम उपासक थे।

महामंत्री पेथड़शाह का परमात्मपूजन :

उनके जीवनचरित्र में महत्त्वपूर्ण धर्मानुष्ठान परमात्मपूजन का ही पढ़ने को मिलता है। जबकि उनके जीवन में अपूर्व गुणसमृद्धि के दर्शन होते हैं। इससे यह फलित होता है कि एक भी धर्मानुष्ठान विधिपूर्वक, आदरपूर्वक और भावपूर्ण हृदय से किया जाता है तो उसका अपरिमेय प्रभाव जीवन पर पड़ता है। हमेशा मध्याह्नकाल में परमात्मपूजा किया करते थे।

पूजन का समय भी मध्याह्न ही है। स्नानादि से शरीरशुद्धि कर, शुद्ध और स्वच्छ वस्त्र पहनकर, पूजन की यथोचित सामग्री लेकर वे परमात्ममंदिर जाते

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

थे। 'निसीहि' बोलकर प्रवेश करना, परमात्मा को तीन प्रदक्षिणा देना, तीन बार प्रणाम करना, अंगपूजा और अग्रपूजा करना, भावपूजा में प्रवृत्त होने के लिए उत्तरीय वस्त्र के छौर से जमीन का प्रमार्जन करना, परमात्ममूर्ति के सन्मुख ही दृष्टि स्थापित करना, सूत्रपाठ का शुद्ध उच्चारण करना, सूत्र के अर्थ और भाव में अपने मन को जोड़ना, परमात्म-स्तवन में लीन-तल्लीन हो जाना, 'प्रार्थनासूत्र' के माध्यम से मार्गानुसारिता से निर्वाण तक माँग लेना और हृदय में अद्‌भुत भावोल्लास भरकर वापस घर लौटना, यह उनका प्रतिदिन का धर्मानुष्ठान था।

मानना ही पड़ेगा कि इस पवित्र धर्मानुष्ठान का ही प्रभाव था कि वे कभी दुःखों में घबराए नहीं, दीन बने नहीं। दुःख और संकट तो प्रत्येक मनुष्य के जीवन में आते हैं, परन्तु बहुत थोड़े धीर और वीर पुरुष होते हैं कि जो दुःख आने पर दीन नहीं बनते, संकट आने पर रोते नहीं। परमात्मश्रद्धा जिनकी आत्मा के प्रदेश-प्रदेश में फैल गई हो उनको भय किस बात का? वे तो अभय होते हैं और दूसरों को अभय करते हैं। महामंत्री पेथड़शाह ऐसे ही धीर-वीर महापुरुष थे। वे निर्भय थे। गुणवानों के प्रति आदरवाले थे और अपने उचित कर्तव्यों के पालन में नित्य उल्लसित थे। कभी किसी धर्मानुष्ठान में आलस्य नहीं, प्रमाद नहीं या थकान नहीं। परमात्मपूजन के विधिवत् धर्मानुष्ठान का यह प्रभाव था, यह बात मत भूलना। अलबत्ता, विधि उनके लिए सहज-स्वाभाविक बन गई थी। उनको यह विचार भी नहीं आता होगा कि 'मुझे ऐसी ऐसी विधि का पालन करना है!' वे परमात्मा की मूर्ति के माध्यम से परमात्मा के ही दर्शन करते होंगे। अन्यथा इतनी तल्लीनता पाषाण की मूर्ति में कैसे संभव हो सकती है?

जब पेथड़शाह परमात्मा की पुष्पपूजा करते थे, तब इतने तल्लीन बन जाते कि पास में आकर कौन खड़ा है, कौन बैठा है, उसका भी उनको ध्यान नहीं रहता था। मांडवगढ़ का राजा था जयसिंह, उसका एक नाम श्रीराम भी मिलता है कथा-ग्रन्थों में। दूसरे कुछ ईर्ष्यालु राजपुरुषों ने पेथड़शाह के विरुद्ध राजा के कान भर दिये। राजा को महामंत्री पर दृढ़ विश्वास था। उन विद्वेषी लोगों ने राजा से कहा : 'महाराजा, आप भले पेथड़शाह पर विश्वास करते रहो, परन्तु पेथड़शाह तो आपको पदभ्रष्ट कर, राजसिंहासन पर बैठना चाहता है।' राजा ने पूछा : 'इस बात का सबूत क्या है तुम्हारे पास? तुम्हारे कहने मात्र से मैं ऐसी बात नहीं मान सकता।'

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पेथड़शाह के विरुद्ध साजिश :

राजा जयसिंह बुद्धिमान था। वह समझता था कि पेथड़शाह की कीर्ति दिन-प्रतिदिन बढ़ रही है, राज्य की प्रजा का पेथड़शाह के प्रति अपार स्नेह बढ़ रहा है, इससे दूसरे राजपुरुषों में ईर्ष्या पैदा हुई है। दूसरे की उन्नति देखकर, दूसरे का विकास देखकर प्रसन्न होनेवाले मनुष्य कम होते हैं संसार में। ईर्ष्या से प्रेरित मनुष्य मिथ्या आरोप मढ़ने को तैयार होता है। यशकीर्ति के शिखर से गिराने के लिए वह अपना प्रयत्न करता रहता है। राजा ने राजपुरुषों की बात सुन ली। राजपुरुषों ने कहा : 'महाराजा, महामंत्री परमात्मा के पूजन के निमित्त मध्याह्न के समय मन्दिर जाते हैं, वहाँ दूसरे शत्रुराजाओं से मिलते हैं और आपके विरुद्ध षड्यंत्र रचा जाता है। आप महामंत्री पर इतना ज्यादा विश्वास नहीं करें।'

राजा को इन राजपुरुषों की बातों से महामंत्री की निष्ठा में जरा भी संदेह नहीं आया। राजपुरुषों को विदा कर, राजा ने मध्याह्न के समय उस जिनमंदिर जाने का सोच लिया, जिस मंदिर में महामंत्री पूजन करने प्रतिदिन जाया करते थे। जब वे मंदिर पहुँचे, उन्होंने मंदिर में जाकर जो दृश्य देखा, उनको हर्ष से रोमांच हो गया, आँखें हर्षाश्रु से गीली हो गईं। मंदिर में प्रशमरस से परिपूर्ण परमात्मा की सुन्दर प्रतिमा थी। प्रतिमा के सामने महामंत्री पेथड़शाह अप्रमत्त और एकाग्र होकर बैठे थे और पुष्पपूजा कर रहे थे। परमात्मा को सुगंधित पुष्पों से सजा रहे थे। पेथड़शाह के पास एक आदमी पुष्पों का थाल लेकर बैठा था, वह पुष्पों को अनुक्रम से जमाता था और पेथड़शाह पुष्पों से परमात्मा को सजाते थे। पेथड़शाह की दृष्टि परमात्मा की पावनकारी प्रतिमा पर स्थिर थी। शुद्ध घी के दीपक जल रहे थे। सुगंधिता धूप की सुवास से मंदिर सुवासित था। इतना आह्लादक वातावरण था कि राजा जयसिंह के तन-मन प्रफुल्लित हो गए। जरा भी आवाज न हो, उस प्रकार राजा महामंत्री के पास पहुँच गया। इशारे से उस आदमी को वहाँ से हटाकर राजा स्वयं वहाँ बैठ गया। राजा पुष्पों को अनुक्रम से जमाने का प्रयत्न करने लगा, परन्तु जमा नहीं पाया। पेथड़शाह के हाथ में जब गलत क्रम का पुष्प आया तब उन्होंने पास में देखा! अपने आदमी की जगह महाराजा को बैठे देखकर महामंत्री क्षणभर तो देखते रहे, परन्तु तुरन्त ही राजा ने उस आदमी को बिठा दिया और महामंत्री से पुष्पपूजा पूर्ण करने को कह कर राजा मंदिर के बाहर आ गए। राजा के मन में अनेक विचार आए :

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

'ऐसा परमात्मभक्त महामंत्री क्या कभी भी विश्वासघात जैसा घोर पाप कर सकता है? कभी नहीं। परमात्मपूजन में इतनी तल्लीनता विश्वासघात जैसा पाप करनेवाले को आ ही नहीं सकती। क्योंकि पापी का मन चंचल और अस्थिर होता है। यदि महामंत्री के चित्त में राज्यलोलुपता होती तो वह इतना निश्चल और स्थिर चित्त रख नहीं सकता था। इतनी प्रसन्नता और पवित्रता उसके मुख पर आलोकित हो नहीं सकती। मेरा सद्भाग्य है कि मुझे ऐसा गुणसमृद्ध महामंत्री मिल गया!'

ईर्ष्या : इन्सान की बड़ी कमजोरी है :

पेथड़शाह के परमात्मपूजन ने राजा को प्रभावित कर दिया। राजा के मन में पेथड़शाह के प्रति आदरभाव बढ़ गया। राजा ने उन ईर्ष्यालु राजपुरुषों को राजसेवा से निकाल दिया। पेथड़शाह को उन राजपुरुषों के प्रति भी विद्वेष नहीं हुआ। वे जानते थे मानव-सहज निर्बलता को। ईर्ष्या मानव-सहज कमजोरी है। दूसरों का उत्कर्ष देखकर प्रसन्न होनेवाले गुणवान पुरुष संसार में बहुत थोड़े होते हैं! इसमें भी यह तो राजनीति! राजनीति में तो एक-दूसरे का पैर खींचने की ही चालें चलती हैं। 'दूसरे को कुर्सी से उतारो और अपन बैठ जाओ!' यही चलता है न?

प्रश्न : अनुष्ठान 'यथोदितं' करना चाहिए, वैसे करने से लाभ भी अच्छा मिलता है, परन्तु मानो कि 'यथोदितं' अनुष्ठान नहीं किया तो क्या नुकसान होता है?

उत्तर : अवश्य! नुकसान होगा ही, इसमें पूछने का क्या? कोर्ट में वकील ने आपको जिस प्रकार बोलने को कहा हो, आप उस प्रकार नहीं बोलो और मन में आया सो बोल दिया, तो नुकसान होगा कि नहीं? मकान बाँधना है, इन्जीनियर ने जिस प्रकार कहा उस प्रकार नहीं बाँधा तो नुकसान होगा कि नहीं?

द्रौपदी को पाँच पति क्यों मिले? :

द्रौपदी के पाँच पति थे। पाँच पांडवों की पत्नी थी द्रौपदी। जानते हो न? क्यों पाँच पति करने पड़े द्रौपदी को? उसके पूर्वजन्म की एक घटना इसमें कारणभूत है। कारण के बिना कार्य नहीं बनता। कार्य है तो कारण होना ही चाहिए। द्रौपदी अपने पूर्वजन्म में साध्वी थी। उसने चारित्र्य-धर्म अंगीकार किया था। जिस प्रकार तीर्थंकरों ने, गणधरों ने चारित्र्यधर्म का पालन करने को कहा है, वैसे पालन करना चाहिए। चारित्र्य का अनुष्ठान तभी धर्म बनता

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

है। साधु का संयमधर्म और साध्वी का संयमधर्म, व्रत समान होते हुए भी मर्यादाएँ भिन्न होती है। लक्ष होता है व्रतपालन का। उस साध्वी के मन में आया कि 'मैं भी साधुओं की तरह स्मशान में जाकर रात्रि के समय ध्यान लगाऊँ! साधु अकेला रात्रि में स्मशान जा सकता है तो साध्वी क्यों नहीं?' उसने अपनी गुरुणी से निवेदन क्या, अपने विचार कह सुनाये। गुरुणी ने कहा : 'देखो, हर बात में साधुओं का अनुकरण साध्वी नहीं कर सकती। तुम्हें ध्यान करना है तो अपने स्थान में, उपाश्रय में रहते हुए करो। रात्रि के समय साध्वी को बंद मकान में ही रहना चाहिए। यह मत भूलो कि अपना शरीर स्त्री का है।' गुरुणी की बात शिष्या को पसंद नहीं आई। अरुचि और आग्रह में आकर उसने कहा : 'मोक्षमार्ग एक है, फिर इसमें भेद क्यों? साधु और साध्वी की आचारमर्यादाओं में भेद करना उचित नहीं है। साध्वी भी कर्मक्षय करके मोक्ष में जा सकती है तो फिर साध्वी अकेली नहीं रह सकती, साध्वी रात्रि में मकान के बाहर नहीं रह सकती...इत्यादि नियम मुझे ठीक नहीं लगते।'

भय एवं प्रलोभन : साधना में बाधक :

साध्वी की बात शान्ति से सुनकर, मृदु भाषा में गुरुणी ने कहा : 'तपस्विनी, सर्वज्ञ परमात्मा के प्रति यदि श्रद्धा और विश्वास है तो ऐसे विचार नहीं करने चाहिए। एकदम गंभीरता से और गहनता से सोचोगी तो तुम्हें अवश्य प्रतीति होगी कि अपने लिए संयमपालन हेतु जो नियम बनाए व बताए गए हैं वे उचित हैं, सर्वथा उचित हैं। भय और प्रलोभन की वृत्ति पर संपूर्ण काबू पाए बिना स्मशान, शून्यगृह वगैरह स्थानों में साधु भी रात्रिनिवास नहीं कर सकते। भय और प्रलोभन की वृत्तियाँ कितनी गहरी हैं, यह समझनी चाहिए। साधना के मार्ग में ये दो वृत्तियाँ बाधक हैं। मनुष्य साधनामार्ग से क्यों फिसलता है? भय से अथवा प्रलोभन से।'

गुरुणी जो बात कह रही है अपनी शिष्या को, अति महत्त्वपूर्ण बात है। जिस किसी को मोक्षमार्ग की आराधना करनी है, कोई भी साधना करनी है तो उसे भय को जीतना पड़ेगा, प्रलोभनों से संपूर्णतया छुटकारा पाना होगा। स्मशान और शून्यगृह जैसे स्थानों में जाकर वे महात्मा रातभर ध्यान लगाकर खड़े रहते थे, जिन्होंने भय पर विजय पाई थी। जो निर्भय बने हुए थे। भय पर विजय पाने के रास्ते धर्मग्रन्थों में बताए हुए हैं। निर्भय बनने का क्रमिक मार्ग बताया गया है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ध्यान के लिए स्मशान में कब जाया जाता है?

पहले मकान में रातभर ध्यानस्थ खड़े रहने का अभ्यास किया जाय। वह सहज-स्वाभाविक होने के पश्चात् कड़ाके की सर्दी में भी निर्वस्त्र होकर मकान में ही रातभर ध्यानस्थ खड़ा रहने का। स्वयं का शरीर सर्दी सहजता से सहन कर सके, वहाँ तक यह अभ्यास करने का। फिर मकान के बाहर, द्वार पर रातभर खड़े रहने का और ध्यान लगाने का। चूहा, बिल्ली, कुत्ता वगैरह पशु काटे तो भी हिलने का नहीं, दूर खिसकने का नहीं। यहाँ भी सहजता से उपद्रवों से निर्भय होने के बाद, गली के नुक्कड़ पर जाकर रात्रि में कायोत्सर्ग ध्यान करने का। वहाँ कोई चोर, डाकू या चौकीदार वगैरह के उपद्रव हो तो भी निर्भयता से सहन करने का। कई दिनों तक इस प्रकार रात्रिध्यान करके फिर नगर के बाहर, नगर के प्रवेशद्वार के पास ध्यानस्थ दशा में रात्रि व्यतीत करने की। वहाँ तो जंगली पशुओं के उपद्रव भी हो सकते हैं। सर्प वगैरह जहरीले पशुओं का भी उपसर्ग हो सकता है। उस समय निर्भय और निष्प्रकंप रहने का अभ्यास किया जाए। इस अभ्यास में सफलता पाने के बाद शून्यगृह-खंडहरों में जाकर रात्रि व्यतीत करने की होती है। रातभर खड़े रहने का, परमात्मध्यान में मन को लीन रखने का। खंडहरों में भी पशु-पक्षी के जो भी उपद्रव हो, विचलित हुए बिना सहन करने के होते हैं। भूत-पिशाच-व्यंतर आदि के उपद्रव भी हो सकते हैं। उस समय जरा भी भयभीत नहीं होने का। यहाँ खंडहरों में सफलता पाने के बाद ही स्मशान में जाकर कायोत्सर्ग-ध्यान करने का होता है। स्मशान में तो अनेक प्रकार के उपद्रव हो सकते हैं, परन्तु वहाँ भी साधक सिंह की तरह निर्भय रहे और आत्मध्यान में लीन बना रहे।

जिस प्रकार उपद्रव-उपसर्ग हो सकते हैं ऐसे स्थानों में, वैसे प्रलोभन भी आ सकते हैं। उस समय विरागी और अनासक्त बना रहना होता है। न राग न भय! इसको कहते हैं साधना! समझते हो साधनामार्ग को? ऐसे ही राग-द्वेष और भय के साथ घर में बैठे बैठे, आपको मोक्ष मिल जाएगा, क्या? साधनामार्ग का मार्गदर्शन लिए बिना, जैसे-तैसे साधना करने से सिद्धि मिल जाएगी? ध्यान रखना, जो आराधना-साधना करनी हो, उस आराधना के विशेषज्ञ ज्ञानी पुरुषों से मार्गदर्शन लेकर ही आराधना करो। उसमें आप अपनी टांग मत अड़ाया करो। वह साध्वी अपनी गुरुणी की बात नहीं मानती है। उसके मनमें प्रबल इच्छा जाग्रत हो गयी थी 'स्मसान में जाकर रात्रि व्यतीत करूँ और आत्मध्यान करूँ।'

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अकेली साध्वी : रात को गई स्मशान में :

ध्यान करने की प्रबल इच्छा तो अच्छी है, परन्तु 'स्थान' का आग्रह बुरा है। द्रव्य, क्षेत्र और काल का ऐसा आग्रह नहीं होना चाहिए कि जिससे अपने राग-द्वेष प्रबल हो जाएँ। धर्म-आराधना का रहस्य भूलकर, धर्म के नाम मनुष्य आज द्रव्य, क्षेत्र और काल को लेकर कितने झगड़े कर रहा है। कौन समझाए उन समझदारों को, ठेकेदारों को? द्रव्य, क्षेत्र और काल को लेकर मार्गदर्शन दिया जा सकता है, परन्तु झगड़ने की कोई आवश्यकता नहीं है। जब उस साध्वी ने स्मशान में जाकर आत्मध्यान करने का आग्रह कर लिया, तब गुरुणी ने कहा : 'जहा सुक्खं' 'तुम्हें जैसे सुख हो, वैसे करो।' जैन श्रमण परंपरा का यह बहुत अच्छा सूत्र है 'जहा सुक्खं'! कितना अच्छा भाव है इस सूत्र का! 'समझाना था इतना समझा दिया, कहना था इतना कह दिया, फिर भी नहीं मानते हो, तो जैसे तुम्हें सुख हो वैसे करो!' अपनी बात नहीं माने, उसके लिए भी सुख की ही कामना! कितनी बढ़िया बात है! ऐसा नहीं कि 'मेरी बात नहीं मानता है तो दुःखी हो जाएगा। निकल यहाँ से, नर्क में जाएगा...' ऐसी कोई बकवास नहीं। कोई तनाव नहीं, कोई 'टेंशन' नहीं! अपना फर्ज अदा कर दिया, सच्चा मार्ग दिखा दिया, प्रेम से समझाया, तर्क से समझाया; फिर भी नहीं समझता है तो दूसरा क्या इलाज? अब तुम स्वयं समझ लो अपने सुख का मार्ग!' अपनी अच्छी बात भी दूसरा नहीं माने तब उसके अहित का विचार नहीं करना चाहिए। गुरुणी अपनी शिष्या से कहती है : 'जहा सुक्खं'! वह साध्वी ध्यानसाधना करने के लिए नगर बाहर के स्मशान में अकेली जाती है।

साध्वी मानसिक पतन की खाई में :

श्मशान नगर के बाहर, नजदीक ही था। अंधेरा हो गया था। स्मशान की भयानकता ने उसको भयभीत नहीं किया। उसने कायोत्सर्ग-ध्यान लगाया। वह खड़ी रही नगर की तरफ मुँह करके। जहाँ वह खड़ी थी, उसके सामने थोड़ी दूर एक मकान था। उस मकान में दीयों की रोशनी थी। मकान में से संगीत की मधुर आवाज़ आ रही थी। साध्वी ने अपना मन ध्यान में लगाने का प्रयत्न तो किया, पाँचों इंद्रियों को ध्येय में एकाग्र करने का प्रयत्न किया, फिर भी वह एकाग्र नहीं कर पाई मन को। उसके कान उस मधुर संगीत का श्रवण करने लगे! मन ने श्रवणेन्द्रिय को साथ दिया। 'अच्छा संगीत है, कहाँ से आवाज आ रही है?' मन ने विकल्प किया। इस विकल्प ने चक्षुरिन्द्रिय को

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्रेरित किया। आँखें खुलने लगीं, सामने देखा, तो दूर रोशनीवाला मकान दिखाई दिया। कान और आँख मन के सहारे वहाँ चले गए। आत्मध्यान में से मकानध्यान, संगीतध्यान लग गया!

आप लोग माला फेरते हो न? पंचपरमेष्ठि का ध्यान करते-करते तिजोरीध्यान में पहुँच जाते हो न? रसोईघर में चले जाते हो न? कैसी-कैसी विचारधाराओं में बह जाते हो? आत्मध्यान में स्थिरता पाने के लिए इन्द्रियविजय अति आवश्यक है। इन्द्रियों की चंचलता आत्मध्यान में स्थिर नहीं होने देती है। उस साध्वी का भी चित्त चंचल हो गया। जिस मकान को वह देख रही थी, वह मकान एक वेश्या का था। वेश्या मकान के झरोखे में आकर बैठी। विविध श्रृंगार से उसने अपनी काया सजाई थी। उसके आस-पास पाँच पुरुष बैठे थे। पाँचों के साथ वेश्या हास्य-विनोद कर रही थी, वे वेश्या को प्रसन्न करने के लिए विविध मोहचेष्टा कर रहे थे। साध्वी यह दृश्य एकाग्रता से देखती है। वार्तालाप की आवाज़ सुनती है और उसका मन अनेक विकल्पों के जाल रचने लगा।

'यह स्त्री कितनी पुण्यशालिनी है। पाँच-पाँच पुरुषों का सुख उसको मिल रहा है। कितना प्यार करते हैं ये पुरुष इसे! इस स्त्री का कितना महान सौभाग्य है!'

साध्वी को वह दृश्य अच्छा लगा। स्त्री-पुरुष की मोहचेष्टा उसको अच्छी लगी, प्यारी लगी। बस, मनुष्य का स्वभाव है कि उसको जो अच्छा लगता है वह पाने के लिए उसका मन लालायित हो ही जाता है। साध्वी सोचती है :

'मुझे भी ऐसा सुख चाहिए...परन्तु इस जीवन में तो मुझे मिल नहीं सकता, क्योंकि मैं साध्वी हूँ, परन्तु आनेवाले जन्म में मिल सकता है। मेरी तपस्याओं के फलस्वरूप मुझे ऐसा सुख मिल सकता है। मुझे ऐसा सुख चाहिए।'

तपश्चर्या का सौदा खतरनाक

साध्वी का चित्त वैषयिक भोगसुख के प्रति अत्यन्त आकृष्ट हो गया, चित्त में व्यग्रता व्याप्त हो गई। उसके चित्त में वह रोशनी से जगमगाता मकान, वह झरोखा, वह औरत, वे पाँच पुरुष, उनका रंगराग, प्रेमालाप इत्यादि छा गया बाहर से तो वह उग्र धर्मसाधना में निमग्न दिखती है। स्मशान में कायोत्सर्ग-ध्यान करनेवाली साध्वी दूसरा ही ध्यान करने में लीन हो गई!

'यथोदितं' का उल्लंघन किया साध्वी ने! जिनाज्ञा का भंग किया। स्मशान

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

में अकेली साध्वी को रात्रि के समय नहीं जाना चाहिए था, फिर भी गई, यह जिनाज्ञा का उल्लंघन किया। इसका परिणाम क्या आया? उसके मन में संसारसुख की वासना दृढ़ हो गई। उसने अपने मन में संकल्प कर लिया : 'मेरी तपश्चर्या के फलस्वरूप मुझे आनेवाले जन्म में पाँच पुरुषों का सुख मिले।' तपश्चर्या का सौदा कर लिया। महान कर्मनिर्जरा करनेवाली तपश्चर्या का नीलाम हो गया। संसार के तुच्छ असार भोगसुख देकर तपश्चर्या समाप्त हो गई।

क्यों हुआ ऐसा? पतन क्यों हुआ? प्रलोभन ने पछाड़ा उस साध्वी को। उस वेश्या के विलास का दर्शन साध्वी के लिए प्रबल प्रलोभन बन गया। भय और प्रलोभन पर विजय पाये बिना साधना में सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती। ज्ञानी पुरुषों ने मोक्षमार्ग की जो आराधना बताई है, उसके जो नीति-नियम बताए हैं, विधि-विधान बताए हैं, वह इस दृष्टिकोण से बताए हैं कि साधक भय और प्रलोभनों में फँसकर गिर न जाए। हमें गहराई में जाकर सोचना चाहिए! तो विधि के प्रति, मर्यादाओं के प्रति अरुचि नहीं होगी, तिरस्कार नहीं होगा।

इस प्रकार जिनाज्ञा को लक्ष्य में लेकर, ज्ञानी पुरुषों के बताए हुए मार्ग पर चलें और आत्मकल्याण की साधना करें, यही शुभ कामना।

आज, बस इतना ही।

❖ ❖ ❖

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

- ***गुणवान होना फिर भी सरल है पर गुणानुरागी होना काफी कठिन है। दूसरे मनुष्यों में गुण देखकर खुश होते हो न?***
- ***जो जड़ या चेतन वस्तु मनुष्य के शुभ और शुद्ध भावों की जागृति में निमित्त बनते हैं, वे निमित्त व्यक्ति के लिए दर्शनीय, वंदनीय, पूजनीय होते हैं।***
- ***तीव्र राग और द्वेष से एक भी पाप मत करो। पाप को पाप समझो! पापत्याग का आदर्श रखो।***
- ***हृदय में पापाचरण का तीव्र दुःख महसूस करो।***
- ***मातापिता का बच्चों के साथ का अनुचित व्यवहार बहुधा बच्चों को धर्म से विमुख बना डालता है। उनके मन विद्रोही हो जाते हैं। इसलिए अच्छी भावना की अभिव्यक्ति भी मीठे व मधुर शब्दों में करो।***
- ***संघर्ष के बिना शांति नहीं!***
  शक्ति के बिना सिद्धि नहीं!

प्रवचन : ९

याकिनीमहत्तरासुनु महान श्रुतधर आचार्यश्री हरिभद्रसूरीश्वरजी 'धर्मबिन्दु' ग्रंथ में धर्म का स्वरूप समझाते हुए फरमाते हैं :

वचनाद् यदनुष्ठानमविरुद्धाद् यथोदितम्।
मैत्र्यादिभावसंयुक्तं तद्धर्म इति कीर्त्यते ।।

इस ग्रंथ में आचार्यश्री अनुष्ठानात्मक धर्म की परिभाषा दे रहे हैं, यह बात ध्यान में रखनी है। अनुष्ठानात्मक धर्म को व्यवहारधर्म भी कह सकते हैं, क्रियात्मक धर्म भी कह सकते हैं। अलबत्ता, क्रियात्मक धर्म भावशून्य नहीं होता। भावशून्य क्रिया अनुष्ठानधर्म नहीं बन सकता। हमारे जीवन की प्रत्येक क्रिया धर्म बन सकती है। यदि वह क्रिया-अनुष्ठान (१) अविरुद्ध वचन से प्रमाणित हो। (२) जिस प्रकार जो अनुष्ठान करने का विधान शास्त्रों में बताया गया है उस प्रकार वह अनुष्ठान किया जाय और (३) मैत्री-प्रमोद-करुणा और माध्यस्थ्य-भाव से युक्त मनुष्य द्वारा अनुष्ठान किया जाय।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

धर्ममय जीवन ही शांतिपूर्ण बनेगा :

मात्र धार्मिक क्रियाओं की बात नहीं है, जीवन की प्रत्येक क्रिया को धर्म की यह परिभाषा स्पर्श करती है। इसी ग्रंथ में उन क्रियाओं को ग्रंथकार महात्मा ने बताया है और मार्गदर्शन दिया है! मकान कहाँ और कैसा बनाना, शादी किस से और कब करनी, धनप्राप्ति कैसे करनी... इत्यादि बातों को लेकर ग्रंथकार ने यथोचित पथ-प्रदर्शन किया है। यदि आप लोग यह मार्गदर्शन ग्रहण करके जीवन जियो तो आपका समग्र जीवन धर्ममय बन सकता है। चाहते हो न जीवन को धर्ममय बनाना? इस प्रकार का धर्ममय जीवन ही शान्तिपूर्ण हो सकता है। आप भयमुक्त बनेंगे, द्वेषरहित बनेंगे और अखिन्न बने रहेंगें। धर्ममय जीवन के ये प्रत्यक्ष लाभ हैं। दो-चार धर्मक्रियाएँ कर लेने मात्र से जीवन धर्ममय नहीं बन जाता।

सभा में से : हम लोग तो ऐसा ही मान रहे हैं कि दो चार धर्मक्रिया कर लेने से धार्मिक बना जा सकता है!

महाराजश्री : मान्यता बदलनी पड़ेगी। यह मान्यता भ्रान्तिपूर्ण है, मिथ्या है। अरे, वे दो-चार धर्मक्रियाएँ भी किस प्रकार करते हो? विधिपूर्वक करते हो? भावपूर्ण हृदय से करते हो? औचित्य के साथ करते हो? कैसे मान लिया आपने अपने आपको धार्मिक? दुःखों का भय सताता है न? गुणवान पुरुषों के प्रति द्वेष हो जाता है न? खेद, ग्लानि, थकान महसूस करते हो न? फिर कहाँ के धार्मिक? धार्मिक मनुष्य में ये बातें नहीं होतीं। धार्मिक मनुष्य का जीवन औचित्यपूर्ण होता है। सर्वत्र औचित्य का पालन वह करता है। अनुचित प्रवृत्ति उसके जीवन में नहीं होती है। ठीक है न? है न ऐसा जीवन?

गुणानुरागी बनना कठिन है :

मांडवगढ़ के महामंत्री पेथड़शाह के जीवन की एक और रोचक एवं बोधक घटना है। मालवा में उस समय ताम्रावती नगरी में भीम नाम का एक सोने का व्यापारी रहता था। धनवान तो वह था ही, परन्तु वह गुरुभक्त भी वैसा ही था। अपने गुरुदेव का स्वर्गगमन होने से उसको इतना दुःख हुआ कि उसने अन्न का त्याग कर दिया और संपूर्ण ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करने लगा। एक दिन उसके मन में विचार आया कि 'मैं अपने देश के सभी ब्रह्मचारी स्त्री-पुरुषों का सन्मान-सत्कार करूँ।' उसने प्रत्येक ब्रह्मचारी को पाँच-पाँच वस्त्र और परमात्मपूजन के लिए रेशमी वस्त्र भेजे। ब्रह्मचारी को दूसरे ब्रह्मचारी के प्रति

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

स्नेह होता है। जो गुण, जो धर्मसाधना आपको प्रिय होती है, वह धर्मसाधना, वह गुण दूसरे मनुष्यों के जीवन में आप देखें तो आपको क्या होता है? प्रसन्नता होती है न? उनकी भक्ति करने का भाव जागृत होता है न?

अपने अन्तःकरण को टटोलो। अपने जीवन पर चिंतन करो। गुणवान होना फिर भी सरल है, गुणानुरागी होना सरल नहीं। स्वयं ब्रह्मचारी पिता, जब उसका लड़का ब्रह्मचारी बनना चाहे तो क्या कहेगा?

सभा में से : मना कर देंगे, 'छोटी उम्र में ब्रह्मचर्य का पालन नहीं करने का है' - ऐसा कहते हैं।

महाराजश्री : इसका अर्थ तो यह होता है कि ब्रह्मचर्य-व्रत अच्छा है, इसलिए पिता ने व्रत ग्रहण नहीं किया है, परन्तु भोगसुख भोगने की शक्ति नहीं रही इसलिए व्रत ले लिया है। शक्ति होगी तब तक व्रत नहीं लेगा वह! सही बात है न? अन्यथा युवान पुत्र को ब्रह्मचारी बनाने में ब्रह्मचारी पिता कभी मना नहीं करे। ब्रह्मचर्य-व्रत जिसको प्रिय लगा और व्रत ग्रहण किया, ऐसा पिता तो लड़के-लड़की की शादी में भी शामिल नहीं होता। यदि कर्तव्य से शामिल होना पड़े तो शादी के कार्य में वह नीरस रहेगा। उसको ब्रह्मचर्य-व्रत धारण करनेवाले बहुत प्रिय लगेंगे। ब्रह्मचर्य-व्रत तो उदाहरणरूप मैं कह रहा हूँ, कोई भी गुण हो, जो गुण अपने में हो, वह गुण दूसरों में देखकर प्रसन्नता ही होनी चाहिए। गुणवान पुरुषों के प्रति स्नेह और सद्भाव होना चाहिए। यदि स्नेह और सद्भाव प्रकट नहीं होता है, तो समझना कि अपना मन धार्मिक नहीं है!

सभा में से : हम लोग तो गुणवानों में भी दोष देखते हैं!

महाराजश्री : बहुत ज्यादा बुद्धिमान हो न आप लोग! गुणवान पुरुषों में भी दोष देखनेवाला और द्वेष करनेवाला धर्मक्षेत्र में प्रवेश पाने के लिए भी अयोग्य है। परन्तु आज तो ऐसे लोग ही ज्यादातर धर्मक्षेत्र में पाए जाते हैं न? क्योंकि कोई रोकनेवाला ही नहीं है! जिसके मन में आया वह घुस गया धर्मक्षेत्र में! घोर अव्यवस्था फैली है धर्मक्षेत्र में। आज ऐसे अयोग्य लोगों को बाहर निकालनेवाला कोई नहीं है और योग्य आत्माओं की कद्र करनेवाला कोई नहीं है।

भीम श्रावक पेथड़शाह को भेंट भेजता है :

महानुभाव भीम स्वयं ब्रह्मचारी था, ब्रह्मचर्य-व्रत उसको बहुत प्यारा था इसलिए दूसरे ब्रह्मचारी भी उसको प्रिय थे। उनका सन्मान करने का भाव

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जगा। सभी ब्रह्मचारियों को वस्त्र भेजे वैसे महामंत्री पेथड़शाह को भी वस्त्र भेजे। हालाँकि पेथड़शाह ब्रह्मचारी नहीं थे, परन्तु तत्कालीन जैन संघ के वे सर्वमान्य श्रेष्ठ श्रावक थे। इसलिए भीम ने उनको भी अपनी भेंट भेजी थी। भीम ने अपने दो मित्रों को वस्त्र लेकर मांडवगढ़ भेजा था। वे दोनों मांडवगढ़ पहुँचे। पेथड़शाह की हवेली पर जब वे पहुँचे और भीम का संदेश सुनाया, तब पेथड़शाह का हृदय गद्‌गद् हो गया। अपने मन में भीम के प्रति अनहद अनुराग उत्पन्न हुआ। परन्तु महामंत्री ने भीम की भेंट को स्वीकार नहीं किया। उन्होंने उन दो आगन्तुकों से कहा : 'मैं आपका स्वागत करता हूँ, आप महानुभाव भीम की ओर से उत्तम भेंट लेकर आए हो, मैं उसका स्वीकार अभी यहाँ नहीं करूँगा, आप नगर के बाहर जो धर्मशाला है वहाँ पधारें, मैं इस भेंट का वहाँ उचित स्वागत करूँगा, बाद में स्वीकार करूँगा।

उन दो आगन्तुको को बड़ा आश्चर्य हुआ। 'महामंत्री इन वस्त्रों का स्वागत करेंगे?' बेचारे वे लोग महामंत्री का भव्य आदर्श कैसे समझ पाते? महापुरुषों के संकेत हर कोई मनुष्य नहीं समझ पाता। आप लोग समझ गए महामंत्री के संकेत को? क्यों उन्होंने वहाँ हवेली में ही भेंट का स्वीकार नहीं किया? उन दो आगन्तुक पुरुषों के मुँह से महामंत्री ने महानुभाव भीम के जीवन के बारे में बहुत-सी बातें सुनीं थी। सुनते-सुनते महामंत्री के हृदय में वैषयिक सुखों के प्रति वैराग्य पैदा हो गया था। उत्तम भाव पैदा हो गए थे। उन उत्तम भावों की जागृति में निमित्त बनी थी वह भेंट। ऐसे निमित्त का सत्कार करना ही चाहिए न? जो भी जड़ या चेतन, मनुष्य के शुभ या शुद्ध भावों की जाग्रति में निमित्त बनता है;। वह निमित्त मनुष्य के लिए दर्शनीय, पूजनीय और अभिनन्दनीय बनता है। वहाँ जड़-चेतन का भेद नहीं किया जाता।

अच्छे निमित्त भी उपकारक होते हैं :

कुछ लोग ऐसा तर्क करते हैं कि 'परमात्मा की मूर्ति तो जड़ होती है, पाषाण की या धातु की होती है, उससे क्या मिलने का? पत्थर की गाय दूध नहीं देती...' कितना मूर्खतापूर्ण तर्क है यह!! शिल्पी पत्थर की गाय बनाकर बाजार में बेचता है तो दूध क्या, हजारों रूपयें प्राप्त करता है। परमात्मा की मूर्ति भले जड़ है, परन्तु हमारे राग-द्वेष के दुर्भावों को मिटाती है और वैराग्य या भक्ति के भाव जागृत करती है, यानी शुभ भावों की जागृति में निमित्त बनती है, इसलिए वह मूर्ति दर्शनीय और पूजनीय बनती है। जिससे हमें शुभ या शुद्ध भावों की प्राप्ति हो, हमारे लिए वह वंदनीय और पूजनीय! यह

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कृतज्ञता गुण है। उपकारी के प्रति सन्मान दृष्टि, पूज्य दृष्टि हुए बिना हम धार्मिक बन नहीं सकते। अरे, मानवता से भी गए! निमित्त का उपकार मानना ही पड़ेगा। यदि निमित्त को उपकारी नहीं माना तो गुरु को भी उपकारी नहीं मान सकते। गुरु भी तो निमित्तमात्र हैं।

प्रश्न : गुरु तो चेतन है न?

उत्तर : तो फिर जितने चेतन हों, सबको गुरु मान लो! कुत्ता भी तो चेतन है... गुरु मान लो! कुत्ते में और गधे में चैतन्य होते हुए भी उनको गुरु क्यों नहीं मानते? क्योंकि कुत्ता या गधा आपके मन में उच्च भाव पैदा नहीं करते, यानी उत्तम भावों की उत्पत्ति में निमित्त नहीं बनते। हाँ, किसी के आत्मविकास में किसी तरह कुत्ता भी निमित्त बन जाए तो कुत्ता भी गुरु बन जाए। निमित्त जड़ हो या चेतन महत्त्वपूर्ण बात नहीं है, हमारे मन में शुभ भाव कौन पैदा करता है, यह महत्त्वपूर्ण बात है।

महामंत्री पेथड़शाह के हृदय में ब्रह्मचर्य-व्रत के प्रति आदर था, इसलिए ब्रह्मचारी भीम श्रावक के प्रति आदर था और इसी कारण उस ब्रह्मचारी की भेंट के प्रति भी आदरभाव जागृत हुआ। यदि वास्तव में अपने गुण के अनुरागी होंगे तो गुणवानों के प्रति अपने को आदरभाव होगा ही। यदि गुणवान पुरुषों के प्रति ईर्ष्या, तेजोद्वेष, तिरस्कार आदि कुत्सित भाव जागृत होते हैं तो समझना कि अपने गुणानुरागी नहीं हैं। ब्रह्मचर्य एक उत्तम गुण है, उस गुण के प्रति अपना अनुराग है, आदर है तो वह गुण जिस-जिस व्यक्ति में अपन देखें, उस व्यक्ति के प्रति आदरभाव पैदा होगा ही। जिस व्यक्ति के प्रति आदरभाव होगा, उस व्यक्ति की मामूली भेंट भी हम सहर्ष स्वीकार करेंगे।

वीतराग में भी दोष देखने की दृष्टि :

यदि आप लोग आत्मनिरीक्षण करेंगे तो समझ पाओगे कि आप में गुणानुराग है या नहीं। गुणवान पुरुषों के प्रति अद्वेष है या विद्वेष? हाँ, आप यह समझ लेना कि इस संसार में कोई भी मनुष्य दोषरहित गुणवान नहीं मिलेगा। अपन कैसे हैं? दोषरहित गुणवान हैं? मैं तो ऐसा दोषरहित नहीं हूँ... आप लोग वैसे हो तो बता दो! मुझे बहुत प्रसन्नता होगी। एक भी दोष न हो और मात्र गुण ही गुण हो ऐसा व्यक्ति तो वीतराग ही होता है। अरे, वीतराग भी यदि आ जाए तो आप लोग उनमें भी दोष देख लो! ऐसी 'पावरफुल' दोषदृष्टि है न आपके पास?

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पाप को पाप मानना ही होगा, चाहे करना पड़े :

चाहे दूसरे मनुष्यों में दोष हो, आप दोष मत देखें। आपको गुण ही देखने के हैं। एक भी गुण ही देखो, दूसरे में। पेथड़शाह वैसी गुणदृष्टि पाए हुए थे। भीम श्रावक के ब्रह्मचर्य-गुण के प्रति उनको बड़ा आदरभाव पैदा हुआ। वह ब्रह्मचर्य का उच्चतम मूल्यांकन करते थे। हालाँकि वह स्वयं ब्रह्मचारी नहीं थे, उन्होंने शादी की हुई थी और सदाचारी जीवन व्यतीत करते थे। अब्रह्म का सेवन करते थे परन्तु अब्रह्म को अच्छा नहीं मानते थे! उपादेय नहीं मानते थे। क्योंकि वे सम्यक्‌दृष्टि सद्‌गृहस्थ थे। उनके पास ज्ञानदृष्टि थी। वे पाप को पाप मानते थे, पाप को त्याज्य-हेय मानते थे। ऐसा कोई जरूरी नहीं कि हम जो पाप करते हों उसको त्याज्य न समझें। संभव है कि पापों को त्याज्य समझने पर भी हम उन पापों का त्याग नहीं कर सकते हों। ज्ञानदृष्टिवाले मनुष्य के जीवन में भी कुछ पाप हो सकते हैं, परंतु वह मनुष्य उन पापों को त्याज्य दृष्टि से देखता है! पापों की हेयता को समझता है। 'कब अन्तरात्मा की भावना प्रबल हो और मैं इन पापों का त्याग कर दूँ।' ऐसा विचार उसको आता रहता है। पेथड़शाह अब्रह्म-मैथुन का सेवन करते थे परन्तु मैथुन को वे पाप मानते थे, मैथुन-क्रिया को वे अच्छी नहीं मानते थे। उनका आदर्श था ब्रह्मचर्य।

जिन लोगों के पास ज्ञानदृष्टि नहीं होती है, वैसे लोग कभी-कभी यह भूल कर बैठते हैं कि जो पापाचरण उनके जीवन में होता है, उसको वे कर्तव्य के रूप में मान लेते हैं! उपादेय मान लेते हैं! इसलिए कभी भी वह पाप उससे छूटता नहीं। इसमें कुछ अहंकार भी काम करता है। कुछ ज्यादा बुद्धिमत्ता भी काम करती है! पापों को कर्तव्यरूप सिद्ध करने में वे अपने आपको बुद्धिमान समझते हैं! मुक्त मन से तभी पाप हो सकते हैं न! वे लोग कहते हैं कि 'पाप करने में भी मन पर भय का दबाव नहीं आना चाहिए, निर्भय होकर पाप करने चाहिए।' वे लोग 'पाप' नहीं बोलेंगे, 'कर्तव्य' कहेंगे। ऐसे बुद्धि के अहंकारी पुरुषों को कौन समझाए? ऐसे लोग समझाने से समझते भी नहीं हैं।

पाप का पश्चात्ताप है दिल में?

पापत्याग की अशक्ति से, विवशता से जो लोग पाप करते हैं, उनके हृदय में पापाचरण का घोर दुःख होता है। आवेग में और आवेश में पाप कर तो लेते हैं, परन्तु तत्पश्चात् पश्चात्ताप भी हुए बिना नहीं रहता। ऐसे मनुष्यों को पापाचरण से जो कर्मबन्ध होता है वह शिथिल कर्मबन्ध होता है यानी अल्प कर्म बन्धते हैं, प्रगाढ़ कर्मबन्ध नहीं होता। परन्तु जो अज्ञानी और अहंकारी

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

लोग पापाचरण करते हैं, प्रचुर राग-द्वेष से पापाचरण करते हैं, उनको जो कर्मबन्ध होता है वह कर्मबन्ध प्रगाढ़ होता है अर्थात् उन कर्मों का कटु फल भोगना ही पड़ता है उन्हें।

सभा में से : तो क्या ऐसे कर्म भी बंधते हैं कि जिन कर्मों का फल जीव को भोगना नहीं पड़े?

कर्मों का विपाकोदय एवं प्रदेशोदय :

महाराजश्री : हाँ, ऐसे कर्म भी बंधते हैं कि जिन कर्मों का फल जीव को नहीं भोगना पड़े। जीव को मालूम ही नहीं पड़ता कि उसके कर्मों का उदय आ रहा है और कर्म नष्ट हो रहे हैं। जैसे अपन घर में सोये हो और कोई मनुष्य घर में आए और जाए! अपन को मालूम नहीं पड़ता है। कर्मों का उदय दो प्रकार से होता है : विपाकोदय और प्रदेशोदय। जिस कर्म का विपाकोदय होता है, जीव को सुख-दुःख का अनुभव करवाएगा ही। जिस कर्म का प्रदेशोदय होता है, जीव को कोई सुख-दुःख का अनुभव नहीं होता, कर्म उदय में आता है और नष्ट हो जाता है। कोई अनुभव नहीं, कोई संवेदन नहीं। कहिए, आपको कैसा कर्मोदय पसंद है? विपाकोदय या प्रदेशोदय? समझ तो गए न बात? धर्म-आराधना से जो कर्म बंधे, उन कर्मों का विपाकोदय हो तो अच्छा और पापाचरण से जो कर्म बंधे, उन कर्मों का प्रदेशोदय हो तो अच्छा। परन्तु कर्मों के उदय में अपनी कुछ नहीं चल सकती, कर्मों के बंध के समय अपनी चल सकती है। जैसा उदय चाहते हो वैसा कर्मबंध होना चाहिए। आप मन-वचन-काया से धर्म-आराधना करोगे तो ऐसा कर्मबंध होगा कि उन कर्मों का विपाकोदय होगा, यानी आपको वे कर्म सुख का अनुभव करवायेंगे। बहुत प्रेम से दान दिया, बहुत दया से परोपकार किया, बहुत भक्ति से परमात्मा का पूजन किया, बहुत सद्भाव से सदगुरु की उपासना की, बहुत वात्सल्य से साधर्मिकों की सेवा की, बहुत श्रद्धा से धर्मतीर्थ की रक्षा की...इत्यादि धर्माचरण से जो कर्मबंध होगा उसका विपाकोदय तब होगा जब वह जीव को सुख का अपूर्व अनुभव करायेगा, दिव्य सुखों का अनुभव कराएगा, दीर्घकाल तक सुखानुभव कराएगा। इस बात का तात्पर्य यह है कि जिस क्रिया में प्रबल राग-द्वेष जुड़े हुए होते हैं-मिलते हैं, उस क्रिया से ऐसा कर्मबंध होता है कि जिसका विपाकोदय होता है। वह क्रिया धर्म की हो या पाप की हो। तीव्र राग-द्वेष से पापक्रिया करोगे तो वैसा कर्मबंध होगा कि जब उसका उदय होगा, तब घोर दुःख का अनुभव कराएगा। इसलिए वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा ने कहा कि :

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तीव्र राग-द्वेष से पाप मत करो, पाप को पाप मानो। पापत्याग का आदर्श बनाओ। पापाचरण का दुःख होना चाहिए हृदय में।

इस प्रकार पाप हो जाता हो जीवन में तो इससे कर्मबंध अल्प हो सकता है और ऐसे कर्मों का प्रदेशोदय भी हो सकता है। मुझे यह बात समझानी है कि आप लोग पापों को कर्तव्यरूप नहीं समझें। पाप हो जाने पर हृदय में घोर पश्चात्ताप करें।

पेथड़शाह का चिंतन :

महामंत्री पेथड़शाह की उम्र जवानी की थी। केवल ३२ वर्ष की उम्र थी। पत्नी पथमिणी रूपवती और गुणवती सन्नारी थी। पति के प्रति स्नेहयुक्त थी, कर्कशा नहीं थी, स्वच्छन्दी और उद्धत नहीं थी। विनीता थी। सौजन्यशीला थी। फिर भी महामंत्री ब्रह्मचर्य के चाहक थे! अब्रह्मसेवन की वासना थी, तो ब्रह्मचर्यपालन की चाहना भी थी। ऐसी परिस्थिति में भीम श्रावक की ओर से ब्रह्मचारियों के लिए भेंट आई। महामंत्री ने उस उत्तम भेंट का भव्य स्वागत करने का सोचा। 'एक महान ब्रह्मचारी नहीं हूँ, महामना भीम जानते भी होंगे, फिर भी उन्होंने मेरे पास भेंट भेजी है तो मुझे उसका स्वीकार कर लेना चाहिए...परन्तु मैं जब तक ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन नहीं करूँगा। उस पवित्र भेंट के दर्शन से मेरे हृदय में ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करने की प्रबल भावना जागृत होगी।'

धर्म का प्राण : विवेक और औचित्य :

पेथड़शाह की विचारधारा कितनी विवेकपूर्ण और औचित्यपूर्ण है? जिसके हृदय में धर्म होता है, उसके विचार-आचार में विवेक एवं औचित्य सहजरूप में दिखाई देते हैं। अविवेक और अनौचित्य धार्मिक मनुष्य में नहीं हो सकते। यदि अविवेक और अनौचित्य हैं तो समझ लो कि धर्म हजारों मील दूर है। भले फिर आप मंदिर में आते हैं या उपाश्रय के पत्थर घिसते हैं। मंदिर में भी औचित्यपालन नहीं, उपाश्रय में विवेकपूर्ण आचरण नहीं...फिर घर और दुकान पर तो क्या करते होंगे? न विवेक और औचित्य स्वयं प्रकट होते हैं, न सिखाने पर सीखते हो।

कितना समझाया कि परमात्मा के मंदिर में और उपाश्रय में विवेक से आया करो, जाया करो, परंतु मंदिर की सीढ़ियों पर भी दो महिला मिल गईं तो बस! जोर-जोर से बातें चालू! भगवान का अभिषेक करते समय, पूजा

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

करते समय भी इधर-उधर की बातें करते रहते हैं! मौन को पाप मानते हो क्या? बोलना धर्म और मौन रहना पाप, नहीं? जो बोलना आवश्यक है, वह बोलते नहीं, जो बोलना पाप है, अविवेकपूर्ण है, वह बोलते रहते हो। कितना घोर अविवेक छा गया है? जीवन के कौन-से क्षेत्र में आप लोग विवेकपूर्ण और औचित्यपूर्ण व्यवहार करते हो? पेथड़शाह का जीवन आदर्श जीवन कहा जा सकता है। ब्रह्मचारी भीम श्रावक की भेंट का भव्य स्वागत कर, हजारों रूपयों का सद्व्ययकर, अपने निवासस्थान में लाते हैं और उस परमात्म-पूजन के वस्त्र को सुयोग्य स्थान पर स्थापित कर प्रतिदिन उसका दर्शन करते हैं। शुभ मनोभाव की जागृति में जो निमित्त बना है, उसका कितना उच्च मूल्यांकन कर रहे हैं महामंत्री? ध्यान में रहे, संसार के सारे वैभव प्राप्त होना दुर्लभ नहीं, शुभ मनोभाव जागृत होना दुर्लभ है। शुभ विचार, पवित्र मनोभाव, उत्तम अध्यवसाय कितने मूल्यवान हैं जानते हो? एक उत्तम अध्यवसाय अनन्त-अनन्त कर्मों की निर्जरा करता है! एक शुभ विचार देवलोक का असंख्य वर्षों का आयुष्यकर्म बाँध सकता है, एक धर्मविचार धर्मध्यान में से शुक्लध्यान में ले जा सकता है। अनन्त जन्मों में अपने जीव ने क्या नहीं पाया? देवलोक के दिव्य सुख अनन्त बार पाए हैं, परन्तु कर्मनिर्जरा के असाधारण कारणभूत शुभ-शुद्ध अध्यवसाय नहीं पाए! आत्मगुणों के आविर्भाव में निमित्तभूत विचारवैभव नहीं पाया।

व्रत ग्रहण करने में भी विवेक चाहिए :

ऐसे निमित्तों के सतत संपर्क में रहना चाहिए कि जिन निमित्तों से सतत शुभ विचारधारा बहती रहे। जब विचारधारा बहने लगेगी तब जीवनव्यवहार भी शुद्ध बनने लगेगा। जीवन में से अशुद्धियाँ स्वतः दूर हो जाएँगी। महामंत्री पेथड़शाह ने उस भेंट का निमित्त पकड़ लिया। प्रतिदिन उस भेंट का दर्शन करते हैं। उस वस्त्र को पहनते नहीं हैं। एक दिन महामंत्री की धर्मपत्नी ने पूछा : 'स्वामीनाथ, आप इस भेंट में आए हुए पूजनवस्त्र का उपयोग क्यों नहीं करते?' महामंत्री ने कहा : 'देवी, यह भेंट ब्रह्मचारी के लिए है, मैं ब्रह्मचारी नहीं हूँ, उसका उपयोग नहीं कर सकता!' पथमिणी कुछ क्षण विचार में खो गई, फिर पूछा : 'नाथ, तो क्या ब्रह्मचर्य-व्रत आप धारण करना चाहते हैं?' पेथड़शाह ने कहा : 'जब तुम्हारी भावना होगी तब अपन साथ ही ब्रह्मचर्य-व्रत धारण करेंगे। मैं तुम्हारी भावना जानना चाहता हूँ।'

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

महामंत्री की कितनी गंभीर दृष्टि है! जब तक पत्नी की ब्रह्मचर्य-व्रत धारण करने की भावना जागृत न हो तब तक वे ब्रह्मचर्य-व्रत धारण नहीं करना चाहते। बिना व्रत धारण किए भले वे मैथुन का त्याग करते हों, परन्तु पत्नी की संमति के बिना व्रत धारण नहीं करना चाहते। पत्नी को ऐसा भी नहीं कहते कि 'मुझे ब्रह्मचर्य-व्रत लेना है, तेरी इच्छा हो तो तू भी ले ले, अन्यथा मैं तो लूँगा ही, तू तेरा जाने...।' इस प्रकार उपेक्षापूर्ण वचन नहीं सुनाते। ऐसी बात करते तो संभव है कि पथमिणी विरोधी विचारधारा में बह जाती। जिस धर्म-आराधना मै दूसरे स्वजन या मित्र वगैरह को जोड़ना हों, तो जोड़ने की प्रबल भावना चाहिए और जोड़ने का तरीका भी आना चाहिए।

अच्छी भावना को व्यक्त भी अच्छे ढंग से करें :

लड़का परमात्मा के मंदिर नहीं जाता हो, आप चाहते हैं कि उसको मंदिर जाना चाहिए, आपने दो-चार बार उसको प्रेरणा भी दी, फिर भी वह नहीं जाता है, तो आप क्या करते हो? कटु आलोचना करते हो न? 'नास्तिक है, उद्दंड है, मंदिर नहीं जाता, नरक में जाएगा...' ऐसे-ऐसे शब्द सुनाते हो न? क्या ऐसे शब्द सुनाने से लड़का मंदिर जाने लगेगा? आपका कहा मानेगा? क्या ऐसे शब्द सुनाने से लड़का मंदिर जाने लगेगा? आपका कहा मानेगा? इस प्रकार के व्यवहार से तो कई लड़के विद्रोही बन गए। माता-पिता हैं न? उनको अनुभव होगा। माता-पिता का अनुचित व्यवहार सन्तानों को धर्मविमुख कर देता है। भले माता-पिता की भावना अच्छी हो। सिद्धान्त जानना अलग बात है, प्रयोग करना अलग बात है। सिद्धान्त जाननेवाले सब लोग सही प्रयोग करें ही, ऐसा नियम नहीं है। 'हमारे हृदय में तो परिवार के हित की भावना है, उस भावना से कहते हैं।' ऐसा तर्क करते हो न? भावना अच्छी है परन्तु भावना की आपकी अभिव्यक्ति ठीक नहीं है। परिवार को आपकी अच्छी भावना की प्रतीति नहीं होती, क्योंकि प्रेरणा देने की पद्धति ठीक नहीं है।

महामंत्री पेथड़शाह स्वयं ब्रह्मचर्य-व्रत धारण करना चाहते थे। वे यदि चाहते तो पत्नी को प्रेरणा देकर अथवा दबाव डालकर सहमत कर लेते और शीघ्र ही ब्रह्मचारी बन जाते! व्रत धारण कर लेना ही पर्याप्त नहीं है, धारण किए हुए व्रत का पालन करने की क्षमता चाहिए। ब्रह्मचर्य-व्रत का आजीवन पालन करना सरल बात नहीं है। यौवन में कामवासना का आवेग प्रबल होता है। उस आवेग पर संयम रखना मामूली बात नहीं है। मनुष्य का स्वतः हार्दिक संकल्प हो और व्रतपालन की अपनी क्षमता पर विश्वास हो, तभी व्रतपालन

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

संभव हो सकता है। किसी के लिहाज में आकर अथवा दबाव में आकर व्रत ग्रहण करनेवाले ज्यादातर व्रतपालन नहीं कर सकते। इसलिए दूसरों को जो व्रत देना हो, उन्हें उस व्रत की महत्ता समझाइए, व्रत ग्रहण करने का शुभ भाव जागृत करिए। शुभ भाव जागृत करने में जल्दबाजी नहीं करें। व्रतपालन करने का विश्वास पैदा करें। सुदृढ़ विश्वास उत्पन्न करें।

पेथड़शाह की पत्नी भी साथ-साथ व्रत लेती है :

मानना पड़ेगा कि पेथड़शाह के शुभ भावों का प्रभाव उनकी धर्मपत्नी पर पड़ा। पथमिणी ने कहा : 'नाथ! आपकी भावना उत्तम है। मैं भी ब्रह्मचर्य-व्रत ग्रहण करना पसंद करती हूँ। आप अपनी पवित्र भावना सफल करें।' आप सोचो, पत्नी की ऐसी बात सुनकर महामंत्री को कितना हर्ष हुआ होगा? कितनी प्रसन्नता हुई होगी? पथमिणी की प्रसन्नता का तो पूछना ही क्या! पति की प्रसन्नता में ही उसकी प्रसन्नता समाई हुई थी। पति-पत्नी दोनों ने ब्रह्मचर्य-व्रत ग्रहण करने का दृढ़ संकल्प कर लिया। बड़ी स्वाभाविकता से व्रतपालन कैसे हो, उस दिशा में चिन्तन-मनन करने लगे। ब्रह्मचारी की जीवनपद्धति कैसी होनी चाहिए, जीवनव्यवहार कैसा होना चाहिए, इत्यादि विषय में ज्ञानी पुरुषों से मार्गदर्शन लेने लगे। ३२ वर्ष की युवावस्था में ब्रह्मचर्य जैसा व्रत ग्रहण करना मामूली बात नहीं है।

पेथड़शाह के जीवनचरित्र को पढ़ते हुए ऐसा लगता है कि उन महापुरुष का समग्र जीवन धर्ममय होगा। जीवन की प्रत्येक क्रिया धर्मरंग से रंगी हुई होगी। राजा के साथ, प्रजा के साथ और अपने परिवार के साथ, सबके साथ उनका व्यवहार कितना औचित्यपूर्ण था! क्या आप लोग ऐसा जीवन नहीं बना सकते? यदि जैन संघ के सदस्य परिवारों का ऐसा जीवन बन जाय तो राष्ट्र को श्रेष्ठ आदर्श मिल सकता है। अन्य समाजों के परिवारों को तो इतना स्पष्ट और सरल मार्गदर्शन नहीं मिल रहा है, आप लोगों को मिल रहा है, आप इसका महत्त्व समझें और जीवन-परिवर्तन का संकल्प करें। करोगे संकल्प?

सभा में से : यहाँ तो हो जाता है संकल्प, परन्तु घर जाते हैं, तो जैसे थे वैसे बन जाते हैं।

महाराजश्री : इसको संकल्प नहीं कहते, यह तो उफान है! संकल्प तो कार्यसिद्धि तक ले जाता है। संकल्प आत्मसाक्षी होता है। यहाँ आपका मन जो तैयार हो जाता है वह तो मेरे शब्दों का प्रभाव है। मेरी बातें जब आपकी

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

बातें बन जाएँगी तब परिवर्तन का चक्र घूमने लगेगा। मेरी बातें आपके दिल-दिमाग पर छा जाएँगी तब परिवर्तन स्वतः होने लगेगा। मुझे तो आपके जीवन की तमाम प्रवृत्तियों में परिवर्तन देखना है। खाना-पीना, चलना-फिरना, बोलना-हँसना, सभी प्रवृत्ति पर धार्मिकता की छाया पड़नी चाहिए। श्रावक जीवन न सही, सद्गृहस्थ का जीवन तो बनना ही चाहिए। जैन का जीवन तो उच्चस्तरीय जीवन होता है, वहाँ तक पहुँचने के लिए सद्गृहस्थ बनना ही पड़ेगा। सद्गृहस्थ बने बिना श्रावक बनने जाओगे तो डूब जाओगे! जैन धर्म की निंदा करवाओगे। इसलिए कहता हूँ कि सद्गृहस्थ का औचित्य समझो। पहले एक समय था कि जब सद्गृहस्थ बनने की शिक्षा माता-पिता की ओर से और अध्यापकों से मिल जाती थी, आज नहीं मिलती है। इसलिए यह शिक्षा भी आज धर्मगुरु को देनी पड़ती है।

स्वयं के जीवनदृष्टा बनो :

आप दृढ़ संकल्प करो- 'मुझे जीवन-परिवर्तन करना ही है। आर्यदेश का सद्गृहस्थ बनना है।' हाँ, एक बात है, यदि आपको अपना वर्तमान जीवन अच्छा नहीं लगेगा तो ही आप परिवर्तन का संकल्प कर पाओगे। वर्तमान जीवन का शान्त चित्त से अवलोकन करो। जीवन की प्रत्येक प्रवृत्ति को दृष्टा बनकर देखो। आप देखो कि जीवनप्रवाह गंगाप्रवाह जैसा निर्मल बह रहा है या गटर जैसा मलिन?

सभा में से : गटर जैसा गंदा प्रवाह बह रहा है...।

महाराजश्री : मुझे खुश करने के लिए कहते हो? यदि आप आत्मनिरीक्षण करके कहोगे कि गंगा जैसा निर्मल जीवनप्रवाह बह रहा है, तो भी मैं खुशी का अनुभव करूँगा। यदि आपको लगे कि जीवनप्रवाह गंदा है तो शुद्धिकरण करना होगा। निराश होकर गटर का जीवन व्यतीत करने की आवश्यकता नहीं है। उत्साह से, उमंग से शुद्धिकरण का कार्य शुरू करना चाहिए। अर्थप्रधान और कामप्रधान वर्तमान युग में आपको पूर्ण शक्ति से शुद्धि-प्रयोग करने होंगे। इस कार्य में 'धर्मबिन्दु' ग्रन्थ आपको अच्छा मार्गदर्शन दे सकता है। मनुष्य के जीवन की एक-एक प्रवृत्ति लेकर इस ग्रन्थ में सुचारू मार्गदर्शन दिया गया है। परन्तु मूल बात मत भूलें कि जीवन-परिवर्तन का आपका स्वयं का दृढ़ संकल्प अनिवार्य है। इसके बिना हम लोग कुछ भी नहीं कर सकते। विद्यार्थी का पढ़ाई करने का संकल्प होता है तो अध्यापक अध्यापन कर सकता है। अध्ययन में अच्छा सहयोग दे सकता है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सभा में से : विद्यार्थी में अध्ययन की अभिरुचि भी अध्यापक पैदा कर सकता है न?

महाराजश्री : मैं भी वही कार्य कर रहा हूँ! धर्ममय जीवन बनाने की अभिरुचि प्रकट करने के लिए तो प्रतिदिन प्रवचन दे रहा हूँ। प्रवचन से आपका 'मूड' बनाया जाता है। 'मूड' बन गया कि काम बन गया! परन्तु आपका 'मूड' जल्दी 'ऑफ' हो जाता है! 'मूड' बना रहना चाहिए। वैसा परिवार चाहिए, वैसे मित्र चाहिए कि जो आपका जीवन-परिवर्तन का 'मूड' 'ऑफ' नहीं कर दें।

संघर्ष के बिना सफलता कहाँ?

शान्ति के बिना सिद्धि कहाँ?

एक बात समझ लो कि, आप ज्यों जीवनपरिवर्तन का श्रीगणेश करोगे, त्यों विघ्न तो हजार आएँगे। दुनिया की दृष्टि में आपने ज्यों थोड़ा-सा भी मार्ग बदला त्यों दुनियाँवालों की दृष्टि बदल जाएगी। मानो कि आप सरकारी अफसर हैं, आज दिन तक आप रिश्वत लेते आए हो, कल ऑफिस में जाकर रिश्वत लेने से इनकार करोगे तो आपके आसपास के लोग जो रिश्वतखोर हैं, आपको गलत दृष्टि से देखेंगे। आपका मजाक भी उड़ायेंगे। आपको रिश्वत लेने के लिए समझाने का प्रयत्न करेंगे। आप पर दबाव डालने का प्रयत्न करेंगे। जिन-जिनको उस रिश्वत में से हिस्सा मिलता होगा, वे सब आपको घेर लेंगे। उस समय आपकी कसौटी होगी। घर पहुँचने पर दूसरी कसौटी होगी। यदि घरवाले मौज-मजा का जीवन जीना चाहते होंगे, 'लक्ज्यूरियस' विलासी जीवन जीना पसंद करते होंगे तो आपको रिश्वत के पैसे लेने को मजबूर करेंगे! हाँ, ऐसे विघ्न आयेंगे ही। आपके पास दृढ़ मनोबल होगा तो ही आप अपनी बात पर अड़िग रह सकोगे। दूसरों को अपनी बात समझाने की क्षमता भी आप में चाहिए।

संघर्ष के बिना शान्ति नहीं! शक्ति के बिना सिद्धि नहीं! संघर्ष में शक्तिमान ही सिद्धि प्राप्त करता है। अशक्त, कमजोर मनुष्य करारी हार खाता है। जीवन-परिवर्तन एक संघर्ष है। प्रचुर शक्ति से संघर्ष करते रहो।

आज, बस इतना ही।

❖ ❖ ❖

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

- ***तुम्हारे जीवन को बारीकी से देखो-जाँचो! भय के भूत तुम्हें डराते हैं न? चौतरफ द्वेष की ज्वाला धधक रही है न? दिल में खेद और अवसाद की गंदगी जमा हो रही है न?***
- ***जरा समझो तो सही, यदि संसार दुःखपूर्ण व यातनाभरा नहीं होता तो हम संसार छोड़ते ही क्यों? संसार के सुख खतरनाक हैं। अनंत दोष भरे हैं इस संसार में!***
- ***कानों सुनी या आँखों देखी बात पर भी जल्दबाजी में कोई निर्णय मत करो। उस पर संजीदगी से सोचो। पूरी जाँच-पड़ताल करो। जो निर्णय करो वह भी कठोरता या निर्दयता से मत करो।***
- ***अपने हृदय में धर्म है तो वह धर्म ही अपनी रक्षा करेगा। धर्म की शरण में निर्भय बने रहो।***
- ***दुराचार-व्यभिचार के रास्ते पर चलकर क्यों खुद की और दूसरों की जिन्दगी को बरबाद करते हो...? वापस लौटो उस गंदे रास्ते से!***

प्रवचन : १०

महान श्रुतधर धर्मधुरन्धर पूज्य आचार्यश्री हरिभद्रसूरिजी 'धर्मबिन्दु' ग्रन्थ में धर्मतत्त्व का स्वरूप समझाते हुए फरमाते हैं :

वचनाद्यदनुष्ठानमविरुद्धाद्यथोदितम्।
मैत्र्यादिभावसंयुक्तं तद्धर्म इति कीर्त्यते ।।

जब मनुष्य का लक्ष्य निर्धारित हो जाय कि 'मुझे आत्मविशुद्धि करना है,' तब वह आत्मविशुद्धि का मार्ग ढूँढ़ेगा ही। वह मार्ग है धर्म का। पहले तो आप यह सोचें कि अशुद्धियों के प्रति नफरत पैदा हुई है क्या? अशुद्धिजन्य सुखों के प्रति दुर्भाव पैदा हुआ है क्या? अशुद्धि में अकुलाहट का अनुभव हुआ है क्या? कपड़े अशुद्ध होते हैं तो क्या होता है? शरीर अशुद्ध होता है तो कैसा लगता है? शुद्ध करने का विचार आता है न? वस्त्र और शरीर को शुद्ध करने का उपाय खोजते हो न? अशुद्ध वस्त्र पसन्द नहीं आते, अशुद्ध शरीर पसन्द

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

नहीं आता, वैसे अशुद्ध आत्मा पसन्द नहीं आती होगी तो विशुद्धि का विचार अवश्य आएगा।

आत्मतत्त्व का अज्ञान :

परन्तु इस संसार में कुछ ऐसे भी लोग हैं, जिन्हें अशुद्ध वस्त्र जरा भी नहीं अखरते! अशुद्ध शरीर जरा भी नहीं अखरता। ऐसे मनुष्यों को आत्मा की तो कल्पना भी नहीं होती। आत्मा की कल्पना नहीं हो फिर अशुद्धि और विशुद्धि की कल्पना तो आए ही कैसे? इस कल्पना के बिना धर्म की कल्पना आए कहाँ से? परन्तु ऐसे मनुष्य भी धर्म के अनुष्ठान करते हुए दिखते हैं! या तो गतानुगतिकता होती है अथवा कोई सुख पाने की कामना होती है! आत्मसुख नहीं, भौतिक सुख पाने की कामना! इन्द्रियों के विषयसुख पाने की कामना। वैषयिक सुख पाने की कामना से जो धर्मानुष्ठान किया जाता है उसमें अभय, अद्वेष और अखेद नहीं रहता। क्योंकि सुखराग में से दुःखभय पैदा होता ही है। दुःख देनेवालों के प्रति द्वेष उत्पन्न होता ही है और सुख नहीं मिलने पर धर्मानुष्ठान में खेद आ ही जाता है। वैषयिक सुखों की स्पृहा एक बड़ी अशुद्धि है, यह बात जँची है आपके मन को?

वैषयिक सुखों की स्पृहा जब तक हृदय में भरी पड़ी है तब तक अभय, अद्वेष और अखेद-ये तीन गुण प्रगट नहीं होंगे और तब तक सही धर्म-आराधना नहीं कर सकोगे। आप लोग अपने आंतर-बाह्य जीवन को देखो, आपको अनेक प्रकार के भय के भूत डराते नजर आयेंगे! चारों ओर द्वेष की ज्वालाएँ दिखाई देगी। हृदय में खेद और ग्लानि की गन्दगी भरी हुई दिखाई देगी। इसलिए ज्ञानी पुरुष कहते हैं वैषयिक सुखों की स्पृहा बाहर फेंक दो। 'परस्पृहा महादुःखम्' परपदार्थों की स्पृहा ही महादुःख है-यह कथन कितना यथार्थ है। आप गंभीरता से इस बात को सोचो।

भय, द्वेष एवं खेद :

दान देने का प्रसंग आने पर क्या होता है? आनन्द होता है या गुस्सा आता है? देना ही पड़ता है तो कितना देते हो? थोड़ा कि ज्यादा? मन में भय है : 'ज्यादा दे दूँगा तो मेरे पास क्या रहेगा? फिर मैं क्या करूँगा? यह भय है मन में, इसलिए बहुत होते हुए भी थोड़ा देते हो! दान देने का प्रसंग आने पर, यदि दाता आपकी इच्छानुसार नहीं दे तो क्या होता है? दाता पर गुस्सा आता है न? द्वेष होता है न? 'देखा बड़ा दानवीर...नाम बड़ा, काम छोटा...' ऐसा

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

होता है न मन में? मान लो कि आपकी इच्छा के अनुरूप दान मिल गया, आपको घरवालों का भय लगता है न? यदि घरवालों को मालूम पड़ गया कि मैं इतने रूपये ले आया हूँ तो वे लोग मुझे परेशान करेंगे...इसलिए सच नहीं कहूँगा।' यह क्या है? भय!

वैसे तपश्चर्या करने का अवसर आया, क्या होता है? उल्लास या खिन्नता? परोपकार करने का प्रसंग आता है, क्या होता है मन में? उत्साह या खेद? कोई भी धर्मप्रवृत्ति होगी, उसमें सुख का त्याग करने की बात होगी! उन दो बातों में भय, द्वेष और खेद से आपका मन मुक्त बना हुआ होगा तो ही धर्म-आराधना में आनन्द आएगा।

किसी भी धर्म-आराधना में आपका चित्त स्थिर बना रहता है? क्यों स्थिर नहीं रहता? मन में भय है! भय ही चंचलता, अस्थिरता पैदा करता है। जब तक आपका मन किसी न किसी भय से आक्रान्त है तब तक आप स्थिरता नहीं पायेंगे। परमात्मा के नाम की एक माला भी स्थिर चित्त से नहीं फेर सकेंगे।

सभा में से : ऐसा ही होता है! हाथ माला फेरता है और मन विषयों में फिरता है।

महाराजश्री : जब तक अ-भय नहीं बनोगे तब तक यही स्थिति बनी रहेगी। जब तक विषयस्पृहा बनी रहेगी तब तक भय बना ही रहेगा। भय से चंचलता और चंचलता से धर्म-आराधना में विक्षेप पड़ेगा! इसलिए कहता हूँ कि दृष्टि में आमूल परिवर्तन करो। वैषयिक दृष्टि को बदल दो, आत्मदृष्टि खोल दो। आत्मदृष्टिवाला मनुष्य ही आत्मशक्ति पाता है। आत्मशक्ति ही मनुष्य को अभय बनाती है। आपको मांडवगढ़ के महामंत्री पेथड़शाह का व्यक्तित्व इसलिए बता रहा हूँ। वे एक ऐसे ऐतिहासिक महापुरुष हो गए कि उनके उच्चतम व्यक्तित्व ने मुझे काफी गहराई तक प्रभावित किया है। उनका आन्तरव्यक्तित्व बड़ा अद्‌भुत था। महामंत्री के पद पर आसीन होने पर भी उनको सत्ता का मोह नहीं था, गर्व नहीं था। स्वर्णसिद्धि होने पर भी संपत्ति का गर्व नहीं था, आसक्ति नहीं थी। सुन्दर निरोगी देह होने पर भी विषयवासना नहीं थी। यौवन का उन्माद नहीं था! विलक्षण राजपुरुष होने पर भी राज्य और राजा के प्रति पूर्ण निष्ठावान थे। सौन्दर्य भरपूर और स्नेहसभर पत्नी होने पर भी वे ब्रह्मचर्य के उपासक रहे! ऐसा व्यक्तित्व होने से वे सदैव अभय रहे, अद्वेषी रहे और अखिन्न रहे। हाँ, संकट भी आए थे उनके जीवन में, संकट में भी वे भयाक्रान्त नहीं बने। अपराधी के प्रति भी द्वेषवाले नहीं बने। खिन्न, निराश या विवश नहीं बने।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पेथड़शाह पर कलंक आता है :

एक बार महामंत्री निष्कारण ही एक आफत में फँस गए। उनके पास मालवनरेश का दिया हुआ सवा लाख रूपये का वस्त्र था। महामंत्री उस वस्त्र को परमात्मपूजन हेतु पहनते थे। उस वस्त्र में ऐसा प्रभाव उत्पन्न हो गया था कि यदि किसी को बुखार आता हो, इस वस्त्र को ओढ़ ले तो बुखार उतर जाय। महामंत्री की धर्मपत्नी इस प्रभाव को भलीभाँति जानती थी। महामंत्री के ब्रह्मचर्यव्रत का वह प्रभाव था।

राजपरिवार के साथ महामंत्री के परिवार का संबंध होना स्वाभाविक था। मालवनरेश की दो रानियां थीं-एक थी लीलावती और दूसरी थी कदंबा। राजा को लीलावती की ओर ज्यादा स्नेह था। कदंबा इससे लीलावती की ओर ईर्ष्या से जलती थी। मनुष्य का कैसा स्वभाव है? लीलावती को कदंबा के प्रति कोई दुर्भाव नहीं था, कदंबा लीलावती के प्रति जलती थी। 'मुझे कम और लीलावती को ज्यादा सुख क्यों मिले? हाँ, यदि लीलावती को भी कम सुख मिलता, जितना कदंबा को मिलता था उतना ही, तो कदंबा को लीलावती की ईर्ष्या नहीं होती। परन्तु इसी तत्त्व ने महासती सीता के हरेभरे जीवन में आग सुलगाई थी न? श्री रामचन्द्रजी का सीताजी के प्रति अत्यंत स्नेह था, दूसरी रानियों से सहा नहीं गया, उन तीन रानियों ने मिलकर षड्यंत्र रचाया और सरल सीताजी उस षड्यंत्र में फँस गईं उन पर कलंक आया। श्री राम ने सीता का जंगल में त्याग करवा दिया। खैर, सीता की भवितव्यता ही ऐसी थी, ऐसा मान लें, परन्तु उन तीनों रानियों को सीता के जाने से, ज्यादा सुख मिला था क्या? नहीं, यह तो मनुष्य की भ्रमणा है कि 'दूसरे को दुःखी करने से मुझे ज्यादा सुख मिलेगा।' बात इससे उल्टी है, दूसरों का सुख छीनने से तुम्हारा रहा सहा सुख भी चला जाएगा! परन्तु ईर्ष्या से जलनेवालों को यह सत्य कैसे समझाया जाए? वे लोग वह समझने के लिए तैयार ही नहीं होते। मालवनरेश की रानी कदंबा वैसी थी। 'लीलावती के प्रति राजा को अभाव हो जाए तो मेरे प्रति प्रेम बढ़ जाए, अन्यथा इस भव में राजा का प्रेम मुझे मिलनेवाला नहीं है! प्रेम बिना जिन्दगी में और क्या चाहिए? कदंबा की ऐसी विचारधारा होगी। कदंबा यह भी जानती होगी कि जब तक राजा लीलावती का कोई बड़ा दोष नहीं देखेगा तब तक उसका राग कम नहीं होगा। दोष-दर्शन से ही राग मरता है।

जब तक आपको इस संसार में दोष-दर्शन नहीं होगा तब तक संसार का मोह दूर नहीं होगा! इसलिए ज्ञानी पुरुष संसार की निन्दा करते हैं, संसार के

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

असंख्य दोष बताते हैं। आपके मन पर एक भी दोष की छाप रह गई तो समझ लो कि आपका संसार-राग खत्म!

गुणदर्शन से राग, दोषदर्शन से विराग :

सभा में से : तब तो आपके प्रवचन सुनने में खतरा है! आप संसार छुड़वा दोगे!

महाराजश्री : संसार में जो खतरा है, वह नहीं दिखता और इधर खतरा दिखता है इस महापुरुष को! संसार में कदम-कदम पर खतरा है, हर पल में खतरा है, जानते हो? हमारा कर्तव्य है कि हम लोगों को ऐसे खतरनाक संसार से मुक्त करें। इतना तो समझो कि यदि संसार दुःखपूर्ण और यातनापूर्ण नहीं होता तो हमने क्यों संसार छोड़ा होगा? संसार के सुख ही खतरनाक हैं। अनंत दोषों से भरा हुआ है यह संसार। आप लोग संसार में गुणदर्शन कर रहे हो इसलिए आपको संसार में आसक्ति है, मोह है। आप करते हो गुणदर्शन संसार में, हम करते हैं दोषदर्शन! गुणदर्शन से राग होता है, दोषदर्शन से विराग होता है।

जटाशंकर अपने घर पर एक बालमंदिर जैसा चलाया करता था। किसी बच्चे से वह फीस नहीं लेता था। पैसा नहीं लेता था। बच्चे भी अपने घर में जब कभी मिठाई बनती, जटाशंकर के लिए प्रसाद ले आते। एक लड़का ऐसा आता था कि जो कभी भी जटाशंकर के लिए प्रसाद नहीं लाया। जटाशंकर की नजर में तो वह आ ही गया था, परन्तु उसने लड़के को कुछ भी नहीं कहा। एक दिन की बात है। वह मास्टरजी के लिए मिट्टी के कूंडे में खीर ले आया। लड़के ने जटाशंकर से कहा : 'आज मेरे छोटे भैया का जन्मदिन है इसलिए मेरी मम्मी ने खीर बनाई थी! आपके लिए इतनी भेजी है।' जटाशंकर खुश हो गया! उसने तो वहीं पर बच्चों के सामने ही खीर पीना शुरू कर दिया। आधा कुंडा खीर पीने के बाद जटाशंकर ने उस लड़के से पूछा : 'बच्चे! यह तो बता आज तेरी मम्मी इतनी उदार कैसे हो गई? कुंडा भरके खीर मेरे लिए भेजी?' छोटे लड़के ने कहा : 'मेरी मम्मी ने खीर एक बड़ी थाली में निकाली थी और वह पानी भरने गई थी, मैं बाहर खेल रहा था, इतने में एक काला कुत्ता आया और खीर को चाटने लगा। मेरी मम्मी पानी भरके आई, उसने देखा... कुत्ते को तो भगाया, परन्तु अब वह खीर हमारे लिए नापाक हो गई थी। हम लोग तो उस खीर को खा नहीं सकते थे। मम्मी

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ने कहा : 'यह खीर तेरे मास्टरजी के लिए ले जा। तो मैं इस मिट्टी के बर्तन में भरकर ले आया।'

जटाशंकर तो सुनकर इतना गुस्से में आ गया कि उसने कुंडे को जमीन पर दे मारा। कुंडा फूट गया। खीर जमीन पर फैल गई। जटाशंकर गुस्से में जोर से चिल्लाया 'नालायक, मुझे अपवित्र कर दिया!' लड़का जोर-जोर से रोने लगा। जटाशंकर ने कहा : 'अब क्यों रोता है?' लड़के ने कहा : 'यह कुंडा फूट गया। मेरी माँ मुझे मारेगी' जटाशंकर गुस्से में था, उसने कहा : 'क्या था इस कुंडे में। मिट्टी का तो था। कह देना तेरी माँ को कि 'मास्टरजी ने कुंडा फोड़ दिया।' लड़के ने कहा : 'मेरी माँ हमेशा मेरे छोटे भैया को इस कुंडे में टट्टी कराती थी...' इतना कहकर लड़का तो भाग गया। जटाशंकर की आँखें चौड़ी हो गईं!

संसार में दोषदर्शन करो :

पहले तो खीर देखते ही पीने लगा जटाशंकर! क्योंकि उसने खीर में गुण देखा, परन्तु लड़के ने बताया कि 'इस खीर में कुत्ते ने मुँह डाला है' तो खीर में दोष दिखाई दिया, राग उतर गया, फेंक दिया। समझे न? संसारवास का भी आप इस प्रकार त्याग कर सकते हो। हो जाना चाहिए दोष का दर्शन! भर्तृहरी को क्या हुआ था? संसार में दोष दिखाई दिया, 'विश्वासपात्र पत्नी ने विश्वासघात किया? पत्नी संसार का एक महत्त्वपूर्ण पात्र है, उसने धोखा दे दिया, तो फिर दूसरे किस मनुष्य पर विश्वास किया जाय? त्याग दिया संसार!

आप लोगों को संसार में दोष दिखता ही नहीं क्या? गुण ही गुण दिखते हैं क्या? इतनी प्रचंड मार खाते हो तो भी...।

सभा में से : संसार में मार तो बहुत खाते हैं, परन्तु वह 'मधुबिन्दु' वाला सुख मिलता है तब तो वह दुःख भूल जाते हैं।

महाराजश्री : दुःख २३ घन्टे का, सुख एक घन्टे का, तो भी आप ऊब नहीं जाते। कमाल हैं आप लोग! क्षणिक वैषयिक सुख-अल्प क्षणों का भोगसुख पाने के लिए आपने अपने इर्दगिर्द कैसा जाल गूँथा है? आप देखो तो सही, उस जाल में आप कैसे फँस गए हो? क्या होगा परलोक में? वैषयिक सुख कैसे मिले हैं? कितने गन्दे, कितने वीभत्स, कितने जुगुप्सनीय? गटर की गन्दगी में मौजमजा? मनुष्यगति और तिर्यंचगति के सुख गटर की गंदगी जैसे

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सुख हैं। वे भी आप सदैव भोग सकते हैं? शरीर में टी.बी. अथवा केन्सर जैसा रोग पैदा हो गया? भले ही जवानी हो, पत्नी भी खूबसूरत हो, तो भी आपको आँखों से आँसू बहाते हुए बैठे रहना पड़ता है। और, जब मौत आ जाती है तब? पत्नी खड़ी-खड़ी आँसू बहाती है। लोग आपके मृतदेह को उठाकर स्मशान में ले चलते हैं। जरा आँखें मूँदकर उस दृश्य को कल्पना से देखो।

विषयांध आदमी का गणित :

कदंबा रानी लीलावती में राजा को दोष-दर्शन कराना चाहती है, ताकि राजा का राग उतर जाए। विषयांध मनुष्य का गणित कितना गलत होता है? राज़ा का प्रेम पाने के लिए वह दूसरे के जीवन में आग लगाने का सोचती है! इसलिए लीलावती के जीवन में वह दोष खोजती है। ऐसा दोष खोजती है कि राजा को लीलावती के प्रति नफरत हो जाए, उसके सामने भी न देखे राजा। तभी कदंबा राजा का पूरा-पूरा प्रेम पा सकती है?

एक दिन रानी लीलावती बीमार हो गई। रानी को बुखार आने लगा। एक दिन बुखार आता है, दूसरे दिन नहीं आता...इस प्रकार एकान्तर बुखार आने लगा। राजा ने बहुत औषधोपचार करवाये, परन्तु बुखार उतरा नहीं। राजा को और समग्र राजपरिवार को चिन्ता होने लगी। रानी का शरीर दुर्बल होता गया है। वैद्य भी निराश होने लगे।

लीलावती की दासी महामंत्री के घर पर, पथमिणि को मिलने और लीलावती का समाचार देने गई थी। दासी के मुख पर उदासी छाई हुई थी। पथमिणि ने उदासी का कारण पूछा, तो दासी रो पड़ी। 'मेरी रानी जी को कितने दिनों से बुखार आता है, कोई दवाई काम नहीं करती, महारानी का शरीर सूखता जाता है। महाराजा दिन-रात चिन्ता करते हैं। सारा महल गहरे शोक में डूब गया है।' पथमिणी ने दासी की बात सुनी, कुछ समय विचार किया और दासी को कहा : 'मेरे पास उस बुखार को उतारने का एक उपाय है।' दासी की आँखों में चमक आ गई, वह बोली : 'है उपाय आपके पास? तो दे दो, बड़ी कृपा होगी मेरी बहन।' वह तो पथमिणी से लिपट गई मानो। पथमिणी ने कहा : 'सुन, महामंत्री प्रतिदिन परमात्मा के पूजन में जो वस्त्र पहनते हैं, वह वस्त्र यदि रानी ओढ़कर सो जाए तो बुखार नहीं आएगा। हाँ बुखार आने से पूर्व वस्त्र ओढ़ लेना चाहिए।'

'देवी, एक क्षण का भी विलंब किए बिना आप वह वस्त्र मुझे देने की कृपा

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

करें, मैं जाकर रानी को दूँगी, सब बात समझा दूँगी...।' पथमिणी ने सवालाख रूपये का मूल्यवान वह वस्त्र दासी को दे दिया। परोपकार की उत्कृष्ट भावना वाले मनुष्य जड़ पदार्थ चाहे कितना भी मूल्यवान हो, चेतन आत्मा के सामने उसका कोई महत्त्व नहीं समझते। चेतन के लिए जड़ का त्याग सरलता से कर देते हैं। रानी की वेदना का वर्णन सुनकर मंत्रीपत्नी का हृदय द्रवित हो गया और सवालाख के मूल्य का वस्त्र ओढ़ने के लिए दे दिया। 'यदि यह वस्त्र वापस नहीं लौटाया तो? बीच में दासी ने ही वस्त्र को गायब कर दिया तो?' ऐसा कोई विकल्प नहीं, कोई भय नहीं। करुणाभरे हृदय में भय कैसे रह सकता है?

रानी लीलावती का बुखार गया :

दासी उस प्रभावशाली वस्त्र को लेकर पहुँची सीधी राजमहल। रानी लीलावती के पास जाकर उसने वस्त्र बताया और उसको कब ओढ़कर सो जाना, समझाया। रानी को भी महामंत्री के प्रति श्रद्धा थी। उसके मन में विश्वास हो गया। बुखार चढ़ने का जब समय हुआ, रानी ने वस्त्र ओढ़ लिया और सो गई। बुखार नहीं आया! दासी नाच उठी। राजमहल में सबको आनन्द हुआ, मात्र कदंबा को नहीं! कदंबा को कैसे आनन्द होता? जिसके प्रति मनुष्य की ईर्ष्या होती है, उसके दुःख में ईर्ष्यालु को मजा आता है। उसके सुख में तो वह ज्यादा जलता है! लीलावती का बुखार उतर गया जानकर कदंबा प्रसन्न नहीं हुई। दूसरों का सुख देखकर प्रसन्न होनेवाला मनुष्य ही धर्मक्षेत्र में प्रवेश करने योग्य है। दूसरों का दुःख देखकर दुःखी होनेवाला मनुष्य ही धर्माधिकारी है। परन्तु कदंबा को धर्म से लेना देना ही क्या था? वह तो संसारसुखों की भिखारिन थी।

रानी कदंबा का आक्षेप :

लीलावती का ज्वर महामंत्री के प्रभावशाली वस्त्र से दूर हुआ है-यह बात जब कदंबा ने सुनी तब उसके मन में एक भयंकर विचार आया। वह पहुँची महाराजा के पास। मुँह गंभीर बनाकर उसने राजा से कहा : 'महाराजा, एक गंभीर बात करने आई हूँ। आप शायद मेरी बात नहीं मानोगे। खैर, मानो या ना मानो, मेरा कर्तव्य है आपको बात बता देने का।' राजा ने कहा 'ऐसी कौन-सी बात है? बता दो।' कदंबा ने कहा : 'आप मुझ पर नाराज मत होना, परन्तु आपको मालूम है कि लीलावती महामंत्री के प्रेम में है...?' राजा इस भयंकर

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आक्षेप को सुनकर क्रुद्ध हो गया और बोला : 'तू यह गलत आक्षेप कर रही है। तेरे पास क्या प्रमाण है?' कदंबा शान्त चित्त से कहती है : 'मुझे मालूम ही था कि आप मेरी बात को गलत ही समझोगे परन्तु मेरे प्राणनाथ, मेरे पास प्रमाण है, प्रमाण नहीं होता तो मैं आपके सामने यह बात करती ही नहीं। आप जाकर देखें, आपकी प्रिय रानी महामंत्री के विरह में उसका पहना हुआ वस्त्र ओढ़कर सोती है! आप स्वयं जाकर देखें। प्रेम का प्रमाण इससे बढ़कर दूसरा क्या हो सकता है?

राजा लीलावती को कलंकित मानता है :

लीलावती ने या उसकी दासी ने महामंत्री के पूजन-वस्त्र की बात राजा को बताई ही नहीं थी। जल्दबाजी में ऐसी भूल हो जाती है। राजा ने कदंबा से कहा : 'अच्छा, मैं स्वयं जाकर देखूँगा।' कदंबा अपने निवास में चली गई। राजा के मन में तूफान पैदा करके गई! राजा की कल्पना में लीलावती और पेथड़शाह आ गए। दोनों के चरित्र पर राजा को विश्वास था, परन्तु कदंबा की बात ने संदेह पैदा कर दिया। 'मनुष्य के जीवन में कब भूल हो जाय, पता नहीं पड़ता। मैं स्वयं जाकर देखूँ।' राजा लीलावती के निवासखंड में पहुँचा। लीलावती उस समय सो रही थी। उसने महामंत्री का वस्त्र ओढ़ा हुआ था। राजा ने उसी समय उस वस्त्र को पहचान लिया : 'यह तो मैंने ही महामंत्री को भेंट दिया था वस्त्र, महामंत्री ने रानी को दिया? इतना मूल्यवान वस्त्र रानी को भेंट दिया है। इसका अर्थ?' राजा को अत्यन्त क्रोध आया। तुरन्त ही राजा अपने आवास में पहुँचा। कदंबा की बात राजा के मन में पुष्ट हो गई। उसने महामंत्री को या रानी को पूछताछ करने का भी नहीं सोचा। महामंत्री और लीलावती के विषय में उसके मन में गलत धारणा पैदा हो गई।

अज्ञानी और अल्प बुद्धिवाले मनुष्यों की यह दिक्कत है! उसमें भी जब ऐसे लोग 'बुजुर्ग' बने हुए होते हैं, सत्तास्थान पर बैठे हुए होते हैं, तब तो बड़ा अनर्थ हो जाता है। वे लोग छोटों को खिलौना समझ लेते हैं और मनमाने ढंग से खेलते हैं! राजा के मन रानी मात्र भोगसुख का खिलौना था। राजा ने लीलावती से पूछना भी नहीं चाहा कि 'महामंत्री का यह वस्त्र तेरे पास कैसे आया?' अथवा महामंत्री को बुलाकर पूछता कि 'मेरा दिया हुआ वह सवा लाख का वस्त्र कहाँ है?' तो भी सत्य बात उसके सामने आ जाती और दो पवित्र आत्मा को अन्याय नहीं होता।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पूरी जाँच करने के बाद निर्णय करो :

कोई भी बात सुनकर या कोई भी प्रसंग देखकर अत्यन्त राग या अत्यन्त द्वेष में बह न जाओ। अपने राग-द्वेष के भावों पर संयम रखो, अन्यथा आप विचार नहीं कर सकोगे। सुनी हुई बात पर या आँखों से देखी हुई घटना पर शीघ्र निर्णय मत करो। उस पर विचार करो। तलाश पूरी करो। तब जाकर निर्णय करो। निर्णय कठोरता से या निर्दयता से मत करो।

लीलावती को देशनिकाले की सजा :

महामंत्री पेथड़शाह के प्रति राजा को कितना विश्वास था! राजा जानता था कि पेथड़शाह ने ब्रह्मचर्य-व्रत ग्रहण किया है। ब्रह्मचारी महामंत्री के प्रति प्रजा को भी खूब सद्भाव था। ऐसे महामंत्री को भी राजा ने दुराचारी मान लिया! मात्र एक वस्त्र के कारण! मंत्री का वस्त्र रानी के पास देखकर! रानी का ज्वर कैसे चला गया, यह भी पूछने की राजा को नहीं सूझी। जिस लीलावती के प्रति अपार स्नेह था, उसी रानी को व्यभिचारिणी मान लिया! यह है आपका संसार! क्षण में राग द्वेष में बदल जाय! न राग स्थायी, न द्वेष स्थायी! राजा का मन तीव्र द्वेष से भर गया था। महामंत्री और महारानी को कड़ी सजा करने को उसका मन मचल रहा था। परन्तु महामंत्री को सजा सुनाने की हिम्मत राजा में तो नहीं थी। महामंत्री का प्रभाव सम्पूर्ण राज्य पर छाया हुआ था। राजा तो नाम का ही था, सर्वेसर्वा महामंत्री पेथड़शाह थे। राजा की हिम्मत नहीं हो रही थी महामंत्री को सजा करने की। दुनिया का रिवाज है निर्बल को सताने का! बलवान को कोई नहीं सताता। राजा की दृष्टि में महामंत्री बलवान थे, रानी निर्बल थी! लीलावती को बुलाकर सजा सुना दी : 'तुम मेरे राज्य में से चली जाओ। तुम्हारा मुँह मैं देखना नहीं चाहता!' परन्तु यह सजा महामंत्री की उपस्थिति में राजा ने सुनाई! राजा ने यूँ सोचा होगा कि 'रानी के प्रेम में महामंत्री है, इसलिए रानी के साथ महामंत्री चला जाएगा!' कैसी भ्रमणाओं में मनुष्य भटकता है! राजा महामंत्री के आंतरव्यक्तित्व को कहाँ जानता था? राजा ने जब लीलावती को सजा कर दी, महामंत्री मौन रहे और कुछ भी नहीं बोले।

महामंत्री स्वस्थ :

लीलावती की दासी चतुरा को सारी बात समझ में आ गई थी। कदंबा के निवासस्थान से महामंत्री और लीलावती के प्रणय की बात प्रसारित हो रही

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

थी। चतुरा ने तुरंत ही महामंत्री का वस्त्र ले जाकर पथमिणि को दे दिया और राजमहल की करुण कथा भी सुना दी। चतुरा रो पड़ी। 'मैंने तो रानी के अच्छे के लिए यह उपचार किया, परन्तु रानी घोर संकट में फँस गई, साथ में पवित्र महामंत्री भी कलंकित हुए।' पथमिणी ने दासी को आश्वासन दिया और चिंता नहीं करने को समझाया। हालाँकि पथमिणी के हृदय में भी खलबली तो शुरू हो गई थी। नाराज राजा क्या कर सकते हैं, आश्रितों की कैसी बरबादी कर सकते हैं, यह बात पथमिणी अच्छी तरह जानती थी। उसके मन में थोड़ा-सा भय आ गया, थोड़ी-सी चिन्ता भी हुई। परन्तु इतने में महामंत्री हवेली में आ गए। महामंत्री का मुख निर्विकार था, निराकुल था। वे स्वस्थ थे, शान्त थे, उनको मालूम पड़ गया था कि 'राजा मुझ पर नाराज है, मुझ पर कलंक आया है।' परन्तु इस बात का कोई असर उन पर नहीं था।

दासी चतुरा को विदा देकर महामंत्री ने पथमिणी के सामने देखा। पथमिणी महामंत्री के चरणों में बैठ गई। उनकी आँखें आँसुओं से भर आईं। 'मेरे निमित्त मेरे पति पर कलंक आया, रानी पर कलंक आया।' पथमिणी को इस बात का दुःख था। महामंत्री ने पथमिणी से कहा : 'क्यों रो रही हो? चिंता क्यों करती हो? निष्कलंक होते हुए भी कलंक आया, क्योंकि पूर्वजन्मों में किसी अकलंक को कलंकित करने का पाप किया होगा! उस पापकर्म का फल, पापकर्म की सजा समता से सहन करनी चाहिए। चिन्ता मत करो, अपने हृदय में धर्म है, धर्म अपनी रक्षा करेगा ही। धर्म की शरणागति में अभय रहो! राजा का कोई दोष नहीं है। मेरे पापकर्म ने राजा को निमित्त बनाया है, राजा पर रोष मत करना।'

पथमिणी महामंत्री की विचारधारा में बहती रही, जैसे गंगा की धारा में बहती हो! दुःख के आँसू हर्ष के आँसू में बदल गए। वह महामंत्री की प्रशांत मुखमुद्रा को देखती रही। न कोई भय, न कोई द्वेष! मंत्रीपद चले जाने का कोई भय नहीं था, मिथ्या कलंक देनेवाले राजा पर या कदंबा रानी पर द्वेष नहीं था। ऐसी आत्मा 'यथोदितं' धर्मानुष्ठान कर सकती है और धर्मानुष्ठान में स्थिरचित्त बन सकती है। भयजन्य चंचलता नहीं, द्वेषजन्य उन्मत्तता नहीं।

पथमिणी लीलावती के लिए चिंतित है :

पथमिणी को एक दूसरा विचार आया और उसके मुँह पर उद्वेग छा गया। उसने महामंत्री से कहा : 'स्वामीनाथ, उस बेचारी निर्दोष लीलावती का क्या

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

होगा? राजा ने देशनिकाला दे दिया है न? वह कहाँ जाएगी?' महामंत्री पथमिणी से इसी प्रश्न की प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्होंने कहा : 'तुम ही बताओ, उसको बचाने के लिए हम क्या कर सकते हैं? क्या करना चाहिए?' पथमिणी ने कहा : 'मैं क्या बताऊँ आपको? आप ही ऐसा उपाय सोचें कि वह रानी जंगली पशुओं की शिकार नहीं बन जाये। मुझे उसकी बहुत दया आती है। आप बचा सकते हैं उस पवित्र अबला को। कितनी छोटी उम्र है उसकी।'

पथमिणी की आँखें आँसुओं से भर गईं। महामंत्री के मन में तो रानी की सुरक्षा की योजना बनी हुई थी ही, परन्तु पथमिणी की पूर्णसम्मति उस योजना में आवश्यक थी। क्योंकि घटना बहुत ही पेचीदा थी। महामंत्री ने कहा : 'देखो देवी, उस रानी को तुम ही सुरक्षित रख सकती हो। गुप्त ढंग से उसको तुम्हारी हवेली के भूमिगृह में तुम रख लो... जब कलंक दूर होगा तब राजा के वहाँ चली जाएगी। कहो, है तुम्हारी तैयारी?' महामंत्री ने पथमिणी के सामने देखा। जिस रानी के साथ प्रेम होने का आरोप महामंत्री पर है, उस रानी को अपनी हवेली में आश्रय देने की बात कितना बड़ा साहस है? पथमिणी ने भी निःसंकोच अपनी सम्मति प्रदर्शित कर दी, यह उसका अपने पति पर कितना और कैसा अविचल विश्वास है! 'मेरे पति नैष्ठिक ब्रह्मचारी हैं! उनके मन में भी विषयविकार नहीं है...' ऐसा निःशंक विश्वास है पथमिणी के हृदय में।

आज तो पति ने पत्नी का विश्वास गवाँ दिया है :

पेथड़शाह ने ऐसा विश्वास संपादन किया होगा न! ऐसा विश्वास आप लोगों ने पत्नी का संपादन किया है क्या? है न आप पर अपनी पत्नी का विश्वास? 'मेरे सिवाय सारी दुनिया की महिलाएँ मेरे पति के मन में माता और बहन के समान हैं। किसी भी दूसरी स्त्री के सामने विकारयुक्त नहीं बन सकते...।' ऐसा विश्वास आपके प्रति होगा न?

सभा में से : तब तो हम लोग स्वर्ग का सुख पा लें यहाँ! ऐसे पुण्य कहाँ हैं हमारे?

महाराजश्री : पुण्य तो हैं परन्तु आपके ऐसे लक्षण नहीं हैं! कहिए, आप अपनी पत्नी के प्रति पूर्ण वफादार रहे हो? परस्त्री को राग से स्पर्श भी नहीं किया है न? यदि इस विलासी युग में आपने स्वपत्नी की वफादारी निभाई है तो मेरे शतशत धन्यवाद हैं आपको। परस्त्री का रूप भी नहीं देखने का।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

परस्त्री के साथ एकांत में राग से बातें भी नहीं करने की। सिनेमा के पर्दे पर भी औरतों की अर्धनग्न काया नहीं देखने की। नहीं जाते हो न देखने को?

वासनाएँ पीछा नहीं छोड़ेंगी :

सभा में से : श्रीमतीजी भी आती हैं सिनेमा देखने! परपुरुषों को देखती हैं न?

महाराजश्री : अच्छा, तो आपस में समझौता कर लिया लगता है कि मैं परस्त्री को देखूँ तो तू बौखलाना मत और तू परपुरुषों के रूप देखेगी तो मैं विरोध नहीं करूँगा। क्यों ऐसी ही बात है न? परन्तु देखने तक का ही समझौता है न? आगे बढ़कर कोई दूसरा समझौता तो नहीं किया है न? क्यों जान-बूझकर नर्क में जाने के कर्म बाँधते हो? क्यों इस वर्तमान जीवन में दुराचार-व्यभिचार के मार्ग पर चलकर स्वयं की और दूसरों की जिंदगी बर्बाद करते हो? क्या स्वस्त्री में और स्वपुरुष में ही आपकी विषयवासना शान्त नहीं होती? वासना तो दावानल है, विषयसुख भोगने से दावानल शान्त नहीं होता है, बढ़ता है। वासना प्रबल बनती जाती है। जब शरीर अशक्त बन जाएगा, इन्द्रियाँ शिथिल हो जाएँगी, तब वासनाएँ आपको डायन बनकर सताएँगी। पति-पत्नी का सदाचारी जीवन ही अपने आर्यदेश की संस्कृति है। सदाचारी, परस्पर वफादार पति-पत्नी के ही संतान आर्य-संस्कृति के संवाहक और मोक्षमार्ग के आराधक बन सकते हैं। पेथड़शाह और पथमिणी को एक ही सुपुत्र-झांझणशाह था। परन्तु कैसा था? जैसा बाप वैसा बेटा! वैसा ही सुशील, दानवीर और परमात्मभक्त! गुणवान, श्रद्धावान, चरित्रवान! आपको कैसी संतान चाहिए? संतानों की चिंता है आपको? उनकी आत्मा की चिंता है? आपको अपनी आत्मा की ही चिंता नहीं है, फिर संतानों की तो बात ही क्या करना?

देश के हितचिंतक कहलानेवालों ने, समाज के उद्धारक कहलानेवालों ने, महिलाओं को सुखी करने का ठेका लेनेवालों ने दुराचार और व्यभिचार को फैलाने का घोर पाप किया है और कर रहे हैं। कुछ ऐसे बाजारू साहित्यकारों ने, कलाकारों ने और श्रीमन्तों ने दुराचार और व्यभिचार का प्रचार करने का अक्षम्य अपराध किया है और कर रहे हैं। अरे, व्यभिचारियों को सुरक्षा देने के कानून बन गए हैं। गर्भपात जैसा घोर पाप कानून के सहारे निर्भयता से हो रहा है। ऐसे कानूनों का पालन करने का? ऐसे कानूनों का डटकर विरोध करना चाहिए, उल्लंघन करना चाहिए। प्रजा को निःसत्त्व और निर्वीर्य बनानेवाली

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

बातों का सख्त विरोध करना चाहिए। सदाचार के सुदृढ़ पक्षपाती जो होंगे वे ही विरोध करेंगे। जिनको दुःख का भय नहीं होगा और सुखों का प्रलोभन नहीं होगा वे विरोध करेंगे। कैसे राष्ट्र में जीवन जीने का है? कहते हैं कि काँग्रेस गाँधीजी के सिद्धान्तों के अनुसार राज्य करती है, लेकिन मेरी दृष्टि में गाँधीजी के सिद्धान्तों की खुले आम हत्या हो रही है। यह देश महावीर, बुद्ध, राम और कृष्ण का है। इस देश में शील और सदाचार की विडंबना? प्रजा को दुराचारी-व्यभिचारी बनाने की योजनाएँ?

हाँ, इस समाज के बीच, इस देश में रहते हुए हमको शील और सदाचार का पालन करना है! पति-पत्नी के संबंधों को पवित्र बनाए रखना है। पेथड़शाह और पथमिणी के संबंध कैसे पवित्र होंगे! एक-दूसरे के प्रति कितना विश्वास होगा? रानी लीलावती को महामंत्री गुप्त मार्ग से अपनी हवेली में ले आते हैं और पथमिणी को उसकी देखरेख करने की जिम्मेदारी सौंप देते हैं। अभय, अद्वेष और अखेद की मूर्ति पेथड़शाह वास्तव में धर्मात्मा थे, धर्म का जैसा स्वरूप बताया गया है, उसी स्वरूप का धर्म उस महापुरुष में था।

आज, बस इतना ही।

❖ ❖ ❖

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

- ***परमात्मा के साथ नाता रचने की, संबंध बाँधने की चार भूमिकाएँ हैं : १. स्मरण २. दर्शन ३. स्तवन ४. स्पर्शन।***
- ***प्रेमतत्त्व को समझनेवाले ही मूर्ति का, मूर्तिपूजा का रहस्य समझ पायेंगे। परमात्मा का प्रेम स्वतः तुम्हें खींचेगा मंदिर की तरफ।***
- ***यदि आप बंगले में बेडरूम, ड्रोईंगरूम, बाथरूम, किचन रख सकते हो; तो क्या एक 'गॉडरूम' नहीं बना सकते?***
- ***गद्‌गद् स्वर में और भावविभोर हृदय से भील ने अपनी आँख भेंट करके भगवान शंकर की पूजा की।***
- ***भगवान शंकर ने जटाशंकर से कहा :***

  'जो मुझे संपूर्ण एवं सर्वस्व समर्पित करते हैं, मैं उनका हो जाता हूँ!'
- ***धर्मशालाओं की आज दशा क्या हो रही है? उन्हें पापशाला का रूप दिया जा रहा है!***

प्रवचन : ११

याकिनी महत्तरासुनु महान श्रुतधर आचार्यश्री हरिभद्रसूरिजी 'धर्मबिन्दु' ग्रन्थ में धर्म का स्वरूप समझाते हुए फरमाते हैं :

वचनाद्यदनुष्ठनुष्ठानमविरूद्धाद् यथोदितं।
मैत्र्यादिभावसंयुक्तं तद्धर्म इति कीर्त्त्यते ।।

क्या आपके मन में इस बात को लेकर कभी बेचैनी पैदा हुई कि इतने वर्षों से धर्मानुष्ठान करते हुए भी अभी तक विचारशुद्धि और आचारशुद्धि नहीं हुई...तो क्या करूँ? क्या मैं अविधि से धर्मानुष्ठान कर रहा हूँ? जिस प्रकार धर्मानुष्ठान करना चाहिए उस प्रकार नहीं कर रहा हूँ? क्यों आत्मा में प्रशमभाव जाग्रत नहीं होता? कहाँ उलझ गया हूँ? जिंदगी छोटी है। अब जीवन-दीप बुझ जाएगा...पता नहीं, परलोक में आत्मा कहाँ जाएगी? पुनः चौरासी लाख योनि के चक्कर में तो कहीं नहीं फँस जाएगी मेरी आत्मा?

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आप आत्मचिंता करते हो कभी?

इस प्रकार की आत्मचिंता होती है सही? मकान में 'लाइट-फिटिंग' करवाया हो, 'मीटर' भी लग गया हो, 'स्वीच' 'ओन' करने पर प्रकाश नहीं होता हो तो तुरन्त जाँच करते हो न? विचार आता है न कि 'फिटिंग' हो गया है, 'स्वीच बोर्ड' लग गया है, 'मीटर' लग गया है, फिर भी प्रकाश क्यों नहीं होता? 'पावर हाऊस' के रिपेरर को बुलाकर पूछते हो न? वह आकर, सब कुछ देखकर आपको कहे कि 'लाइट कहाँ से होगी? आपने 'पावर हाऊस' से 'कनेक्शन' तो लिया नहीं है।'

मानो कि 'कनेक्शन' ले लिया है परन्तु 'लाइट-फिटिंग' ठीक नहीं हुआ है तो भी प्रकाश नहीं होगा! गलती कहाँ है, खोजो। वर्षों से धर्मक्रियाएँ करने पर भी आत्मा में ज्ञानप्रकाश नहीं हो रहा है, आत्ममंदिर में अंधेरा ही छाया हुआ है, तो आपको चिन्ता होनी चाहिए। होती है चिन्ता? अपनी आत्मा की ओर देखते हो? सारी दुनिया को देखते हो, अपनी ही आत्मा को नहीं देख रहे हो! कितने बुद्धिमान हो आप लोग? टूटे हुए दो रूपये के स्लीपर की चिन्ता हो जाती है, मूल्यवान आत्मा के प्रति लापरवाही? याद रखो, यदि आप स्वयं अपनी आत्मा की चिन्ता नहीं करोगे तो दुनिया में कोई आपकी आत्मा का उद्धार नहीं कर सकेगा।

जरा ध्यान से देखो कि आत्मा की वर्तमान स्थिति कैसी है? धर्मक्रियाएँ करते हो, फिर भी जीवन-व्यवहार में और मन के विचारों में प्रकाश आया? नहीं, अन्धकार ही अन्धकार! तलाश करो, परमात्मा के 'पावर हाऊस' के साथ 'कनेक्शन' तो सलामत है न?

परमात्मा के साथ संबंध जोड़ने का तरीका :

सभा में से : 'कनेक्शन' लिया ही नहीं है, फिर सलामती का सवाल ही नहीं उठता है!

महाराजश्री : बुद्धिमान हो न! जब तक आत्मा का परमात्मा के साथ हृदय की भूमिका पर प्रीति-भक्ति का संबंध स्थापित न हो, तब तक परमात्मा द्वारा बताई हुई मोक्षमार्ग की आराधना कैसे हो सकती है? प्रत्येक धर्मानुष्ठान में विधि-विधान का 'फिटिंग' ठीक ढंग से कैसे हो सकता है? दोनों बातें अपेक्षित हैं, 'फिटिंग' और 'कनेक्शन'! दोनों में से एक भी नहीं हो तो प्रकाश नहीं हो सकता। दोनों काम करने के हैं। मेरी राय तो यह है कि पहले 'कनेक्शन' ले

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

लो! फिर 'फिटिंग' में देरी नहीं होगी! इसलिए 'कनेक्शन' का 'प्रोसीजर' शुरू कर दो! हाँ, 'कनेक्शन' लेने का भी एक अच्छा 'प्रोसीजर' है! परमात्मतत्त्व के साथ संबंध स्थापित करना है, मामूली बात नहीं है। सरल नहीं है। लेकिन आपका संकल्प होने के बाद कोई कठिनता नहीं होगी। संकल्प करके कार्य प्रारम्भ कर दो। चार भूमिकाएँ हैं संबंध स्थापित करने की।

१. स्मरण २. दर्शन ३. स्तवन और ४. स्पर्शन।

स्मरण व्यक्ति के अभाव में होता है। स्मरण व्यक्ति की अनुपस्थिति में होता है। स्मरण अच्छे का होता है वैसे बुरे का भी होता है। जिसके प्रति प्रेम होता है उसका स्मरण मधुरता पैदा करता है साथ में व्याकुलता भी! यह व्याकुलता भी मधुर होती है। इसमें उद्वेग नहीं होता है, संताप नहीं होता है। उत्तेजना होती है, विरहजन्य व्याकुलता होती है। सदेह परमात्मा का विरह है न हम को? प्रियतम परमात्मा के विरह की व्याकुलता अनुभव की है? विरहजन्य स्मरण का संवेदन हुआ है कभी?

प्रेम बिना सब बेकार है :

परमात्मा का स्मरण हो जाता है कि करना पड़ता है? ध्यान रहे कि स्मरण में संवेदन होता ही है। संवेदनशून्य स्मरण, स्मरण नहीं कहा जाता, वह तो मात्र होता है कोई स्वार्थसिद्धि का उपाय! 'परमात्मा का इतनी बार स्मरण करने से अमुक कार्य सिद्ध होता है,' ऐसा कुछ सुनकर आप हजारों या लाखों बार परमात्मा का नाम-स्मरण करो, उस स्मरण से मेरा सम्बन्ध नहीं है। जिसको परमात्मा से प्यार नहीं होता उसका परमात्मा के नाम का स्मरण प्रेमजन्य नहीं होता, स्वार्थजन्य होता है। परमात्मतत्त्व से प्रीति हो जाती है और उस तत्त्व से मिलने की तीव्र तमन्ना जाग्रत होती है, मिलन होता नहीं है, दर्शन होते नहीं है, तब दिन-रात उसके स्मरण में गुजरते हैं। कभी-कभी उस स्मरण में आँसू भी बह जाते हैं, मन बेचैन भी हो जाता है।

सभा में से : ऐसा तो कभी नहीं हुआ!

महाराजश्री : कैसे होगा? यह सब तो परमात्मप्रेमी के जीवन में होता है। आप लोग परमात्मप्रेमी हो? अरे, परमात्मा के नहीं, और किसी के भी प्रेमी हो क्या? सच्चे प्रेमी किसके हो? 'इमिटेशन प्रेम'...मात्र बनावटी प्रेम! वैसे में स्मरण किस का? दिखावटी प्रेम में प्रेमी का अभाव अखरता ही नहीं है। अभाव अखरे नहीं तो स्मरण होता नहीं! कभी याद आ जाना एक बात है,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

स्मरण होना दूसरी बात है। स्मरण में दर्शन की तड़पन होती है। मिलन की लगन होती है।

मूर्तिपूजा कौन समझेगा ?

जब सदेह परमात्मा का विरह है अपन को, यहाँ उनके दर्शन संभव नहीं है तब उनकी आकृति के दर्शन करके कुछ तृप्ति पा लेती है आत्मा। प्रेमतत्त्व को समझनेवाला ही मूर्तिपूजा का महत्त्व समझ सकता है। प्रेमतत्त्व को जो नहीं समझता है, मूर्तिपूजा का महत्त्व नहीं समझ सकता है। परमात्मप्रेमी परमात्मा का त्रिकाल-दर्शन नहीं करे तो उसके मन को चैन नहीं पड़ता, इसलिए त्रिकाल दर्शन की विधि बताई गई है। विधि बताई गई है इसलिए त्रिकाल-दर्शन नहीं करने हैं! आपको परमात्मा के मंदिर में परमात्मप्रेम खींचकर ले जाए! आप परमात्मा की मूर्ति देखकर गद्गद् हो जाएँ! आँखें आँसुओं से भर जाएँ। अरे! इतना मज़ा आ जाय कि शब्दों में उसका वर्णन ही नहीं किया जा सकता।

जाते हो न दर्शन करने मन्दिर में? दर्शन किस प्रकार करते हो? परमात्मा की दृष्टि में दृष्टि मिलाकर खड़े रहते हो न?

सभा में से : अशक्य है महाराज साहब, परमात्मा के इस प्रकार के दर्शन तो कोई ऐसे मन्दिर में हो सकते हैं कि जहाँ लोग बहुत कम जाते हों। यहाँ तो भक्त लोग भगवान को घेर लेते हैं, दर्शनार्थी को भगवान के पूरे दर्शन ही नहीं हो पाते!

सुखी सद्गृहस्थों को चाहिए कि वे गृहमन्दिर बनाएँ :

महाराजश्री : सच बात कहते हैं आप। स्वार्थी लोगों ने भगवान को घेर रखा है! स्वार्थ में विवेक नहीं टिकता। पूजा करनेवालों को यह होश ही नहीं रहता कि उनको किस प्रकार मूल गभारे में खड़ा रहना चाहिए। 'हम अकेले ही मन्दिर में नहीं हैं, दूसरे दर्शनार्थी भी हैं...' यह विचार आता ही नहीं है इन भक्तों को। इसलिए आप लोग यदि अच्छी तरह दर्शन करना चाहते हों तो अपने घर में ही एक कमरे में एक मंदिर बनाओ! यदि आप लोग बंगला बना सकते हो और बंगले में बेडरूम, ड्रोइंगरूम, किचन, बाथरूम सब बना सकते हो तो 'गॉडरूम' नहीं बना सकते? हाँ, जो व्यक्ति एक-दो कमरे में ही जीवन व्यतीत करता है, वह गृहमन्दिर नहीं बना सकता है। ऐसे साधारण और मध्यम स्थिति के लोगों के लिए ये संघमन्दिर बनाए जाते हैं। सुखी और

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

समृद्ध लोगों को अपना गृहमन्दिर बनाना चाहिए और उस मन्दिर में दर्शन-पूजन करना चाहिए। तो संघमन्दिर में भीड़ नहीं होगी। आप लोग यदि अपना-अपना गृहमन्दिर बना लो, तो मैं जिस प्रकार दर्शन करने की बात कह रहा हूँ, आप उस प्रकार दर्शन कर सकते हैं। परमात्मा के सामने 'त्राटक' भी कर सकते हैं। दर्शन की तड़पन के बाद यदि दर्शन होते हैं तो सहज ही 'त्राटक' हो जाता है। बीच में कोई विघ्न करनेवाले आयेंगे ही नहीं।

मन्दिर में देने के लिए जाते हो या लेने के लिए? :

आप लोगों को ऐसे मन्दिरों में दर्शन करने जाना ज्यादा पसन्द आता है कि जहाँ ज्यादा से ज्यादा लोग इकट्ठे हो जाते हों! आप वैसे तीर्थ को, मन्दिर को, मूर्ति को ज्यादा प्रभावशाली मानते हो! सही बात है न? आप लोगों को प्रभावशाली भगवान प्रिय है न? प्रभावों से आकर्षित होकर जानेवाले परमात्मा के प्रेमी लोग नहीं हैं, प्रभावों का आकर्षण लोभी लोगों को होता है। ऐसे लोग क्या मन्दिर में दर्शन करने जाते हैं? नहीं, वे लोग तो अपने दर्शन देने जाते हैं! 'भगवान मुझे देख लो मैं कितना दीन हूँ, दुःखी हूँ...प्रभु, मुझे देखो...!' दर्शन देने जाते हो न? भगवान आपको देख ले तो आपका काम हो जाय! आपको मतलब है आपके काम से! यदि भगवान उसमें माध्यम बन जाय तो अच्छा है। इसलिए जाते हो मन्दिर! ऐसे लोग परमात्मतत्त्व को पहचानते ही नहीं। ऐसे लोगों को परमात्मा से कोई लगाव नहीं होता है। वे लोग देने नहीं जाते, लेने जाते हैं मन्दिर में! आप मन्दिर में लेने जाते हो या देने?

भील की निष्काम भक्ति :

जटाशंकर को शादी किये दस-बारह साल बीत गये थे, परन्तु कोई संतान नहीं थी। जटाशंकर की पत्नी जटाशंकर से कहा करती थी कि 'आप कोई मंत्र, तंत्र, दोरा-धागा, ताबीज कुछ तो करो... जिससे अपनी कामना पूरी हो जाय... सन्तान की प्राप्ति हो जाय।' एक दिन एक मित्र ने आकर जटाशंकर से कहा : 'दोस्त, तेरा काम हो जाएगा, यदि मेरी बात माने तो!'

जटाशंकर ने कहा : 'तू मेरा दोस्त है, तेरी बात क्यों नहीं मानूँगा भला? तू मेरे भले के लिए तो बात करने को आया होगा!'

मित्र ने कहा : 'जटाशंकर, यहाँ से, अपने गाँव से पूर्व दिशा में एक मंदिर है महादेव का, बड़ी चमत्कारी है शिव की मूर्ति। जो कोई भाव से शंकर की भक्ति करता है, शंकर उसकी मनोकामनाएँ पूर्ण करता है। तू यदि प्रतिदिन

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

उस मंदिर आया करे और शंकर की पूजा करे तो तेरा काम हो जाएगा!'

जटाशंकर को मित्र की बात पर विश्वास हो गया। पत्नी को भी बात बताई। पत्नी तो अत्यंत प्रसन्न हो गई और 'कल से प्रातःकाल आप उस मन्दिर में पूजन करने जाया करें। पूजन के लिए फल, मिठाई, पुष्प आदि बढ़िया सामग्री ले जाया करें...।' आज्ञा ही कर दी। क्या उसको परमात्मप्रेम था? नहीं, पुत्रप्रेम ने परमात्मा के पास जाने को बाध्य किया। वह परमात्मा से पुत्र लेने जाता है। लेने की, पुत्र पाने की प्रबल इच्छा से जाता है, नहीं कि प्रेम से।

जटाशंकर प्रतिदिन जाता है। विधि-अनुसार पूजन करता है, जाप करता है। उस मंदिर में प्रतिदिन एक भील-आदिवासी भी आता है, शंकर के दर्शन करने। उसका दर्शन-पूजन करने का ढंग ही निराला है। वह भील मुँह में पानी भर के लाता है। हाथ में जंगल के फूल लाता है। आकर वह तीर से शंकर की मूर्ति पर से फूल वगैरह उतार देता है, मुँह में से पानी की पिचकारी लगाता है मूर्ति पर और हाथ में से फूल फेंकता है। फिर शंकर के सामने देख कर पूछता है, 'कैसे हो मेरे शंकर? तेरी बड़ी दया है।' इतना बोलकर वह चला जाता है। जटाशंकर जाप करते-करते भील की पूजा देखता है और मन में गुस्सा करता है।

भक्ति किसे कहते हैं?

एक दिन तो जटाशंकर को शंकर पर ही गुस्सा आ गया। क्योंकि उस दिन शंकर ने उस भील के साथ बात की थी! 'मैं इतनी बढ़िया पूजा करता हूँ तो भी मेरे साथ इस शंकर को बात करने की नहीं सूझती और उस गँवार भील से बात करता है।'

दूसरे दिन जब जटाशंकर मंदिर गया, मूर्ति को देखा, मूर्ति की एक आँख गायब थी! जटाशंकर बड़बड़ाया : 'कैसे लोग हैं? भगवान की आँख भी चुरा ले जाते हैं। खैर, मैं कल बाजार से एक आँख ले आऊँगा और लगा दूँगा-मेरे खयाल से वह भील ही...।' जटाशंकर ने पूजा कर ली और जाप करने बैठ गया। इतने में वह भील आया। उसने रोजाना के ढंग से पूजा कर ली और शंकर की मूर्ति के सामने देखा। 'अरे, शंकर! तेरी एक आँख कहाँ गई? मेरी दो आँखें और तेरी एक! भला, ऐसा कैसे हो सकता है? तेरी दो आँखें चाहिए, ले मेरी एक आँख दे देता हूँ।' भील ने अपने नुकीले तीर से अपनी एक आँख

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

निकाल कर शंकर को लगा दी। खून की धारा बहने लगी, परन्तु भील के मुख पर प्रसन्नता छाई हुई थी। जटाशंकर को तो पसीना हो आया था सर्दी में भी! काँप रहा था उसका शरीर। उस समय शंकर की मूर्ति में से दिव्य ध्वनि निकलती है :

'रे ब्राह्मण, अब तू समझा न, कि क्यों मैं इस भील को इतना चाहता हूँ? क्योंकि वह लेने नहीं आता, देने आता है। तू देने नहीं आता, लेने आता है। मैं उसको अपना परम भक्त मानता हूँ कि जो अपना सर्वस्व मुझे समर्पित कर देता है, मैं उसका बन जाता हूँ।'

प्रेम समर्पण करवाता है!

जटाशंकर अवाक् रह गया दिव्यवाणी सुनकर। खाली थाल लेकर अपने घर लौट गया। पुत्र भले नहीं मिला परन्तु उसको परमात्मा को पाने की राह मिल गई। परमात्मा से प्रेम कर लो, फिर कुछ भी माँगना नहीं पड़ेगा। बिना माँगे ही मिल जाएगा-जिस समय जो चाहिए! यदि आप मंदिर में कुछ लेने जाते हो, तो आपका चित्त चंचल बना रहेगा। लेने की इच्छा, कुछ पाने की इच्छा चंचलता पैदा करती है। मंदिर में आपका मन स्थिर रहता है? नहीं न? स्थिरता से परमात्मा के दर्शन करते हो? परमात्मा की प्रतिमा पर आपकी दृष्टि स्थिर रहती है? रहती है तो कितनी देर तक? दृष्टि इधर-उधर हो जाती है न? हो जाएगी, क्योंकि आप लेने जाते हो, कुछ पाने की वासना चंचलता को जन्म देती है।

आपके हृदय में परमात्मप्रेम जाग्रत होगा कि आप समर्पण की भावना लेकर परमात्म मंदिर जाओगे। प्रेम आपको समर्पण के लिए ही प्रेरित करेगा। स्मरण और दर्शन के बाद आपकी वाणी मुखरित हुए बिना नहीं रहेगी। आपकी जिह्वा से परमात्मा का स्तवन स्वतः ही फूटने लगेगा। उस स्तवन में विरह की वेदना हो सकती है, परमात्मगुणों की प्रशंसा भी हो सकती है, परमात्मा से भावमिलन की प्रार्थना हो सकती है।

सबकुछ 'रेडीमेड' चाहिए आपको!

सभा में से : हम लोग तो रटे रटाए स्तवन ही बोलते हैं। हृदय में से कोई भाव स्वतः जाग्रत ही नहीं होता है।

महाराजश्री : प्रीतिपूर्ण और भक्तिपूर्ण हृदय में से स्वतः स्तवन निकलता

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

है। धरती से फूटते झरने की तरह! टटोलो अपने हृदय को। हृदय में परमात्मा के प्रति प्रीति और भक्ति के भाव पड़े हैं? मयणासुन्दरी शादी के बाद, दूसरे दिन प्रातः जब भगवान ऋषभदेव के मंदिर में गई थी, उसका पति उँबर राणा भी साथ गया था, मयणासुन्दरी के हृदय में से कैसा स्तवन प्रगट हुआ था? जानते हो? प्रीतिपूर्ण हृदय से स्तवन प्रकट हुआ था, यह जानते हो? प्रीतिपूर्ण स्तवन ने वहाँ चमत्कार कर दिया था। परमात्मा के गले में पड़ी हुई पुष्पमाला मयणासुन्दरी के पास आ गई थी! स्तवन मयणा कर रही थी, सुनकर उँबर राणा का हृदय गद्‌गद् हो गया था। स्तवन करने की भी एक पद्धति होती है। सुननेवाला सुनकर भक्तिभाव में लीन हो जाय। उँबर राणा शायद पहली बार ही मन्दिर में आया था। परन्तु उसके हृदय में मयणासुन्दरी के प्रति गुणमूलक प्रीति हो गई थी। मयणा के त्याग और समर्पण ने उँबर राणा को आकर्षित कर दिया था। मयणा के प्रति आकर्षित उँबर राणा मयणा के स्तवन के प्रति भी आकर्षित हो गया। उस स्तवन में नहीं था कोई सुख पाने का अर्चन, नहीं थी कोई दुःखभय से मुक्त होने की याचना। परमात्मगुणों की स्मृति और कीर्तन!

दर्शन कैसे करते हो? जिसके प्रति प्रीति होती है उसके दर्शन कितनी तल्लीनता से होते हैं, जानते हो? आँखों से आँखें मिलती हैं न? परमात्मा की आँखों में कुछ दिखता है? ऐसा दिखता है कि देखते ही रहें। आँखें हटे ही नहीं वहाँ से। पर हम देखें तो! एक परमात्मप्रेमी संस्कृत भाषा के महाकवि ने गाया है :

'प्रशमरसनिमग्नं दृष्टियुग्मं प्रसन्नम्।'

कवि ने परमात्मा की आँखों में प्रशमरस देखा! प्रसन्नता देखी! आप लोगों ने परमात्मा की आँखों में क्या देखा? आपको खयाल भी है कि परमात्मा की आँखों में कुछ देखने योग्य है? संसारी जीवों की आँखों में जो नहीं दिखाई दे वैसा कुछ दिव्य तत्त्व परमात्मा की आँखों में दिखाई देता है। योगीश्वर आनन्दघनजी को भी वैसा कुछ दिखाई दिया था। वे आनन्द से नाच उठे थे, उनके मुँह से स्तवन के शब्द फूट पड़े थे, जैसे कि कली फूटती है पौधे पर!

अमियभरी मूरति रची रे, उपमा न घटे कोय।
शान्त सुधारस झीलती रे, निरखत तृप्ति न होय!
विमल जिन! दीठाँ लोयण आज!

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

'हे विमल जिनेश्वर! आपके नयन आज मैंने देखे! देखता ही रहूँ, जीवनपर्यंत देखता रहूँ, तृप्ति नहीं होती है। शान्तरस का अमृत भरा है आपके नयनों में! बस, पीता ही रहूँ...।'

आनन्दघनजी योगी थे न? योगी को परम योगी के साथ प्रीति होना स्वाभाविक बात है। योगी ही परमयोगी की आँखें पढ़ सकते हैं, आँखों के भाव परख सकते हैं। भोगी का परमयोगी के साथ कैसे संबंध बन सकता है? हाँ, आप लोगों को भी योगी बनना पड़ेगा, यदि परमयोगी परमात्मा से प्रीति बाँधनी है। भोगी को योगी पसन्द ही नहीं आते! जिसको योगी पसन्द आते हैं वे भोगी नहीं होते। उनका हृदय भोगी नहीं होता। शरीर से भोगी और मन से योगी, ऐसे श्रावक भी होते हैं। परमात्मपंथ के पथिक योगी होते हैं! 'योगी' शब्द सुनकर डर मत जाना। 'योग' शब्द की परिभाषा समझ लो, डर निकल जाएगा दिमाग में से।

'मोक्षेण योजनाद् योगः।'

जो हमें मोक्ष से जोड़े, मोक्षमार्ग से जोड़े, उसको योग कहते हैं। कहिए, ऐसा योग तो आपको पसन्द आएगा न? परमात्मदर्शन और परमात्म-स्तवन ऐसा योग है। दर्शन और स्तवन अपन को परमात्मतत्त्व से जोड़ते हैं। दर्शन में तल्लीनता चाहिए, स्तवन में भावलीनता चाहिए। प्रीति और भक्ति तल्लीनता एवं भावलीनता लाते हैं।

प्रतिमा कैसी पसंद करोगे, सुंदर या चमत्कारिक?

प्रश्न : परमात्मा की मूर्ति नयनरम्य और आकर्षक होती है तो तल्लीनता जल्दी आती है। अपने यहाँ परमात्मा की मूर्तियाँ इतनी सुन्दर क्यों नहीं होती?

उत्तर : परमात्मा की मूर्ति नयनरम्य होनी चाहिए, आकर्षक होनी चाहिए, यह बात सही है परन्तु अपन को मूर्ति तक ही सीमित नहीं रहना है। मूर्ति तो माध्यम है। उस माध्यम से अपन को परमात्मस्वरूप के ध्यान में पहुँचना है। माध्यम उत्तम होगा तो प्रवेश सरलता से हो जाएगा। दर्शन, स्तवन और पूजन का लक्ष्य परमात्मस्वरूप में पहुँचने का है क्या? नहीं, लक्ष्य है भौतिक सुख पाने का! एक गाँव में हम गये थे, वहाँ के जिनमंदिर में जो मूर्ति थी परमात्मा की, छोटी थी और कुछ बेडौल भी थी। मैंने एक महानुभाव से पूछा : 'ऐसी

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मूर्ति क्यों रखी है? क्या आपको दर्शन करने में, पूजन करने में, आह्लाद आता है?'

उन्होंने कहा : 'यह मूर्ति बड़ी ही चमत्कारिक है, बहुत पुरानी है!'

चमत्कार! आप लोगों को चमत्कार बतानेवाले भगवान पसंद आ जाते हैं! चमत्कार बतानेवाले गुरु पसंद आ जाते हैं और चमत्कार बतानेवाला धर्म पसंद आ जाता है। झोंपड़ी महल बन जाए, वैसा चमत्कार चाहिए न? लोहा सोना बन जाए, वैसा चमत्कार चाहिए न? पानी घी बन जाए, वैसा चमत्कार चाहिए न? मूर्ति नयनरम्य हो या न हो, चमत्कारिक चाहिए! मन कितना विकृत हो गया है लोगों का? आप लोग परमात्मा के दर्शन करने जाते हो? नहीं, आपके दर्शन परमात्मा को देने जाते हो! परमात्मा आपको देखे और चमत्कार कर दे, इसी उद्देश्य से जाते हो न?

हम प्रतिमा को भी बदसूरत बना डालते हैं :

शिल्पी कितनी सुन्दर प्रतिमा बनाता है? अपने मन्दिरों में जब से प्रतिमा परमात्मा के रूप में प्रतिष्ठित होती है, तब से पुजारी लोग और आप लोग उस प्रतिमा को विकृत करते जा रहे हो। शिल्पी की बनाई हुई स्वाभाविक आँखें आपको पसंद नहीं आती हैं, आप जैसी तैसी काँच की आँखें लगा देते हो! जगह-जगह टीके लगाते हो। जगह-जगह सोने-चाँदी की पट्टियाँ लगाते हो...क्योंकि आपके मन में यह बात जमी हुई है कि 'एक तोला सोना मूर्ति पर मढ़ने से एक किलो मिलता है।' थोड़ा देकर ज्यादा पाने की बात है न आपकी? फिर सौन्दर्य की कल्पना ही कैसे आ सकती है? 'परमात्मा की मूर्ति नयनरम्य, खूबसूरत होनी चाहिए,' यह विचार भी शायद आप लोगों को नहीं आया होगा। आया है कभी?

कैसे तीर्थों में जाना पसंद करते हो?

कहीं पर, किसी तीर्थस्थान में कोई ऐसी सौन्दर्यशाली प्रतिमा मिल जाए, क्या वहाँ पर भी आपने दर्शन करके अमृतसर का पान किया है? परमात्मा की दृष्टि में दृष्टि जुड़ गई है कभी? एकाध घंटा दर्शन में चला गया कभी? नीरव शान्ति हो, मन्दिर में कोई कोलाहल नहीं हो, चारों ओर प्रसन्नता और पवित्रता फैली हो...धूप की सुगन्ध और दीपक की ज्योति वातावरण को आह्लादक करती हो...ऐसे स्थान में कभी दर्शन और स्तवन में खो गए हो? अपने आपको

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

खो दिया है कभी? परन्तु आप ऐसे निर्जन तीर्थस्थानों में जाना पसन्द करते भी हो क्या? तीर्थस्थानों में जाने का प्रयोजन परमात्मदर्शन और परमात्मपूजन होता है क्या? तीर्थस्थानों में भवसागर तैरने की दृष्टि से जाते हो क्या? नहीं, तीर्थस्थानों में आप अब 'पिकनिक' की दृष्टि से जाने लगे हो। वहाँ पर भी रात्रिभोजन करने लगे हो, वहाँ पर भी अभक्ष्य खाने लगे हो, वहाँ पर भी बुरे व्यसन छोड़ते नहीं। कई लोग तो तीर्थस्थानों में जाते हैं परन्तु मंदिर में नहीं जाते, धर्मशाला के सुविधापूर्ण मकान में ताश खेलते रहते हैं या रेडियो सुनते रहते हैं अथवा अर्थहीन गपशप में समय बरबाद करते हैं।

धर्मशालाएँ बन रही हैं पापशालाएँ :

तीर्थधामों की धर्मशालाएँ पापशालाएँ नहीं बन रही क्या? नाम कितना अर्थपूर्ण है 'धर्मशाला'! धर्म-आराधना करने के लिए दानवीर लोग धर्मशाला बनवाते हैं, उसका उपयोग करना पापाचरण करने में? यह दानवीरों के प्रति द्रोह नहीं है क्या? अपने जैन तीर्थों में भी अब 'करप्शन' ज्यादा बढ़ गया है। आज का आदमी ही 'करप्टेड' बन गया है न!

मेरा आप लोगों से आग्रह है कि आप तीर्थस्थानों का सदुपयोग करें। तीर्थस्थानों में बने हुए भव्य जिनमन्दिरों में जाकर अपूर्व चित्तशान्ति प्राप्त करें। जिनमंदिरों में बिराजित नयनरम्य भव्य जिनप्रतिमाओं का आलंबन लेकर परमात्मतत्त्व के साथ आन्तरिकसंबंध स्थापित करें।

जीवन और आत्मा :

मानव-जीवन की सफलता का आधार है धर्मपुरुषार्थ। यदि अर्थपुरुषार्थ और कामपुरुषार्थ में ही जीवन पूरा बीता दिया तो बहुत बड़ी गलती होगी, जन्म-जन्म उसकी सजा भोगनी पड़ेगी। गंभीरता से सोचो। अर्थ और काम, धनसंपत्ति और भोगविलास क्षणिक हैं, विनाशी हैं, दुःखदायी हैं, उनके पीछे पागल मत बनो। मन-वचन और काया की शक्ति को विनाशी के पीछे व्यर्थ मत गँवा दो। जो शाश्वत है, जो अविनाशी हैं उसको पाने का भव्य पुरुषार्थ कर लो। जीवन से भी ज्यादा आत्मा से प्यार कर लो। आत्मा की शुद्धि और उन्नति के लिए जीवन को दुःखपूर्ण भी बीताना पड़े, बीता दो। जीवन को सुखपूर्ण बनाने के लिए आत्मा का अहित मत करो। जीवन चंचल हैं, आत्मा शाश्वत है। जीवन अस्थिर है, आत्मा स्थिर है। आत्मा की उन्नति में जीवन को साधन बनाओ। जीवन साध्य नहीं है, साधन है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

परमात्मा का स्मरण, दर्शन और स्तवन करने से, स्पर्शन की अभिलाषा स्वतः जाग्रत होती है। जिसका बार-बार स्मरण होता हो, जिनका दर्शन किये बिना चैन नहीं हो और जिनके गीत गाया करते हो, उनको स्पर्श करने को हृदय लालायित हो ही जाता है।

परमात्मा की पूजा कैसे करते हो?

आप में से कई भाई-बहन प्रतिदिन परमात्मपूजन करते होंगे। मैं उनसे पूछता हूँ कि वे परमात्मपूजन किस प्रकार करते हैं? जिस प्रकार 'चैत्यवंदनभाष्य' ग्रन्थ में परमात्मपूजन की विधि बताई है, उसी प्रकार या गतानुगतिक?

सभा में से : 'चैत्यवंदनभाष्य' पढ़े ही नहीं हैं, हमको पढ़ाया गया नहीं है, हम तो गतानुगतिक... देखा-देखी करते हैं पूजन!

महाराजश्री : जो धर्मक्रिया आप करते हो, उस धर्मक्रिया के विषय में आपको यथार्थ जानकारी प्राप्त करनी ही चाहिए और शास्त्रीय मार्गदर्शन लेना ही चाहिए। गतानुगतिक... देखा-देखी धर्मानुष्ठान करने में अनेक दोष, अनेक अविधि प्रविष्ट हो जाते हैं, आगे चलकर अविधि भी विधि बन जाता है। 'मेरे दादा इस प्रकार पूजन करते थे, मेरे पिता भी इस प्रकार करते थे... क्या वे अविधि से करते थे?' आपके दादा, पिता वगैरह अविधि कर ही नहीं सकते क्या? वे सर्वज्ञ होते हैं? वीतराग होते हैं? कैसे बुद्धिहीन तर्क करते हो। 'हमारे दादा इस प्रकार करते थे।'

परमात्मा की अंगपूजा, अग्रपूजा और भावपूजा का क्रम समझो। अंगपूजा के बाद अग्रपूजा और अग्रपूजा के पश्चात् भावपूजा की जाती है। प्रतिमाजी के ऊपर जो जल, चन्दन, पुष्प आदि चढ़ाया जाता है वह अंगपूजा है। भगवान के आगे जो अक्षत, फल नैवेद्य आदि रखा जाता है वह अग्रपूजा है और चैत्यवंदन किया जाता है वह भावपूजा है।

पूजा में से अवस्था चिंतन को हम भूल गए हैं :

इस पूजनविधि में एक महत्त्वपूर्ण पूजन है 'अवस्था चिंतन' का। अग्रपूजा कर लेने के बाद और भावपूजा से पूर्व, परमात्मा जिनेश्वर देव की तीन अवस्थाओं का चिन्तन करना होता है। किया है कभी? कैसे करोगे? आपको शायद मालूम ही नहीं होगा कि 'अवस्थाचिन्तन' क्या है और कैसे किया जाता है? परमात्मपूजन की विधि में से जैसे कि 'अवस्था चिन्तन' निकल ही गया

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

है। जबकि 'अवस्था चिन्तन' अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भावक्रिया है। जिस जिनेश्वर परमात्मा की विभिन्न उत्तम द्रव्यों से अंगपूजा और अग्रपूजा की, उस परमात्मा के सामने खड़े रहकर अथवा बैठकर, परमात्मा की अवस्थाओं का चिन्तन करने में कितना आनन्द आता है! तीन अवस्थाएँ इस प्रकार हैं : १. छद्मस्थ अवस्था २. कैवल्य अवस्था और ३. रूपातीत अवस्था। जन्म से लगाकर केवल ज्ञान होने तक छद्मस्थ अवस्था होती है। उस छद्मस्थ अवस्था में भी तीन अवस्थाएँ होती हैं :

(१) बाल्यावस्था (२) राज्यावस्था (३) श्रमण-अवस्था। परमात्मा की बाल्यावस्था का चिन्तन परमात्मा के सामने करना है। अपनी बाल्यावस्था और परमात्मा की बाल्यावस्था में बहुत अन्तर है। आप जानते हो क्या कि परमात्मा तीर्थंकरदेव माता के पेट में भी तीन ज्ञानवाले होते हैं? उनको मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान होता है। हाँ, माता के उदर में अवधिज्ञान होता है। अर्थात् उनका जन्म भी तीन ज्ञानसहित ही होता है। उनकी बाल्यावस्था ज्ञानपूर्ण होती है। बालक होते हुए भी वे अज्ञानी नहीं होते। उनका शरीर बालक का होता है, उनकी आत्मा तो 'अवधिज्ञानी होती है। अवधिज्ञान' किसको कहते हैं, यह तो जानते हो न?

सभा में से : हम लोग तो कुछ भी नहीं जानते, धर्म की बातों में!

महाराजश्री : इसलिए मैं कहता हूँ कि रात्रि के समय एक तत्त्वज्ञान वर्ग शुरू करें! ऐसी तत्त्वज्ञान की बातें उस समय बताई जाएँ तो जैन-परिभाषा का आप लोगों को अच्छा ज्ञान हो सकता है। इस समय प्रवचन में आनेवालों में से कुछ लोगों को तत्त्वज्ञान में रस नहीं होता है। जब तत्त्वज्ञान की बात आती है, उनको नीरस लगती है। बहुत गहराई में भले आप नहीं जाए, परन्तु कुछ ऊपर-ऊपर का तत्त्वज्ञान तो अवश्य पा लेना चाहिए। जैनधर्म की बातों को थोड़ा भी समझने के लिए तत्त्वज्ञान अनिवार्य रूप से चाहिए।

बाल्यावस्था :

परमात्मा की बाल्यावस्था का चिन्तन करोगे तो अवधिज्ञान का विचार करना आवश्यक बन जाएगा। 'अवधिज्ञान' क्या होता है, किस-किसको होता है, इत्यादि बातें समझ लेनी चाहिए। दूर-दूर रहे हुए जड़-रूपी चेतन पदार्थों को अवधिज्ञानी जान लेते हैं, देख लेते हैं। इन्द्रियों की सहायता लिए बिना जान लेते हैं। दूसरे के मन के विचारों को भी जान सकते हैं। देवों को तो अवधिज्ञान होता ही है, मनुष्यों को भी हो सकता है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जन्म-उत्सव :

परमात्मा का जन्म होता है, देवलोक के ६४ इंद्र मिलकर भगवान को मेरूपर्वत पर ले जाते हैं और जन्म-महोत्सव मनाते हैं। भगवान महावीर को जब इंद्र मेरूपर्वत पर ले गये, छोटी-सी कायावाले भगवान पर बड़े-बड़े कलशों में से पानी का प्रवाह गिरने लगा, तब इंद्र के मन में सन्देह हुआ : 'इतने छोटे-से भगवान पर इतना तेज पानी गिरता है, भगवान सहन कैसे कर सकेंगे? विचार कोई बुरा नहीं था, परन्तु अज्ञानमूलक था! परमात्मा की अनन्त शक्ति का विस्मरण था! भगवान महावीर ने अवधिज्ञान से इंद्र के मन के विचार जान लिए! इंद्र की अज्ञानता दूर करने के लिए महावीर ने अपने पैर के अँगूठे को पर्वत से दबाया! पर्वत नाचने लगा! इंद्र घबरा उठा! इंद्र ने अवधिज्ञान से देखना चाहा : 'किसने पर्वत को हिलाने की धृष्टता की है?' देखते ही इंद्र शरमा गया! 'ओह, यह तो मेरे परमात्मा ने, मुझे बोध देने के लिए अपनी शक्ति का परिचय दिया है।' इंद्र ने भगवान से क्षमा माँग ली।

अवस्थाचिन्तन में परमात्मा की बाल-अवस्था का ऐसा चिन्तन करना चाहिए कि जिससे परमात्मा की अलौकिकता का ज्ञान हो और अपनी पामरता का खयाल आ जाए। उनके जीवन में से कोई प्रेरणास्रोत मिले, उनके प्रति भक्ति का भाव बढ़े। मेरूपर्वत पर घटी हुई उस घटना को अपनी कल्पना में लाने से कितना आह्लाद होता है! दूसरी बात यह सोचो कि परमात्मा की सेवा में देवलोक के ६४ इंद्र और करोड़ों देव होने पर भी परमात्मा को कोई गर्व नहीं! कोई अभिमान नहीं! 'मेरी सेवा में देव-देवेंद्र आते हैं। मेरे सामने इंद्र बैल बनकर नाचता है...!' ऐसा कोई स्व-उत्कर्ष नहीं! 'धन्य है भगवंत आपकी निरभिमान दशा को!' अपना हृदय भी ऐसा बोल उठता है।

ज्ञानी प्रदर्शन नहीं करते :

इतने ज्ञानी, इतने शक्तिशाली होते हुए भी भगवान दूसरे समवयस्क मित्रों के साथ घुल-मिल जाते थे। मित्रों के साथ निर्दोष भाव से खेलते थे। भीतर से ज्ञानी और बाहर से अज्ञानी से भी लगते थे! भीतर से संपूर्ण विरक्त, बाहर से माता के प्रति प्रेम भी करते थे। सबके साथ हँसते थे, बोलते थे और खेल-कूद करते थे। माता-पिता उनको पाठशाला ले गए तो वे चले गए पाठशाला! 'मैं सब कुछ जानता हूँ, मुझे क्यों पाठशाला ले जाते हो...' ऐसी कोई बात नहीं की। चले गए पाठशाला और बैठ गए दूसरे बच्चों के साथ!

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मान-सम्मान मिलने पर अभिमान नहीं आना और ज्ञानी होते हुए भी अपने ज्ञान को प्रदर्शित नहीं करना, सामान्य बात नहीं है। एक बालक के लिए असाधारण बात है। देव-देवेंद्र की ओर से मान-सम्मान नहीं, कोई बड़े प्रतिष्ठित पुरुषों की ओर से भी मान-सम्मान नहीं, रास्ते चलते मामूली लोग भी कभी नमस्कार कर दें, तो क्या अनुभव होता है? छाती फूल जाती है न! 'मैं भी कुछ हूँ! I am also something! कोई गहन-गंभीर विषय का ज्ञान नहीं हो, सामान्य ज्ञान हो, तो भी प्रदर्शन करने की इच्छा जाग्रत होती है न? 'मैं ज्ञानी हूँ, मुझे सिखाने की जरूरत नहीं है!' बोल देते हैं न?

परमात्मा के पूजन में अवस्थचिन्तन करना बहुत ही आवश्यक है। परमात्मा के जीवन के सदेह-जीवन के विचारों में खो जाने का कुछ क्षणों के लिए!

राज्यावस्था :

दूसरी अवस्था है राज्यावस्था। जो तीर्थंकर होने वाली आत्मा होती है राजकुल में ही उसका जन्म होता है। स्वाभाविक है ऐसी उत्तम आत्मा का राजकुल में जन्म होना। उसको इस विश्व में आकर महानतम कार्य करना होता है, विश्व के मनुष्यों को, देवों को, पशुओं को परमसुख और परम शांति का मार्ग बताना होता है। जिस किसी को विशिष्ट और असाधारण कार्य करने का होता है उसको वैसी सानुकूल परिस्थितियाँ चाहिए और सानुकूल साधन-सामग्री चाहिए, तभी वह कार्य करने को शक्तिमान बन सकता है। जो राष्ट्रपति बनता है वह राष्ट्रपति भवन में रहने के लिए जाएगा ही। वह छोटे दो कमरे के मकान में रहकर राष्ट्रपति का कार्य नहीं कर सकता है। राजकुल में जन्म होने से वैसी सानुकूलताएँ स्वाभाविक रूप में मिल जाती हैं।

अनासक्ति की आराधना :

दूसरी बात यह है कि तीर्थंकर की आत्मा इतनी विरक्त और अनासक्त होती है कि राजकुल में जन्म होने पर भी, राजसिंहासन पर आसीन होने पर भी उनको कोई राग नहीं होता, अभिमान नहीं होता। बड़ी स्वाभाविकता से वे राज्य का त्याग कर देते हैं। भगवान के सामने देखकर ऐसा चिन्तन करें : 'हे जिनेश्वर परमात्मा, आप राजसिंहासन पर आरूढ़ होने पर भी राजसत्ता से आपको कोई मोह नहीं। राज्य के वैभवों से कोई लगाव नहीं। भोगसुखों में कोई आसक्ति नहीं! आप कैसे अनासक्त योगी और मैं कैसा आसक्तिभरपूर भोगी! मेरे पास ऐसा कोई राज-वैभव नहीं है, कोई दिव्य सुख नहीं हैं, बीभत्स

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सुखों में भी कैसी घोर आसक्ति है? प्रभो, मुझे अनासक्त बनाइए।

चाहिए न आपको अनासक्ति? संसार के सुखों से मन विरक्त बन जाय, ऐसा चाहते हो न? तो अवस्थाचिन्तन के माध्यम से, परमात्मा से विरक्ति की प्रार्थना करो।

श्रमण-अवस्था :

तीसरी अवस्था है श्रमण-अवस्था। राजमहलों को छोड़कर अपार वैभवों का त्याग कर जब तीर्थंकर की आत्मा श्रमणजीवन को स्वीकार कर लेती है, दुनिया आश्चर्य से देखती रह जाती है। उनको जो कार्य करना है सर्व जीवों को परमसुख का मार्ग बताने का, उस कार्य के लिए सर्वज्ञता और वीतरागता अनिवार्य रूप से चाहिए। जब तक आत्मा सर्वज्ञ-केवलज्ञानी नहीं बने, वीतराग नहीं बने, विश्व के जीवों को पथ-प्रदर्शन नहीं किया जा सकता है। सर्वज्ञता और वीतरागता आत्मा में प्रकट करने के लिए प्रबल साधना करनी पड़ती है। साधना करने का जीवन है श्रमण-जीवन। ज्ञान, ध्यान, तपस्या, आत्मदमन का जीवन है श्रमण जीवन। सर्वज्ञता और वीतरागता में बाधक कर्मों का नाश-सर्वनाश करने की साधना वे करते हैं। भगवान महावीर स्वामी ने साड़े बारह वर्ष तक ऐसी घोर और उग्र साधना की थी। साधना के परिणामस्वरूप उन्होंने वीतरागता और सर्वज्ञता पाई थी। परमात्मा के सामने श्रमण-जीवन का चिन्तन इस प्रकार किया करें : 'हे भगवन्त, आपने राजवैभवों का त्याग कर, पाँच इन्द्रियों के अनेक प्रिय विषयों का त्याग कर कठोर संयमजीवन ग्रहण किया, वर्षों तक घोर-उग्र तपश्चर्या की, अप्रमत्त भाव से ध्यान किया। अनेक उपसर्ग और परिसह समताभाव से सहन कर कर्मों का नाश किया। कैसी वीरतापूर्ण आपकी साधना! कैसा उग्र आपका आत्मदमन! हे परमात्मा, मुझमें भी ऐसी वीरता पैदा करो। मैं भी कठोर धर्मसाधना करके कर्मों का नाश करूँ और सर्वज्ञ बनूँ, वीतराग बनूँ, प्रभो! मुझ पर ऐसी कृपा करो।'

बनना है न सर्वज्ञ और वीतराग? अज्ञानता और रागदशा से अब ऊब गये हो न? तो अवस्था चिन्तन में परमात्मा से यह याचना करो, प्रतिदिन याचना करो। अंतःकरण से प्रार्थना करो।

कैवल्य-अवस्था :

छद्मस्थ-अवस्था का चिन्तन इस प्रकार किया जाता है। जन्म, राज्य और श्रमण-अवस्था का चिन्तन शुरू करना। परमात्मपूजन में यह चिन्तन करने से

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अपूर्व भावोल्लास जाग्रत होगा। छद्मस्थ-अवस्था का चिन्तन करने के पश्चात् कैवल्य-अवस्था का चिन्तन करने का है। तीर्थंकर परमात्मा को सर्वज्ञता और वीतरागता प्रकट होती है, उसके बाद वे धर्मतीर्थ की स्थापना करते हैं। उनको करना होता है सर्व जीवों का कल्याण। कैसा सर्वोत्तम उपकार करते हैं वे विश्व के जीवों पर! धर्म-देशना देकर वे जीवों के प्रबल राग-द्वेष समूल नष्ट करते हैं। कर्मों का क्षय करते हैं। परमात्मा के सामने दृष्टि स्थापित कर इस प्रकार चिन्तन करें कि : 'हे परोपकारी! धर्मतीर्थ की स्थापना कर आपने संसार के जीवों पर अनन्त उपकार किया है। समवसरण में बिराजकर आप कैसी अमृतमयी धर्म-देशना देते हो! देव-देवेंद्र, पशु और मानव, स्त्री और पुरुष-सभी सुनते हैं आपका उपदेश और सभी अपनी-अपनी भाषा में समझते हैं! जो कोई जीवात्मा आपकी शरण में आता है, आप उसकी रक्षा करते हो। उसके रोग-शोक, आधि, व्याधि दूर हो जाती हैं। आप अचिन्त्य चिन्तामणि हो, आप भवसागर में नैयारूप हो। हे परमात्मा! केवलज्ञान और केवलदर्शन में आप प्रतिसमय, प्रतिक्षण चराचर विश्व को देख रहे हो, जान रहे हो।'

यह है कैवल्य-अवस्था का चिन्तन। यदि स्वतः आत्मा में से यह चिन्तन पैदा नहीं होता हो तो रट लेना, याद कर लेना और बोलना, परन्तु पूजनविधि में अवस्था चिन्तन को जोड़ जरूर देना।

रूपातीत अवस्था :

चौथी अवस्था है रूपातीत अवस्था। आठों कर्मों का क्षय होने से आत्मा रूपरहित, शरीररहित बनती है। सिद्ध, बुद्ध और मुक्त ऐसी आत्मा का चिन्तन करने का है। जिसको अपन 'मोक्ष' कहते हैं, निर्वाण कहते हैं, बस, उसका चिन्तन करने का। है 'परमात्मन्! आप सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हो गए। अशरीरी बन गए। अब कभी भी आपको जन्म नहीं लेने का, शरीर नहीं धारण करने का, मृत्यु नहीं पाने का। आप कृतकृत्य हो गये। अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तवीर्य और वीतरागता में परमसुख-परमानन्द का अनुभव करते हो। चराचर विश्व के सर्व द्रव्य और सर्व पर्यायों को आप देखते हो। भूत-भावि और वर्तमानकाल के सर्व पर्यायों को एक साथ जानते हो। इस संसार से सर्वथा परे... परन्तु अनन्त करुणा के धारक...हे परमात्मन्! जो भी मनुष्य आपको अपने ध्यान में लाता है, आप उसका उद्धार कर देते हो।'

रूपातीत-अवस्था का चिन्तन करने की यह रूपरेखा है। इस प्रकार तीनों

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अवस्था का चिन्तन करने का विधि है। आप लोगों ने इस महत्त्वपूर्ण विधि का अनादर कर दिया है न? अब आदर करोगे न? परमात्मपूजन का अनुष्ठान 'यथोदितं' बनाने के लिए संपूर्ण विधि का ज्ञान होना चाहिए और उस ज्ञान के अनुरूप क्रिया करनी चाहिए। आज समय कुछ ज्यादा ही हो गया! बह गये परमात्म चिन्तन में। वह पेथड़शाह का प्रसंग आज रह गया। रानी लीलावती को महामंत्री ले आते हैं अपनी हवेली में और गुप्त निवास में रखते हैं। वहाँ लीलावती क्या साहस करती है और महामंत्री की पत्नी कैसे बचाती है?....वगैरह रसपूर्ण बातें आगे बताऊँगा। परमात्मतत्त्व के साथ रानी लीलावती किस प्रकार आंतर-संबंध स्थापित करती है, वह बात भी बताऊँगा। स्मरण, दर्शन, स्तवन और स्पर्शन-इन चार भूमिकाओं में से गुजर कर मनुष्य परमात्मतत्त्व का अनुभव कर सकता है।

आज, बस इतना ही।

❖ ❖ ❖

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

- ***परमात्मा का मंदिर आध्यात्मिक शक्ति जाग्रत करने की 'रिसर्च लेबोरेटरी' है-प्रयोगशाला है।***
- ***भयमुक्त होकर श्री नवकार मंत्र की आराधना हमें करनी है। द्वेषमुक्त बनकर नवकार का जाप करना है। 'बोर' हुए बिना इस मंत्र को दिनरात रटना है!***
- ***दुःखी आदमी को केवल थोथा उपदेश देकर हम धार्मिक नहीं बना सकते! पहले उसके साथ मैत्री का भाव विकसित करना होगा। फिर उसे भयमुक्त करें, निर्भय बनाएँ। उसे अद्वेषी बनाएँ एवं आराधना के लिए प्रोत्साहित करें।***
- ***श्रद्धा और विश्वास से आदमी निर्भय बनता है। शंका और अविश्वास से आदमी डरपोक बनता है। भय की आशंका से घिरा हुआ रहता है।***
- ***दुःख की वास्तविकता को पहचानने के लिए कर्मग्रन्थों का अध्ययन आत्मसात् करना चाहिए।***

प्रवचन : १२

परम करुणानिधि, महान श्रुतधर आचार्यश्री हरिभद्रसूरिजी 'धर्मबिन्दु' ग्रन्थ में धर्म का स्वरूप समझाते हुए फरमाते हैं :

वचनाद् यदनुष्ठानमविरूद्धाद् यथोदितम।
मैत्र्यादिभावसंयुक्तं तद्धर्म इति कीर्त्यते ।।

प्रयोग कैसे करना चाहिए, यह सिद्धान्त समझाता है और सिद्धान्त की सत्यता प्रयोग से निश्चित होती है। प्रयोगसिद्ध सिद्धान्त सर्वमान्य बनता है। नास्तिक हो या आस्तिक हो, सबको मान्य हो जाता है। अनुष्ठान प्रयोग है, प्रयोग की प्रक्रिया बतानेवाले सिद्धान्त हैं। हमें जो अनुष्ठान करना है, उस अनुष्ठान करने की विधि हमें ज्ञात होनी चाहिए, अनुष्ठान की आदि से अन्त तक की प्रक्रिया बतानेवाले सिद्धान्त का हमें ज्ञान होना चाहिए। सिद्धान्त के अनुसार किया हुआ अनुष्ठान 'धर्म' बन जाता है। सिद्धान्त जाने बिना, मन घड़ंत ढंग से किया हुआ अनुष्ठान 'अधर्म' है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सिद्धांत और प्रयोग :

आपको धर्म की शरण स्वीकार करनी है न? तो धर्म का स्वरूप ठीक ढंग से समझ लो। एक-एक क्रिया प्रयोगात्मक ढंग से किया करो। प्रयोगशाला में, 'लेबोरेटरी' में विद्यार्थी प्रयोग करते हैं न? कैसे करते हैं? कब करते हैं? पहले उस प्रयोग के सिद्धान्त समझते हैं, फिर अध्यापक के मार्गदर्शन में प्रयोग करते हैं। आप लोगों ने सिद्धान्तों का अध्ययन किया है? नहीं किया है और प्रयोगशाला में चले जाते हो! परमात्मा का मन्दिर एक प्रयोगशाला है। आध्यात्मिक शक्ति जाग्रत करने की प्रयोगशाला है। उपाश्रय भी एक प्रयोगशाला है। जहाँ आत्मस्वरूप पाने के भिन्न-भिन्न प्रयोग होते हैं। 'यथोदितं' अनुष्ठान करने का मतलब ही यह है कि अपन सिद्धान्त के अनुसार अनुष्ठान करें ताकि वह अनुष्ठान 'धर्म' बने।

लीलावती आत्महत्या करने पर उतारू हो गई!

छोटा-सा भी अनुष्ठान 'यथोदितं' किया जाय तो वह धर्मानुष्ठान उसका फल देगा ही। नवकार मंत्र की एक माला गिनने का ही अनुष्ठान हो, जैसे माला गिनने की विधि बताई गई हो, वैसे गिनो। आप उस अनुष्ठान का प्रभाव अनुभव करोगे ही। मांडवगढ़ की महारानी लीलावती को महामंत्री पेथड़शाह ने हवेली के भूमिगृह में गुप्तवास में रखा था तब लीलावती को महामंत्री ने कौन-सी धर्मआराधना बताई थी? श्री नवकार मंत्र के जाप की! क्योंकि रानी का हृदय अत्यन्त व्यथित था, अपने दुःख से ही व्यथित था, ऐसा नहीं, 'मेरे निमित्त महामंत्री पर कलंक आया। मेरी वजह से अब भी उनको कितने कष्ट आएँगे? मेरी सुरक्षा के लिए कितना दुःसाहस किया उन्होंने। मुझे इन्होंने अपनी हवेली में रख लिया, यदि महाराजा ने जान लिया तो?' लीलावती डर से काँपने लगी। उसने एक निर्णय कर लिया : 'मुझे अब जीना ही नहीं है, मैं आत्महत्या करके मर जाऊँगी...।' जब रानी आत्महत्या करने जा रही थी, महामंत्री की पत्नी पथमिणी पहुँच गई भूमिगृह में अचानक। उसने रानी को रोक लिया आत्महत्या करने से।

'क्यों ऐसा अकार्य कर रही हो? आत्महत्या करने से कभी दुःखों का अन्त नहीं आता, दुःख समताभाव से भोग लेने से समाप्त हो जाते हैं। यहाँ तुम निर्भय हो, निश्चिंत बनकर रहो इधर, तुम्हें कोई कष्ट नहीं होगा।' पथमिणी ने आश्वासन दिया। रानी ने कहा : 'मैं ऐसा कलंकित जीवन जीना कतई

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पसन्द नहीं करती हूँ...इसलिए मरना ही अच्छा है। मेरे निमित्त महामंत्री कलंकित हुए...उनको मैं ज्यादा आपत्ति...' बोलते-बोलते रानी रो पड़ी।

पथमिणी रानी को प्रेरणा देती है :

पथमिणी की आँखें भी आँसूओं से भर गईं। पथमिणी ने रानी को अपने गले लगाकर कहा : 'मेरी बहन, तू रो मत। तू निष्कलंक है, महामंत्री निष्कलंक हैं...कोई पूर्वजन्म के पापकर्म उदय में आये हैं...इसलिए कलंक आ गया...परन्तु पापकर्मों का क्षय होने पर तुम दोनों निष्कलंक सिद्ध हो जाओगे। पापकर्मों का क्षय करने का पुरुषार्थ करो। इसलिए तो महामंत्री ने कहा है कि तुम यहाँ इस भूमिगृह में विधिपूर्वक श्री नवकार मंत्र की आराधना करो। मैं तुम्हें सहयोग दूँगी। हाँ, भयमुक्त होकर आराधना करना है। द्वेषमुक्त होकर अनुष्ठान करने है। थके बिना दिन-रात जाप-ध्यान करना है। राजा का डर नहीं रखना, राजा के प्रति गुस्सा नहीं करना और आराधना करते-करते थकना नहीं।'

पथमिणी का हृदय :

पथमिणी की निर्भय वाणी सुनकर लीलावती शांत हुई। उसने पथमिणी में धर्मश्रद्धा की उज्वल ज्योति के दर्शन किए। वह आश्वस्त हुई, स्वस्थ बनी और पथमिणी से नवकार मंत्र के विषय में ज्यादा सुनने को लालायित हुई। पथमिणी स्वयं निर्भय थी इसलिए लीलावती को निर्भय कर सकी। यदि वह स्वयं भयभीत होती तो? लीलावती को अपनी हवेली में रखती ही नहीं। पथमिणी के हृदय में दया और करुणा का सरोवर भरा हुआ था, अन्यथा लीलावती के प्रति द्वेष हो जाता। 'इस रानी की वजह से महामंत्री पर कलंक आया...' ऐसी कल्पना करती तो लीलावती के प्रति द्वेष आ जाता। यदि पथमिणी में दुःखी की रक्षा करने का उत्साह नहीं होता, उमंग नहीं होती तो 'वह जाने और उसका काम जानें...अपन को रानी की बात में क्यों उलझना? अपन तो शान्ति से जियो!' ऐसा विचार कर लेती।

जिस प्रकार महामंत्री पेथड़शाह में सद्धर्म की भूमिका सुदृढ़ थी, अभय, अद्वेष और अखेद से उनका चित्त निर्मल था, प्रसन्न था, वैसे पथमिणी भी भयरहित थी। धर्मानुष्ठान 'यथोदितं' तभी बनेगा जब भय-द्वेष और खेद से अपन मुक्त बनेंगे। ज्ञानी पुरुषों ने जिस प्रकार अनुष्ठान करने को कहा है उस प्रकार अपन क्यों नहीं कर रहे हैं? या तो कोई भय सताता है, या कोई द्वेष

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

से मन भर गया है अथवा तन-मन खिन्न हो गये हैं। पथमिणी ने लीलावती को भी अभय बना दिया। अद्वेषी बना दिया। अखिन्न बना दिया। क्योंकि उसके पास श्री नवकार मंत्र की आराधना करानी है। ऐसी आराधना करानी है कि जिसका प्रभाव अल्प समय में दिखाई दे।

दूसरे को धर्म का आराधक कैसे बनाया जाए?

यदि पथमिणी चाहती तो लीलावती को कह देती : 'तुझे अपना कलंक मिटाना है तो नवकार मंत्र का जाप करना। यदि तेरा पुण्योदय होगा तो कलंक मिटेगा और यदि पापोदय होगा तो भोगना पड़ेगा। मेरा कर्तव्य है इसलिए तुझे कहती हूँ। तुझे पसन्द हो वहाँ जाकर नवकार का जाप करना।' इतना उपदेश देकर अपना कर्तव्य पूरा कर लेती तो क्या लीलावती नवकार मंत्र की स्थिर चित्त से आराधना कर सकती थी?

काफी समझने की बात है। दुःखी मनुष्य को मात्र उपदेश देने से धर्मसन्मुख नहीं किया जा सकता है। पहले उससे आप मैत्री करो। उसको भयमुक्त करो। उसके मन को द्वेषरहित करो, उसमें उत्साह जाग्रत करो। फिर आप दुःखी जीवात्मा को धर्म का उपदेश दो। उसके हृदय में उपदेश पहुँचेगा। वह 'यथोदितं' धर्मानुष्ठान करने के लिए शक्तिमान बनेगा।

मयणासुन्दरी ने अपने पति उंबरराणा को कैसे धर्मसन्मुख किया था? श्री सिद्धचक्रजी की 'यथोदितं' आराधना कैसे करवाई थी? जिस प्रकार गुरु महाराज ने सिद्धचक्रजी की आराधना-विधि बताई थी उसी प्रकार उन्होंने आराधना की थी न? कैसे कर पाये थे? मयणासुन्दरी को गुरुदेव ने अभय बनाया था, मयणा ने उंबरराणा को भयरहित किया था! मयणा को गुरुदेव ने द्वेषरहित कीया था, मयणा ने उंबरराणा को द्वेषरहित किया था। मयणा के हृदय में गुरुदेव ने उत्साह प्रेरित किया था, मयणा ने उंबरराणा को उत्साह से भर दिया था। तब वह शान्त चित्त से, एकाग्र मन से सिद्धचक्र की आराधना कर पाये थे और नौवें दिन ही उस आराधना का फल पा लिया था।

आप लोग भी सिद्धचक्र की आराधना करते हो न? कैसे करते हो?

सभा में से : हम लोग तो घर-दूकान में और मन्दिर-उपाश्रय में सर्वत्र भय-द्वेष और खेद से भरे हुए ही रहते हैं!

महाराजश्री : बस, इसलिए आपका धर्मानुष्ठान 'यथोदितं' नहीं होता है और इसी वजह से धर्म का प्रभाव आप अनुभव नहीं कर सकते हो। निर्भय

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

बनकर जाप कीजिए नवकार मंत्र का। द्वेषरहित बनकर ध्यान कीजिए पंचपरमेष्ठि भगवंतों का। उत्साह से, वीर्योल्लास से करिए आराधना परमकृपानिधि परमात्मा की। आप भी धर्मआराधना का अद्‌भुत फल पा सकोगे। पथमिणी लीलावती रानी को श्री नवकार मंत्र की विधिवत् आराधना कराना चाहती है। उसने सर्व प्रथम लीलावती को भयमुक्त कर दिया। राजा के प्रति कोई द्वेष नहीं रहने दिया। जीवन की निराशा को मिटा दिया।

नवकारजाप की विधि :

'तुम यहाँ श्री पार्श्वनाथ भगवंत के सामने नवकार मंत्र का जाप करना। शरीरशुद्धि कर, शुद्ध श्वेत वस्त्र धारण कर, श्वेत वर्ण की माला से पूर्व दिशा में सन्मुख बैठकर, पद्मासन लगाकर, दृष्टि को नासिका के अग्रभाग पर स्थापित कर, एकाग्र चित्त से जाप करना। जाप में तुम तल्लीन बनोगी, कोई फालतू विचार तुम्हारे मन में नहीं आयेंगे। एक-एक नवकार का जाप करते जाना और एक-एक श्वेत पुष्प परमात्मा के चरणों में चढ़ाते जाना। त्रिकाल देववंदन करना। प्रतिदिन श्वेतवर्ण के द्रव्यों से एकासन का व्रत करना। दिन में एक बार ही भोजन! एक लाख नवकार मंत्र का जाप पूर्ण करना है।'

पथमिणी ने श्री नवकार मंत्र की आराधना की विधि बताई। क्योंकि लीलावती का यह प्रथम अवसर ही था नवकार मंत्र की आराधना करने का। उसने संपूर्ण विधि की जानकारी प्राप्त कर ली। आप लोगों ने भी जानकारी प्राप्त की है न? नवकार मंत्र का जाप करते हो न? रोज कितना जाप करते हो? १०८ नवकार मंत्र का जाप तो करना ही चाहिए, विधिवत् करना चाहिए। धर्मग्रन्थों में कहा गया है कि प्रतिदिन १०८ नवकार का जाप करनेवालों को कोई दुष्ट देवों का उपद्रव नहीं होता है। कोई भूत, पिशाच, व्यंतर का उपद्रव नहीं होता है। कोई मनुष्य उसका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता है। 'जस्स मणे नवकारो तस्स किं कुणई संसारो?' जिसके मन में श्री नवकार मंत्र है उसको संसार क्या कर सकता है? कुछ बिगाड़ नहीं सकता। है श्रद्धा? है विश्वास? जन्म से ही नवकार मंत्र मिल गया है न? इसलिए सही रूप से महामंत्र का मूल्यांकन नहीं कर पाये हो। जिनको काफी खोजने पर मिला है नवकार मंत्र, वे लोग भले जैन नहीं हैं, अजैन हैं, परन्तु पूर्ण श्रद्धा से उसका जाप-ध्यान करते हैं और दिव्य अनुभव करते हैं।

जैनेतर मांत्रिक नवकार मंत्र देता है :

एक जैन युवान था। उसका स्वास्थ्य बिगड़ गया। डॉक्टरों को बताया,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वैद्य और हकीमों को बताया, दवाई की, परन्तु अच्छा नहीं हुआ। स्वास्थ्य बिगड़ता चला। किसी ने कहा : कोई दैवी उपद्रव लगता है, किसी मांत्रिक को बताओ। शहर में एक अजैन मांत्रिक था, निःस्वार्थ भाव से लोकसेवा करता था। यह युवान उसके पास गया। मांत्रिक ने युवान को देखा, युवान की सारी बातें सुनीं। उसने कहा : 'तुम जैन हो न? जैनधर्म का महामंत्र नवकार तुम्हें नहीं आता? तुम नहीं जानते? तुम रोजाना एक हजार महामंत्र का जाप करो। तुम्हें अच्छा हो जाएगा।'

युवान क्या बोले? वह जानता था नवकार मंत्र! माला भी फेरता था नवकार मंत्र की। परन्तु वह अनभिज्ञ था महामंत्र के प्रभावों से। एक अजैन विद्वान के मुख से जब उसने नवकार मंत्र की महिमा सुनी, उसके मन में श्रद्धा उत्पन्न हुई, विश्वास पैदा हुआ, उसने विधिपूर्वक महामंत्र की आराधना शुरू कर दी। थोड़े दिनों में ही वह स्वस्थ हो गया। आप लोग यंत्रशक्ति से जितने परिचित हो, उतने मंत्रशक्ति से परिचित नहीं हो। इसलिए पास में अनन्त शक्ति का स्रोत होते हुए भी आप दूसरे स्थानों में भटकते हो। बाबा-फकीरों से डोरे-धागे करवाते हो और क्या क्या करवाते हो राम जाने!

श्रद्धा हमेशा 'ब्लाइन्ड' ही होगी :

इस महामंत्र के ६८ अक्षर हैं और एक-एक अक्षर दिव्य शक्ति का भण्डार है। एक-एक अक्षर भी जब नरक की वेदनाओं को मिटा सकता है तो फिर मामूली कष्ट और उपद्रव क्यों नहीं मिटे? चाहिए पूर्ण श्रद्धा और विश्वास। श्रद्धा और विश्वास से मनुष्य निर्भय बनता है। शंका और अविश्वास ही मनुष्य को भयभीत करता है। 'संशयात्मा विनश्यति।' संशय मारता है मनुष्य को। अगम अगोचर तत्त्वों की आराधना में श्रद्धा अनिवार्य तत्त्व है। यदि उन तत्त्वों के अस्तित्व में संशय हुआ, उन तत्त्वों के प्रभाव के विषय में संशय हुआ, तो काम से गए समझो।

प्रश्न : अंधश्रद्धा तो नहीं होनी चाहिए न?

उत्तर : श्रद्धा अंधी ही होती है! देखे वह श्रद्धा नहीं, देखता है ज्ञान! श्रद्धा प्रेममूलक होती है। प्रेम अंधा होता है, इसलिए श्रद्धा भी अंधी होती है। Faith is always blind. आप लोग किसे अंधश्रद्धा कहते हो? जिस बात को आप समझते नहीं और दूसरे समझते हैं, दूसरों की श्रद्धा को अंधश्रद्धा कहते हो। माता पर आपकी श्रद्धा कैसी है? वह जो भोजन परोसती है आप खा लेते हो! श्रद्धा है, इसलिए आप भोजन का प्रयोगशाला में 'टेस्ट' नहीं करवाते हो।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

संशय होता है : 'शायद इस भोजन में जहर होगा तो।' तो मनुष्य नहीं खाता है अथवा प्रयोगशाला में 'टेस्ट' करवाता है। समग्र जीवन-व्यवहार श्रद्धा और विश्वास से चलता है। वह श्रद्धा अंधी ही होती है।

महामंत्री का भव्य व्यक्तित्व :

लीलावती के हृदय में श्री नवकार मंत्र के प्रति श्रद्धा पैदा हो गई। क्योंकि पथमिणी के प्रति उसको विश्वास था। महामंत्री के प्रति पूर्ण श्रद्धा थी। महामंत्री के ब्रह्मचर्य-व्रत का अचिन्त्य प्रभाव उसने अनुभव किया था। लीलावती ने आराधना शुरू कर दी। एकाग्र मन से नवकार मंत्र का जाप और ध्यान करने लगी। दिन-प्रतिदिन उसका उल्लास बढ़ता जाता है। जाप करते करते उसकी आँखों में हर्ष के आँसू बहते हैं, हृदय अकथ्य आनन्द की अनुभूति करता है। पंच परमेष्ठि के प्रति भक्तिभाव उमड़ता है। पथमिणी प्रतिदिन उससे मिलती है। पूर्ण गंभीरता से समय व्यतीत होता है।

महामंत्री पेथड़शाह भी पूर्ण स्वस्थता के साथ अपनी दैनिक धर्म-आराधना में लीन रहते हैं। राजा महामंत्री के साथ कोई व्यवहार नहीं करता है। महामंत्री भी अपने कर्तव्यों का समुचित पालन करते रहते हैं। प्रजा की संपूर्ण सहानुभूति महामंत्री के प्रति है। सब लोग प्रतीक्षा कर रहे हैं कि 'कब महामंत्री निष्कलंक घोषित हो! कोई दिव्य घटना घटनी चाहिए।'

महामंत्री का कितना उत्तम व्यक्तित्व होगा! किसी को भी महामंत्री के चरित्र के प्रति कुशंका नहीं! प्रजा का कैसा प्रेम संपादन किया होगा! महामंत्री के मन पर कोई दबाव या तनाव नहीं था, बल्कि तनाव था प्रजा के मन पर। एक दिन तनाव का अन्त आ गया। राजा का पट्टहस्ति आलानस्तंभ तोड़कर, पागल होकर भगा। सारे नगर में तूफान मचाता हुआ नगर के बाहर निकल गया। हाथी को पकड़ने के लिए सैनिक भी नगर के बाहर पहुँचे। एक घटादार वृक्ष के नीचे हाथी पहुँचा और तुरंत ही बेहोश होकर जमीन पर गिर गया। सैनिकों ने देखा तो हाथी निश्चेष्ट हो गया था।

राजा के हाथी को भूत लगा :

राजा को जब समाचार मिला, तो दौड़ता हुआ राजा हाथी के पास आया। राजा को हाथी खूब प्यारा था। हाथी को बेहोश देखकर राजा उद्विग्न हो गया, रोने लगा। कैसा पशुप्रेम! पशुप्रेम ने राजा को रुलाया! मंत्रीमंडल ने नगर के मांत्रिकों को, तांत्रिकों को बुलाया। मांत्रिकों ने आकर अपने प्रयोग

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शुरू किए। उनको मालूम पड़ा कि हाथी के शरीर में किसी व्यंतर देव का प्रवेश हो गया है। व्यंतर को भगाने के लिए अनेक उपाय करने लगे परन्तु, व्यंतर नहीं निकला। तांत्रिकों ने भी अपने प्रयोग किए, वे भी निष्फल रहे। राजा ने मांत्रिकों और तांत्रिकों से कहा : 'तुम चाहोगे उतना धन दूँगा, परन्तु मेरे प्रिय हाथी को सजीवन करो। यदि हाथी सजीवन नहीं हुआ तो मैं चिता में अग्निस्नान करूँगा।'

चतुरा ने उपाय खोज निकाला :

मंत्रीमंडल चिंतित हो गया। अन्तःपुर में रानियाँ रोने लगीं। प्रजा को भी अपार दुःख होने लगा। 'क्या करना हाथी को सजीवन करने के लिए?' किसी को कुछ भी नहीं सूझता है। सब निराशा के सागर में डूब गए। हाथी के पास ही राजा बैठ गया था। अनेक परिचारक-परिचारिकाएँ भी वहाँ उपस्थित थीं। रानी लीलावती की दासी चतुरा भी वहाँ उपस्थित थी। चतुरा के चित्त में सहसा एक नया विचार उत्पन्न हुआ। 'यदि महामंत्री पेथड़शाह का पवित्र पूजनवस्त्र हाथी पर डाल दिया जाय, तो अवश्य हाथी व्यंतर से मुक्त हो सकता है! मेरी रानी का ज्वर उस वस्त्र के प्रभाव से दूर हो गया, तो हाथी का उपद्रव क्यों दूर नहीं होगा? परन्तु, महाराजा मेरे इस प्रस्ताव को मानेंगे? उनके हृदय में महामंत्री के प्रति गुस्सा है। अरे, उसी वस्त्र को लेकर तो राजा ने मेरी मालकिन रानी को दुःशीला समझ लिया और महामंत्री जैसे नैष्ठिक ब्रह्मचारी को भी दुराचारी मान लिया।'

चतुरा की हिम्मत नहीं बढ़ी राजा को अपनी बात करने की। उधर राजा अति उद्विग्न बनता गया। अग्निस्नान करने की हठ पकड़ ली। लोग रोने लगे। चतुरा का हृदय भी भर आया। उसके मुँह से निकल ही गया : 'महाराजा, मुझे एक उपाय याद आया है, हाथी को सजीवन करने का। आप आज्ञा करें तो मैं बता सकती हूँ।'

राजा ने चतुरा के सामने देखा। राजा की आँखों में चतुरा ने जिज्ञासा पाई। चतुरा ने कहा : 'महाराजा, यदि इस हाथी पर महामंत्री का पूजनवस्त्र डाल दिया जाए तो हाथी व्यंतर के प्रभाव से मुक्त बन सकता है। मुझे पूर्ण विश्वास है। रानी लीलावती का ज्वर इसी वस्त्र से दूर हुआ था, महाराजा!'

चतुरा का अटूट विश्वास :

राजा महामंत्री का नाम आने से थोड़ा-सा नाराज तो अवश्य हुआ, परन्तु

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मना नहीं कर सका। मौन का अर्थ होता है अनुमति। 'मौनं अनुमतम्'। चतुरा दौड़ी महामंत्री की हवेली की ओर। पथमिणी ने दौड़ती आती हुई चतुरा को देखा। कुछ कौतूहल हुआ। परन्तु चतुरा ने पहुँचते ही पथमिणी से कहा : 'देवी, अभी एक बहुत उत्तम अवसर आया है महामंत्री को अकलंक सिद्ध करने का। लीलावती रानी भी निष्कलंक सिद्ध हो जाएगी। राजा का हाथी व्यन्तर के प्रभाव में आकर निश्चेष्ट पड़ा है। राजा विलाप कर रहे हैं। सभी मांत्रिक-तांत्रिकों ने उपाय कर लिए, फिर भी हाथी सजीवन नहीं हुआ है। मैंने हिम्मत कर महाराजा को कह दिया : 'यदि महामंत्री का पूजनवस्त्र हाथी पर डाल दिया जाय तो अवश्य हाथी उपद्रवरहित हो जाएगा, आप आज्ञा करें तो मैं वस्त्र ले आऊँ।' महाराजा ने मौन संमति दे दी है। इसलिए मैं दौड़ती हुई आयी हूँ। आप कृपा कर मुझे महामंत्री का पूजन वस्त्र दे दो। मुझे संपूर्ण विश्वास है कि वस्त्र के प्रभाव से हाथी अच्छा हो जाएगा। बस, फिर तो महाराजा को अपनी गलती खयाल में आ ही जाएगी। महामंत्री के प्रति उनका पूर्ववत सद्भाव बन जायेगा। रानी के प्रति भी राजा निःशंक बन जाएँगे। आप देरी मत करें...निश्चिंत होकर वस्त्र दे दें।' चतुरा के हृदय में रानी और महामंत्री को निर्दोष, निष्कलंक सिद्ध करने की पूर्ण तमन्ना है। चूंकि उसके हृदय में इन दोनों के प्रति स्नेह और सद्भाव है। गुणवान पुरूषों को आपत्ति में देखकर उनके अनुरागी मनुष्यों को गहरा दुःख होता है और वे उन गुणवानों की आपत्ति दूर करने तत्पर बनते हैं। चतुरा उसी मौके की तलाश में थी, 'कब अवसर मिले और रानी एवं महामंत्री का कलंक दूर हो जाय!' आज उसको अवसर मिल ही गया।

पथमिणी को भी चतुरा की बात जँच गई। उसने पूजन का वस्त्र दे दिया चतुरा को। चतुरा वस्त्र लेकर चली गई और पथमिणी तुरन्त ही भूमिगृह में लीलावती के पास पहुँच गई। लीलावती अभी-अभी ही जाप करके निवृत्त हुई थी। ८० हजार से भी ज्यादा जाप हो गये थे। पथमिणी ने लीलावती के दोनों हाथ पकड़ कर कहा : 'रानीजी! बस, अब दुःख के दिन गए समझ लो।' लीलावती ने कहा : 'मेरे दिन दुःख के हैं ही नहीं! मेरे दिन तो अपूर्व सुख में व्यतीत हो रहे हैं! मेरे जीवन के श्रेष्ठ दिन हैं ये! तुम मेरी कितनी खातिर करती हो! श्री नवकार मंत्र के जाप-ध्यान में अपार आन्तर आनन्द मिल रहा है।'

तेरी बात सही है लीला, परन्तु मैं तुझे आज अच्छा समाचार देने आई हूँ। अब तेरा कलंक गया समझ लो! पथमिणी ने चतुरा से सुना हुआ सारा वृत्तांत कह सुनाया। लीलावती को हर्ष हुआ, रोम-रोम विकस्वर हो उठा, हृदय

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

गद्गद् हो गया। उसने कहा 'पथमिणी, मेरी आन्तर पुकार पंचपरमेष्ठि भगवंतों ने सुनी। अधिष्ठायक देवों ने मेरी सहायता की। अवश्य, महामंत्री के वस्त्र से हाथी उपद्रवरहित होगा। अभी समाचार लेकर चतुरा यहाँ आई समझ ले। क्या महामंत्री को मालूम है यह सारा वृत्तांत?'

मन को शांत एवं स्थिर रखो :

'मैं सीधी यहाँ ही चली आई हूँ। महामंत्री को समाचार अब दूँगी।' पथमिणी वहाँ से पहुँची महामंत्री के पास। महामंत्री को भी पथमिणी ने सारे समाचार कह सुनाये। महामंत्री ने स्वस्थ मन से और प्रसन्नमुद्रा से समाचार सुने। उन्होंने पथमिणी से कहा : 'पुण्यकर्म और पापकर्म के उदयों के अनुसार संयोग बदलते रहते हैं। पापकर्मों का उदय समाप्त होता है। संयोग अच्छे बन आते हैं। पुण्यकर्म का उदय समाप्त होता है, संयोग प्रतिकूल बन जाते हैं। दोनो प्रकार के संयोगों में धर्मतत्त्व को समझनेवाले पुरुष समभाव धारण करते हैं।'

संतुलित व्यक्तित्व :

महामंत्री का तत्त्वज्ञान कितना आत्मस्पर्शी था! विपरीत संयोगों में भी कोई चंचलता नहीं, अस्थिरता नहीं। 'कब मेरा कलंक दूर होगा?' ऐसी भी कोई उत्सुकता नहीं। राजा के प्रति कोई रोष नहीं। अच्छे संयोग, अच्छी परिस्थितियाँ पुण्यकर्म के उदय के साथ संबंधित हैं। पुण्यकर्म का उदय शाश्वत नहीं होता। पुण्यकर्म विनाशी और क्षणिक होते हैं। कभी भी पुण्यकर्म समाप्त हो सकते हैं, मनुष्य नहीं जान सकता है। पुण्यकर्म समाप्त होते ही सुख समाप्त! अलग-अलग प्रकार के पुण्यकर्म होते हैं। कभी किसी पुण्यकर्म का उदय होता है कभी किसी दूसरे पुण्यकर्म का। पुण्यकर्म और पापकर्म के उदय साथ चलते रहते हैं। दुनियाभर में ऐसा कोई जीव नहीं होता है कि जिसको कोई भी पापकर्म का उदय नहीं आता हो और सभी प्रकार के पुण्यकर्मों का उदय हों! कुछ पुण्यकर्म का उदय और कुछ पापकर्म का उदय...लेकर मनुष्य जीवन जीता है। यदि इस वास्तविकता को अच्छी तरह समझ लो तो अपनी आत्मा को सुख-दुःख के संवेदनों से बचा सकते हो। हर्ष और उद्वेग के द्वन्द्वों से बचा सकते हो। खुशी-नाराजी के द्वन्द्वों से आत्मभाव को अलिप्त रख सकते हो। महामंत्री पेथड़शाह के पास यह तत्त्वज्ञान था। आत्मसात् किया हुआ तत्त्वज्ञान था, मात्र किताबों का ज्ञान नहीं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

किताब का ज्ञान दिमाग तक, दिल तक कहाँ जाता है?

एक पंडित थे। अपनी जैन पाठशाला में पढ़ाते थे। 'कर्मग्रन्थ' और 'कर्मप्रकृति जैसे ग्रन्थों का अध्ययन करवाते थे। एक दिन वे मेरे पास आये। बहुत उद्विग्न थे। मैंने पूछा : 'क्या बात है? आज इतने परेशान क्यों?' उन्होंने कहा : 'पाठशाला के ट्रस्टियों की ओर से परेशान हूँ। तीन साल से पढ़ाता हूँ, परन्तु तनख्वाह बढ़ाते नहीं और काम बढ़ाते जाते हैं।' मैंने पूछा : 'ऐसा कौन से कर्म के उदय से होता है? किसी न किसी कर्म का उदय काम करता होगा न?'

उनके पास ज्ञान था कर्मसिद्धान्त का, परन्तु वह ज्ञान आत्मसात् नहीं हुआ था, मात्र आजीविका का साधन बन कर रह गया था। ज्ञानी तो अपनी समस्याओं का समाधान अपने ज्ञान से करते रहते हैं और मन को समरस बनाए रखते हैं। कर्मबंध का और कर्मोदय का विज्ञान मन का समाधान कर सकता है। महामंत्री ने अपने मन का समाधान कर लिया था।

हाथी में चेतना का संचार :

उधर चतुरा महामंत्री से पूजन का वस्त्र लेकर हाथी के पास पहुँच गई। वस्त्र हाथी को ओढ़ा दिया। राजा और प्रजा की आँखें हाथी पर स्थिर हो गईं। 'अब क्या होगा?' सबके मन में इन्तजारी बढ़ गई। थोड़ा समय बीता और हाथी के शरीर में कंपन पैदा हुआ। हाथी ने अपने पैर हिलाये...। राजा खड़ा हो गया...। उसके मुँह पर खुशी की लहर दौड़ आई। हाथी की सूँढ़ हिलने लगी। धीरे-धीरे उसने अपनी आँखें खोलीं।

कलंक दूर हो गया :

लोगों ने महामंत्री पेथड़शाह का जय-जयकार किया। दासी चतुरा तो हर्ष से नाचने लगी। धीरे-धीरे हाथी खड़ा होने लगा। राजा के हृदय में से महामंत्री के प्रति जो गुस्सा था, निकल गया। उसने महामंत्री को बुलावा भेजा। महामंत्री राजा के पास पहुँचे। राजा ने महामंत्री के ब्रह्मचर्य-व्रत की प्रशंसा की और अपने साथ हाथी पर बैठने को कहा। महामंत्री हाथी पर नहीं बैठते थे, उन्होंने इनकार किया, तो राजा ने अपना पट्ट-अश्व मँगवाया। मंत्री को अश्व पर बिठाया, चँवर और छत्र धारण करवाये। उत्सव के साथ नगर में प्रवेश करवाया। राजसभा में राजा ने महामंत्री को एक लाख स्वर्णमुद्राएँ भेंट दीं। महामंत्री की बहुत प्रशंसा की। सारे नगर में आनन्द छा गया।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

बदलते मन का क्या भरोसा?

परिवर्तनशील जीवन में सब कुछ परिवर्तनशील है। मनुष्य के विचार कितने परिवर्तनशील हैं! राजा के विचारों में कैसा परिवर्तन आ गया! महामंत्री का पापकर्म का उदय समाप्त हुआ और सानुकूल संयोग पैदा हो गये। रानी लीलावती का पापोदय समाप्त हुआ और परिस्थिति बदल गई। राजा जब महल में गया, उसके मन में रानी लीलावती का विचार आया। 'मैंने लीलावती के प्रति कैसा घोर अन्याय किया? वह निर्दोष थी। मैंने कोई तलाश नहीं की कि उसने महामंत्री का वस्त्र क्यों ओढ़ा है? मैंने उसके चरित्र पर शंका की। महामंत्री, कि जो पवित्र महात्मा पुरुष है, उसके विषय में कुशंका की। मैंने कितना गलत सोचा...बेचारी लीलावती कहाँ गई होगी? उसका क्या हुआ होगा?' राजा का हृदय भर आया। घोर दुःख का अनुभव करने लगा।

दूसरे को दुःखी करनेवाला सुखी होगा कैसे?

और वह रानी कदंबा? राजा समझ गया कदंबा के षड़यंत्र को। राजा के हृदय में से कदंबा निकल गई! लीलावती के लिए खोदे हुए खड्डे में कदंबा स्वयं गिरी। दूसरे के लिए जो खड्डा खोदते हैं, एक दिन वे स्वयं उस खड्डे में गिरते हैं। लीलावती को राजा के हृदय से और राज्य में से निकालने चली थी न? अल्प समय के लिए ठीक है, उसको सफलता मिली, परन्तु दीर्घकाल के लिए उसने अपना भविष्य अंधकारमय बना दिया। अपने सुख के लिए दूसरों को दुःखी करनेवाले कभी सुखी नहीं बन सकते। ध्यान रखना, सुख पाने के लिए यदि दूसरों को दुःखी करने चलोगे तो तुम स्वयं दुःख की गहरी खाई में गिर जाओगे। कदंबा का अब इस राजमहल में कोई स्थान नहीं रहा। सबकी नजरों में वह गिर गई। तिरस्कारपात्र बन गई। वह स्वयं भी समझ गई होगी कि 'अब मेरा इस महल में कोई स्थान नहीं रहा।'

राजा को लीलावती की चिंता :

दूसरे दिन जब पेथड़शाह राजसभा में पहुँचे, महाराजा राजसभा में नहीं आए थे। महामंत्री राजमहल में गए। महाराजा शयनकक्ष में थे। महामंत्री शयनकक्ष में पहुँचे। राजा अति उद्विग्न थे। महामंत्री ने विनय से पूछा : 'मेरे नाथ, आप इतने बेचैन क्यों हैं? आज इतना दुःख किसलिए?' राजा की आँखों में से आँसू टपकने लगे। महामंत्री ने अपने उत्तरीय वस्त्र से आँसू पोंछ दिए।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

'महामंत्री, मुझे लीलावती की चिन्ता सता रही है। उस बेचारी का क्या हुआ होगा?' राजा ने महामंत्री के सामने देखा। महामंत्री ने कहा : 'महाराजा, आप धैर्य धारण करें। रानी कुशल ही होंगी! उनके हृदय में धर्म था, धर्म ने उनकी रक्षा की होगी। मैं उनकी खोज करवाता हूँ। परन्तु आप एक कार्य करने की कृपा करें।'

राजा ने पूछा : 'क्या करूँ? तुम कहो वह करने को तैयार हूँ।'

महामंत्री ने कहा : 'आप महान् धर्मकार्य करें, जिससे मेरा प्रयत्न सफल बनें और सात दिन में महारानी को हाजिर कर सकूँ।' कौन-सा धर्मकार्य करूँ?' राजा ने पूछा। महामंत्री ने धर्मकार्य बताया : 'महीने में पाँच पवित्र पर्व तिथियाँ आती हैं, उन दिनों में अपने देश में कोई आदमी किसी प्रकार का व्यसन सेवन नहीं करे। सात व्यसनों का निषेध करवा दिया जाए। कोई मांसभक्षण नहीं करे, शराब नहीं पिये, जुआ नहीं खेले, व्यभिचार नहीं करे। कोई चोरी नहीं करे।' राजा ने महामंत्री की सूचना का तुरन्त ही अमल करवाया।

रानी लीलावती का कृतज्ञता गुण :

महामंत्री ने अपने घर आकर पथमिणी को सारी बात बताई। पथमिणी प्रसन्नचित्त प्रसन्नवदना हो गई। भूमिगृह में जाकर लीलावती को सारी बात कह सुनाई। लीलावती हर्षविभोर बन गई। उसने कहा : 'यह सारा प्रभाव श्री नवकार महामंत्र का है। पंचपरमेष्ठि भगवंतों की परम कृपा से ही यह परिस्थिति पैदा हुई है। मेरे लाख नवकार का जाप पूर्ण होने जा रहा है। पूर्ण हो जाएगा।' पथमिणी ने कहा : 'अब तू महाराजा की पट्टरानी बन जाएगी। तुझे ढेर सारा सुख मिलेगा, परन्तु परमात्मा को और नवकार मंत्र को कभी भी नहीं भूलना।

रानी ने कहा : 'पथमिणी, उनको मैं कैसे भूल सकती हूँ? नवकार मंत्र तो मेरे श्वासोश्वास में समा गया है। परमात्मा पार्श्वनाथ तो मेरे परम प्रियतम हैं! मैं स्वर्ण की प्रतिमा बनाऊँगी और प्रतिदिन पूजन करूँगी। मैं कभी मांसभक्षण नहीं करूँगी, रात्रिभोजन का भी त्याग कर दूँगी। और एक बात कहूँ? मैं तेरे उपकारों को कभी नहीं भूलूंगी।' रानी की आँखों में आँसू भर आये। वह पथमिणी के गले लिपट गई। पथमिणी की आँखों से भी आँसू बहने लगे। गुणवानों को गुणीजनों से प्रेम हो जाता है। रानी में कृतज्ञता का श्रेष्ठ गुण था। उसने पथमिणी में अनेक गुण देखे थे। पथमिणी के उपकारों को वह कैसे भूल सकती थी? पथमिणी कहती है :

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

'रानी, तू कितनी अच्छी है। तेरी मनोकामनाएँ कितनी पवित्र हैं...तू मुझे भूल जाएगी तो चलेगा, परन्तु जिनधर्म को कभी नहीं भूलना, हृदय में स्थिर रखना। धर्म ने तेरी रक्षा की है, मैंने कुछ नहीं किया है।' पथमिणी कितनी निरभिमानी सन्नारी होगी! ब्रह्मचारिणी तो थी ही, अनेक गुणों से सुशोभित महान श्राविका थी। लीलावती के हृदय में धर्मतत्त्व की प्रतिष्ठा कर दी उसने।

सब कुछ वापस मिल गया :

सात दिन गुजरते कितनी देर! सातवें दिन महामंत्री ने जाकर महाराजा को शुभ समाचार दे दिये। 'लीलावती का पता लग गया है और मेरी हवेली पर आ गई है। आप आज्ञा करें तो महल में ले आऊँ।' राजा ने कहा : 'नहीं, मैं स्वयं तुम्हारे घर पर आता हूँ।' महामंत्री खुश हो गए। महाराजा पेथड़शाह की हवेली में पधारे। पथमिणी ने आदर-सत्कार किया और लीलावती के पास ले गई। लीलावती को देखकर राजा हर्षविभोर हो गए। रानी को अनेक मूल्यवान वस्त्र दिए और ३२ लाख रूपये भेंट किए। बड़े सम्मान के साथ रानी को महल में ले आए।

लीलावती ने पार्श्वनाथ भगवंत की स्वर्णप्रतिमा बनवाई! प्रतिदिन पूजन करती है। प्रतिदिन श्री नवकार मंत्र का जाप-ध्यान करती है। अनछाना पानी नहीं पीती है, रात्रिभोजन नहीं करती है और धर्ममय जीवन व्यतीत करती है। राजा ने लीलावती को पट्टरानी बनाया।

आराधना जीवंत बननी चाहिए :

लीलावती की धर्मआराधना 'यथोदितं' थी। जिस प्रकार पूजन वगैरह अनुष्ठान करने चाहिए उसी प्रकार वह प्रत्येक धर्मानुष्ठान करती थी। तो उसका अनुष्ठान, उसकी क्रिया धर्म बन गई। उस धर्म के प्रभाव से ही उसके दुःख दूर हुए, सुख मिले, कीर्ति बढ़ी और आत्मा निर्मल बनी।

वह अनुष्ठान 'धर्म' बनता है कि जो 'यथोदितं' होता है, इस बात का अपन विस्तार से विचार कर गए, अब तीसरी बात सोचने की है कि अपना प्रत्येक अनुष्ठान मैत्री, प्रमोद, करुणा और माध्यस्थ्य-भाव से युक्त होना चाहिए। इन चार भावनाओं से भावित हृदय की क्रिया ही धर्म बनती है! इस विषय में कल से विवेचन शुरू करूँगा।

आज, बस इतना ही।

❖ ❖ ❖

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

- ***भीतर में देखने के लिए बाहरी चर्मचक्षु बंद करने पड़ते हैं।***
- ***बाहर की निगाहें बंद होंगी तो अन्तर्चक्षु अपने आप खुलेंगे। अंतर की आँखों से भीतर की दुनिया को देखो।***
- ***वासना में बौराया हुआ दिमाग कभी भी स्वस्थ एवं संतुलित नहीं रह पाता है। विवेकशून्य होकर मान-मर्यादा-आबरू सब कुछ भूल जाता है।***
- ***गर्भवती स्त्री यदि अपने संतान का भविष्य जानना चाहे, परखना चाहे तो जान सकती है। स्वयं के मनोभावों का अध्ययन ही उसे बता देगा कि आनेवाला बच्चा अच्छा होगा या बुरा।***
- ***सभी जीव कर्मपरवश हैं। अपने ही कर्मों से जीव सुख-दुःख पाता है! किसी को क्यों दोष देना कि : 'तुमने हमें दुःखी कर डाला!'***

प्रवचन : १३

करुणा के महासागर आचार्यश्री हरिभद्रसूरीश्वजी ने 'धर्म' की परिभाषा की है। बहुत ही अच्छी परिभाषा की है आचार्यश्री ने! वे ऐसा नहीं कहते हैं कि 'महावीर स्वामी का बताया हुआ धर्म ही सच्चा धर्म है।' वे कह रहे हैं कि वह अनुष्ठान धर्म कहलाता है कि जो अविरुद्ध वचन से प्रतिपादित हो, यथोदित किया जाता हो और मैत्री-प्रमोद-करुणा और माध्यस्थ्य-भाव से किया जाता हो। ऐसा अनुष्ठान फिर किसी का भी बताया हुआ हो, 'धर्म' कहलाएगा। भले ही महावीर या पतंजलि का बताया हुआ हो। होना चाहिए अविसंवादी अनुष्ठान, यथोदितं अनुष्ठान और मैत्री-प्रमोद-करुणा तथा माध्यस्थ्य-भाव से परिपूर्ण अनुष्ठान!

धर्म का अनुष्ठान, धार्मिक क्रिया करनेवालों का हृदय मैत्री वगैरह पवित्र भावों से नवपल्लवित होना चाहिए। यदि मनुष्य के हृदय में मैत्री नहीं है, शत्रुता है, प्रमोद नहीं है ईर्ष्या है, करुणा नहीं है, तिरस्कार और निर्दयता है, माध्यस्थ्य-भाव नहीं है परन्तु घोर घृणा भरी पड़ी है, तो उस मनुष्य का किया

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हुआ अनुष्ठान 'धर्म' नहीं कहलाएगा। भले ही वह अनुष्ठान सर्वज्ञकथित हो, यथोदित किया गया हो, वह 'धर्म' नहीं बन सकता।

देखोगे तो सोचोगे :

टटोलो अपने अन्तःकरण को। भीतर देखो, क्या-क्या पड़ा है भीतर! कैसे कैसे भाव पड़े हैं हृदय में? शत्रुता, ईर्ष्या, निर्दयता, नफरत, तिरस्कार...वगैरह असंख्य दुर्भावों के ढेर लगे हैं न? भीतर देखोगे तो दिखाई देगा। देखोगे तो सोचोगे! देखते ही नहीं, तो फिर सोचोगे कैसे? ये भाव अच्छे नहीं हैं, उनको निकाल दूँ, ये भाव अच्छे हैं, उनको सुरक्षित रखूँ।' ऐसा सोचते हो क्या? मकान में देखते हो कि 'यहाँ कचरा पड़ा है,' तो सोचते हो कि 'इसको निकाल देना चाहिए।' वस्त्रों को देखते हो कि कपड़े गंदे हो गए हैं, तो सोचते हो 'इनको धोना चाहिए।' मनुष्य देखता है तो सोचता है! देखे ही नहीं तो सोचेगा कैसे? परन्तु दुर्भाग्य है कि मनुष्य अपने भीतर नहीं देखता है। बाहर तो कितना कुछ देखता है! घर में, बाजार में, स्कूल-कॉलेज में, पार्क में और क्लबों में कम देखने को मिलता है... तो सिनेमा देखने जाता है। नाटक देखने जाता है! बाहर का ढेर सारा देखता है तो सोचता भी बाहर का ही है! भीतर में... अन्तःकरण में देखें... तो वहाँ भी विराट विश्व है! भीतर में भी स्वर्ग और नर्क है!

हृदय की शुद्धि आवश्यक है :

भीतर देखने के लिए आँखें बन्द करनी पड़ती हैं! कान बंद करने पड़ते हैं। बाहर की आँखें बंद करोगे तब अन्तःचक्षु खुल जाएँगे। अन्तःचक्षु से भीतर की दुनिया देखना। कैसे-कैसे भाव पड़े हैं वहाँ! अनन्त-अनन्त जन्मों से, अनन्त अनन्त दुष्ट भाव आत्मा में... कर्मबद्ध आत्मा में जमे हुए पड़े हैं। ये दुष्ट भाव हमारी क्रियाओं को 'धर्म' नहीं बनने देते। चाहे क्रियाओं का बाह्य रूप धार्मिक क्यों न हो?

अशुभ और अशुद्ध भावों से मलिन बने हुए हृदय को शुद्ध करना अति आवश्यक है। महसूस करते हो इस आवश्यकता को?

सभा में से : महसूस तो करते हैं परन्तु अशक्य-सा लगता है!

महाराजश्री : शक्य प्रयत्न किए बिना 'अशक्य' मान लेना, बड़ी गलती है। जिस आवश्यकता को आप तीव्रता से महसूस करते हो, शक्य प्रयत्न करते ही हो। अशुभ विचारों को दूर करने का कोई प्रयत्न किया है? अशुभ, अशुद्ध

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विचार काँटें की तरह चुभते हैं क्या? नहीं, शक्कर जैसे मीठे लगते हैं वे विचार! लगते हैं न मीठे? खराब विचार ज्यादा मीठे लगते हैं!

फिर उनको मिटाने का पुरुषार्थ ही कैसे होगा? आप अपने भीतर देखो, बार-बार देखो। देखोगे तो अवश्य सोचोगे।

याद रहे, शुद्ध चित्त, शुद्ध अन्तःकरण ही धर्म है। 'षोडशक' ग्रन्थ में इसी आचार्यदेव ने कहा है 'धर्मश्चित्तप्रभव' : कैसा चित्त धर्मस्वरूप बनता है? विशुद्ध चित्त! राग-द्वेष और मोह की अशुद्धि दूर होनी चाहिए। राग-द्वेष और मोह की अशुद्धि दूर होने से चित्त शुद्ध बनता है और पुष्ट बनता है। शुद्ध और पुष्ट चित्त ही धर्म है। धर्म को बाहर ढूँढ़ने की आवश्यकता नहीं है, अपने भीतर ही ढूँढ़ो। इसलिए कहता हूँ कि भीतर देखो! जो वस्तु जहाँ होती है वहाँ से ही मिलती है, दूसरी जगह ढूँढ़ने से नहीं मिलती है।

जो चीज जहाँ होगी, वहाँ से मिलेगी :

रात्रि का समय था। एक बुढ़िया सड़क पर रोडलाईट के नीचे कुछ ढूँढ़ रही थी। वहाँ से ३-४ बच्चे जा रहे थे। उनकी बुढ़िया के प्रति सहानुभूति जाग्रत हुई। उन्होंने बुढ़िया से पूछा : 'माँ, क्या खो गया है? क्या ढूँढ़ती हो?'

'मेरी सुई खो गई है, सुई को ढूँढती हूँ।' बुढ़िया ने कहा। बच्चे भी उधर सुई खोजने लगे। बहुत खोजने पर जब सुई नहीं मिली, तब बच्चों ने पूछा : 'माँ, यह बताओ कि सुई किधर गिरी थी?' बुढ़िया ने कहा : सूई तो मेरे घर में गिर गई है, परन्तु वहाँ लाईट नहीं है, यहाँ प्रकाश है, इसलिए यहाँ ढूँढ़ती हूँ।' बच्चे पेट पकड़कर हँसने लगे और चल दिये वहाँ से।

जो वस्तु जहाँ नहीं है, वहाँ खोजने से, हजारों वर्ष तक खोजने पर भी नहीं मिलेगी। जहाँ हो, वहाँ खोजने से मिल सकती है। धर्म को कहाँ ढूँढ़ते हो? बाहर धर्म नहीं है, धर्म भीतर है। अशुद्ध चित्त को शुद्ध करो, शुद्ध चित्त ही धर्म है। राग-द्वेष और मोह की अशुद्धि दूर करो। शत्रुता, ईर्ष्या, निर्द्रयता, तिरस्कार की अशुद्धि दूर करो।

जीवद्वेष : गंभीर प्रकार का अपराध :

सर्व प्रथम यह काम करना आवश्यक है। जीवसृष्टि के प्रति अनन्तकाल से जो अपराध करते आये हैं, उन अपराधों की परंपरा को तोड़ दो। जीवों के प्रति जो शत्रुता है, ईर्ष्या है, निर्दयता है... घृणा है, उसको मिटा दो। जीवों के प्रति

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शत्रुता बहुत बड़ा पाप है, बहुत बड़ा अपराध है। जैसे जीवों के प्रति ईर्ष्या करना, जीवों के प्रति निर्दय बनना, घृणा-तिरस्कार करना भी गंभीर अपराध है। इन अपराधों की सजा बहुत बड़ी है। भयंकर सजा होती है।

सभा में से : ऐसे अपराध तो हमारे लोगों के जीवन में बहुत हो जाते हैं! इन अपराधों से बचना मुश्किल लगता है।

महाराजश्री : अपराधों से बचना मुश्किल लगता है तो फिर सजा से बचना मुश्किल ही नहीं वरन असंभव समझो। जब तक हृदय की अशुद्धियाँ आप देखोगे नहीं, उन अशुद्धियों को दूर करने का विचार ही नहीं आएगा, दूर करने का पुरुषार्थ तो होगा ही नहीं। और अशुद्ध एवं अशक्त चित्त से आप कितनी भी धर्मक्रियाएँ करो, वह धर्म नहीं कहलाएगा।

पापविचार प्यारे लगते हैं न?

यदि आप दूसरे जीवों के हित का विचार नहीं करते हैं, अहित करने का सोचते हो, यदि आप गुणवान पुरुषों के गुणों की प्रशंसा नहीं करते हैं; परन्तु गुणवानों के भी दोष देखते हो और निन्दा करते हो, यदि आप में दुःखी जीवों के प्रति दया-करुणा नहीं है, परन्तु निर्दयता और कठोरता है, यदि आप पापी जीवों के प्रति तीव्र घृणा करते हैं, मध्यस्थ नहीं रहते, तो आपका कोई भी अनुष्ठान, आपकी कोई भी क्रिया, धर्म नहीं बन सकती। यदि आप सही अर्थ में धर्म-आराधना कर मानव-जीवन का साफल्य पाना चाहते हो, आत्मविकास करना चाहते हो, तो सर्वप्रथम काम चित्तशुद्धि का करो। अशुद्ध विचार काँटों की तरह पीड़ा देंगे तब उन विचारों को दूर करोगे ही। अभी तो अशुद्ध पाप-विचार फूल जैसे लगते हैं।

जड़-भौतिक पदार्थों का राग ही तो जीवों के प्रति द्वेष करवाता है! दूसरे जीवों के सुख का, हित का, कल्याण का विचार क्यों नहीं आता है? क्यों अपने ही सुख का, अपने ही हित का विचार करते हो? राग हैं... प्रीति है जड़ पदार्थों के प्रति! जीवों के प्रति शत्रुता का मूलभूत कारण यह है। जड़ का राग जीवद्वेष पैदा करता है।

राग में से द्वेष पैदा होता है :

आपको पैसे प्यारे लगते हैं न? मानों कि आपने अपने भाई को हजार रूपये दिए हैं। भाई ने रूपये आपको वापस लौटाने का कहा है। यदि समय पर उसने पैसा नहीं लौटाया, तो आपको क्या होगा? भाई के प्रति गुस्सा

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आएगा न? भाई के प्रति द्वेष होगा न? यदि आपको पैसे प्यारे हैं तो द्वेष होगा ही। राग, द्वेष को जन्म देता है! द्वेष की योनि राग है! पैसे जड़ हैं, भाई चेतन है, जड़ का अनुराग चेतन के प्रति आपको द्वेषी बनाता है। पैसे के झगड़े में भाई भाई को मारता है न? पिता पुत्र की हत्या कर देता है न? पति पत्नी को जला देता है न? पढ़ते हो न अखबारों में? पढ़ते परन्तु सोचते नहीं! यही बड़ा दुःख है। यहाँ मेरी बातें सुनते हो, परन्तु सोचते नहीं, इसलिए जीवन में कोई ठोस परिवर्तन नहीं आ रहा है।

किसी परस्त्री का सुन्दर शरीर देखकर राग हो जाता है न? शरीर जड़ है, जड़ शरीर का राग क्या करवाता है? यदि वह स्त्री अपने शरीर को छूने न दे तो उस रागी को क्या होगा? उस स्त्री के प्रति द्वेष होगा, अपहरण करेगा, बलात्कार करेगा... मार डालेगा। राजा मणिरथ ने अपने लघुभ्राता युगबाहु की हत्या कर दी थी न? क्यों? जड़ शरीर के राग के कारण ही! सुनी है कहानी?

महासती मदनरेखा :

मालव प्रदेश में सुदर्शनपुर नगर था। वहाँ का राजा था मणिरथ। उसका लघुभ्राता था युगबाहु। युगबाहु युवराज था। युगबाहु की पत्नी थी मदनरेखा। मदनरेखा अत्यन्त रूपवती थी। मात्र रूपसुन्दरी नहीं थी, सुशीला थी, सुलक्षणा थी, सौभाग्यशालिनी थी। रूपवती स्त्री में ये सारी बातें दुर्लभ होती हैं। रूप और गुण का सहवास हजारों में किसी एक-दो मनुष्य में होता है। रूपवान व्यक्ति सुशील हो, सच्चरित्रि हो, सदाचारी हो तो वह महान पुण्यशाली, धन्य कहलाएगा। मदनरेखा वैसी पुण्यशालिनी सन्नारी थी। अपने पति युगबाहु के प्रति संपूर्ण वफादार थी। अपने मन में भी परपुरुष की अभिलाषा नहीं करती थी।

एक दिन राजा मणिरथ ने मदनरेखा को देखा। मदनरेखा का अद्‌भुत रूप देखा... राजा मोहित हो गया। मदनरेखा के शरीरसौन्दर्य ने मणिरथ के मन को और नयन को विकारी बना दिए। मणिरथ मदनरेखा के प्रति अनुरागी बन गया। बस, अब वह प्रिय पात्र को पाने के लिए तरसने लगा। प्रिय विषय की प्राप्ति की अभिलाषा होती ही है! तीव्र अभिलाषा में मनुष्य विवेकशून्य हो जाता है। मणिरथ क्या नहीं जानता था कि 'यह स्त्री मेरे लघुभ्राता की पत्नी है। मेरे भाई का उस पर अधिकार है। मेरे भाई के सुख का वह साधन है, मुझे उसके प्रति मोहित नहीं होना चाहिए। उसको पाने का विचार नहीं करना चाहिए।'

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ऐसा विवेकपूर्ण विचार मोहमूढ़ मनुष्य को नहीं आ सकता। वह तो अपने ही सुख का विचार करेगा, दूसरों का सुख छीन कर भी वह स्वयं सुखी होने के लिए सोचेगा। बस, यही तो शत्रुता है। इसका नाम अशुद्ध चित्त, मलिन अन्तःकरण। ऐसे पापमलिन अन्तःकरण में धर्म नहीं रह सकता।

कामातुर को लाज कहाँ? :

मणिरथ के मनोरथ तो देखो! 'मैं किसी भी प्रकार से इस स्त्री को पाऊँगा। अच्छा-बुरा कुछ भी करना पड़े, मैं इसको पाकर रहूँगा। इसको प्राप्त किए बिना मुझे चैन नहीं पड़ेगा...।' लघुभ्राता के सुख को छीनने की कैसी नीच वृत्ति! शीलसम्पन्न नारी का शील लूटने की कैसी अधम मनोवृत्ति? जड़-पुद्गल का चेतन जीव के प्रति अन्याय ही है। रूप क्या है? पुद्गल का ही खेल! एक कवि ने कहा है :

'कोई गोरा कोई काला पीला, नैनन निरखन की
वो देखी मत राचो प्राणी, रचना पुद्गल की'

जड़ शरीर का रूप भी जड़ है, पौद्गलिक है। रूप का राग जड़ का ही राग है। वह राग चेतन आत्मा के प्रति अपराध करवाता है। छोटे भाई की पत्नी के प्रति रागी बना हुआ मणिरथ, भाई के प्रति शत्रुतापूर्ण व्यवहार अपना रहा है।

मणिरथ स्वजन-मैत्री भी नहीं निभा रहा है। मैत्री के मुख्य चार प्रकार बताए गए हैं :

१. उपकारी के प्रति मैत्री।

२. स्वजन के प्रति मैत्री।

३. परिजन के प्रति मैत्री।

४. सर्व जीवों के प्रति मैत्री।

युगबाहु मणिरथ का स्वजन था। मदनरेखा भी स्वजन ही कहलाएगी। मोह से अभिभूत मणिरथ मैत्री कैसे निभा सकता था? उसने मदनरेखा को अपने प्रति आकर्षित करने का प्रयोग शुरू कर दिया। मदनरेखा के प्रति काफी वात्सल्य प्रदर्शित करता है। अच्छे-अच्छे अलंकार बनवा कर देता है। सुन्दर वस्त्र लाकर देता है। कभी पुष्पहार भेंट करता है, कभी स्वादिष्ट तांबूल प्रदान करता है। मदनरेखा तो निर्दोष है! उसके मन में

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कोई पाप नहीं है। वह तो मणिरथ को मात्र जेठ ही नहीं मानती है, पितातुल्य समझती है। युगबाहु के मन में भी कोई शंका नहीं है। उसके हृदय में तो मणिरथ के प्रति बहुत सद्‌भाव है। ये निर्दोष पति-पत्नि कैसे जान सके मणिरथ के मन की दुष्टता को?

छल का सहारा :

मणिरथ कामवासना से जल रहा है। हालाँकि वह कुँवारा नहीं है, उसके अन्तःपुर में रानी है, परन्तु इससे क्या? कामी विकारी मनुष्य अपनी पत्नी में ही सन्तुष्ट होता तो रावण के अन्तःपुर में कौन-सी कमी थी? हजारों रानियाँ थीं, फिर भी सीताजी के पीछे रावण पागल बना था। मणिरथ ने अपनी एक विश्वासपात्र दासी के द्वारा अपना संदेश भेजा मदनरेखा के पास। दासी ने आकर मदनरेखा से कहा : 'देवी, अपने महाराजा तुम्हारे गुणों के अनुरागी बने हैं, तुम्हारे प्रति उनके हृदय में बहुत प्रेम है। उन्होंने कहलाया है कि 'हे चन्द्रमुखी, तू मेरी भार्या बन जा, मुझे पति रूप में स्वीकार ले...और मेरी पट्टरानी बन जा।' मदनरेखा खड़ी हो गई। द्वेष... भय और विषाद से उसका मन भर आया। उसने दासी से कहा : तू जाकर महाराजा को कहना कि 'हे राजन, स्वस्त्री में सन्तुष्ट हो। परस्त्री की अभिलाषा भी मनुष्य को दुर्गति में ले जाती है, तो फिर परस्त्री के साथ भोग करनेवालों की नर्कादि दुर्गति में कैसी भयानक दुर्दशा होती होगी, यह बात सोचना। आप तो मेरे श्वसुरतुल्य है, मेरे पितातुल्य हैं, आपको ऐसा पाप-विचार करना भी नहीं चाहिए।'

मदनरेखा का मनोमंथन :

मदनरेखा ने बड़ी स्वस्थता से प्रत्युत्तर दिया। हालांकि उसके मन में अत्यन्त उद्विग्नता थी, फिर भी दिमाग को स्वस्थ रखते हुए, दक्षता से प्रत्युत्तर दिया। दासी के जाने के पश्चात मदनरेखा ने सोचा : यह बात मैं युगबाहु से कहूँ या नहीं? ऐसी गंभीर बात से उनको अपरिचित नहीं रखना चाहिए। कल कुछ अनहोनी हो जाए तो वे क्या सोचेंगे? 'मुझ से मदनरेखा ने ऐसी बात क्यों छिपाई होगी?' हालाँकि मेरे प्राण चले जाएँ तो भी मैं राजा की प्रार्थना स्वीकार नहीं करूँगी, परन्तु सत्ता के आगे... अपहरण... बलात्कार...' विचार करते-करते मदनरेखा के मन में घबराहट फैल गई। मन में आया कि 'युगबाहु को बात बता दूँ, उनको सावधान कर दूँ।' परन्तु जब उसकी प्रतिक्रिया के विषय में मदनरेखा सोचने लगी तो वह रूक गई।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

यदि मैं युगबाहु को यह बात कहूँगी तो उनके मन में मणिरथ के प्रति घोर घृणा पैदा होगी। भयंकर रोष उत्पन्न होगा। दोनों भाइयों के बीच लड़ाई छिड़ सकती है। मेरे निमित्त राजपरिवार में कलह... लड़ाई और विनाश मैं नहीं चाहती।' मदनरेखा की यह ज्ञानदृष्टि है। जो काम समझाने से, सरलता से निपटता हो, उस काम को उलझाना नहीं चाहिए, उस काम को झगड़े में डालना नहीं चाहिए। मदनरेखा ने सोचा कि : 'मेरा सन्देश सुनकर राजा शान्त हो जायेगा। मेरी अनिच्छा जानने के बाद वह आगे नहीं बढ़ेगा। अब शायद वह अपना मुँह भी मुझे नहीं दिखाएगा! ऐसे ही मामला सुलझ जाएगा तो दो भाइयों के बीच स्नेह-सम्बन्ध भी अखंड रह सकेगा।

आपत्ति में भी औरों की चिंता :

राजा का दुष्ट विचार जानने पर भी मदनरेखा के मन में राजा के प्रति वैरभावना पैदा नहीं होती है। स्वयं महासती है, सदाचार की सख्त पक्षपाती है, दुराचार और व्यभिचार का विचार भी उसके मन में कभी पैदा नहीं हुआ है। राजा के प्रति उसका विचार कितना उत्तम है? 'ऐसा अनुचित करने से तुम्हारा अहित होगा... तुम डूब जाओगे दुःखसागर में।' राजा मर कर दुर्गति में न चला जाए, इसकी चिन्ता मदनरेखा करती है। यदि उसके हृदय में मैत्रीभावना-परहितचिन्ता नहीं होती तो वह तुरंत ही अपने पति युवराज से कह देती कि : 'देखो, तुम्हारे बड़े भाई का चरित्र! दासी के साथ मेरे लिए ऐसा सन्देश भेजा कि वे मुझे अपनी पत्नी बनाना चाहते हैं। अभी तक मैंने उनकी ऐसी दुष्टभावना नहीं जानी थी। मुझे क्या पता कि उनके मन में ऐसी बुरी वासना है, अन्यथा मैं उनसे बोलती भी नहीं, उनकी दी हुई कोई वस्तु भी ग्रहण नहीं करती। अब मेरी समझ में आया कि वे क्यों मुझे अच्छे-अच्छे अलंकार देते थे। बढ़िया-बढ़िया वस्त्र देते थे। वे मुझे इस प्रकार आकर्षित करना चाहते थे। मैं मर जाना पसन्द करूँगी, परन्तु उनके वश तो नहीं होऊँगी।'

यदि युगबाहु को ऐसी बात करती मदनरेखा, तो कैसी यादवास्थली मच जाती राजपरिवार में? युगबाहु नंगी तलवार लेकर दौड़ता राजा के पास और दोनों भाइयों के बीच खूंखार युद्ध छिड़ जाता। मदनरेखा के पास ज्ञानदृष्टि थी, उसके अन्तःचक्षु खुले हुए थे, परन्तु मणिरथ के पास कहाँ ज्ञानदृष्टि थी? वह तो बेचारा मोहदृष्टि से व्याकुल था। कामविकारों से विह्वल मणिरथ जब दासी से मदनरेखा का प्रत्युत्तर सुनता है, क्षणभर बेचैन हो जाता है। सीता के

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

बिना रावण की जैसी मनोविह्वलता थी, मदनरेखा के बिना मणिरथ की वैसी ही मनोव्यथा थी। वासनापरवश जीवों के मन में शान्ति कहाँ से! स्वस्थता कहाँ से! मदनरेखा का प्रत्युत्तर सुनने से उसके मन में चंचलता बढ़ गई। 'मुझे मदनरेखा चाहिए ही, किसी भी प्रकार मदनरेखा को मैं अपनी प्रिया बनाऊँगा।' सोचते-सोचते उसके मन में एक अति दुष्ट विचार उभर आया। 'जब तक युगबाहु जिन्दा है, मदनरेखा मेरी प्रिया नहीं बन सकती। मैं युगबाहु को इस दुनिया से बिदा कर दूँगा... फिर तो मदनरेखा मेरी प्रिया बनेगी ही।'

इतना अधम, इतना घोर शत्रुतापूर्ण विचार क्यों आया? बात समझ रहे हो न? मणिरथ अपने सगे भाई की हत्या करने की क्यों सोच रहा है? जड़ पौद्गलिक देहरूप का राग उसको भान भुला रहा है। स्वजनमैत्री का घात करवा रहा है। निर्दोष और गुणवान भ्राता की हत्या करवा रहा है। जड़ पौद्गलिक पदार्थों का राग, पाँच इन्द्रियों के प्रिय विषयों का अनुराग कितना अनर्थकारी है, यह समझ लो। चारों प्रकार की मैत्री का घातक है यह विषयराग। इसलिए कहता हूँ कि विषयान्ध मत बनो। विषयान्ध जीवों में धर्म हो ही नहीं सकता। विषयान्ध मनुष्य का चित्त मलिन ही होता है। राग-द्वेष और मोह से मलिन चित्त में धर्म नहीं हो सकता। शुद्ध चित्त में ही मैत्री, प्रमोद, करुणा और माध्यस्थ्य-भाव के धर्मपुष्प खिलते हैं। मदनरेखा के पवित्र मन में ये पुष्प खिले हुए हैं। मैत्री आदि भावनाओं से मदनरेखा का चित्त सुवासित है।

मणिरथ का चित्त राग, द्वेष और मोह से दुर्गंधग्रस्त है। उसके चित्त में 'युगबाहु को कैसे मारा जाय... मेरी बेइज्जती न हो और वह मारा जाय...' ऐसे विचार चल रहे हैं।

मदनरेखा गर्भवती बनती है :

एक दिन मदनरेखा ने युगबाहु से कहा : 'मेरे नाथ, आज स्वप्न में मैंने चन्द्र को देखा!' युगबाहु ने कहा : 'देवी, तू चन्द्र के समान सौम्य, प्रसन्नवदन और सर्वजनवल्लभ वैसे पुत्र को जन्म देगी।' मदनरेखा पति की बात सुनकर बड़ी प्रसन्न हो उठी। वह गर्भवती बनी थी। जब तीन महीने व्यतीत हुए, मदनरेखा के चित्त में अच्छे-अच्छे मनोरथ पैदा होने लगे। उत्तम जीव जब माता के उदर में आता है, माता के हृदय में पवित्र और धार्मिक भावनाएँ जाग्रत होती हैं। गर्भस्थ जीव का प्रभाव माता के मन पर पड़ता है। गर्भस्थ जीव यदि पुण्यशाली होता है, पवित्र और धार्मिक होता है तो माता के मन में अच्छी भावनाएँ उत्पन्न होती हैं और यदि गर्भस्थ जीव पापी होता है, क्रूर और

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

निर्दय होता है तो माता के मन में बुरी भावनाएँ पैदा होती हैं। गर्भवती नारी यदि अपने संतानी का भविष्य समझना चाहें तो समझ सकती हैं। 'उत्पन्न होनेवाली मेरी संतान अच्छी होगी या बुरी होगी।'

रावण की माता कैकसी, जब रावण पेट में था तब कभी हाथ में तलवार लेकर घूमती थी! कभी सिंहासन पर बैठकर नौकरों को धमकाती थी! कभी हाथी पर बैठकर घूमा करती थी! कभी राजपरिवार पर तीव्र गुस्सा करती थी। हमेशा अभिमान से उद्धत बनकर घूमती थी।

गर्भवती स्त्री यदि अपने विचारों के प्रति जाग्रत हो, तो वह अपनी भाविसन्तान के विषय में बहुत कुछ जान सकती है। मगधसम्राट श्रेणिक की पट्टराणी चेलणा के पेट में जब कूणिक था, चेलणा को ख्याल आ गया था कि 'यह सन्तान उसके पिता की शत्रु होगी।' क्योंकि चेलणा को ऐसी इच्छा हुई थी कि 'मैं श्रेणिक की आँतें खा जाऊँ!' अपने पति की ही आँतें खाने की खराब इच्छा पैदा हुई... जो कि चेलणा जैसी पतिव्रता स्त्री के मन में कभी भी पैदा हो नहीं सकती थी, इससे चेलणा ने निष्कर्ष निकाला कि 'यह जीव, जो मेरे पेट में आया है, उसके पिता का शत्रु होगा।' इसलिए तो उसने, पुत्र का जन्म होते ही उस नगर के बाहर कूड़े के ढ़ेर में डलवा दिया था। 'मुझे ऐसा पुत्र नहीं चाहिए कि जो अपने पिता का शत्रु बने।' क्योंकि चेलणा के हृदय में श्रेणिक के प्रति अपार स्नेह था। अपने स्नेही के शत्रु को कौन पसन्द करे?

मदनरेखा को परमात्मपूजन करने की इच्छा होती है। साधुपुरुषों को दान देने की इच्छा पैदा होती है। गरीबों को दान देने की भावना होती है। जो-जो इच्छा होती है मदनरेखा को, युगबाहु पूर्ण करता है। मदनरेखा का रूप-लावण्य बढ़ता जाता है। उसकी मनःप्रसन्नता भी बढ़ती जाती है। कुछ महीनों से मणिरथ की तरफ से कोई हरकत नहीं होने से मदनरेखा आश्वस्त हो गई है कि 'मेरे सन्देश से मणिरथ ने मेरी इच्छा छोड़ दी है।' सरल और भद्रपरिणामी महासती को क्या मालूम कि कभी खामोशी में भयानक आग छुपी हुई होती है?

मणिरथ युगबाहु की हत्या कर देता है :

एक दिन युगबाहु मदनरेखा को लेकर नगर के बाहर उद्यान में गया। उस समय उद्यान में कोई भी स्त्री-पुरुष नहीं थे। उद्यान में प्रवेश कर, युगबाहु और मदनरेखा ने कदलीगृह में निवास किया। मदनरेखा की मनःप्रसन्नता के लिए रात्रि कदलीगृह में व्यतीत करने का निर्णय किया। उद्यान के चारों तरफ शस्त्रसज्ज सैनिक सुरक्षा हेतु खड़े थे। जिस समय उद्यान में राजा-रानी

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अथवा युवराज-युवराज्ञी होते उस समय दूसरा कोई नागरिक उद्यान में आवाजाही नहीं कर सकता था।

मणिरथ को समाचार मिल गए। 'आज युगबाहु और मदनरेखा कदलीगृह में रात्रि व्यतीत करने गए हैं। दोनों ही हैं।' उसके मन में वह पाप-विचार जाग्रत हो गया। 'आज मौका अच्छा है। आज युगबाहु को मार कर मदनरेखा को मेरी प्रिया बना लूँ।' वह रात्रि के प्रथम प्रहर में ही हाथ में तलवार उठाकर उद्यान की ओर चल दिया। उद्यान के द्वार पर युगबाहु के सैनिक खड़े थे। राजा ने पूछा : 'मेरा छोटा भाई युगबाहु कहाँ है?' सैनिकों ने जवाब दिया : 'महाराजा, वे कदलीगृह में सो रहे हैं।'

राजा ने कहा : 'मुझे समाचार मिले कि वह कदलीगृह में रात व्यतीत करेगा, इसलिए तो मुझे अभी आना पड़ा, जंगल है, कोई शत्रु आकर मेरे भाई पर हमला कर सकता है... इसलिए उसको महल में ले जाने के लिए मैं आया हूँ।' इतना कहकर मणिरथ कदलीगृह में प्रवेश कर गया। सैनिक राजा को कैसे रोक सकते थे! सैनिकों के मन में विचार तो आया होगा कि 'हम सब सैनिक यहाँ खड़े हैं... कोई भी शत्रु आ जाय... आपके भाई को कुछ भी नहीं होगा, उनको सोने दो कदलीगृह में... आपको भीतर जाने की जरूरत नहीं है।' लेकिन कहते कैसे! सामने राजा था न! सच्ची और सही बात भी कभी-कभी मर्यादाभंग के भय से कही नहीं जाती है! ऐसा भय किस काम का? ऐसा भय रखने से सत्य दब जाता है और असत्य सफल हो जाता है कभी।

ज्यों मणिरथ ने कदलीगृह में प्रवेश किया, युगबाहु ने देख लिया। बड़े भाई को आये देखकर तुरंत युगबाहु खड़ा हो गया। मणिरथ ने युगबाहु से कहा : 'वत्स, इधर रात में रहना उचित नहीं है। चलो नगर में चलें।' युगबाहु बचपन से मणिरथ का विनय करता आया था। बड़े भाई की आज्ञा का उसने कभी भी उल्लंघन नहीं किया था। बड़े भाई के प्रति कभी शंका की दृष्टि से देखा नहीं था। उनके प्रति पूर्ण विश्वास था। मणिरथ ने नगर में चलने को कहा तब युगबाहु ने मदनरेखा की ओर देखकर नगर में चलने का इशारा कर दिया। युगबाहु ज्यों ही कदलीगृह के बाहर निकलता है, मणिरथ युगबाहु के कन्धे पर जोर से तलवार का वार कर देता है...।

मदनरेखा की स्वस्थता :

युगबाहु जमीन पर गिर पड़ा। मदनरेखा के मुँह से तीव्र चीख निकल गई... 'धोखा, दगा हुआ है।' पास में ही खड़े हुए सैनिक चीख सुनकर दौड़

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आए। मदनरेखा तो तुरंत ही युगबाहु के पास बैठ गई...। पति का सिर अपने उत्संग में लेकर करुण क्रन्दन करने लगी। सैनिकों ने मणिरथ को घेर लिया और पूछा : 'यह कैसे हुआ?' मणिरथ ने कहा : मेरी लापरवाही से मेरे हाथ में से तलवार गिर गई।' सैनिकों ने ताड़ लिया कि 'राजा ने जान-बूझकर प्रहार किया है।' राजा अपनी जान बचाने के लिए वहाँ से भागा। बगीचे में से निकल रहा था कि अंधेरी रात में छुप कर बैठे हुए काले साँप ने राजा को डँस लिया! इधर सैनिकों ने जाकर युगबाहु के पुत्र चन्द्रयश को कहा : 'आप शीघ्र कदलीगृह में पहुँचो, आपके पिताजी की हत्या का प्रयास हुआ है।' चन्द्रयश फूट-फूटकर रोने लगा। शीघ्र वैद्यों को लेकर वह उद्यान में पहुँचा। वहाँ जाकर उसने देखा तो युगबाहु के शरीर में से बहुत सारा खून बह गया था। युगबाहु की आँखें बंद थीं, शरीर श्वेत पड़ता जा रहा था... फिर भी वैद्यों ने अपने उपचार शुरू कर दिए। चन्द्रयश मदनरेखा से लिपट कर रोने लगा। मदनरेखा के दिल में तीव्र वेदना थी। पुत्र के सर पर हाथ रखती हुई उसको शान्त करने का प्रयत्न करती है। इधर उसने देखा कि युगबाहु का जीवन-दीप बुझने जा रहा है। उसके हृदय में उच्चतम मैत्री का भाव जाग्रत हुआ। 'यदि ये अशुभ भाव में...कषाय के भाव में मृत्यु पाएँगे, तो दुर्गति में चले जायेंगे। मैं उनको अन्तिम आराधना करवा कर उनके चित्त को स्वस्थ बना दूँ। परलोक का पाथेय उनको दे दूँ।'

मदनरेखा ने अपने हृदय को, अपनी मनोव्यथा को दबाया और पति के निकट बैठकर, उनकी दृष्टि से दृष्टि मिला कर, खूब स्नेह और प्रेमभरे शब्दों में कहा : 'मेरे नाथ! अभी आप एकदम सावधान रहो। किसी प्रकार का खेद मत करो। किसी के प्रति क्रोध मत करना। सब जीव कर्मपरवश हैं। अपने-अपने कर्मों से ही जीवात्मा सुख-दुःख पाता है। दूसरे जीव तो निमित्तमात्र होते हैं। आप तो इस समय पुण्य का पाथेय बाँध लो। अपने दुष्कृत्यों की आत्मसाक्षी से निन्दा कर लो। मित्रों के साथ, शत्रु के साथ, स्वजन और परिजन के साथ क्षमापना कर लो।'

मदनरेखा युगबाहु का मृत्यु-समय सुधार रही है। स्वजनमैत्री को लोकोत्तर मैत्री बनाकर पति का परलोक सुधार रही है। आगे वह क्या करती है, कल बात करेंगे।

आज, बस इतना ही।

❖ ❖ ❖

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

- ***क्या आपका दिल भीतर से पुकार रहा है? 'मैं औरों को कभी दुःखी नहीं करूँगा; मैं दूसरों के सुख की ईर्ष्या नहीं करूँगा, मैं पापीजनों से नफरत नहीं करूँगा'***
- ***हिंसक दृश्यों को बार-बार देखने से दिल बड़ा सख्त हो जाएगा। कठोरता एवं निष्ठुरता पनपने लगेगी भीतर में! ऐसे दृश्य देखना छोड़ दो!***
- ***यदि अपने ही मन को शुद्ध बनाना है, धर्म का उद्गमस्थान बनाना है, मन को शांति और प्रसन्नता का पातालकूप बना देना है, तो सिनेमा-नाटक देखना पूरी तरह बंद कर देना!***
- ***पारिवारिक एवं व्यक्तिगत जीवन में आग लगानेवाला यदि कोई तत्त्व है तो सिनेमा!***
- ***उपकारी के प्रति भी मैत्री-भावना ही होनी जरूरी है। उपकारी के प्रति अपने दिल में स्नेह-सद्भाव एवं आदर होना ही चाहिए।***

प्रवचन : १४

परम श्रद्धेय आचार्य श्री हरिभद्रसूरिजी 'धर्म' तत्त्व की परिभाषा करते हुए कहते हैं : 'धर्मानुष्ठान करनेवालों का चित्त मैत्री, प्रमोद, करुणा और माध्यस्थ्य भाव से नवपल्लवित होना चाहिए। धर्म पैदा होता है शुद्ध चित्त में से! जब तक चित्त शुद्ध नहीं बनता, मनुष्य के जीवन में धर्म का आविर्भाव नहीं होता।

मैत्री वगैरह भावों के दो रूप :

मैत्री वगैरह भाव विधेयात्मक Positive रूप से भले नहीं दिखाई दें, निषेधात्मक Negative रूप से तो होने ही चाहिए। मैत्री का विधेयात्मक रूप है दूसरे जीवों की हितचिन्ता। निषेधात्मक रूप है दूसरे जीवों का अहित नहीं करना। करुणा का विधेयात्मक रूप है दूसरे जीवों के दुःख को दूर करना। निषेधात्मक रूप है दूसरे जीवों को दुःखी नहीं करना। प्रमोद का विधेयात्मक रूप है सुखी मनुष्यों का सुख देखकर खुश होना। निषेधात्मक रूप है सुखी मनुष्यों का सुख देखकर ईर्ष्या नहीं करना। माध्यस्थ्य का विधेयात्मक रूप है

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दूसरे पापी जीवों के दोषों की उपेक्षा करना। निषेधात्मक रूप है पापियों के प्रति द्वेष-धिक्कार नहीं करना।

दूसरे जीवों का अहित मत करना :

करने जैसा नहीं करते हो तो दूसरो को नुकसान तो नहीं होगा, परन्तु नहीं करने योग्य करने से दूसरों को नुकसान होता है। दूसरों को सुख दे नहीं सकते, तो चलेगा! परन्तु दूसरों का सुख छीन लो, छीनने का प्रयत्न करो, तो नहीं चलेगा। दूसरों का दुःख दूर नहीं करोगे तो चलेगा, परन्तु दूसरों को दुःखी करने के काम करोगे तो नहीं चलेगा। तुम्हारे मन की इतनी शुद्धि तो होनी ही चाहिए। क्या तुम्हारा मन बोलता है कि 'दूसरे जीवों का अहित तो नहीं ही करूँगा! दूसरों को दुःखी नहीं ही करूँगा। दूसरों के सुख की ईर्ष्या नहीं ही करूँगा।' किसी पापी की भी भर्त्सना, तिरस्कार नहीं ही करूँगा।' बोलता है मन? दुनिया की या देश की बात जाने दो, नगर की और मुहल्ले की भी बात जाने दो, आपके परिवार के सदस्यों के प्रति तो मन ऐसा बोलता है न? आपके जो उपकारी लोग है, उनके प्रति तो मन ऐसा कहता है न? आपके जो परिचित लोग हैं, उनके प्रति तो मन ऐसा सोचता है न?

धर्म का उद्भवस्थान : शुद्ध हृदय :

सभा में से : हमारा मन जो सोचता है वह तो आपके सामने कह ही नहीं सकते! अशुद्ध मन क्या सोचेगा?

महाराजश्री : पूर्ण शुद्ध न हो मन, पर क्या थोड़ा भी शुद्ध नहीं? यदि मन थोड़ा भी शुद्ध हो तो, उस मन में 'धर्म' का प्रसव हो सकता है। यदि पूरा अशुद्ध हो तो 'धर्म' की उत्पत्ति नहीं हो सकती। बाह्य धर्मक्रिया करने मात्र से 'धर्म' का आचरण नहीं हो जाता। हरिभद्रसूरीजी कहते हैं 'धर्मःचित्तप्रभवः' धर्म जो है वह शुद्ध चित्त का उत्पादन है! Religion is a Production of pure mind.

उपकारी जीवों के प्रति विधेयात्मक मैत्री नहीं सही, निषेधात्मक मैत्री तो रख सकते हो न? यदि इतना भी नहीं है तो जानवर से भी गए? जानवर में भी ऐसी मैत्री तो होती है! उपकारी के प्रति अपकार नहीं करेगा। उपकारी का अहित नहीं करेगा। मैं छोटा था तब एक कहानी सुनी थी मैंने एक सिंह की।

जानवर में भी मैत्रीभाव :

जंगल में एक सिंह के पैर में काँटा चुभ गया। सिंह लंगड़ाता चलता है,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

उसे वेदना भी होती है। एक पेड़ के नीचे बैठा-बैठा पैर को देखता है। वहाँ से एक मुसाफिर गुजरता है। उसने सिंह के सामने देखा, सिंह की आँखों में वेदना थी, क्रूरता नहीं थी। मुसाफिर को दया आ गई। उसने घबराए बिना, सिंह के पैर में से काँटा निकाल दिया। सिंह ने प्रसन्नता से मुसाफिर का शरीर सूँघा। मुसाफिर वहाँ से अपने रास्ते चला गया।

कुछ दिनों के बाद वह मुसाफिर किसी अपराध में पकड़ा गया। राजा ने उसको मौत की सजा कर दी। उस राजा का मौत की सजा करने का तरीका निराला था! राजमहल के समीप उसने एक मैदान बनाया था, चारों ओर ऊँची-ऊँची दीवारे बनवाई थीं। एक तरफ सिंह का पिंजरा रखा था। अपराधी को उस मैदान में फेंक दिया जाता था और पिंजरे में से सिंह को मैदान में छोड़ दिया जाता था। भूखा सिंह उस मनुष्य को मार डालता था! राजा और उसके परिवार के लोग वह तमाशा देखते थे। मजा आता था तमाशा देखने में। कोई किसी को मारता हो, वह देखने में आप लोगों को तो मजा नहीं आता है न? दयालु हो न आप लोग तो!

सभा में से : ऐसा देखने को गाँव में नहीं मिलता है, इसलिए सिनेमा देखने जाते हैं! वहाँ ऐसे दृश्य देखने को मिलते हैं!

हिंसक दृश्य मत देखा करो :

महाराजश्री : वैसे दृश्य देखते हुए आपके हृदय में क्या होता है? मरते हुए जीव को देखकर आपका जीव वेदना से कराहता है? मरते हुए के प्रति करुणा, सहानुभूति...जैसे भाव पैदा होते हैं या ऐसा देख-देखकर हृदय दयाहीन-करुणाहीन बन गया है? ऐसे हिंसक दृश्य बार-बार देखने से हृदय निर्दय बन जाता है। ऐसी हिंसक पुस्तक बार-बार पढ़ने से पढ़नेवाले का मन भी हिंसक बन जाता है। इसलिए कहता हूँ, बार बार कहता हूँ कि सिनेमा देखना छोड़ दो। ऐसे नॉवेल्स कहानियाँ, जासूसी उपन्यास वगैरह पढ़ना छोड़ दो। यदि मन को शुद्ध और धर्म का प्रभवस्थान बनाना हो तो। यदि शान्ति और प्रसन्नता का पातालकूप मन को बनाना हो तो। क्या विचार है? मन कितना सड़ गया है, वह तो सोचो जरा! अब भी उस सड़न को नहीं मिटाओगे तो मन पूरा नष्ट हो जाएगा। दूसरे जन्म में मन मिलेगा भी नहीं।

शुद्ध मन की पहचान :

शुद्ध मन में, मन जब शुद्ध होना शुरू होता है, तब सर्वप्रथम दया-धर्म का

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जन्म होता है। दुःखी जीवों के प्रति अत्यन्त दया! है न अत्यंत दया? थोड़ी-सी तो होगी? या बिल्कुल नहीं? दयाहीन मनुष्य का कोई भी धर्मानुष्ठान 'धर्म' नहीं बन सकता। भले दिखने में वह धर्मानुष्ठान दिखे, वास्तव में वह 'धर्म' नहीं होता। धर्म का आभासमात्र होता है।

जानवर भी कृतज्ञ होते हैं :

उस मुसाफिर को राजा ने मौत की सजा की थी, उसको राजा ने उस मैदान में धकेल दिया। उधर से सिंह को पिंजरे से छोड़ा गया। छलाँग मारता हुआ सिंह उस मुसाफिर की ओर लपकता है। मुसाफिर तो एक जगह आँखें मूँदकर खड़ा रह गया है। सिंह नजदीक पहुँचा, निकट जाते ही रुक गया, मुसाफिर के शरीर को सूँघने लगा और वापस लौट गया! अपने पिंजरे में चला गया! राजा महल के झरोखें से यह दृश्य देख रहा है, उसको बहुत आश्चर्य हुआ। उसने सैनिकों के द्वारा फिर से सिंह को पिंजरे से बाहर निकलवाया। सिंह पुनः उस आदमी के पास गया...उसका शरीर सूँघा और वापस आ गया! राजा की सांस ऊँची हो गई! ऐसी घटना राजा ने कभी भी पहले देखी नहीं थी। 'सिंह क्यों इस अपराधी को नहीं मार डालता है?' राजा को सिंह के ऊपर गुस्सा भी आ गया! उसने तीसरी बार सिंह को धकेला उस आदमी के सामने। तीसरी बार भी वैसा ही हुआ, सिंह ने उस पुरुष को सूंघा और लौट आया अपने पिंजरे में!

राजा ने उस आदमी को अपने पास बुलाया और पूछा : 'तेरे पास ऐसा कोई मंत्र है, तंत्र है.... क्या? जिससे यह सिंह तुझ पर हमला नहीं करता है? क्या वजह है इस बात की?'

उस आदमी ने कहा : 'राजन, सिंह मनरहित प्राणी नहीं है, उसको भी मन है। उसके मन में कुछ शुद्धि होती है। वह अपने उपकारी के ऊपर हमला कभी नहीं करेगा। हाँ, उसको फालतू ही छेड़ना नहीं चाहिए।'

राजा ने पूछा : 'तो क्या तूने उस पर कोई उपकार किया है?'

मुसाफिर ने कहा : 'राजन, कुछ दिन पूर्व जब यह सिंह जंगल में था, उसके पैर में काँटा चुभ गया था, मैंने वह काँटा निकाला था! यह सिंह वही है! उसने मुझे पहचान लिया है! मेरे पर हमला कैसे करेगा? उपकारी के ऊपर स्वार्थी मनुष्य हमला कर देगा, यह सिंह नहीं करेगा कभी!'

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आदमी क्या जानवर से भी गया बीता है? :

भगवान महावीर, जो करुणा की साक्षात मूर्तिरूप थे, जिनके समवसरण में हिंसक पशु भी हिंसा के भाव से मुक्त होकर बैठते थे और महावीर का उपदेश सुनते थे! उन महावीर स्वामी के ऊपर कभी भी किसी पशु ने हमला नहीं किया था...परन्तु एक मनुष्य ने हमला कर दिया था! वह भी कौन था, जानते हो न? महावीर ने जिस पर अनेक बार अनेक उपकार किये थे! वह था गोशालक! अपने परम उपकारी गुरु भगवान महावीर के ऊपर 'तेजोलेश्या' से हमला कर दिया था। आदमी पशु से भी गया बीता है, यदि उसका चित्त निरा अशुद्ध है।

उपकारी का द्वेषी-गोशालक :

भगवान महावीर ने गोशालक को कई जगह मौत से बचाया था। गोशालक भी अपने को महावीर का शिष्य बताता हुआ फिरता था, क्योंकि इससे उसको अच्छा भोजन मिलता था! परन्तु उसके अपलक्षण कम नहीं थे! अपलक्षणों की वजह से कई स्थानों पर लोगों द्वारा बुरी तरह पीटा गया था वह! अन्ततोगत्वा, गोशालक महावीर का ही विद्वेषी और विद्रोही बन गया था। जिस 'तेजोलेश्या' की शक्ति भगवान ने उसको दी थी, गोशालक ने वही तेजोलेश्या भगवान पर डाली थी। उसी तेजोलेश्या से गोशालक मरा था। बुरी तरह मरा था। घोर वेदनाओं को सहता सहता मरा था। ऐसे प्रचंड़ पापकर्म उसने बाँधे हैं कि उसको अनेक बार सातों नरक में जाना पड़ेगा।

उपकारी के प्रति मैत्रीभावना अवश्य होनी चाहिए। उपकारी के प्रति अपने हृदय ने स्नेह, भक्ति और सद्भाव होना ही चाहिए। किसी का छोटा-सा भी उपकार अपने पर हुआ है, उसको जीवन में कभी भी नहीं भूलना चाहिए। धर्म करनेवालों में क्या इतनी योग्यता नहीं होनी चाहिए? इतनी योग्यता भी न हो, तो क्या वह सर्वज्ञभाषित धर्म की आराधना कर सकता है? कदापि नहीं। कृतघ्न मनुष्य धर्मक्षेत्र में प्रवेश ही नहीं कर सकता।

मदनरेखा का चित्त कितना विशुद्ध था। कितना पवित्र था! मणिरथ ने युगबाहु पर तलवार का प्रहार कर दिया, मदनरेखा उस समय मणिरथ के प्रति गुस्सा या क्रोध किये बिना, युगबाहु के प्रति अपना ध्यान केन्द्रित करती है। युगबाहु मदनरेखा का पति था यानी स्वजन था। पति था यानी उपकारी भी था। पति पत्नी को सुख देता है, सुख के साधन देता है इसलिए उपकारी बनता ही है। मदनरेखा युगबाहु को उपकारी के रूप में भी देखती है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आप पत्नी को उपकारी मानते हो?

सभा में से : हमारे घरवालें तो हमको उपकारी नहीं मानते हैं! [सभा में जोरदार हँसी की लहर...]

महाराजश्री : आपकी पसंदगी अच्छी नहीं होगी! [सभा में फिर से हँसी की लहर...] पसंदगी अच्छी होती तो वह आपको उपकारी मानती! आप सुख देते हैं तो! मेरे ख्याल से आप थोड़े बहुत सुख के साधन देते होंगे, परन्तु सुख नहीं देते होंगे! मेरी बात सही है? सुख के साधन देना एक बात है, सुख देना अलग बात है। सुख के साधन देते हो परन्तु साथ में गालियाँ भी...? कभी मारते होंगे? कभी झगड़ा? बेवफाई तो नहीं करते हो न? आपको आपके श्रीमतीजी उपकारी क्यों नहीं मानते? आपके लक्षण अच्छे हो तो अवश्य मानेंगे! युगबाहु तो कितना सुयोग्य युवराज था, जानते हो? मदनरेखा के प्रति पूर्ण वफादारी थी। पूर्ण सौजन्य था, उच्च खानदानी थी। मदनरेखा भी असाधारण सन्नारी थी। पवित्र और विशुद्ध अन्तःकरणवाली थी। उसने अपने पति का आत्महित सोचा। 'इनका परलोक नहीं बिगड़ना चाहिए। जो होना था, वह हो गया। अब ये बचनेवाले नहीं हैं। उनका मन प्रशान्त होना चाहिए। समता और समाधि के साथ यदि उनकी आत्मा परलोक की यात्री बनेगी तो अवश्य उनकी सद्गति होगी। मुझे उनकी कषाय की आग शान्त करनी चाहिए।'

कैसी आत्ममैत्री है मदनरेखा की? स्वजनमैत्री है, उपकारीमैत्री है और आत्ममैत्री है। अपने सुख-दुःख का कोई विचार नहीं। अपने सौभाग्य-वैधव्य का उस समय कोई विचार नहीं! पति के घातक मणिरथ के प्रति भी उस समय कोई वैर-विरोध की बात नहीं। क्या साधारण स्त्री में ये बातें संभवित हैं? ऐसी आकस्मिक भयंकर दुर्घटना में दिमागी संतुलन रहना सामान्य स्त्री के लिए संभव है क्या?

मनुष्य-मन की बेहाली :

कौन साधारण स्त्री और कौन असाधारण स्त्री है? कौन सामान्य स्त्री और कौन असामान्य स्त्री है? बात समझ रहे हो ना? समझ लो ये बातें तो निहाल हो जाओगे! यहाँ उपस्थित बहनें यदि ये बातें अपने मन में ले लें तो आज भी अनेक मदनरेखा मिल सकती हैं। परन्तु सुनना और है, समझना अलग है और आचरण में लाना बहुत ही मुश्किल है। B.A., M.A. या B.Com., M.Com

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जैसी डिग्रियाँ ले लेने मात्र से असाधारण नारी नहीं बन जाती। फिल्मी वेशभूषा पहनने से या कृत्रिम श्रृंगार रचने से नारी असामान्य नहीं बन जाती। असामन्य और असाधारण नारी तो वह बन सकती है, जिसका मन शुद्ध होता है, दृढ़ होता है और ज्ञानामृत से भरा हुआ होता है। दुःखों के बीच जो धैर्य रख सकती हो, सुखों में जो नम्र रह सकती हो और मैत्री, प्रमोद, करुणा एवं माध्यथ्य-भावनाओं से जिसका मन नवपल्लवित रहता हो। आज के युग में इन बातों की आशा किससे करें? शत्रुता, निर्दयता, ईर्ष्या, धिक्कार और तिरस्कार से लोगों के मन भ्रष्ट हो गए हैं, गन्दे और निर्बल बन गए हैं। विषयराग और जीवद्वेष से मनुष्य आज घोर अंधकार में भटक रहा है। मोहमूढ़ता से व्याकुल मनुष्य कार्य-अकार्य का भेद ही भूल गया है। कर्तव्य को अकर्तव्य और अकर्तव्य को कर्तव्य मान रहा है, दूसरों को मनवा रहा है। ऐसी परिस्थिति में 'धर्म' का उद्भव हो कैसे? मदनरेखा के पास था विशुद्ध चित्त, विशुद्ध चित्त ही तो परम धर्म है। मदनरेखा युगबाहु की कल्याणमित्र है। परलोक का पाथेय दे रही है।

सद्गति-दुर्गति का आधार मृत्यु :

मैत्रीपूर्ण हृदय से और मधुपूर्ण शब्दों से मदनरेखा युगबाहु की अन्तरात्मा को स्पर्श करती है। अन्तरात्मा में से अशुद्ध भावों को दूर कर शुद्ध भावों को स्थापित करना, मामूली 'ऑपरेशन' नहीं है, गंभीर 'ऑपरेशन' है। जैसे मनुष्य का 'हार्ट' हृदय बदलने का ऑपरेशन गंभीर होता है, वैसे हृदयगत भावों का परिवर्तन करने का ऑपरेशन गंभीर होता है। शरीर के भीतर का अशुद्ध अवयव दूर कर, अच्छा अवयव स्थापित करनेवाले डॉक्टर का लक्ष मरीज को जिन्दा रखने का होता है, वैसे मन के अशुद्ध विचारों को दूर कर, पवित्र...विशुद्ध विचारों को स्थापित करनेवालों का लक्ष जीवात्मा की भवपरंपरा सुधारने का होता है। मदनरेखा इस समय युगबाहु का पारलौकिक हित सोचती है। वह समझती है कि 'मृत्युसमय मनुष्य के जैसे मनोभाव होते हैं, जैसे अध्यवसाय होते हैं, जैसी लेश्या होती है, तदनुसार उस मनुष्य की सद्गति या दुर्गति होती है।'

दुर्घटना ऐसी बन गई है कि युगबाहु के मन में अपने भाई मणिरथ के प्रति तीव्र रोष आए ही। 'मणिरथ ने जान बूझकर मेरी हत्या का प्रयास किया है,' यह बात युगबाहु समझ गया है। इससे उसका शौर्य उछल आना और प्रतिहिंसा का भाव जाग्रत होना स्वाभाविक था। इस अशुद्ध भाव को मिटाना

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

बहुत ही आवश्यक था। मदनरेखा ने अपना प्रयत्न पूरी लगन से किया। कितनी अच्छी-अच्छी बात सुनाती है। युगबाहु को मदनरेखा के प्रति प्रेम था, श्रद्धा थी, सद्भाव था, इसलिए मदनरेखा की बातें उसके हृदय तक पहुँचती हैं। यदि मात्र दैहिक राग होता, मात्र वासनाजन्य अनुराग होता तो मदनरेखा की बातें...ज्ञानभरपूर बातें पसन्द नहीं आतीं। इतना ही नहीं, यदि पूर्व जीवन में मदनरेखा-युगबाहु के बीच कभी-कभी तत्त्वचर्चा, धर्मचर्चा नहीं हुई होती और युगबाहु को तत्त्वचर्चा में आनन्द नहीं आता होता, तो भी मृत्यु के समय मदनरेखा की धर्मप्रेरणा उसको पसन्द नहीं आती। तीसरी बात है युगबाहु के निर्मल आत्मभाव की। कर्म-मल कुछ कम होने से ही मृत्यु-समय में धर्मप्रेरणा प्रिय लगती है।

मृत्यु के वक्त धर्मप्रेरणा अच्छी किसे लगेगी?

मृत्यु के समय राग-द्वेष-मोह आदि अशुद्ध भाव मन में न रहें और मैत्री, समता, समाधि वगैरह विशुद्ध भाव मन में स्थापित हों, इसलिए तीन बातें समझ लो। युगबाहु और मदनरेखा के जीवन में से ये तीन बातें फलित होती हैं।

१. जिसके प्रति अपने हृदय में मैत्री, स्नेह और सद्भाव होगा, वह व्यक्ति यदि मृत्यु-समय पास में होगा और अन्तिम आराधना करवाएगा तो ही वह धर्मप्रेरणा अपने अंतःकरण को स्पर्श करेगी।

२. जीवनकाल में तत्त्वचर्चा, धर्मचर्चा में रसानुभूति की होगी तो मृत्यु-समय धर्मप्रेरणा प्रिय लगेगी।

३. आत्मा कर्मों के बंधनों से थोड़ी भी मुक्त हुई होगी तो जीवन के अन्त समय में परमात्म स्मरण होगा। परमात्मा का नाम याद आएगा। कर्मों की प्रबलता से अभिभूत जीव को भगवान का नाम प्यारा नहीं लगता।

ग्यारह धर्मप्रेरणाएँ : मौत के समय :

मदनरेखा मृत्यु-आसन्न पति को स्वस्थ मन से अन्तिम आराधना कराती है। युगबाहु को मदनरेखा की एक-एक बात स्पर्श करती है। मदनरेखा ने भी कैसी सारभूत बातें कही हैं!

१. सावधान बनो!

२. धीरता रखो!

३. खेद मत करो!

४. कर्मविपाक को सोचो!

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

५. निमित्तकारण का विचार करो!

६. दुष्कृतगर्हा करो!

७. सब जीवों से क्षमापना करो!

८. चार शरण का स्वीकार करो!

९. नमस्कार मंत्र का स्मरण करो!

१०. अट्ठारह पापस्थानों का त्याग करो!

११. चौबीस तीर्थंकरों का ध्यान करो!

लंबा उपदेश देने का समय नहीं था। बुद्धिमान पुरुष को लंबा उपदेश देने की जरूरत भी नहीं होती है। ऐसे गंभीर प्रसंग में तो लंबा उपदेश देना ही नहीं चाहिए। पुत्र चन्द्रयश वैद्यों को लेकर आया था, वैद्यों ने घाव साफ करके पट्टी बाँध दी थी, परन्तु खून काफी बह गया था। युगबाहु का शरीर ठंडा पड़ता जा रहा था। मदनरेखा मधुर, कोमल और गद्गद् स्वर में श्री नमस्कार महामंत्र सुनाती रहती है। चार शरण अंगीकार करवाती है।

अरिहंते सरणं पवज्जामि
सिद्धे सरणं पवज्जामि
साहू सरणं पवज्जामि
केवलिपन्नतं धम्मं सरणं पवज्जामि...

युगबाहु की मृत्यु :

युगबाहु के चेहरे पर एकदम समता छा गई थी। कषाय उपशान्त हो गए थे। नमस्कार मंत्र के स्मरण में लीनता प्राप्त हो गई थी और उसने प्राणों का त्याग कर दिया। अनन्त का प्रवासी एक धर्मशाला छोड़कर अपनी मंजिल की ओर उड़ गया। जब मदनरेखा को मालूम पड़ा, वह स्वस्थता खो बैठी, फूट-फूटकर रोने लगी। पुत्र चन्द्रयश भी करुण कल्पांत करने लगा।

मदनरेखा आखिर तो राग के बंधन में बंधी हुई एक नारी तो थी ही! गुणवान, रूपवान और बलवान पति का वियोग मदनरेखा को रुला दे, इसमें कोई आश्चर्य नहीं! संयोग में सुखानुभाव करनेवालों को वियोग में रोना पड़ता ही है। हम लोग तो साधु हैं न? परन्तु हमने भी किसी के संयोग में सुख माना, तो वियोग में रुदन करेंगे ही! भले ही हमारा राग प्रशस्त हो! प्रशस्त राग भी रुलाता है! गौतमस्वामी का क्या हुआ था? जानते हो न कि

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

गौतमस्वामी मनःपर्यवज्ञानी थे, हजारों साधुओं के गुरु थे, फिर भी, जब भगवान महावीर का वियोग हुआ तब फूट-फूटकर रो पड़े थे। क्योंकि भगवान के संयोग में गौतम ने परम सुख माना था। महावीर के चरणों में गौतम ने मुक्ति का सुख पाया था! जब वियोग हुआ, भयंकर मनोव्यथा अनुभव की। मदनरेखा ज्ञानी थी, सती सन्नारी थी, परन्तु थी तो संसारी स्त्री! हृदय में राग तो बैठा ही था! विलाप करती है।

'मैं अभागिन हूँ। मेरा सर्वस्व चला गया। ओह, मेरे रूप को धिक्कार हो...मेरे रूप ने ही मेरे पूज्यस्थानीय पुरुष को विकारी बनाया। मेरे ही निमित्त इन की हत्या हो गई। कैसा घोर अनर्थ हो गया।'

मदनरेखा की ज्ञानदृष्टि :

ऐसे घोर दुःख में भी मदनरेखा की ज्ञानदृष्टि खुली रहती है। पति की निर्मम हत्या में वह अपना ही दोष देखती है। अपने रूप का दोष देखती है। घोर पाप करनेवाले मणिरथ के प्रति उसके हृदय में घृणा या तिरस्कार पैदा नहीं होता है। युगबाहु के प्रति वफादार सैनिक भी थे। यदि वह चाहती तो उन सैनिकों के द्वारा मणिरथ को सजा करवा सकती थी। मणिरथ की दुष्ट वासना को दुनिया के सामने खुली कर सकती थी...'इस दुष्ट को मुझे अपनी पत्नी बनाना है, इसलिए इसने अपने भाई की हत्या कर दी है। मुझे ललचाने के अनेक प्रयत्न करने पर भी जब मैंने उसकी बात नहीं मानी, तब उसने यह कुकर्म किया है। इस नालायक को कड़ी शिक्षा होनी चाहिए।'

परन्तु नहीं, मदनरेखा ने ऐसे अज्ञानमूलक विचार नहीं किए। उसने तो यह सोचा कि : 'मणिरथ मेरे प्रति आकर्षित हुआ मेरा रूप देखकर। संसार में स्त्री का सुन्दर रूप ही तो पुरुषों के पतन का निमित्त बनता है। संसारी जीव अपने मन को वश नहीं रख सकता है और वह अकार्य कर बैठता है।'

जीवद्वेष से ऐसा मनुष्य ही बच सकता है, जिसके पास ज्ञानदृष्टि होती है। जिनकी विचारधारा सम्यगज्ञान के रंगों से रंगी हुई होती है। अच्छे विचार होना अलग बात है, सम्यगज्ञान से रंगे हुए विचार अलग होते हैं। अच्छे विचार तो प्रबल आघात में नष्ट हो जाते हैं, जबकि ज्ञानरंग से रंगे हुए विचार, ज्ञानरसायण से रसे हुए विचार प्रबल आघात में भी नष्ट नहीं होते।

आज अच्छे-अच्छे विद्वान भी ऐसा बोलते हैं : 'क्या करें? बहुत धैर्य रखा, परन्तु वह समझता ही नहीं, खराब काम छोड़ता ही नहीं। अपन को तो उसके

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्रति नफरत सी हो गई है! अब तो उसका मुँह तक देखना पाप मानता हूँ, मर कर नरक में जाएगा।' ऐसा-ऐसा तो बहुत-सा बोलते हैं! कहाँ रही ज्ञानदृष्टि? कहाँ रहा विवेक?

मदनरेखा अब अपनी सुरक्षा का, अपने शील की सुरक्षा का विचार करती है। उसको अब महल में रहना सुरक्षित नहीं लगा। दूसरी बात, मदनरेखा गर्भवती थी। नौ महीने पूरे हो गए थे। उसको यह भय भी था कि रोषायमान मणिरथ उसकी भी हत्या कर दे, तो गर्भस्थ जीव की भी हत्या हो जाय।' उसने अपने मन में निर्णय कर लिया कि वह अब महल में नहीं जाएगी। अपने पुत्र चन्द्रयश को एक तरफ ले जाकर उसको सारी बात बता दी और उसको एकदम सावधान रहने को कहा। चन्द्रयश तरुण था। कल्पनातीत घटनाओं ने उसको बेचैन बना दिया था। युगबाहु की मरणोत्तर क्रिया चन्द्रयश को सौंपकर मदनरेखा रात्रि के अंधकार में खो गई।

मदनरेखा जंगल की ओर :

जीवन के प्रति निःस्पृह परन्तु शील के प्रति सस्पृह वह महासती नगर से दूर-सुदूर चली गई। यदि जीवन का मोह होता तो वह ऐसा साहस नहीं करती। स्वयं चलकर असहाय स्थिति को मोल नहीं लेती। दूसरे जीवों के प्रति भरपूर स्नेहभाव से भरी हुई मदनरेखा स्वयं के प्रति निःस्नेह थी। स्वयं के जीवन के प्रति ममत्वहीन थी। हाँ, तो यही रहस्य है मैत्रीभावना का! स्वयं के जीवन के प्रति, स्वयं के सुखों के प्रति निःस्पृह और निःस्नेह मनुष्य ही दूसरे जीवों के प्रति मैत्री निभा सकता है। परहितनिरत बन सकता है। अपने ही सुखों का विचार करनेवाला मनुष्य दूसरों की हितचिंता कर ही नहीं सकता। वह तो अपने सुख के लिए दूसरों के सुख छीन लेगा! दूसरों को दुःखी करेगा। मणिरथ को सजा करवा कर, जेल में बंद करवा कर मदनरेखा निर्भयता से महल में रह सकती थी। परन्तु ऐसा नहीं किया उस महासती ने। वह स्वयं महल छोड़कर जंगल में चली गई। संसार में रही हुई स्त्री में कितनी महानता! दूसरे जीवों के प्रति कोई शत्रुता नहीं, तिरस्कार नहीं और अपने प्रति शीलरक्षा की अपूर्व दृढ़ता! आप लोगों के दिमाग में आती है यह बात? आप तो अच्छे समझदार और 'भगत' लोग है न? आपका अहित करनेवालों के प्रति शत्रुता नहीं रखते हो न? आपका सुख छीननेवालों के प्रति द्वेष-तिरस्कार नहीं करते हो न? धर्मक्रिया करनेवालों के हृदय में मैत्रीभावना होना अनिवार्य है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सभा में से : क्या पता हमारे हृदय ऐसे क्यों नहीं बनते? क्या करें ऐसा हृदय बनाने के लिए?

महाराजश्री : इसका अर्थ मैं ऐसा करता हूँ कि आपको अशुद्ध हृदय पसन्द नहीं है, आप हृदय की शुद्धि चाहते हो परन्तु शुद्ध हो नहीं रहा है। ठीक बात है न? अशुद्ध हृदय को शुद्ध करने में सफल नहीं हो रहे हो...आप, सही बात है न?

सभा में से : सच्ची बात तो यह है कि हृदय को शुद्ध करने का प्रयत्न ही नहीं किया है आज तक! अब करना है!

विशुद्ध हृदय से पुण्य कर्म का बंध :

महाराजश्री : कर सकते हो हृदय को विशुद्ध। संकल्प कर लो हृदय विशुद्ध करने का। विशुद्धि प्राप्त करने के लिए अशुद्धि दूर करनी होगी। जीवद्वेष और जड़राग की अशुद्धि दूर करो। अनेक जन्मों का अभ्यास हो गया है जीवद्वेष करने का, जड़राग करने का। इसलिए प्रयत्न मामूली नहीं चलेगा, जोरदार पुरुषार्थ करना पड़ेगा। वह पुरुषार्थ होगा मानसिक। जीव मात्र का अशुद्ध स्वरूप जानना होगा, वैसे कर्मों से मलिन स्वरूप भी जानना होगा। मदनरेखा ने यह ज्ञान बताया था इसलिए उसका हृदय विशुद्ध था। विशुद्ध हृदय पापकर्मों का बंधन नहीं होने देता है! शुभ कर्मों का ही बंधन होता है। विशुद्ध हृदय से ऐसे पुण्यकर्म बंधते हैं कि आत्मा परिपुष्ट बन जाती है।

जड़ के प्रति राग को तोड़ो :

जब कभी दूसरे जीवों के प्रति ऐसा विचार आए कि : 'इसने मेरा अहित किया, इसने मुझे दुःख दिया, इसने मुझे नुकसान पहुँचाया।' तुरंत ही विचार बदल देना। 'नहीं, इसने मेरा अहित नहीं किया है, मेरे पापकर्मों के उदय से मेरा अहित हुआ है। यदि मेरे पापकर्म उदय में नहीं आते तो मेरा कोई अहित नहीं कर सकता था। यह बेचारा तो निमित्त बना है! अथवा मैंने पूर्व जन्म में इसका अहित किया होगा, इसको दुःख दिया होगा, अन्यथा वह निमित्त नहीं बनता!' ऐसा विचार करने से जीवद्वेष नहीं होगा। वैसे जड़राग को मिटाने के लिए अनित्यभावना, अशुचिभावना, वगैरह भावनाओं से अपने मन को भावित करते रहो।

जड़राग, जड़ पदार्थों का अनुराग अनेक विषमताएँ पैदा करता है, अनेक अनर्थ पैदा करता है। मणिरथ को किसने भ्रमित किया? जड़राग ने! मदनरेखा

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

का रूप क्या था? जड़-पुद्गलों की रचना! शरीर और शरीर से संबंधित तत्त्व जड़-पुद्गल ही हैं।

जड़राग को कम करने के लिए सोचो कि जड़ पुद्गल रचना परिवर्तनशील है। पदार्थ बदलते रहते हैं। आज जो पदार्थ अच्छा, सुन्दर लगता है, वही पदार्थ कल देखना भी पसन्द नहीं आए! जो जड़ पदार्थ आज बहुत मीठा लगता है, कल वही पदार्थ कड़वा बन जाए! कोई स्थिरता नहीं होती पदार्थों की।

'जड़-पुद्गलों से मेरी आत्मा ज्यादा मूल्यवान है। जड़ के लिए चेतन को नुकसान नहीं पहुँचाना है। जड़ राग से चेतन आत्मा पापकर्मों से बंधती है। यही बड़ा नुकसान है। जड़ राग में से ही अशान्ति, क्लेश और सन्ताप पैदा होते हैं।'

गर्भपात तो पाप ही रहेगा :

ऐसा मानसिक चिन्तन करते रहो और क्रियात्मक रूप से दान, शील और तप की आराधना करते रहो। दान से धन-दौलत का राग कम होगा। शील से वैषयिक राग कम होगा। तप से शरीर का मोह कम होगा। मदनरेखा संसार के सुखों के प्रति कितनी अनासक्त होगी? जंगल में चली गई, गर्भवती थी वह। कोई चिंता नहीं है, कोई व्यथा नहीं है। श्री नमस्कार महामंत्र का स्मरण करती हुई निर्भय और निश्चिंत बनकर चल रही है। उदरस्थ जीव को कष्ट न हों, उसका ध्यान रखती है। गर्भस्थ जीव का कभी अहित न हो जाए-इसका खयाल करती है।

सभा में से : उस समय गर्भपात पाप माना जाता होगा?

महाराजश्री : इस समय गर्भपात धर्म माना जाता है क्या? गर्भपात कितना भयंकर पाप है, यह बात भले आज भुला दी जाती हो, परन्तु गर्भपात करनेवाली स्त्रियों को भवान्तर में वंध्या ही रहना पड़ेगा। संतानप्राप्ति होगी ही नहीं! इतना ही नहीं, गर्भपात करनेवाले ऐसा घोर अशातावेदनीय कर्म बाँधते हैं कि अनेक जन्मों तक शारीरिक रोग के भोग बनते रहते हैं। इस विषय पर फिर कभी बात करूँगा।

आज, बस इतना ही।

❖ ❖ ❖

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

- ***जिसका दिल दया और करुणा से भरा हुआ है, जिसके हृदय में से वैर वृत्ति ही मर मिटी है, वैसे व्यक्ति के पास आनेवाला हिंसक जानवर और हिंसक आदमी भी अहिंसक हो जाता है।***
- ***देवलोक में जानेवाले जीव वहाँ जाकर देवलोक के दिव्य सुखभोग में इतने तो डूब जाते हैं कि मनुष्य जन्म के स्नेही-स्वजनों को तो वे भूल ही जाते हैं। अरे, अपने उपकारी को भी विस्मृत कर देते हैं।***
- ***उपकारी के प्रति स्नेह एवं सद्भाव हमेशा बनाए रखना, यह एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण गुण है। अलबत्ता, आजकल की दुनिया में यह गुण दुर्लभ है...विरल है।***
- ***उपकारी-मैत्री धर्म आराधना की आधारशिला है, बुनियादी तत्त्व है।***
- ***उपकारी के प्रति द्वेष रखना...या नफरत करना, इससे बढ़कर दूसरा पाप कौनसा होगा?***

प्रवचन : १५

महान श्रुतधर आचार्यदेव श्री हरिभद्रसूरीश्वरजी धर्मतत्त्व का स्वरूप समझा रहे हैं। इस आचार्यश्री का समझाने का ढंग ही निराला है। १४४४ धर्मग्रन्थों की रचना करनेवाले महान शास्त्रकार तो थे ही, परन्तु बहुत बड़े मनोवैज्ञानिक भी थे! अद्वितीय तार्किक थे! इनकी बात 'क्लासिकल' होगी! हर बात 'सायकोलॉजिकल' होगी, हर बात 'लॉजिकल' होगी! कैसी सर्वतोमुखी प्रतिभा होगी इन महामना योगीश्वर की!

आपकी क्रिया भले शास्त्रीय हो, विधिपूर्वक हो परन्तु आपका हृदय यदि मैत्री, प्रमोद, करुणा और माध्यस्थ-भाव से भरा हुआ नहीं है तो आपकी वह शास्त्रसंमत क्रिया भी 'धर्म-क्रिया' नहीं कहलाएगी! धार्मिक बनने के लिए आपका हृदय मैत्रीसभर होना जरूरी है! करुणा से गीला होना आवश्यक है! प्रमोद से पुलकित होना अनिवार्य है! माध्यस्थ्य-भाव से मुखरित होना आवश्यक है!

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

धर्मक्रियाएँ अशुद्ध मन से हो रही हैं :

उपकारी पुरुषों के प्रति भी शत्रुता, स्वजनों के प्रति भी द्वेषभावना, स्नेही और परिचितों के प्रति भी रोष और नाराजी, दूसरे जीवों के प्रति भी अहितकर व्यवहार...फिर जाओ मन्दिर में, आओ उपाश्रय में, धर्मशाला में, करो सामायिक और प्रतिक्रमण, मान लो कि 'मैंने धर्म किया!' कब तक यह भ्रमणा बनी रहेगी? कब तक यह जड़ता जमी रहेगी? हृदयशुद्धि कब करोगे?

सभा में से : ऐसी ही धर्मक्रिया करते करते हृदयशुद्धि नहीं होगी क्या?

महाराजश्री : कितने वर्षों से धर्मक्रियाएँ कर रहे हो? कितनी हृदयशुद्धि हुई? हृदयशुद्धि का लक्ष्य बनाया है क्या? हृदय की अशुद्धि अखरती है क्या? नहीं...नहीं...! निर्भय हो गये हो द्रव्यक्रियाएँ कर-करके! 'अशुद्ध हृदय से की हुई धर्मक्रियाएँ पुण्यकर्म तो बंधवायेंगी न!' बस, आपको तो पुण्यकर्म से संबंध है! फिर हृदयशुद्धि करोगे ही किसलिए?

प्रश्न : अशुद्ध हृदय से की हुई धर्मक्रिया से पुण्यकर्म नहीं बंधता है क्या?

उत्तर : बंधता है! अशुद्ध तेल से भी भोजन बनता है या नहीं? कैसा तैयार होता है? सड़े हुए आटे से भी रोटी बन सकती है या नहीं? परन्तु कैसी? अशुद्ध हृदय हो और धर्मक्रिया करता हौ तो द्रव्य-क्रिया से पुण्यबंध होगा, परन्तु वह पुण्यबंध पाप ज्यादा कराएगा, जब वह पुण्य उदय में आएगा तब! एक बात बराबर समझ लो : अशुद्ध चित्त में निःश्रेयस का लक्ष्य जाग्रत नहीं रह सकता। अशुद्ध चित्त में मोक्षप्राप्ति की आकांक्षा ही पैदा नहीं होती। अशुद्ध चित्त में ऐसा भावोल्लास उत्पन्न नहीं होता है कि क्रिया भावक्रिया बने। द्रव्य-क्रिया भी वही कहलाती है कि जो भाव के लक्ष्य से की गई हो! चित्तशुद्धि के लक्ष्य से की गई क्रिया ही धर्मानुष्ठान बन सकती है।

दुःख का द्वेष और सुखों की स्पृहा मत करो :

दुःखभीरुता और सुखलिप्सा ने हृदय को अशुद्ध बनाए रखा है। दुःखभीरुता से और सुखलिप्सा से ही तो मनुष्य पापाचरण करता है! अकार्य करता है! यदि दुःख का भय नहीं हो और भौतिक सुखों की स्पृहा नहीं हो तो मनुष्य पाप करेगा ही नहीं!

मदनरेखा ने दुःख का भय और सुखों की स्पृहा से हृदय अलिप्त रखा था। इसलिए तो मणिरथ ने अनेक प्रलोभन दिये फिर भी मदनरेखा मणिरथ की

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दुष्ट वासना के वश नहीं हुई। दुःखों से डरती नहीं थी इसलिए जंगल में चली गई... अपनी शीलरक्षा के लिए। उसका चित्त कितना विशुद्ध होगा!

दूसरे दिन मदनरेखा चलती ही रही। संध्या के समय एक वृक्ष की घटा में सुरक्षित स्थान पाकर उसने विश्राम कर लिया। दिन में उसने फलाहार कर लिया था और झरनों का पानी पी लिया था। पास में ही एक बड़ा सरोवर था। प्रदेश रमणीय था। निर्जन था। हालाँकि जंगली पशुओं का विचरण अवश्य था, परन्तु मदनरेखा के प्रति उनमें हिंसक-भाव नहीं रहा!

दया और करुणा का प्रभाव :

मदनरेखा के चरित्रग्रन्थ में यह बात जो लिखी गई है, 'बोगस' नहीं है, मात्र मदनरेखा का प्रभाव बताने के लिए नहीं कही गई है। वास्तविक बात है। जिस मनुष्य का हृदय दया और करुणा से सभर होता है, जिस हृदय में से वैरवृत्ति नामशेष हो गई होती है, उसके पास आनेवाले हिंसक जानवर और हिंसक मनुष्य भी अहिंसक भाववाले बन जाते हैं! उनमें से वैरवृत्ति चली जाती है। महर्षि पतंजलि ने योगसूत्र में कहा है :

'अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः।' जिस हृदय में अहिंसा की प्रतिष्ठा हो गई, उसके सान्निध्य में आनेवालों के हृदय भी वैरवृत्ति से मुक्त हो जाते हैं! इसलिए तो तीर्थंकर परमात्मा के समवसरण में बाघ और बकरी साथ में बैठते हैं! शेर निर्वैर बनता है, बकरी निर्भय बनती है!

निकट के भूतकाल में ऐसे कुछ योगीपुरुष हो गये, कहते हैं कि उनके पास हिंसक पशु भी पालतू पशु की तरह निर्वैर बन जाते थे! मदनरेखा के हृदय में अहिंसा की प्रतिष्ठा हो गई थी। जीवमात्र के प्रति उसके हृदय में मैत्रीभाव उभर रहा था। 'मित्ति में सव्वभूएसु' सूत्र वास्तविक रूप में मदनरेखा ने आत्मसात किया था।

वृक्षों की घटा में, पर्णशय्या में सोई हुई मदनरेखा ने मध्यरात्रि के समय पुत्र को जन्म दिया। न कोई प्रसव की पीड़ा, न कोई विह्वलता। जब अरुणोदय हुआ, मदनरेखा ने पुत्र को अंगुली से युगबाहु की मुद्रिका बाँध दी और अपने रत्नकंबल में लड़के को लपेटकर सुला दिया। मदनरेखा वस्त्र धोने और स्नान करने सरोवर पर चली गई। प्रभात का समय था। सरोवर का नीर शान्त और शीतल था।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मदनरेखा का अपहरण :

मदनरेखा सरोवर के किनारे स्नान कर रही थी, इतने में आकाशमार्ग से एक विमान आता है, विमान में से एक तेजस्वी राजपुरुष उतरा, स्नानरत मदनरेखा को उठाया और जहाज में बिठाकर शीघ्र आकाशमार्ग से चल दिया। चन्द क्षणों में यह घटना कल्पनातीत घटना बन गई! मदनरेखा स्तब्ध रह गई!

पति की आकस्मिक हत्या, जंगल में पुत्र का जन्म और स्वयं का अपहरण... 'क्या हो रहा है?' वह समझ नहीं सकती है। शीलरक्षा हेतु महल छोड़कर जंगल में आई तो जंगल में से अपहरण हो गया! उसके मन में नवजात शिशु की चिन्ता है। उसने उस राजपुरुष से कहा : 'हे वीरपुरुष! मध्यरात्रि के समय मैंने पुत्र को जन्म दिया है। पुत्र को सरोवर के पास वृक्ष-घटा में सुलाकर मैं स्नान करने और वस्त्र धोने सरोवर पर आई थी। मेरे बच्चे का क्या होगा? या तो कोई वन्यपशु उसको मार देगा अथवा दुग्धपान के बिना वह स्वयं मर जाएगा। हे राजपुरुष मुझ पर दया करो, मेरे बच्चे के पास मुझे ले जाओ अथवा बच्चे को यहाँ ले आओ।' मदनरेखा की आँखें आँसुओं से भर गईं।

परन्तु दुनिया में सभी लोग थोड़े ही सन्त होते हैं! मदनरेखा का अद्‌भुत रूप इस राजपुरुष को भी कामांध बना देता है। उसकी आँखें विकारी बन गई हैं। मदनरेखा के आँसू उस पर कोई असर नहीं करते हैं। तीव्र राग या तीव्र द्वेष में मनुष्य करुणाविहीन बन जाता है। दूसरों के प्रति सहानुभूति जगती ही नहीं। मदनरेखा की विवशता देखकर वह कहता है :

'तू पहले मुझे पति मान ले! बस, फिर तेरी हर इच्छा को पूर्ण करने मैं तैयार हूँ।'

मदनरेखा काँप उठी। परन्तु धीरता धारण कर उसने पूछा : 'तुम कौन हो? तुम्हारा परिचय क्या है?'

उस पुरुष ने कहा : वैताढ्यपर्वत पर 'रत्नवह' नाम का नगर है। वहाँ मणिचूड़ नाम के राजा थे। मैं उनका पुत्र मणिप्रभ हूँ। पिताजी ने मेरा राज्याभिषेक कर दिया और उन्होंने चारित्र्यधर्म अंगीकार कर लिया। अभी वे महामुनि 'नन्दीश्वरद्वीप' पर बिराजते हैं, वहाँ के शाश्वत् जिनमंदिरों के, शाश्वत् जिनप्रतिमाओं के दर्शन करने वे गए हैं। मैं भी पिता मुनिराज के दर्शन करने जा रहा था। रास्ते में मैंने तुझे देखा।'

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मदनरेखा रास्ता ढूँढ़ती है :

मदनरेखा मणिप्रभ की एक-एक बात ध्यान से सुनती है। उसको तो अपना मार्ग निकालना है। किसी भी तरह अपने शील की रक्षा करनी है। मणिप्रभ से कहा : 'अच्छा, तो तुम एक मुनि-पिता के पुत्र हो। मुझ पर एक दया कर दो। मेरा पुत्र मुझे ला दो।' दो हाथ जोड़कर, सर झुकाकर उसने अनुनय किया।

मणिप्रभ राजा ने आँखें बन्द कीं, ध्यान लगाया। कुछ समय में ही आँखें खोलकर उसने कहा :

'जिस जंगल में तेरा पुत्र सोया था, उस जंगल में मिथिलापति राजा पद्मरथ अकस्मात पहुँच गया... तेरे पुत्र का रुदन सुनकर, राजा ने उसको देखा और उठा लिया, अपनी रानी पुष्पमाला को दे दिया है।

मदनरेखा के श्वास स्तंभित हो गए। उसने पूछा : 'तुमने कैसे यह सब जान लिया? मुझे आश्वासन देने-हेतु तो तुम ऐसी झूठी बात नहीं कह रहे हो न?'

'मैंने झूठी बात नहीं कही है। 'प्रज्ञप्तिदेवी' से पूछकर मैंने यह बात बताई है। रानी पुष्पमाला तेरे पुत्र को अपना पुत्र मानकर प्रेम से उसका पालन करेगी। तू अब पुत्र की चिन्ता छोड़ दे। तू मेरी बात मान ले। मेरे नगर में तुझे ले चलता हूँ। मेरे अन्तःपुर में तेरा श्रेष्ठ स्थान होगा।' मणिप्रभ मदनरेखा के पास सरकने लगा था। मदनरेखा उससे दूर रहने का प्रयत्न करती थी। मदनरेखा ने सोचा : 'बुद्धिपूर्वक कुछ रास्ता निकालना चाहिए। तो ही शीलरक्षा हो सकती है।' उसके मन में एक उपाय सूझा। उसने मणिप्रभ कहा :

मदनरेखा की बुद्धिमत्ता :

'मेरी एक इच्छा पहले पूर्ण करो, मुझे नंदीश्वरद्वीप ले चलो, मैं वहाँ शाश्वत् जिनमंदिरों के, शाश्वत् जिनप्रतिमाओं के दर्शन-पूजन करना चाहती हूँ... बाद में जैसे भी तुम कहोगे, वैसे कर लूँगी।' मणिप्रभ ने मदनरेखा की बात मान ली। मदनरेखा आश्वस्त हुई।

स्वस्थ और धीर चित्त में ही अच्छे उपाय सूझते हैं। अस्वस्थ, चंचल और अधीर चित्त तो उलझ जाता है। भयभ्रांत हो जाता है, कर्तव्यमूढ़ बन जाता है। मदनरेखा की धीरता कितनी अद्‌भुत होगी। 'कालक्षेप कर दूँ, बचने का रास्ता मिल जाएगा। अभी यदि इनकार कर दूँगी तो आक्रामक बनेगा, परिणामस्वरूप मुझे आत्महत्या ही करनी पड़ेगी।'

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मदनरेखा की बात आप लोगों की समझ में आती है? आपत्ति के समय भी वह स्वस्थता नहीं खोती है। स्वस्थ मन से उत्तम उपाय खोज निकालती है। उसकी धारणा भी सही थी। नन्दीश्वरद्वीप पर मणिप्रभ राजा के पिता-मुनि बिराज रहे थे। मदनरेखा उन मुनीश्वर की शरण लेकर मणिप्रभ से छुटकारा पा सकती है। मणिप्रभ पिता मुनिराज की आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकता, क्योंकि उसने ही बताया था कि 'मैं पिता-मुनिराज को वंदन करने जा रहा था।' यानी उसके हृदय में पिता-मुनि के प्रति श्रद्धा और सद्भाव था। वह कैसे मुनिराज की आज्ञा का अनादर करता?

दूसरी बात : मुनिराज मदनरेखा की शीलरक्षा में सहायक बनेंगे ही! मुनि तो हमेशा शीलरक्षा के ही पक्ष में होते हैं। अपना ही पुत्र परस्त्रीगामी बने, यह मुनिराज कभी भी पसन्द नहीं करें। मदनरेखा ने नंदीश्वरद्वीप ले जाने का जो प्रस्ताव रखा, उसके भीतर ये सारी धारणाएँ थीं मदनरेखा की। सच्ची धारणाएँ थीं। सही मार्ग पर चलनेवालों को, शीलरक्षा के पवित्र उद्देश्य से जीवन जीनेवालों को सही उपाय मिल ही जाता है।

मदनरेखा नंदीश्वरद्वीप पर :

मणिप्रभ राजा मदनरेखा को लेकर नंदीश्वरद्वीप पर पहुँचा। मदनरेखा तो बड़ी प्रसन्न हो गई वहाँ के अतिभव्य शाश्वत् जिनमंदिरों को देखकर। अति नयनरम्य विराटकाय जिनप्रतिमाओं के दर्शन कर। बड़ी भावभक्ति से दोनों ने परमात्मा के दर्शन-पूजन किये। बाद में, जहाँ मुनिराज मणिचूड़ बिराजते थे, वहाँ गये। दोनों ने विनय से मुनिराज को वंदना की और विधिपूर्वक मुनिराज के सामने बैठ गये। मुनिराज मणिचूड़ को चौथा मनःपर्यवज्ञान प्रकट हो गया था। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्यवज्ञान-ये चार ज्ञान थे, उन मुनिभगवंत को। मुनिराज के दिव्य मुखारविन्द के दर्शन से मदनरेखा का हृदय हर्ष से गद्गद् हो गया।

अवधिज्ञान ऐसा आत्मप्रत्यक्ष ज्ञान होता है कि भूतकालीन और भविष्यकालीन बातों को भी जाना जा सकता है। दूसरे मनुष्यों के भी भूत-भविष्य जाने जा सकते हैं। मनःपर्यवज्ञानी तो दूसरे जीवों के मन की बातें भी बता सकते हैं। अनुमान से नहीं, प्रत्यक्ष देखकर बता सकते हैं। आज तो अपना दुर्भाग्य है कि ऐसे अवधिज्ञानी और मनःपर्यवज्ञानी महात्मा इस भूमि पर नहीं हैं। केवलज्ञानी की तो बात ही कहाँ!! यदि ऐसे ज्ञानी पुरुषों के युग में अपन होते तो कल्याण हो जाता अपना!

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सभा में से : क्या ऐसे ज्ञानी पुरुष हमारे व्यापार की तेजी-मंदी भी बता देते हैं? [सभा में जोरदार हँसी!]

साधुपुरुषों के पास क्या मांगोगे?

महाराजश्री : आप लोगों की दृष्टि कमाल की है! दिव्य ज्ञानी पुरुषों से भी पैसे कमाने के ही रास्ते जानने की तमन्ना! मेरे खयाल से आपको लगे कि 'फलाँ ज्ञानी पुरुष... साधुपुरुष अच्छे ज्योतिष के ज्ञानी हैं,' तो उनका उपयोग ऐसा ही करो!

सभा में से : उनके पीछे गाड़ियाँ लेकर घूमते हैं।

महाराजश्री : भले घूमें, परन्तु यदि वे ज्ञानी पुरुष वास्तव में साधुपुरुष होंगे, परमात्मा जिनेश्वर के शासन के सच्चे अनुरागी होंगे तो वे आपकी अर्थ-काम की इच्छाओं को पूर्ण करने में सहयोगी नहीं बनेंगे। वे तो आपकी अर्थलोलुपता को, कामपरवशता को मिटाने का ही उपदेश देंगे। हाँ, वेश साधु का पहना हो और काम डाकू का करते हों, उनकी बात जाने दो। ऐसे वेशधारी साधु भी होते हैं। उनको ऐसे स्वार्थी और लोभी लोग मिल भी जाते हैं। दुनिया में मूर्ख लोग ही ज्यादा हैं। धूर्तों को ऐसे मूर्ख लोग मिल जाते हैं। आप लोगों को तो ऐसा कोई धूर्त नहीं मिल गया है न? दिमाग ठिकाने रखना, अन्यथा धर्म के नाम पर पाप में डूब जाओगे। कभी भी साधुपुरुषों से अर्थ-काम की प्राप्ति की अभिलाषा नहीं करना। कोई साधु ऐसी बातें करें तो उनको विनय से कह देना कि : 'महाराज साहब, हमको आपसे पैसे नहीं चाहिए, लड़के नहीं चाहिए, हमें तो आपसे मोक्षमार्ग का ज्ञान चाहिए, सम्यक्-दर्शन और सम्यक्-चरित्र चाहिए। आप तो हमें ऐसी प्रेरणा दो कि इस अर्थ-काम की लोलुपता मिट जायँ, वासनाएँ मर जाएँ... और हम मोक्षमार्ग के आराधक बनें।'

मणिचूड़ महामुनि उच्चकोटि के महात्मा पुरुष थे। उन्होंने अपने ज्ञानबल से मदनरेखा का भूतकाल जान लिया और अपने पुत्र के मन की इच्छा भी जान ली। मणिप्रभ कुछ पूछे, इससे पूर्व ही महामुनि ने मणिप्रभ से कहा :

राजा मणिप्रभ की आँखें खुली :

'मणिप्रभ, तू जिस नारी को लेकर यहाँ आया है, वह एक महासती स्त्री है। अपने शीलधर्म की रक्षा के लिए तो उसने महल छोड़ा है, पुत्र को छोड़ा है और अपने प्राणों को भी छोड़ सकती है। वत्स, यह महासती स्वर्गस्थ

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

युवराज युगबाहु की पत्नी है। तेरे मन में से परस्त्री की वासना को निकाल दे। परस्त्रीसेवन नर्क का रास्ता है। परस्त्रीसेवन का विचार भी मत करना। मदनरेखा का भविष्य बहुत उज्ज्वल है। वह अपनी आत्मा को विशुद्ध करेगी।'

मणिप्रभ पिता-मुनिराज का उपदेश सुनकर शान्त हो गया। उसके मनोविकार जल गए। मन पवित्र हो गया। साधुपुरुषों के सत्संग का यही तो फल है। साधुसमागम से विषयवासना की भड़भड़ सुलगती आग बुझ जाती है। साधु-परिचय से कषायों का भयंकर दावानल भी बुझ जाता है। साधुपरिचय से घोर पापों का क्षण में नाश हो जाता है। मणिप्रभ की अन्तरात्मा इतनी निर्मल हो गई कि उसने खड़े होकर मदनरेखा से क्षमा माँगी और कहा : 'हे महासती! तुम मेरी बहन हो आज से, मैं तुम्हारा भाई हूँ। तुम्हारी हर आज्ञा का पालन करूँगा।' मदनरेखा की आँखों में हर्ष के आँसू उमड़ने लगे। उसने भी गद्‌गद् स्वर में कहा : 'भाई, तुम महान पिता के महान पुत्र हो! तुमने मुझ पर अनन्त उपकार किया यहाँ नंदीश्वरद्वीप पर लाकर। ऐसे अद्‌भुत तीर्थ की यात्रा करवाई और ऐसे महान ज्ञानी गुरुदेव के दर्शन करवाए। सचमुच, मेरा मन प्रसन्न हो उठा है।'

मदनरेखा ने पुत्र के बारे में मुनिराज से पूछा :

मदनरेखा के मन में तीन बातों का हर्ष था : नन्दीश्वरद्वीप की दुर्लभ यात्रा सुलभ हो गई। मनःपर्यवज्ञानी ऐसे मणिचूड़ मुनीश्वर के दर्शन हो गए और शीलरक्षा हो गई। मदनरेखा के मन में अपना नवजात शिशु याद आ गया... उसने महामुनि को उस बच्चे के विषय में पूछकर अपने मन को शान्त करना चाहा। उसने विनय से मुनिराज को प्रश्न किया :

'हे तारणहार! आपकी परमकृपा से मेरी शीलरक्षा हो गई। मैं निर्भय हो गई। प्रभो, मेरा नवजात शिशु, जिसको मैंने उस वृक्षघटा में सुलाया था, उसका क्या हुआ? कृपा करके बताइए। महामुनि ने करुणापूर्ण वाणी में कहा :

'मदनरेखा, मणिप्रभ ने तुझे प्रज्ञप्तिविद्या की सहायता से जो बताया है, वह सही है। राजा पद्मरथ उस बच्चे को ले गया है और रानी पुष्पमाला को दिया है। राजा-रानी बड़े प्रेम से लड़के को पाल रहे हैं।'

'भगवंत! राजा को मेरे पुत्र के प्रति इतना स्नेह क्यों हुआ?' मदनरेखा ने अपनी जिज्ञासा व्यक्त की।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

'पूर्वजन्म का स्नेह! पूर्वजन्म में दो राजकुमार थे, दोनों मरकर देवलोक में देव हुए। देवलोक का आयुष्य पूर्ण होने पर एक मिथिला का राजा पद्मरथ हुआ, दूसरा तेरा पुत्र हुआ। राजा पद्मरथ को उसका अश्व ही उस जंगल में ले गया था। वहाँ उसने तेरे पुत्र को देखा, पूर्वजन्म का स्नेह जाग्रत हुआ और वह ले गया उसे अपने साथ।'

जन्म-जन्मान्तर के स्नेह और द्वेष वर्तमान जीवन के स्नेह और द्वेष में निमित्त बनते हैं। कभी-कभी ऐसा अनुभव आप लोगों को भी होता होगा कि जिसको आप पहचानते भी न होंगे, कभी उनसे आप मिले भी नहीं होंगे, उनके बारे में अच्छी-बुरी बात भी सुनी नहीं होगी और आज उसको देखते ही स्नेह हो जाय! अथवा अरुचि-द्वेष हो जाय! प्रत्यक्ष कोई भी कारण न दिखता हो, फिर भी सहज राग-द्वेष हो जाते हैं, वहाँ पूर्वजन्म के राग-द्वेष ही प्रमुख कारण होते हैं। वैसे, नये राग-द्वेष का प्रारंभ भी इस जीवन में हो सकता है।

एक और नई घटना :

तीन अनिच्छनीय घटनाएँ और तीन अच्छी घटनाएँ दो-तीन दिनों में ही हो गईं। अब एक नई रोमांचकारी घटना उसी नन्दीश्वरद्वीप पर बनती है। मदनरेखा और मणिप्रभ महामुनि मणिचूड़ के पास बैठे हैं और अचानक आकाशमार्ग से एक देदीप्यमान विमान वहाँ उतर आता है। मणिप्रभ और मदनरेखा उस विमान की ओर देखते हैं।

एक दिव्य कान्तिवाला देवपुरुष विमान से बाहर आया। अनेक आभूषणों से उसकी देह सुशोभित थी। जमीन पर उसके पैर टिके हुए नहीं थे। गले में सुगंधित पुष्पों की सुन्दर माला थी। उसके पीछे पीछे विमान में से अनेक देवांगनाएँ उतर आईं। देवांगनाओं ने उतरते ही गीत और नृत्य का प्रारंभ कर दिया। गाते और नाचते वे सब महामुनि मणिचूड़ के पास आ रहे थे। मदनरेखा के लिए यह दृश्य नया-नया ही था। मणिप्रभ राजा विद्याधर होने से और नन्दीश्वरद्वीप पर पहले भी आया हुआ था, इसलिए यह दृश्य उसके लिए नया नहीं था। नन्दीश्वरद्वीप देवों का ही तीर्थस्थान है। पर्व दिनों में देव-देवी इस द्वीप पर आते रहते हैं और परमात्मभक्ति का महोत्सव मनाते रहते हैं।

देव-देवियों को तो मणिप्रभ ने देखा ही था, उसके लिए कोई बड़ा आश्चर्य नहीं था, परन्तु एक नया आश्चर्य उसको भी देखने को मिल गया। उस भव्य देहाकृतिवाले देव ने महामुनि के पास आकर, सर्व प्रथम मदनरेखा को प्रणाम

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

किया, मदनरेखा को तीन प्रदक्षिणा दी, बाद में मुनिराज को प्रणिपात कर, विनयपूर्वक मुनिराज के सामने बैठा। देवियों ने देव का ही अनुकरण किया, वे देव के पीछे जाकर खड़ी रह गईं। मणिप्रभ को लगा कि 'देव ने ऐसा अविनय क्यों किया?' उससे रहा नहीं गया... पूछ ही लिया।

'देव भी यदि ऐसा अविवेक करेंगे तो फिर हम किसके सामने फरियाद करेंगे? चार-चार ज्ञान के धारक सुचारित्री ऐसे महामुनि को छोड़कर आपने प्रथम एक स्त्री को प्रणाम किया।' मणिप्रभ ने अपनी अरूचि प्रकट की। आगन्तुक देव प्रत्युत्तर दे ही रहा था कि महामुनि ने उसको रोक दिया और स्वयं मणिप्रभ से कहने लगे : 'मणिप्रभ, ऐसा मत बोलो। तुम पहचानते नहीं हो इस महानुभाव को। उसने जो किया है वह उचित किया है।'

मणिप्रभ को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने पूछा : 'भगवंत यह कैसे?'

महामुनि ने कहा :

'इस मदनरेखा के पति का नाम युगबाहु था। युगबाहु युवराज था। उसके बड़े भ्राता मणिरथ, मदनरेखा के रूप में आसक्त बने थे। मदनरेखा को अपनी भार्या बनाने के लिए मणिरथ ने युगबाहु की हत्या कर दी, परन्तु मृत्यु के समय मदनरेखा ने अपने पति को बहुत ही सुन्दर आराधना करवाई, युगबाहु को समतारस पिलाया, चार शरण अंगीकार करवाए, नवकार मंत्र सुनाया। इस आराधना के प्रताप से युगबाहु मरकर पाँचवे देवलोक में उत्पन्न हुआ। उत्पन्न होने के बाद उसने अवधिज्ञान से देखा कि 'मैं कहाँ से आया हूँ।' जब उसने अपनी परमोपकारिणी पत्नी को यहाँ मेरे पास देखा, वह विमान लेकर यहाँ चला आया... यह वही देव है!'

उपकारी महान है :

मणिप्रभ का हृदय हर्षविभोर हो गया। महामुनि ने कहा : 'मणिप्रभ, देव ने मदनरेखा को क्यों प्रथम प्रणाम किया, वह तू समझ गया न? जो मनुष्य जिसके उपकार से शुद्ध धर्म प्राप्त करता है, वह उसके लिए गुरु बनता है। यह देव मदनरेखा को अपना धर्माचार्य मानता है। 'यह मेरी पूर्वभव की पत्नी है,' इस कल्पना से वह नहीं आया है। 'इसने मुझे दुर्गति से बचाया, मुझे शुद्ध धर्म दिया, मुझे देवलोक में भेजा... मुझ पर अनन्त उपकार किये।' इस भावना से वह आया है।'

मणिप्रभ ने खड़े होकर युगबाहु-देव से क्षमा माँगी और बहुत-बहुत धन्यवाद

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दिए। मदनरेखा ने महामुनि की कृपा से जान लिया कि 'यह देव युगबाहु की आत्मा है। और पाँचवें देवलोक में उत्पन्न हुआ है।' उसको संतोष हुआ।

युगबाहु की आत्मा की कितनी उत्तमता! उपकारी के उपकार को देवलोक में जाने पर भी भुलाया नहीं! अन्यथा, देवलोक में जानेवाले लोग वहाँ के दिव्य सुखों में इतने लीन हो जाते हैं कि मनुष्यभव के स्नेहीस्वजनों को तो भूल ही जाते हैं, अपने उपकारी को भी भूल जाते हैं। आजकल तो जो देवलोक में जाते हैं, कोई इधर आता दिखता ही नहीं है। जिसने मानव-जीवन में अच्छा धर्मपुरुषार्थ किया हो और मृत्यु-समय भी अच्छी समता-समाधि रखी हो, वह प्रायः देवलोक में जाता है, ऐसा अपन मान सकते हैं, अनुमान कर सकते हैं। ऐसे जीव भी यहाँ आते हुए नहीं दिखते आजकल। देव चाहे तो आ सकते हैं। युगबाहु आया कि नहीं? अब उसको कोई चिन्ता नहीं रही।

संबंध में कल्याणमैत्री को विकसित करो :

इस जीवन में संबंध बांधो तो ऐसा बांधो।, पत्नी पति की मात्र पत्नी ही नहीं रहे, कल्याणमित्र बने। पति मात्र पति ही बना रहे, इतना ही पर्याप्त नहीं, अपितु वह पत्नी का कल्याणमित्र बने! मात्र वर्तमान जीवन के ही सुख-दुःख का विचार नहीं, पारलौकिक सुख-दुःख का विचार करो। पत्नी विचार करे कि : मेरे पति का परलोक नहीं बिगड़ना चाहिए। मैं उसको ऐसा सहयोग प्रदान करूँ कि उसका जीवन धर्ममय बना रहे। इसी प्रकार पति भी पत्नी का पारलौकिक हित का विचार करता रहे। श्रेष्ठ मैत्री यही है। ऐसी मैत्री अनेक जन्मों तक अखंडित रहती है। निर्वाण तक ऐसी मैत्री बनी रहती है।

मात्र पाँच इन्द्रियों के विषय-सुखों के आदान-प्रदान की मैत्री, मैत्री नहीं है। 'तुम मुझे सुख दो, मैं तुम्हें सुख दूँगा।' यह मैत्री नहीं है, सौदा है। 'तुम मुझे सुख नहीं देती तो मैं भी तुम्हें सुख नहीं दूंगा' यह मैत्री नहीं है। दुःख देनेवालों को भी सुख देने की भावना मैत्री है। सर्व जीवों के प्रति आत्मवत् स्नेह प्रदान करना, मैत्री है। मैत्री में स्नेह होता ही है। स्नेहरहित मित्रता हो ही नहीं सकती। हितचिन्तारूप स्नेह का झरना सर्व जीवों के प्रति निरंतर बहता ही रहना चाहिए।

मदनरेखा के प्रति युगबाहु की मैत्री 'उपकारी-मैत्री' कह सकते हैं। 'मेरे उपकारी के उपकारों का बदला चुकाऊँ... प्रत्युपकार करूँ...' ऐसा विचार मैत्रीभावना का द्योतक है। उपकारी के प्रति स्नेह बना रहना, एक विशिष्ट

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

गुण है। हाँ, इस दुनिया में यह गुण दुर्लभ है। उपकारी के उपकारों को भूल जाना, आजकल मनुष्य के लिए आसान हो गया है। एक बात याद रखना, जो मनुष्य उपकारी के उपकारों को भूल जाता है, उपकारी के प्रति स्नेह और आदर नहीं रखता है, वह मनुष्य धर्मआराधना करने के लिए अयोग्य है अपात्र है। कृतज्ञतागुण धर्मआराधक में होना ही चाहिए। इसका अर्थ यह होता है कि 'उपकारी-मैत्री' धर्मआराधना की नींव है। 'योगसार' नाम के प्राचीन ग्रंथ में अज्ञातमहर्षि ने कहा है कि धर्मरूप कल्पवृक्ष के मूल हैं मैत्री-प्रमोद-करुणा और माध्यस्थ भाव।' बात बिल्कुल सही है। मैत्री वगैरह भावनाओं के बिना आत्मा में धर्म स्थिर रह ही नहीं सकता।

मणिचूड़ मुनिराज ने मणिप्रभ को एक महत्त्वपूर्ण बात कही... याद है? यो येन शुद्धधर्मे स्थाप्यते स तस्य गुरुः।' जो मनुष्य जिसके द्वारा शुद्ध धर्म पाता है, वह उसका गुरु कहलाता है! मुनिराज ने ऐसा नहीं कहा कि : 'मदनरेखा तो अविरत-श्राविका है, मैं यहाँ सर्वविरतिधर साधु बैठा हूँ और उसको प्रणाम करना अविनय है, मेरी आशातना है। उसने अंतिम आराधना करवाई तो क्या हो गया? गुरु तो मैं हूँ।' मेरे जैसा साधु होता, तो ऐसी ही बात झाड़ देता! आज तो इस विषय में भी बड़ी गड़बड़ पैदा हो गई है। मानों कि मरे पास आप आए मुझे आपसे कोई स्वार्थ है, अथवा आपको मेरे भक्त बनाने हैं, या शिष्य बनाने हैं तो मैं क्या करूँगा? आप जिस महात्मा से, जिस व्यक्ति से सद्धर्म पाये होंगे, आपको जिसके प्रति श्रद्धा और प्रेम होगा, मैं उसकी बुराई करूँगा, आपके उपकारी के प्रति द्वेष-अरुचि पैदा करूँगा! आपके हृदय में उनके प्रति स्नेह नहीं रहे, तो ही मेरे प्रति स्नेह स्थापित होगा न! उपकारी, परम उपकारी के प्रति द्वेष पैदा करने जैसा पाप दूसरा नहीं है। परन्तु पुण्य-पाप की बातें करनेवाले भी कभी यह पाप कर लेते हैं। और वह भी 'धर्म' समझकर। अपना दुर्भाग्य ही समझना चाहिए। यह रोग अपने संघ में व्यापक रूप से फैल गया है।

देव यानी युगबाहु, मदनरेखा को 'गुरु' मान कर सर्व प्रथम उनको तीन प्रदक्षिणा देता है और प्रणाम करता है। बाद में मुनिराज को प्रणाम करता है, इस बात को मुनिराज उचित बता रहे हैं! अर्थात् पारलौकिक उपकार करनेवालों का कितनी ऊँची कोटि का महत्त्व है, यह बात समझने की है। भले, मदनरेखा साध्वी नहीं थी, गृहस्थ स्त्री थी, परन्तु युगबाहु के लिए तो सद्धर्म देनेवाली गुरु थी, आचार्य थी! युगबाहु का यह भाव यथार्थ था, उचित था, कल्याणकारी था।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

युगबाहु-देव मदनरेखा से कहता है : 'देवी, तुम्हारी अब क्या इच्छा है? तुम्हें जो प्रिय हो वह करने को तैयार हूँ।'

मदनरेखा कहती है : 'मुझे तो मोक्ष ही प्रिय है। कर्मों के बंधनों से मेरी आत्मा मुक्त बने, यही मुझे प्रिय है, परन्तु अभी तो मुझे तुरंत ही मिथिला में पहुँचा दो। मैं अपने नवजात पुत्र का मुँह देख लूँ, बाद में मेरा समग्र जीवन धर्मआराधना में व्यतीत करूँगी।'

मदनरेखा का प्रत्युत्तर कितना प्रेरणादायी है! उसका अन्तःकरण मोक्ष ही चाहता है। बाह्य मन पुत्र का मुँह देखने की इच्छा करता है। मोह से नहीं, परन्तु 'उस बच्चे को कोई तकलीफ तो नहीं है, अपनी आँखों से देख लूँ, बस, फिर मुझे समग्र जीवन धर्ममय ही बिताना है।' इस भावना से वह मिथिला जाना चाहती है। ज्ञानदृष्टि खुलने पर संसार प्यारा लगता ही नहीं। संसार के सुख प्रिय लगते ही नहीं। उसकी चाहना बनी रहती है केवल मुक्ति की। बंधनों में रहते हुए भी चाहना रहती है मुक्ति की। 'सम्यक्दर्शन' का गुण प्राप्त होने पर संसार के प्रति वैराग्य और मोक्ष के प्रति संवेग-प्रीति जाग्रत हुए बिना न रहे।

मदनरेखा ने मुनिराज की भावपूर्ण हृदय से वंदना की। राजा मणिप्रभ को प्रणाम किया और युगबाहु-देव के साथ विमान में बैठ गई। देव ने चंद क्षणों में ही मदनरेखा को मिथिला में उतार दिया। मदनरेखा ने कहा : 'यह मिथिला है, भगवान मल्लीनाथ का यहाँ जन्म हुआ था, यहीं पर दीक्षा ली थी और यहीं पर उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हुआ था, यह पुण्यभूमि है। अतः हम सर्वप्रथम जिनमंदिर में चलेंगें।' दोनों जिनमंदिर में जाते हैं। दर्शन-पूजन करने दो उन दोनों को।

आज, बस इतना ही।

❖ ❖ ❖

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

- ***महाकवि माघ की धर्मपत्नी ने कभी पति के करुणासभर दिल को निर्दयता से तोड़ा नहीं था! अपनी गरीबी से चिंतित व परेशान होते हुए भी उसने संयम रखा था।***
- ***करुणा में से चित्तप्रसन्नता पैदा होती है। दुनिया के लोग कम से कम परमात्मभक्त एवं गुरुभक्तों के पास से तो दया व करुणा की अपेक्षा रखेंगे ही न? दुनिया की निगाहों में परमात्मतत्त्व एवं गुरुतत्त्व की प्रतिष्ठा बनाना/बढ़ाना, इसकी जिम्मेदारी भक्तों की है।***
- ***जब पापी पापों का त्याग कर देता है तब फिर उसके प्रति द्वेष रखना या घृणा-नफरत करना अनुचित है। इससे तो उसका प्रेम आप कैसे जीत पाओगे?***
- ***पति के मन की चिंता करना पत्नी का पहला कर्तव्य है... यदि वह अपने जीवन को प्रेम-प्रसन्नता से हरा-भरा रखना चाहती है। अलबत्ता, पति को भी पत्नी की इच्छा का उतना ही आदर करना है।***

प्रवचन : १६

वचनाद्यदनुष्ठानमविरूद्धाद्यथोदितम्।
मैत्र्यादिभावसंयुक्तं तद्धर्म इति कीर्त्यते ।।

महान ज्ञानयोगी आचार्यदेव श्री हरिभद्रसूरीश्वरजी 'धर्म' का स्वरूप समझा रहे हैं। मैत्री, करुणा, प्रमोद और माध्यस्थ्य-भावों से निर्मल, विशुद्ध और पवित्र चित्त ही धर्म है! ऐसा ही धर्म जीवात्मा को दुर्गति में गिरने से बचा सकता है। 'धर्म' शब्द का व्युत्पत्ति-अर्थ यही है : 'दुर्गतौ प्रपतत् प्राणिनं धारयति-इति धर्मः। दुर्गति में गिरते हुए जीवों को पकड़कर रखे उसका नाम धर्म। जीवों को दुर्गति में गिरने से बचाये वह है धर्म।

चित्तशुद्धि के बिना नहीं चलेगा :

मनुष्य का चित्त जीवद्वेष और जड़राग से भरा हो और वह बाह्य धर्मक्रियाएँ करता हो, क्या उसकी सद्गति हो सकती है? दुर्गति-पतन से वह बच सकता

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

है? सुना है ऐसा कोई उदाहरण? मात्र बाह्य धर्मानुष्ठान के सहारे, रागी-द्वेषी मनुष्य ने सद्‌गति पा ली हो, मोक्ष पा लिया हो, ऐसा कोई दृष्टांत मैंने तो नहीं पढ़ा शास्त्रों में! सुना भी नहीं! हाँ, शास्त्रों में ऐसा पढ़ा है कि अशुद्ध-मलिन चित्त से की हुई धर्माराधना भी संसार में डुबो देती है! जिस चित्त में जीवों के प्रति मैत्री, करुणा, प्रमोद और माध्यस्थ्य-भाव नहीं होते हैं, जड़ पदार्थों के प्रति विरक्त भाव नहीं होता है वैसा चित्त संसार में परिभ्रमण ही करवाता है। उसकी बाह्य धर्मक्रियाएँ उसको दुःखों से बचा नहीं सकती हैं।

दूसरों के दोष मत देखो :

ध्यान रखना, यह बात आपके स्वयं के आत्मनिरीक्षण-हेतु कह रहा हूँ। इस दृष्टि से दूसरों को नापने का काम नहीं करना। 'फलाँ भाई या फलाँ बहन धर्मक्रियाएँ तो बहुत करते हैं, परन्तु कितना क्रोध करते हैं? कितने दयाहीन हैं? कितनी ईर्ष्या करते हैं... उनकी धर्मक्रियाएँ किस काम की?' यदि इस प्रकार दुनिया में देखने जाओगे तो आपको सभी लोगों में कम या ज्यादा मात्रा में रागद्वेष दिखाई देंगे ही। क्योंकि संसार में कोई वीतराग नहीं है! द्वेषरहित नहीं है! तो फिर किसी में भी 'धर्म' आपको दिखाई नहीं देगा...! कर्मपरवश जीवों में दोष तो अनन्त होते हैं, प्रकट गुण थोड़े ही होते हैं। वास्तव में देखा जाय तो गुण देखने का विषय ही नहीं है! बाह्य क्रियाओं के आधार पर गुणों का अनुमान गलत भी सिद्ध हो सकता है। मनुष्य की आदत है बाह्य-क्रियाकलापों को देखना और गुण-दोष की कल्पना करना। दूसरों के आंतरिक गुण-दोषों का अनुमान करना छोड़ो। स्वयं का आत्मनिरीक्षण करो। 'दूसरे जीवों का अहित करने का विचार तो नहीं आता है न? दूसरों के दुःख दूर करने की भावना पैदा होती है या नहीं? दूसरे जीवों के गुण देखकर या सुनकर ईर्ष्या तो नहीं होती है न? पापी जीवों के प्रति द्वेष-तिरस्कार तो नहीं होता है न? पूछो, अपनी अन्तरात्मा से पूछो।

संसार के प्रत्येक जीवात्मा को मित्र मान लिया, मित्र के प्रति स्नेह जाग्रत हो गया, फिर यदि मित्र दुःख में आ जाए तो उसका दुःख दूर करने की भावना पैदा होगी ही। 'परदुःखविनाशिनी करुणा' करुणा दूसरों के दुःख मिटाने की प्रेरणा देती ही है। मित्र का दुःख कैसे देखा जाय? मित्र दुःख में हो और अपने चैन से रहें, ऐसा हो सकता है क्या?

आत्मा की तीन विशेषताएँ :

आत्मा की क्रमिक विकासयात्रा में जब आत्मा काल की अपेक्षा से चरम-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अंतिम 'पुद्गल परावर्त' में आती है यानी 'अब वह निश्चित-निर्धारित काल-समय में मोक्ष पाएगी,' ऐसा केवलज्ञानी की दृष्टि में निश्चित होता है तब उस जीवात्मा में तीन विशेषताएँ प्रकट होती हैं :

१. दुःखी जीवों के प्रति अत्यंत दया।

२. गुणवान पुरुषों के प्रति अद्वेष, और

३. सर्वत्र औचित्य-उचित प्रवृत्ति का पालन।

मामूली करुणा : असीम करुणा :

देखिए, यहाँ सर्व प्रथम बात कौन-सी बताई? दया बताई न? दया कहो, करुणा कहो, एक ही बात है। मामूली दया नहीं, अत्यंत दया होती है उस जीवात्मा में।

मामूली करुणा और अत्यंत करुणा का भेद समझ लो। दुःखी जीव को देखकर हृदय में विचार आए कि 'बेचारा दुःखी है, कुछ दूँ, भूखा है... चवन्नी दे दूँ, खा लेगा कुछ...।' यह हुई मामूली करुणा! क्योंकि आपके पास उसको भरपेट खिलाने के लिए पैसे होते हुए भी आपने चवन्नी देकर ही सन्तोष कर लिया! अत्यंत करुणा क्या करवाती है, जानते हो? उसको पेट भर के खिलाएगी। चाहे एक रूपया लगे या दस रूपये लगें। करुणा के चार प्रकार 'षोड़शक' ग्रन्थ में आचार्यदेव ने बताए हैं :

१. मोहयुक्त करुणा

२. असुख करुणा

३. संवेग करुणा

४. अन्यहित करुणा

इन चारों प्रकार की करुणा को समझ लो। करुणा का इतना तलस्पर्शी विवेचन दूसरे ग्रन्थों में नहीं मिलता है। हरिभद्रसूरिजी ने मनोवैज्ञानिक ढंग से 'षोड़शक' में बहुत ही अच्छा विवेचन किया है।

१. मोहयुक्त करुणा :

मोह का अर्थ है अज्ञानता। अज्ञानमूलक करुणा होती है! जैसे एक माँ है, उसका लड़का बीमार पड़ा, वैद्य-डॉक्टर ने कहा है : 'इस बच्चे को मिठाई मत खिलाना, तला हुआ कोई पदार्थ मत खिलाना।' घर में मिठाई बनी है, लड़का मिठाई माँगता है। माँ को लड़के के प्रति बहुत प्रेम है, प्रेम के बहाव

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

में वह लड़के को मिठाई खिला देती है! इसको अज्ञानमूलक, मोहजन्य करुणा कहते हैं। माता को ज्ञान नहीं कि 'मिठाई खाने से लड़के का बुखार बढ़ जाएगा, बीमारी बढ़ जाएगी।' स्वास्थ्यविषयक अज्ञानता के कारण वह खिला देती है मिठाई! है यह करुणा, पर मोहजन्य! लड़का मिठाई के लिए रोता है, माँ के हृदय में दया आ जाती है! दया से खिला देती है मिठाई!

२. असुखकरुणा :

असुख यानी दुःख। जिसके पास सुख के साधन नहीं हैं, रहने को घर नहीं है, पहनने को वस्त्र नहीं है, खाने को अन्न नहीं है... ऐसे मनुष्यों को मकान, वस्त्र, भोजन आदि देना, करुणा का दूसरा प्रकार है। वैसे ही कोई बीमार है, उसको दवाई देना, सेवा करना, किसी को संकट में सहायता करना, उपद्रव से मुक्त करना... वगैरह करुणा के दूसरे प्रकार में समाविष्ट होता है।

३. संवेगकरुणा :

संवेग का अर्थ होता है मोक्ष की अभिलाषा। जिस पुरुष में ऐसी मोक्षाभिलाषा पैदा हुई हो, वह यह चाहता है कि 'मैं अकेला ही मोक्ष में जाऊँ इससे क्या, सब जीव मोक्ष पाएँ... परम सुख, परमानन्द, परम शान्ति प्राप्त करें तो बहुत अच्छा!' ऐसे महानुभावों में, संसार के भौतिक सुखों से समृद्ध जीवों के प्रति भी करुणा होती है : 'ये बेचारे संसार के सुखों में लीन हो जायेंगे, राग-रंग और भोगविलास में डूब जायेंगे तो इनकी दुर्गति हो जाएगी, भविष्य में दुःखी-दुःखी हो जायेंगे। मैं उनको इन क्षणिक सुखों के त्यागी बना दूँ अथवा मैं चाहता हूँ कि वे इन सुखों के त्यागी बनें!'

४. अन्यहितकरुणा :

इस करुणा का क्षेत्र विशाल है। सर्व जीवों के प्रति हितकामना! सर्व जीवों के प्रति अनुकंपा... अनुग्रहशीलता। प्रीतिजन्य, स्नेहजन्य कोई संबंध के कारण करुणा नहीं अपितु सर्व जीवों के प्रति सहज, स्वाभाविक करुणा।

मोहजन्य करुणा का मैंने आपको उदाहरण एक ही दिया है, ऐसे अनेक उदाहरण हैं इसके। यह करुणा उपादेय नहीं है। ऐसी करुणा से दूसरे जीवों का हित नहीं होता है, अहित होता है। दूसरे जीव सुखी नहीं बनते, दुःखी बनते हैं। इसलिए करुणा ज्ञानजन्या होनी चाहिए। 'अपने उपाय से सामनेवाला जीव सुखी बनेगा या दुःखी,' इसका ज्ञान होना चाहिए अपने को। दुःख दूर

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

करने के उपायों का सही ज्ञान होना चाहिए। यदि ऐसा ज्ञान नहीं हो तो 'इसका दूःख दूर हो जाए,' इतनी सद्भावना ही रखनी चाहिए, उपचार नहीं करना चाहिए।

करुणा में अन्य के दुःख का विचार :

दुःखी जीवों के प्रति हृदय में अत्यंत करुणा होनी चाहिए। जिस मनुष्य में ऐसी करुणा होती है वह अपने सुख-दुःख का विचार नहीं करता है। अपना सुख देकर भी वह दूसरे का दुःख दूर करने का प्रयत्न करेगा। ऐसा करके वह प्रसन्न होगा! अपना सुख चला गया... ऐसा अफसोस नहीं करेगा।

निरालाजी की निराली बात :

हिन्दी भाषा के शीर्षस्थ कवि निरालाजी के जीवन की एक सही घटना मैंने पढ़ी। निरालाजी की करुणाभावना से मैं बड़ा प्रभावित हुआ। सर्दी के दिन थे, निरालाजी सर्दी में ठिठुर रहे थे। हिन्दी भाषा की प्रसिद्ध कवयित्री महादेवी वर्मा ने निरालाजी को ठिठुरते हुए देखा। उनका हृदय भर आया। शीघ्र ही निरालाजी के लिए एक ऊनी कोट सिलवा दिया और निरालाजी को दे दिया। कोट देते समय बड़े प्रेम से महादेवीजी ने निरालाजी से कहा : 'यह कोट आपका नहीं है, मेरा है!

आपके लिए मैंने सिलवाया है। इसलिए मेरी अनुमति के बिना इसका दूसरा उपयोग मत करना!'

कुछ ही दिनों बाद निरालाजी महादेवी से दूर-दूर रहने लगे। परन्तु महादेवी ने उनको पकड़ ही लिया! निरालाजी के शरीर पर वह कोट नहीं था, महादेवी ने पूछा : 'वह कोट कहाँ है! आज क्यों नहीं पहना है?' निरालाजी समझ गये! उन्होंने सही बात बता दी : 'थोड़े दिन पहले रास्ते पर एक नंगे भिखारी को देखा, बेचारा सर्दी में ऐसा ठिठुर रहा था कि सारा शरीर सिकोड़ कर एक तरफ सोया था। मुझे लगा कि मुझसे भी कोट की ज्यादा जरूरत इसको है... मैंने कोट उतारकर उसको ओढ़ा दिया!' महादेवीजी की आँखों में हर्ष के आँसू आ गए। अपने सुख का विचार करुणावंत पुरुष को आता हीं नही, वे हमेशा दूसरों के लिए सोचते हैं।

महाकवि माघ की घटना :

ऐसी ही घटना है संस्कृत भाषा के मूर्धन्य कवि माघ के जीवन की। भीतर

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

से समृद्ध और बाहर से निर्धन... माघकवि आशावादी थे। वे कभी राजाओं की खुशामद करना पसन्द नहीं करते। इसलिए वे कभी राजसभा में नहीं जाते थे। दरिद्रता ने महाकवि की कड़ी परीक्षा शुरू की थी। पत्नी भी दरिद्रता से उद्विग्न थी। उसने आग्रह कर एक दिन महाकवि को राजसभा में भेजा। राजा ने कवीश्वर का स्वागत किया, राजा तो बहुत प्रसन्न हुआ माघकवि को अपनी राजसभा में आए देखकर। महाकवि की काव्य-प्रतिभा से प्रसन्न होकर राजा ने महाकवि को हाथी, घोड़े, सोना मुहरें, अलंकार, धान्य वगैरह... बहुत दिया। महाकवि यह सब लेकर राजसभा में से निकले तब राजमार्ग के दोनों ओर भिक्षुक खड़े रह गए थे। सब याचना कर रहे थे : 'भिक्षां देहि! भिक्षां देहि!' दीन-दुःखी, दरिद्र लोगों को देखकर महाकवि का हृदय द्रवित हो गया। अपने पास जो था, देना शुरू कर दिया। किसी को हाथी दिया, किसी को घोड़ा! किसी को अलंकार तो किसी को सोनामुहरें... देते ही चले... जब वे अपने घर पहुँचे तब उनके पास सिवाय दाल-चावल, कुछ भी नहीं बचा था! बाहर से खाली हो गए थे परन्तु भीतर से भर गए थे! आन्तरिक आनन्द की सीमा नहीं थी! मुख पर अपूर्व प्रसन्नता छायी थी... आँखों में से करुणा बरस रही थी।

पत्नी भी कितनी महान् ?

घर के द्वार पर उनकी धर्मपत्नी महाकवि का इन्तजार करती खड़ी थी। उसकी कल्पना थी कि महाकवि काफी धन-दौलत लेकर पधारेंगे! महाकवि ने पत्नी के हाथों में दाल-चावल की दो पोटली थमा दी और प्रसन्नवदन से उसके सामने देखते रहे! बोले : 'देवी! आज तो दीन-दुःखी को देने में इतना आनन्द आया... क्या वर्णन करूँ? राजा ने बहुत दिया, मैंने सारा का सारा माल गरीबों को, अनाथों को दे दिया। मुझे लगा कि मुझे से भी ज्यादा जरूरत उनको थी...।' पत्नी तो सुनती ही रही! वह अपने पति को अच्छी तरह समझती थी... पति के करुणासभर हृदय को उसने कभी निर्दयता से तोड़ा नहीं था। अपनी दरिद्रता से उद्विग्न होने पर भी उसने अपने आप पर संयम किया था। हालाँकि घर में खाने को कुछ भी नहीं बचा था। महाकवि जो दाल-चावल लाये हैं, उससे ही खिचड़ी पकाकर खाने की थी। फिर भी उसने महाकवि को प्रसन्न मुद्रा में कहा : 'नाथ, बहुत अच्छा किया आपने! आपका हृदय ही निराला है... करुणा का सरोवर है! आप दुःखी के दुःख नहीं देख सकते। खैर, अब आप विश्राम करें, मैं भोजन तैयार करती हूँ।'

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जब भोजन तैयार हो गया, महाकवि भोजन करने बैठे, इतने में द्वार पर भिक्षुक ने दस्तक लगाई : 'भिक्षां देहि' की आवाज आई। महाकवि तुरंत बोले : 'देवी, जाओ, द्वार पर भिक्षुक खड़ा है, यह मेरी थाली का भोजन उसको दे दो।' कवि-पत्नी कुछ भी बोले बिना खड़ी हुई और जाकर याचक को खिचड़ी दे आई। याचक आशीर्वाद देता हुआ चला गया। कवि-पत्नी ने आकर, अपनी थाली कवि के सामने रख दी और कहा : 'नाथ! आज मुझे इतना हर्ष है कि मेरी तो क्षुधा ही शान्त हो गई है! इसलिए आप भोजन करलो, मैं आपके पास बैठी हूँ। कोई अरुचि नहीं, कोई गुस्सा नहीं कोई कलह नहीं, कोई झुंझलाहट नहीं! कवि-पत्नी ने अपना स्वभाव कैसा बना दिया होगा? कैसी उच्च विचारधारा वाली होगी वह सन्नारी! ऐसी सहधर्मिणी तभी मिलती है जब महान् पुण्य का उदय हो।

महाकवि ज्यों भोजन का प्रारंभ करने जा रहे हैं, द्वार पर आवाज आई : 'भिक्षां देहि!' महाकवि खड़े हो गए।... स्वयं जाकर याचक को थाली की थाली प्रेम से दे दी! याचक आशीर्वाद देता हुआ चला गया। महाकवि आकर पत्नी के पास बैठ गए। अब भोजन समाप्त हो गया था, कुछ भी बचा नहीं था। फिर भी दोनों प्रसन्न थे! करुणा में से आन्तरिक प्रसन्नता का जन्म होता ही है।

कभी करुणा बड़ी परीक्षा लेती है :

परन्तु करुणा कभी मनुष्य को घोर वेदना में भी पटक देती है! ऐसा ही हुआ। द्वार पर तीसरा याचक आया, 'भिक्षां देहि!' अब महाकवि का मुख म्लान हो गया। 'मेरे पास याचक को देने के लिए कुछ भी नहीं है, मेरे द्वार से याचक खाली हाथ वापस लौटेगा?' महाकवि खड़े हुए, द्वार पर गए। महाकवि की आँखें गीली-गीली हो गई थीं। वे बोले : 'भाई, अब देने को कुछ नहीं बचा है' बेचारा याचक... महाकवि की आँखों में आँसू देखकर तुरंत ही चला गया। परन्तु महाकवि की मनोवेदना का पार नहीं रहा। 'मैं भूखे को कुछ नहीं दे सका...।' इतना गहरा सदमा पहुँचा कि महाकवि का प्राणपखेरू तत्काल उड़ गया। निश्चेतन देह पड़ा रहा। करुणा की पराकाष्ठा है यह। अत्यन्त दया इसको कहते हैं।

आपकी क्या हालत है ?

धर्म का प्रारंभ दया और करुणा से होता है। आप लोग तो धर्मात्मा हो न? एक दिन में तीन-चार भिखारी आ जायँ, तो क्या होता है?

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सभा में से : भिखारी तो क्या, साधुमहाराज भी अगर तीन-चार बार भिक्षा लेने आ जाए तो भी मन में गड़बड़ हो जाती है।

महाराजश्री : क्या बात करते हो? साधुपुरुष तो सुपात्र हैं, उनके प्रति तो भक्तिभाव और पूज्यभाव है, करुणा नहीं। जहाँ पूज्यभाव और भक्तिभाव होता है, वहाँ तो सर्वस्व समर्पण करने की भावना उल्लसित होती है। आप कहते हो कि दिन में तीन-चार बार साधु गोचरी लेने आ जाते हैं तो भी पसन्द नहीं आता है! तो फिर पूज्यभाव कहाँ रहा? भक्तिभाव कहाँ रहा? हाँ, भिक्षा देने की क्षमता न हो, घर में इतनी गरीबी हो, निर्धनता हो और दे न सको, दूसरी बात है। वहाँ तो अपनी असमर्थता का दुःख होता है, साधुपुरुषों के प्रति अप्रीति या अभाव तो होगा ही नहीं। परन्तु जहाँ जिस हृदय में करुणा नहीं हो, उस हृदय में प्रमोद-भक्तिभाव-पूज्यभाव हो ही कैसे? भिखारी के प्रति अनुकंपा नहीं है, दीन-दुःखी के प्रति करुणा नहीं है, तो उच्च कोटि के साधन-गुणवान पुरुषों के प्रति प्रमोदभाव हो ही नहीं सकता।

सभा में से : ऐसा देखते हैं कि गरीबों के प्रति द्वेष-तिरस्कार और नफरत करनेवाले भी कुछ लोग साधुपुरुषों की सेवाभक्ति बहुत करते हैं।

महाराजश्री : अच्छी बात कह दी आपने! ऐसे निर्दय और करुणाहीन पुरुष तब तक हम लोगों की सेवाभक्ति करते हैं, जब तक उनका हम लोगों से कोई स्वार्थ होता है! अथवा सामाजिक प्रतिष्ठा मिलती है। अथवा घर में से किसी का दबाव होता है! हाँ, हम साधु हैं, त्यागी हैं, मोक्षमार्ग की आराधना करते हैं... इस दृष्टि से लोग हमारी सेवाभक्ति नहीं करते। उनके हृदय में साधुता का अनुराग नहीं होता है, ऐसे लोगों से बहुत सावधान रहना पड़ता है। दिखावा होता है भक्त का, हृदय होता है शैतान का! ऐसे लोग कभी न कभी धोखा देते ही हैं।

धार्मिकता : दया-करुणा के बिना क्या काम की? :

इसमें भी जो लोग 'परमात्मभक्त' अथवा 'गुरुभक्त' के रूप में प्रसिद्ध होते हैं, वे लोग यदि दयाहीन-करुणाहीन होते हैं, तो वे लोग दुनिया में परमात्मा को और गुरुजनों को बदनाम करते हैं। दुनिया तो परमात्मभक्तों से, गुरुभक्तों से दया और करुणा की ही अपेक्षा रखती है। यदि यह अपेक्षा पूर्ण नहीं होती है, तो दुनिया उन लोगों की तो निन्दा करती ही है, देव-गुरु की भी निन्दा करती है। दुनिया की दृष्टि में गुरुतत्त्व और परमात्मतत्त्व की प्रतिष्ठा बनाए रखने की जिम्मेदारी भक्त लोगों की बन जाती है। यदि भक्तलोग दया-करुणा

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

से भरे पूरे हों तो दुनिया परमात्मा से प्यार करेगी, गुरुजनों का गौरव करेगी।

मदनरेखा वास्तव में परमात्मभक्त थी। वास्तव में गुरुभक्त थी। कितनी करुणा थी उस महासती में! मनःपर्यवज्ञानी ऐसे गुरुदेव ने उसकी प्रशंसा की। कामी-विकारी बना हुआ मणिप्रभ भी शान्त-प्रशान्त बन गया। महासतीने मणिप्रभ का कोई तिरस्कार नहीं किया, उसके विरुद्ध युगबाहुदेव को शिकायत भी नहीं कि : 'यह राजा मेरा शीलभंग करना चाहता था, दुष्ट है, अच्छा हुआ कि ये गुरुदेव मिल गए, अन्यथा क्या होता?

मदनरेखा की भाव करुणा :

पापी व्यक्ति भी जब पापत्याग कर देता है तब उसके प्रति कोई गुस्सा नहीं, कोई वैरभावना नहीं। 'बेचारा कर्मवश जीव है, पापकर्म के उदय में जीव होश गँवा देता है, गलती कर बैठता है...।' ऐसा करुणापूर्ण विचार आता है। मणिरथ और मणिप्रभ-दोनों की तरफ मदनरेखा ने करुणापूर्ण विचार ही किये। हालाँकि मणिरथ तो उसी रात्रि में सर्पदंश से मर कर नरक में चला गया था। जब युगबाहुदेव ने मणिरथ की मृत्यु के समाचार मदनरेखा को दिए... मदनरेखा के मन में उसके प्रति भावदया जाग्रत हुई... 'मेरे निमित्त बेचारा पाप बाँधकर दुर्गति में चला गया, कितना दुःखी होगा, कितने घोर दुःख उसको सहने पड़ेंगे!'

मिथिला में मदनरेखा युगबाहुदेव के साथ गई, वहाँ परमात्मा के मंदिर में जाकर मल्लिनाथ भगवंत की स्तवना की, जब दोनों मंदिर से बाहर निकले, पास में ही उपाश्रय था, उपाश्रय में साध्वीजी को देखा। मदनरेखा ने देव को कहा : 'अपन साध्वीजी के दर्शन कर लें।' दोनों साध्वीजी के पास गए, विनयसहित वंदना कर, साध्वीजी के पास बैठे। साध्वीजी ने 'धर्मलाभ' का आशीर्वचन सुनाया और सुपात्र जीव समझकर उपदेश दिया। संसार की भीषणता, भौतिक सुखों की विनश्वरता... धर्म की उपादेयता, कर्मबंध और कर्मक्षय का तत्त्वज्ञान... मोक्ष का स्वरूप... वगैरह बातें बड़े वात्सल्य से मधुर वाणी में सुनाई। जब उपदेश पूरा हुआ, युगबाहु देव ने मदनरेखा को कहा : 'देवी, चलो राजमहल में, पुत्रदर्शन करा दूँ।'

मदनरेखा ने साध्वी-जीवन स्वीकार किया :

मदनरेखा ने देव के सामने देखा। मदनरेखा गंभीर चिंतन में डूब गई थी। उसने कहा :

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

'पुत्रदर्शन की अब कोई आकांक्षा नहीं रही है। आपके कहे अनुसार वह कुशल है, बस, अब मेरे हृदय में कोई भी सांसारिक सुख की चाह नहीं है, मैं इस साध्वीजी की शरण लेना चाहती हूँ। संयम स्वीकार करके आत्मकल्याण करना चाहती हूँ।'

देव ने मदनरेखा को प्रणाम किया और अपने स्थान चला गया। इधर मदनरेखा ने चारित्र्यधर्म अंगीकार कर लिया, उनका नाम रखा गया 'सुव्रता'। सुव्रता साध्वी ने दुष्कर तपश्चर्या शुरू कर दी। आत्मसाधना में लीन हो गई। सर्व जीवों के प्रति अनुग्रहसभर बन गई। साध्वी-जीवन यानी सभी जीवों को अभयदान देने का जीवन। सबसे मैत्रीभाव का जीवन!

मदनरेखा का पुत्र मिथिलापति बनता है :

उधर मिथिलापति पद्मरथ राजा ने मदनरेखा के पुत्र का नाम 'नमि' रखा था, क्योंकि जब से वह पुत्र राजमहल में आया था, तब से राजा पद्मरथ के चरणों में अनेक राजाओं ने अपने मस्तक नमाये थे-झुकाये थे! समर्पण किया था। राजा ने नमिकुमार को शस्त्रकला और शास्त्रकला में पारंगत बनाया। जब कुमार यौवन में आया, पद्मरथ ने एक हजार आठ राजकन्याओं के साथ नमिकुमार की शादी कर दी। अनेक सुखभोगों के बीच राजकुमार का जीवन व्यतीत होता है। राजा पद्मरथ ने अपनी उत्तरावस्था आत्मकल्याण की साधना में व्यतीत करने का निर्णय किया। नमिकुमार का राज्याभिषेक कर दिया और स्वयं चारित्र्यधर्म स्वीकार कर के घोर तपश्चर्या करने लगे। सभी कर्मों का क्षय कर, उन्होंने परम पद पा लिया!

मिथिलापति के हाथी को राजा चन्द्रयश पकड़ता है :

इधर सुदर्शनपुर में, मणिरथ की सर्पदंश से मृत्यु होने के पश्चात् मंत्रीवर्ग ने युगबाहु के पुत्र चन्द्रयश का राज्याभिषेक कर दिया था। चन्द्रयश अपने मंत्रीमंडल की सहायता से अच्छा राज्य चलाता है।

एक दिन मिथिलापति नमिराजा का पट्टहस्ती आलान-स्तम्भ उखाड़कर भागा... विन्ध्यावटी की तरफ दौड़ने लगा। जब वह श्वेत हाथी सुदर्शनपुर के प्रदेश में से गुजरता था, सुदर्शनपुर के लोगों ने देखा, चार दंतशूलवाला सुन्दर हस्तिरत्न देख कर, लोगों ने जाकर राजा चन्द्रयश को निवेदन किया। चन्द्रयश ने जाकर हाथी को वश कर लिया और पकड़कर अपने नगर में ले आया। अपनी हस्तिशाला में बांध दिया।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

नमिराजा को समाचार मिल गए कि 'हाथी सुदर्शनपुर में राजा चन्द्रयश के पास है।' उसने अपने दूत को चन्द्रयश के पास भेजा। दूत ने आकर निवेदन किया कि 'आप जिस श्वेत हस्ति को पकड़कर लाए हो, वह हाथी मिथिलापति का है, आप हाथी हमें वापस सौंप दें।' चन्द्रयश ने कहा : 'वीरभोग्या वसुन्धरा! ऐसे हाथी नहीं मिलेगा। मैं जंगल में से पकड़कर लाया हूँ, ऐसे दे देने के लिए नहीं लाया हूँ उसे!'

भाई-भाई युद्ध में आमने-सामने :

दूत ने मिथिला जाकर नमिराजा को निवेदन किया। नमि बौखला उठा। उसने तुरंत ही युद्ध की भेरी बजवाई। पूरी सेना के साथ उसने सुदर्शनपुर की तरफ प्रयाण कर दिया। चन्द्रयश ने भी पूरी तैयारी कर ली थी युद्ध की। उसने नगर के द्वार बंध करवा दिए और किले के ऊपर शस्त्रसज्ज सैनिक जमा दिए। स्वयं शस्त्रसज्ज बन कर युद्ध के लिए तैयार हो गया।

दोनों सहोदर हैं! परन्तु नमिराजा चन्द्रयश को नहीं जानता है! चन्द्रयश नमिराजा को नहीं जानता है कि 'यह मेरा लघुबंधु है!' दोनों भाई एक हाथी के निमित्त युद्ध करने तत्पर हो गए हैं!

साध्वी के दिल में भाव करुणा :

मिथिला में युद्ध के समाचार घर-घर फैल गये थे। साध्वीजी सुव्रता को भी समाचार मिले। 'ओह, यह क्या हो गया? दोनों भाई आपस में लड़ेंगे? उनको मालूम ही नहीं है कि वे दोनों सहोदर हैं। युद्ध कितना खराब है। जीवों की घोर हिंसा होगी। भाई-भाई के बीच वैर बढ़ेगा।' साध्वी का हृदय करुणा से द्रवित हो गया। 'नहीं नहीं, मैं युद्ध नहीं होने दूँगी। मैं जाऊँगी युद्धमैदान पर और समझाऊँगी दोनों पुत्रों को! मेरी बात वे नहीं टालेंगे। मैं अपना परिचय दूँगी। साध्वीजी तैयार हो गईं युद्धमैदान पर जाने के लिए। उसने सुदर्शनपुर का रास्ता लिया। उस तपस्विनी साध्वी के मन में अनेक प्रकार के विचार उमड़ते हैं।

'एक हाथी के लिए ये युद्ध करेंगे? हाथी तो निमित्त बन गया। युद्ध है 'अहं' और 'मम' का। मोह राजा का यह प्रभावशाली मंत्र है! इस मंत्र के प्रभाव से जीव मोहमूढ़ बन जाता है। कर्तव्य-अकर्तव्य का भेद भूल जाता है। चन्द्रयश ने हाथी नहीं दिया तो नमि को क्या हाथियों की कमी थी? परन्तु 'मेरा हाथी वह क्यों नहीं देता है?' क्या हाथी उसके साथ परलोक में जाएगा? क्या वह हाथी कभी नहीं मरेगा? परन्तु यह विचार उन लड़कों को

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आये भी कैसे? उनको ऐसा ज्ञान मिला ही नहीं है। परन्तु मेरी सन्तान है न। मैं समझाऊँगी तो वे मान जायेंगे। विनयी हैं, सुशील हैं। हाँ, नमि का कुछ नहीं कह सकती, क्योंकि उसने मेरा दूध कहाँ पिया है? चन्द्रयश ने तो मेरा दूध पिया है, बाल्यावस्था में मेरी शिक्षा भी पाई है। चन्द्रयश मातृभक्त भी है। जब मैं उस रात्रि में सुदर्शनपुर से निकल पड़ी थी, उस समय वह कितना रोया था? पिता की हत्या हो गई थी और मैं उसको छोड़कर निकल गई थी। वह कितना दुःखी हो गया होगा उस समय?' साध्वी सुव्रता के कदम तेज चलते हैं। मन में विचार भी तेज चलते हैं। हृदय में करुणा है, अपने पुत्रों को हिंसा के पाप से बचाने की तमन्ना है। 'इनका परलोक न बिगड़ जाए।' यह भाव करुणा है। उनके हृदय में यह भी है कि 'मेरे पुत्र भी राज्य का त्याग कर, चारित्र्यधर्म स्वीकार कर, कर्मक्षय कर के परमपद को प्राप्त करें!' संवेग करुणा है यह।

साध्वी की प्रेमभरी वाणी :

नमिराजा ने सुदर्शनपुर को घेर लिया था। सुदर्शनपुर के द्वार बंध थे। युद्ध शुरू नहीं हुआ था। साध्वीजी सुव्रता वहाँ पहुँच गईं। सैनिकों ने साध्वीजी को युद्धमैदान पर देखकर आश्चर्य व्यक्त किया। साध्वीजी ने पूछा : 'भाई, आपका राजा नमि कहाँ है? मुझे उनसे मिलना है।' सैनिकों ने नमिराजा का निवास बताया। साध्वीजी उधर पहुँच गईं। राजा साध्वीजी को देखकर खड़ा हुआ, प्रणाम किया और वह साध्वीजी के सामने जमीन पर बैठ गया।

मदनरेखा ने आज ही अपने इस बेटे को देखा! देखने चली थी राजमहल में! देखती है आज युद्ध के मैदान पर! बाल्यावस्था नहीं देख पाई थी। आज युवावस्था में देख रही है। बिलकुल युगबाहु की ही मुखाकृति! नमि का विनय देखकर सुव्रता साध्वी प्रसन्न हुई। साध्वीजी ने कहा : 'हे राजन, किसलिए युद्ध करते हो? कितना भयंकर जीवसंहार होगा? कितने घोर पापकर्म बंधेंगे? राज्यसंपत्ति असार है, चंचल है, विनश्वर है। संसार के भोगसुख, सुख नहीं हैं, दुःख के ही कारण हैं। वैषयिक सुखों के विपाक कितने दारुण होते हैं?

'मैं कहती हूँ, तू युद्ध मत कर। युद्ध करने पर पछतावा होगा तुझे। क्योंकि तू अपने ही भाई के साथ युद्ध करने आया है!' नमिराजा यह बात सुनकर चौंका! आश्चर्य से पूछता है : 'कौन मेरा भाई?'

साध्वीजी ने कहा : 'चन्द्रयश तेरा भाई है!'

नमिराजा कुछ समझ नहीं पाता है, पूछता है : 'यह कैसे?'

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

साध्वीजी निराश हो जाती हैं :

साध्वीजी ने सारी बात बताई। नमि की अंगुली पर रही हुई मुद्रिका बताकर कहा : 'पढ़ ले इस मुद्रिका पर जो नाम है! तेरे पिता का नाम है। मैं तेरी माता हूँ।' साध्वी ने नमि को सारी बात कह सुनाई। युद्ध नहीं करने को बहुत बहुत समझाया, परन्तु नमिराजा नहीं माना। 'भले वह मेरा भाई हो, मुझे मेरा हाथी चाहिए। यदि वह हाथी दे देता है सामने आकर, तो मुझे युद्ध नहीं करना है। अन्यथा युद्ध तो करूँगा ही।'

साध्वीजी को निराशा हुई। तुरंत उसको याद आया : 'इसने मेरा दूध नहीं पिया है न! दूसरी बात, कषाय प्रबल होते हैं, सही बात समझने नहीं देते हैं।'

साध्वीजी को किसी भी प्रकार युद्ध नहीं होने देना था। उन्होंने सुदर्शनपुर में जाकर चन्द्रयश को समझाने का निर्णय किया। वे चली आई सुदर्शनपुर नगर में और सीधी पहुँची राजमहल के दरवाजे पर। सैनिकों ने साध्वीजी को देखकर दरवाजा खोल दिया। साध्वीजी सीधे राजमहल के भीतर पहुँच गईं, जहाँ चन्द्रयश रहता था।

चन्द्रयश ने साध्वी को देखते ही पहचान लिया! 'अरे, यह तो मेरी माता है! मेरी महासती माता है।' बड़े ही विनय से, आदर से, भक्ति से राजा ने नमस्कार किया, आसन प्रदान किया और सारे महल में समाचार भेज दिए। चन्द्रयश की रानियाँ भी वहाँ आ गई, रानियों ने भी भक्तिपूर्ण हृदय से वंदना की। मंत्रीमंडल भी वहाँ पहुँच गया। सबकी आँखें आँसू बरसा रही थीं। चन्द्रयश ने हाथ जोड़कर कहा : 'माता, ऐसा दुष्कर व्रत क्यों धारण कर लिया?' साध्वी ने मधुर वाणी में सारी बात कह सुनाई। युगबाहुदेव के मिलन की बात भी कह सुनाई। सबके मन प्रसन्नता से भर गए। चन्द्रयश ने पूछा : 'आर्ये, वह मेरा छोटा भाई अभी कहाँ है?' साध्वीजी ने कहा : 'अभी तो वह सुदर्शनपुर को घेर के खड़ा है!'

'क्या नमिराजा?'

'हाँ! आश्चर्य, आनन्द और उद्वेग के मिश्र भावों से चन्द्रयश भर गया। आगे की बात आगे!

आज, बस इतना ही।

❖ ❖ ❖

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

- ***जीवद्वेषी और गुणद्वेषी व्यक्ति औरों की प्रशंसा सुनकर नाराज होते हैं, इतना ही नहीं वे तो गुणीजन एवं पुण्यशाली व्यक्ति को भी बदनाम करने की कोशिश करते रहते हैं।***
- ***अच्छी बात सभी मान लें, यह संभव नहीं है। आदमी का दिल जब कठोर और निष्ठुर हो जाता है तब उसके दिल में सच्ची या अच्छी बात भी नहीं जंचती!***
- ***अपनी सच्ची और अच्छी बात भी न माने उसके प्रति न तो द्वेष करना है, न ही गुस्सा करना है...ऐसे लोग करुणा के पात्र हैं।***
- ***जो सुखी हैं...समृद्ध हैं, निरोगी हैं, फिर भी जिन्दगी का अधिकांश समय पापों में गुजारते हैं... वैसे जीवों के लिए भी करुणा ही रखना है हमें तो!***
- ***साधुता की भी पहली शर्त है करुणा, भावकरुणा! धर्मक्रियाएँ यदि भावनाओं से भरी-पूरी नहीं हैं तो वे जीवंत नहीं होंगी।***

प्रवचन : १७

परम करुणानिधान आचार्यदेव श्री हरिभद्रसूरीश्वरजी 'धर्म' का स्वरूप बताते हैं। सर्वज्ञभाषित अनुष्ठान का सौ-प्रतिशत फल पाने के लिए 'धर्म' का सर्वांगसंपूर्ण स्वरूप समझना अनिवार्य है। जैसे क्रियाशुद्धि आवश्यक है वैसे हृदयशुद्धि भी अनिवार्य है।

शुद्ध हृदय पुण्य से पुष्ट होता है। पुण्यानुबंधी पुण्यकर्म का बंध शुद्ध हृदय के बिना नहीं हो सकता है। 'पुण्यानुबंधी पुण्य' किसको कहते हैं, जानते हो? पुण्यकर्म के उदय से सुख के साधन मिलते हैं, विपुल भोगसामग्री मिलती है, यह तो जानते हो न! परन्तु उस सुखसामग्री का सदुपयोग करो तो नया पुण्यकर्म बंधता है और दुरूपयोग करो तो पापकर्म बंधता है। यदि आपका पुण्यकर्म पुण्यानुबंधी होगा तो आपको सदुपयोग करने का ही मन होगा, पापानुबंधी होगा तो दुरूपयोग करने का मन होगा।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पुण्यानुबंधी पुण्य कैसे बंधता है?

धर्मक्रिया शुद्ध हो परन्तु मन अशुद्ध होगा तो इससे जो पुण्यकर्म बंधेगा वह पापानुबंधी ही बंधेगा। धर्मक्रिया शुद्ध होगी और मन भी शुद्ध होगा तो जो पुण्यकर्म बंधेगा वह पुण्यानुबंधी ही बंधेगा। पुण्यानुबंधी पुण्य से मन पुष्ट बनता है और ऐसा पुष्ट मन ही महान धर्मपुरुषार्थ कर सकता है। इसलिए बार-बार कहता हूँ कि मन को शुद्ध करो, शुद्ध मन से धर्मानुष्ठान करते रहो। मन की अशुद्धि दूर करने का सतत पुरुषार्थ करते रहो।

निर्दय एवं निष्ठुर मत हो जाओ :

दुःखी जीवों के प्रति निर्दयता, कृपाहीनता, उपेक्षावृत्ति, मन की एक बहुत बड़ी अशुद्धि है, मलिनता है। 'वह दुःखी है तो मैं क्या करूँ? उसके ऐसे पापकर्म होंगे, भले होने दो दुःखी, मैं इसमें क्या करूँ?' यह भयंकर निर्दयता है। 'वह तो दुःखी होना ही चाहिए। उसने कइयों को दुःख दिए हैं। अब उसको मरने दो।' यह निष्ठुर हृदय का विचार है। 'मुझे उससे क्या लेना-देना है? वह सुखी हो तो भले, दुःखी हो तो भले।' यह उपेक्षावृत्ति है, मन की रोगी अवस्था है। ऐसा मन धर्मआराधना के लिए योग्य नहीं है। दुःखी जीवों के प्रति अत्यन्त दया-करुणा होना अनिवार्य माना गया है धर्मक्षेत्र में। दया और करुणा के बिना धर्मक्षेत्र में प्रवेश नहीं हो सकता है।

दूसरा मनुष्य भूखा मर रहा हो और आप मजे से मिठाई खा सकते हो? दूसरा मनुष्य नंगा फिर रहा हो और आप बढ़िया कपड़े पहनकर शृंगार सजा सकते हो? दूसरा व्यक्ति रास्ते पर-सड़क पर सो रहा हो और आप बंगले में 'डनलोप' की गद्दी पर सो सकते हो? दूसरा मनुष्य रोग और व्याधि में कराह रहा हो और आप आनन्द-प्रमोद कर सकते हो? यदि 'हाँ' तो आपका हृदय निर्दय है, करुणाहीन है, आप परमात्मा जिनेश्वरदेव का धर्म पाने के लिए योग्य नहीं हो। पात्रता-योग्यता के बिना धर्म पाया नहीं जा सकता। धर्म आत्मसात् नहीं बनता।

यदि आप दूसरे जीवों के दुःख से दुःखी होते हों, यदि आप दूसरों के दुःख दूर करने का प्रयत्न करते हों, अपना सुख देकर भी दूसरों को दुःखमुक्त करने का कार्य करते हों तो आप सुपात्र हैं, आपकी कोमल आत्मा में धर्मतत्त्व का प्रवेश होगा। मृदु जमीन में पानी उतर जाता है, पथरीली जमीन में पानी प्रवेश नहीं पाता है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दुःखी जीव दो प्रकार के :

संसार में दुःखी जीव दो प्रकार के होते हैं : एक द्रव्य से दुःखी, दूसरे भाव से दुःखी। जिनके पास खाने को नहीं है, पीने को नहीं है, पहनने को नहीं है, मकान नहीं है-ये लोग द्रव्य से दुःखी हैं। शरीर रोगी है, निर्धनता है, अनाथता है-यह सब द्रव्य दुःख हैं यानी बाह्य दुःख हैं। वैसे, जिनके जीवन में धर्म नहीं है, पाप हैं, वे भाव से दुःखी हैं। हिंसा करते हैं, चोरी करते हैं, दुराचारी हैं, परिग्रही हैं, क्रोध करते हैं, अभिमान करते हैं, मायाकपट करते हैं... ये सब आन्तर दुःखी हैं। पापाचरण करनेवाले आन्तर दुःखी हैं। पापकर्म के उदय से जो दुःखी हैं, वे बाह्य दुःखी हैं। जिनका पापकर्मों का उदय है और यहाँ भी पापाचरण करते हैं वे बाह्य और आन्तर दोनों दृष्टि से दुःखी हैं। ऐसे भी जीव संसार में बहुत हैं, जो यहाँ दुःखी हैं फिर भी पापाचरण नहीं छोड़ते। ऐसे जीव करुणापात्र हैं। ऐसे जीवों के प्रति भी द्वेष नहीं करना है। भावकरुणा के विषय में श्रमण भगवान महावीर स्वामी के जीवन की एक घटना बताता हूँ।

भगवान महावीर और संगमदेव :

श्रमण भगवान महावीर जब साधनाकाल में थे, गाँव-नगर और जंगलों में विचरते थे, अनेक उपसर्ग-परिसह धीर-वीर बनकर सहन करते थे, उस समय एक बार देवराज इन्द्र ने अपनी देवपर्षदा में श्रमण भगवान महावीर के गुणगान किये, जी भरकर प्रशंसा की 'महावीर प्रभु का मनोबल मेरुवत् निश्चल है, कोई देव-दानव भी उनकी समाधि को भंग नहीं कर सकता। धन्य है भगवान की धीरता और वीरता।' इन्द्रसभा में सभी देवों के हृदय में भगवान के प्रति श्रद्धा और सद्भाव बढ़ गया, परन्तु एक देव के मन में आया : 'इन्द्र महावीर का भक्त है, इसलिए महावीर की इतनी प्रशंसा करता है। महावीर आखिर है तो मनुष्य न! देव की शक्ति के आगे मनुष्य की शक्ति क्या महत्त्व रखती है? मनुष्य कितना भी दृढ़ हो, देव उसको हिला सकता है। मैं जाकर महावीर की समता-समाधि को हिला दूँ। उनके मनोबल को तोड़ दूँ!'

गुणद्वेषी जीवों के समक्ष किसी की भी प्रशंसा मत करो :

दूसरों की प्रशंसा सब लोग सुन नहीं सकते। गुणरागी मनुष्य ही दूसरों की प्रशंसा सुनकर राजी होता है। जीवद्वेषी, गुणद्वेषी मनुष्य तो दूसरों की प्रशंसा सुनकर नाराज होते हैं... इतना ही नहीं, उस गुणवान और पुण्यशाली मनुष्य को गिराने का प्रयत्न करते हैं। इसलिए प्रशंसा करते समय एक सावधानी

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

बरतनी चाहिए : जीवद्वेषी और गुणद्वेषी लोगों के सामने किसी की प्रशंसा नहीं करना! वे लोग तो परनिन्दा सुनकर ही राजी होते हैं।

हालांकि गुणानुरागी गुणप्रेमी मनुष्य के मुँह से प्रशंसा के शब्द निकल ही जाते हैं! भावोल्लास, भावातिरेक में यह खयाल ही नहीं रहता कि सामने कौन है? यूँ तो इन्द्र अपने अवधिज्ञान से देवों के मन के विचार भी जान सकता था, परन्तु उसने 'अवधिज्ञान' का उपयोग ही नहीं किया, कैसे करता उपयोग? उसके हृदय में भगवान महावीर के प्रति अपूर्व भक्तिराग उमड़ रहा था। वह अभागा देव जिसका नाम संगम था, उसके मनोभाव इन्द्र को ज्ञात नहीं हुए। संगमदेव ने महावीर के सत्त्व की कसौटी करने का निर्णय कर लिया।

संगम, भगवान महावीर को मात्र एक मनुष्य के रूप में देखता है। भगवान महावीर की देहाकृति को ही देखता है। 'मानवदेह में देव से भी ज्यादा बलवान आत्मा हो सकती है,' यह ज्ञान उसको नहीं है। हो भी कैसे? वह स्वयं देव है। और 'मनुष्य से देव ज्यादा बलवान होता है,' यह कल्पना उसके मन में दृढ़ हुई है। वह नहीं जानता था कि शारीरिक बल की अपेक्षा मनोबल ज्यादा महत्त्व रखता है। मनोबल की अपेक्षा आत्मबल काफी ज्यादा महत्त्व रखता है। संगम देव था, देव के पास मनुष्य से ज्यादा शारीरिक बल होता है, परन्तु मानसिक बल देव से ज्यादा मनुष्य में हो सकता है। उच्चतम मनोबलवाले मनुष्यों के चरणों में देव सेवक बनकर रहते हैं। मंत्रशक्ति से जिसका मनोबल उच्चकोटि का बनता है, देव भी उनको नमस्कार करते हैं! बड़े-बड़े मांत्रिक भी अनन्त आत्मशक्ति के मालिक तीर्थंकर परमात्मा के चरणों में नतमस्तक बनते हैं।

इंद्र शरमिन्दा हो गया न!

संगम भगवान महावीर की आत्मशक्ति से अपरिचित था। वह तो अपनी ही शक्ति के ऊपर मुस्तैद था। 'मैं जाकर अभी चन्द क्षणों में महावीर को विचलित कर देता हूँ।' उसने इन्द्रसभा में अपना निर्णय घोषित कर दिया। महावीर को ध्यानभ्रष्ट करने का अपना संकल्प जाहिर कर दिया। इन्द्र और पूरी देवसभा स्तब्ध रह गई। 'ऐसी प्रतिक्रिया आएगी,' यह कल्पना किसी को नहीं थी। संगम के अहंकारपूर्ण वचन सुनकर, भगवान महावीर के प्रति तिरस्कारपूर्ण वचन सुनकर इन्द्र काफी रोषायमान हुआ... परन्तु यदि वह संगम को रोकता है तो संगम उसका दूसरा गलत अर्थ करेगा : 'देखो अपने भगवान की शक्ति

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पर इन्द्र को विश्वास नहीं है इसलिए मुझे रोकता है।' अपना उल्लू सिद्ध करनेवाले मनुष्य हों या देव हों, दूसरों पर आरोप मढ़ने में तनिक भी हिचकिचाते नहीं हैं। इन्द्र के मन में अफसोस हुआ : 'मैंने तो प्रशंसा की और भगवान के लिए उपद्रव पैदा कर दिया।'

संगम के उपद्रव :

संगम चला आया है पृथ्वी पर। जहाँ भगवान महावीर विचरते थे उस प्रदेश में चला गया। भगवान पर विविध उपद्रव करने शरू कर दिये। भगवान को शुद्ध भिक्षा भी नहीं मिलने देता है। कई दिनों तक विविध उपसर्ग करने पर भी भगवान महावीर विचलित नहीं होते हैं, उनका मनोबल नहीं टूटता है तब संगम ज्यादा उग्र बनता है। उसका 'अहं' खंडित हुआ था न! उसने इस बात को अपनी 'प्रतिष्ठा' का प्रश्न बना दिया। छह-छह महीनों तक वह उपद्रव करता रहा। फिर भी भगवान महावीर मेरुवत् निश्चल रहे! अत्यन्त क्रुद्ध संगम ने भीषण 'कालचक्र' भगवान पर छोड़ा। कालचक्र का इतना तीव्र प्रहार भगवान पर हुआ कि भगवान घुटनों तक जमीन में धँस गये। देवलोक के देवेन्द्र और देवों के मन इस घटना से अत्यन्त दुःखी हो गए। संगम के प्रति सब देव तीव्र रोषयुक्त हो गए। 'ऐसे दुष्ट देव को अब देवलोक में रहने नहीं देना चाहिए' उसे निकाल देने का निर्णय कर लिया इन्द्र ने।

कालचक्र का दारुण आघात होने पर भी भगवान का धैर्य अखंड रहा! संगम चकित रह गया, निराश हो गया, घबरा भी उठा। अब उसको इन्द्र का भय लगा। उसका 'अहं' बरफ की तरह पानी-पानी हो गया। लम्बे निःश्वास के साथ जब वह देवलोक की तरफ चला, भगवान महावीर की आँखें करुणा के आँसुओं से भर आईं। महाकवि धनपाल ने इस प्रसंग का वर्णन 'तिलकमंजरी' के मंगलश्लोक में इतना हृदयस्पर्शी किया है कि पढ़ते-पढ़ते अपनी आँखें डबडबा जाएँ!

रक्षन्तु स्खलितोपसर्ग-गलित-प्रौढप्रतिज्ञाविद्यौ
याति स्वाश्रयमर्जितांहसि सूरे निःश्वस्य संचारिता
आजानुक्षितिमध्यमग्नवपुषः चक्राभिघातव्यथा-
मूर्छान्ते करुणाभराञ्चितपुटा वीरस्य वो दृष्टयः ।।

करुणा से पूजित महावीर की आँखें हमारी रक्षा करो! घोर पापकर्म

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

उपार्जन करके अपने आश्रय के प्रति चले जाते देव के प्रति भगवान महावीर की यह भावकरुणा थी।

सभा में से : ऐसी करुणा तो भगवान ही बरसा सकते हैं... हम लोग ऐसी करुणा लायें कहाँ से?

दिल में भावकरुणा पैदा करो :

महाराजश्री : ऐसी करुणा नहीं तो कैसी करुणा आप लोग पा सकते हैं? भले आप ऐसी करुणा आज नहीं बरसा सकते, परन्तु ऐसी चाहते तो हो? अपने पर घोर कष्ट बरसानेवालों के प्रति भी 'बेचारा, कषायपरवश कैसे चिकने पापकर्म बाँधता है! क्या होगा उसका?' ऐसी भाव-करुणा आज अपने पास नहीं है, परन्तु ऐसी करुणा आत्मा में पैदा हो जाय, यह पसन्द तो है न? अशक्य नहीं है, भावकरुणा अपनी आत्मा में प्रकट हो सकती है। तीव्र चाह होगी तो एक दिन ऐसी करुणा प्रकट होगी ही।

जिस प्रकार निर्धन, भूखे, प्यासे, नंगे, रोगी जीव करुणा के पात्र हैं, वैसे पापाचरण करनेवाले भी करुणा के पात्र हैं। वह करुणा होगी भावात्मक। उस व्यक्ति को हम भले निष्पाप नहीं बना सकते, परन्तु 'इन पापों से यह बेचारा भविष्य में दुःखी होगा'... ऐसा विचार कर सकते हैं। इस विचार से हृदय कोमल बना रहता है। यही धर्म है!

कभी किसी को पाप करते रोकना है, समझाने से नहीं रुकता है और कुछ शिक्षा भी करनी पड़े, तो वह भी करुणा है! माता-पिता अपनी सन्तानों को अयोग्य आचरण से रोकने के लिए शिक्षा करें, सजा करें, तो वह करुणा ही है। दिखने में करुणा नहीं दिखेगी, परन्तु भाव करुणा हो सकती है। 'यदि इस लड़के को इस बुरे काम से नहीं रोकेंगे तो उसका जीवन बरबाद हो जाएगा, मानव-जीवन व्यर्थ चला जाएगा।' इस भावना से माता-पिता सन्तान को शिक्षा भी करते हैं, तो वह करुणा ही है। इसलिए तो मदनरेखा जो कि साध्वी है, अपने लड़कों को युद्ध से रोकने के लिए युद्ध के मैदान पर गई थी। युद्ध में होनेवाली घोर जीवहिंसा से साध्वीजी का हृदय द्रवित हो गया था। 'ऐसी घोर जीवहिंसा का पाप करके मेरे लड़के मानवजीवन हार जायेंगे। दुर्गति में चले जायेंगे। मैं रोक दूँ उनको...।' यह मोहवासना नहीं थी, करुणा भावना थी।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सच्ची और अच्छी बात भी सब नहीं मानते :

नमि राजा साध्वीमाता की बात नहीं मानता है! 'कुछ भी हो मैं तो युद्ध करूँगा ही, मेरा हाथी लेकर रहूँगा!' उसने साध्वीजी को अपना निर्णय सुना दिया। अच्छी बात सभी मान लें, ऐसा कोई नियम नहीं है। माता-साध्वी की सच्ची और अच्छी बात भी पुत्र मान ले, यह कोई नियम नहीं है। जब मनुष्य का हृदय कठोर होता है, कोमलता नहीं होती है, तो सच्ची और अच्छी बात भी वह नहीं मानेगा। सच्ची और अच्छी बात करनेवाले के प्रति स्नेह, श्रद्धा और भक्ति नहीं होगी तो भी वह बात नहीं स्वीकारेगा।

दुनिया में ज्यादातर लोग ऐसे हैं कि जो सच्ची और अच्छी बात का स्वीकार नहीं करते! ज्ञानी पुरुषों को, सज्जनों को संत पुरुषों को जो अच्छी लगती है, सच्ची लगती है, वह बात अज्ञानी और दुर्जनों को, अच्छी नहीं लगती! सच्ची नहीं लगती है। कभी-कभी अपने मन में ऐसा विचार आ जाता है कि 'कितनी अच्छी बात मैं कहता हूँ, कितनी सच्ची बात मैं कहता हूँ, कितनी कल्याणकारिणी बात है... फिर भी ये लोग नहीं मानते हैं... कैसे हैं ये लोग?' अपने मन में अफसोस भी होता है! परन्तु अफसोस करने की आवश्यकता नहीं है। नहीं माननेवालों के प्रति द्वेष या रोष करने की जरूरत नहीं है। ऐसे लोग करुणा पात्र हैं।

राजा चन्द्रयश नमि के पास :

साध्वी मदनरेखा ने नमि राजा के प्रति रोष नहीं किया! तू मेरा पुत्र है और मेरी बात नहीं मानता है?' गुस्सा नहीं किया। साध्वीजी ने बड़े पुत्र के पास जाने का सोचा। बड़ा पुत्र चन्द्रयश तो माता को अच्छी तरह पहचानता था। साध्वीजी नगर में चली गईं। चन्द्रयश माता साध्वी को देखते ही प्रसन्न हो गया! माता और साध्वी! विनय से स्वागत किया, आनन्द से गद्‌गद् चन्द्रयश जमीन पर बैठ गया और साध्वीजी की कुशलता पूछी। साध्वीजी ने भी अपनी सारी कहानी सुना दी चन्द्रयश को। जब उसने सुना कि उसका छोटा भाई भी है, तुरंत ही पूछ लिया : 'अभी मेरा वह भाई कहाँ है?' साध्वी ने कहा : 'नगर को घेर के खड़ा है वह नमि राजा ही तेरा लघु भ्राता है!' चन्द्रयश आश्चर्य से साध्वीजी को देखता ही रह गया।

'क्या बात कहती हो? नमि राजा मेरा सहोदर है? मैं अभी उसके पास जाता हूँ।' चन्द्रयश का हृदय अपने छोटे भाई को मिलने के लिए अत्यंत

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

उत्सुक हो उठा। माता-साध्वी को वहाँ ही स्थिरता करने को कह कर चन्द्रयश नगर से बाहर निकला।

दो बिछुड़े भाइयों का मिलन :

नगर का दरवाजा खुला और शस्त्ररहित राजा को अपनी छावनी में आता देखकर नमि राजा को आश्चर्य हुआ। उसको साध्वीजी का वचन याद आया, तुरन्त याद आया : 'चन्द्रयश तेरा बड़ा भाई है।' उसने दूर से चन्द्रयश को अपनी तरफ आता देखा, वह भी खड़ा हो गया और बड़े भाई के सामने दौड़ा। युद्ध के मैदान पर दोनों भाइयों का मधुर मिलन हुआ। नमि चन्द्रयश के चरणों में गिर पड़ा। चन्द्रयश ने नमि को अपनी छाती से लगाया। दोनों की आँखों में से आँसू की धारा बहने लगी। सारा सैन्य स्तब्ध-सा हो गया। सैनिकों को पता नहीं था कि ये दोनों भाई हैं! हालाँकि वे जानते थे कि 'साध्वीजी आई थी और नगर में चली गई थी।'

चन्द्रयश टकटकी बाँधे अपने छोटे भाई का चेहरा देख रहा था। हृदय अपूर्व आनन्द अनुभव कर रहा था। नमि राजा भी बड़े भाई को अनिमेष नयनों से देख रहा था। नमिराजा चन्द्रयश को अपने निवास में ले गया। चन्द्रयश को सिंहासन पर बिठाकर नमि जमीन पर बैठ गया। चन्द्रयश ने कहा :

'वत्स, मैंने पिताजी की करुण मृत्यु मेरी आँखों से देखी है। मुझे तो तभी से इस राज्य के प्रति, संसार के प्रति, अरुचि हो गई है! एक मात्र कर्तव्यदृष्टि से राज्य कर रहा हूँ। अब यह कर्तव्यभार तू उठा। मैं अब संसारत्याग करना चाहूँगा। यूँ भी मेरा महान भाग्योदय है कि मुझे आज माता-साध्वी के पुण्यदर्शन मिल गए। मेरा छोटा भाई मुझे मिल गया।'

नमि की आँखें आँसू बरसा रही थीं। चन्द्रयश के दोनों चरण पकड़कर नमि बोला : 'नहीं, नहीं, आपको मैं संसारत्याग नहीं करने दूँगा। आज ही तो पहली बार आपको देखा है, आज ही आप से मिला हूँ। आज तो माँ साध्वीजी ने परिचय करवाया है और आप आज ही संसारत्याग करने, मुझे छोड़ जाने की बात करते हो...। ऐसा मत करो।'

संवेदनशीलता चिंतनशील बनाती है :

चन्द्रयश के मुँह पर गंभीरता छा गई। आँखों में वैराग्य की झलक आ गई। कई वर्षों से उसके हृदय में संसार के सुखों के प्रति अभाव तो आ ही गया था।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मणिरथ ने युगबाहु की कपट से हत्या जब कर दी थी और माता मदनरेखा अपनी शीलरक्षा के लिए नगर छोड़कर... पुत्र चन्द्रयश का त्याग कर चली गई थी... तब से चन्द्रयश के हृदय में हलचल मच गई थी। हत्यारे चाचा मणिरथ की सर्पदंश से उसी रात मृत्यु भी चन्द्रयश ने देखी थी...। बुद्धिमान और 'भावुक-सेन्सेटिव' मनुष्य ऐसी घटनाओं पर चिन्तनशील बने बिना नहीं रह सकता। ज्ञानदृष्टिवाले मनुष्य का चिन्तन वैराग्योत्पादक होता है। मोहदृष्टि वाले मनुष्य का चिन्तन राग-द्वेषोत्पादक होता है। चन्द्रयश के पास ज्ञानदृष्टि होगी ही, अन्यथा ऐसी घटनाओं से उसके हृदय में वैराग्य पैदा नहीं होता।

त्याग के मार्ग पर चलने के लिए पुण्योदय भी जरूरी :

इतने वर्षों तक वैराग्य होने पर भी त्याग नहीं कर सका संसार का! त्याग के लिए सानुकूल संयोग चाहिए! सानुकूल संयोग के लिए ऐसा पुण्यकर्म अपेक्षित होता है। पुण्यकर्म के बिना सानुकूल संयोग प्राप्त नहीं होते और मनुष्य त्यागमार्ग पर चल नहीं सकता है। तात्पर्य यह है कि हृदय में वैराग्य होने पर भी मनुष्य प्रतिकूल संयोगों में त्याग नहीं कर सकता है। जम्बूकुमार का पूर्वभव राजकुमार शिवकुमार का था, जानते हो न? शिवकुमार का हृदय वैराग्य से भरपूर था, संसारत्याग की प्रबल भावना थी। १२ वर्ष तक घोर तपश्चर्या की। फिर भी संयमजीवन-त्यागमार्ग नहीं पा सका था वह! माता-पिता ने रुकावट की थी न?

मणिरथ की मृत्यु के पश्चात् राज्यभार चन्द्रयश को उठाना पड़ा। दूसरा कोई राजकुमार नहीं था कि जिसको राजा बनाया जा सके! चन्द्रयश को राजसिंहासन पर बैठना पड़ा। विरक्त हृदय होने पर भी संसार के खेल खेलने पड़े उसको! आज उसको सानुकूल संयोग मिल गए, त्यागमार्ग पर चलने के लिए! राज्य की जिम्मेदारी उठ सके वैसा लघु भ्राता मिल गया! माता-साध्वी का मिलन हो गया। उसने नमि राजा से कहा :

'भाई, मेरा मन संसार से उठ गया है। मैं माता के पद-चिह्नों पर चलना चाहता हूँ। मानवजीवन में ही मोक्षमार्ग की आराधना हो सकती है। शाश्वत् अविनाशी सुख पाने का पुरुषार्थ अब कर लेना है। संसार के क्षणिक...विनाशी सुखों के प्रति कोई आकर्षण नहीं रहा है मन में। तू राज्य का स्वीकार कर ले और मेरा मार्ग प्रशस्त कर दे!'

नमि राजा चन्द्रयश की बात ध्यान से सुनता है। उसके अन्तःकरण को

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

बातें जँचती हैं। उसके मन में विचार आया होगा कि 'आया था हाथी लेने और मिल रहा है पूरा राज्य! आया था युद्ध करने, मिल रहा है प्रेम और स्नेह! क्या होने वाला था और क्या हो रहा है। जिसकी स्वप्न में भी कल्पना नहीं थी, ऐसी बातें बन रही हैं। मुझे कहाँ पता था कि वास्तव में मैं पुष्पमाला और पद्मरथ का पुत्र नहीं हूँ! आज कैसा रहस्य खुल गया? मेरी माता साध्वी, मेरे पिता देवलोक में देव! मेरा भाई सुदर्शनपुर का राजा! सहोदर को मैं शत्रु मान रहा था...!' ऐसे तो कितने-कितने विचार नमि राजा के मन में उभरे होंगे।

नमि राजा ने सैन्य को सूचित कर दिया कि 'युद्ध नहीं करना है।' चन्द्रयश नमि को लेकर नगर में प्रवेश करता है। नगरजनों को मालूम तो हो ही गया है कि मिथिलापति और सुदर्शनपुर के राजा सगे भाई हैं। सबके मन में आनन्द छा गया। युद्ध का भय टल जाने से और मदनरेखा के आगमन से लोगों में उत्साह-उमंग बढ़ गया है। हाँ, प्रजा को अभी यह मालूम नहीं हुआ है कि उनका राजा अब थोड़े ही दिनों में संसार त्याग करके संयमी साधु बन जाएगा!

दोनों भाई माँ साध्वीजी के पास :

दोनों भाइयों ने महल में आकर, जहाँ साध्वी-माता बैठी थी वहाँ गए और भावपूर्ण हृदय से, आँखों में से आँसू बहाते हुए दोनों ने वंदना की।

मदनरेखा साध्वी के चित्त में आनन्द हुआ। दोनों पुत्रों को साथ में देखकर उन्होंने समझ ही लिया था कि युद्ध अब नहीं होगा। हजारों जीवों का संहार रुक जाने से करुणापूर्ण साध्वीजी को अत्यधिक आनन्द हुआ। साध्वीजी ने कहा : 'वत्स, तुम दोनों ने युद्ध नहीं करने का निर्णय किया, यह जानकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई है। भाई-भाई के बीच एक हाथी के निमित्त घोर संग्राम होता तो कितना भयंकर अनर्थ होता? अच्छा किया तुमने, अब मैं यहाँ से चली जाऊँगी?'

साध्वीजी की बात सुनकर चन्द्रयश ने कहा : 'हे परम उपकारिणी तपस्विनी माता, आपने यहाँ पधार कर हम दोनों को घोर पाप से बचा लिया। पिताजी को जैसे अन्तिम आराधना करवाकर दुर्गति से बचा लिया था वैसे हम को उपदेश देकर, दुर्गति से बचा लिया, आपका यह उपकार हम कभी नहीं भूलेंगे।'

नमि राजा ने कहा : 'हे तपस्विनी माता! आज मैं धन्य बन गया आपके

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दर्शन से और बड़े भाई के मिलने से। सचमुच बड़े भाई देवतुल्य हैं। उनकी उदारता, उनका वैराग्य, उनकी ज्ञानदृष्टि-यह सब देखकर मेरा हृदय उनके चरणों में झुक गया है।'

चन्द्रयश ने साध्वीजी के सामने अपनी संसारत्याग की भावना व्यक्त कर दी। अपना निर्णय सुना दिया। साध्वीजी की आँखें हर्ष के आँसुओं से भर गईं। 'वत्स, तेरा निर्णय यथोचित है। मानवजीवन में चारित्र्यधर्म की आराधना कर लेना ही परम कर्तव्य है। जीवन चंचल है, आयुष्य क्षणिक है, संसार के भोगसुख दुर्गति में ले जानेवाले हैं, इसलिए जरा भी प्रमाद किए बिना तेरी भावना को सफल कर ले।'

साध्वीजी की प्रेरणा ने चन्द्रयश की भावना को और बढ़ावा दे दिया। चन्द्रयश ने राज्य नमिराजा को सौंपकर चारित्र्यधर्म अंगीकार कर लिया और आत्मसाधना के मार्ग पर चल पड़े। साध्वीजी ने वहाँ से अन्यत्र विहार कर दिया।

मदनरेखा की भाव करुणा ने दो आत्माओं का दुर्गति गमन रोक दिया। दो आत्माओं में सद्भावनाएँ भर दीं। चन्द्रयश के जीवन का तो आमूलचूल परिवर्तन कर दिया। जन्म-जन्मान्तर सुधार दिये। यदि साध्वीजी यह सोचतीं कि : 'मुझे क्या है? मैं तो साध्वी बन गई, अब मेरे पुत्र कहाँ रहे? लड़ने दो उनको, जैसे उनके कर्म होंगे... वैसा होगा।' तो क्या होता? जो होनेवाला होता वही होता, परन्तु साध्वी का हृदय कठोर बन जाता। करुणा नहीं रहती और करुणा के बिना साधुता रहती या नहीं, क्या पता?

तीर्थंकरत्व की पैदाइश करुणा में है :

आप जानते हो क्या, साधुता की जनेता करुणा है। करुणा है तो साधुता है, करुणा के अभाव में साधुता नहीं रहती। इतना ही नहीं, तीर्थंकरत्व की जनेता करुणा है। संसार के अनन्त अनन्त जीवों की दुःखपूर्ण स्थिति को देखकर अपनी ज्ञानदृष्टि से, हृदय में भरपूर करुणा प्रगटती है तब 'तीर्थंकर नामकर्म' बंधता है। इस विषय में आगे चर्चा करेंगे। आज तो मुझे आपको यह बताना है कि आप भाव करुणा की महिमा समझो। जिस प्रकार दुःखी, दीन-हीन-दरिद्र के प्रति करुणा होनी चाहिए वैसे जो लोग भौतिक दृष्टि से सुखी हैं, संपन्न हैं, धन-वैभव, आरोग्य, सौभाग्य वगैरह जिनके पास हैं, वे लोग पापाचरण करते हैं, तो उनके प्रति भी करुणा चाहिए।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सभा में से : आजकल तो ऐसा ही देखने में आता है कि धनवान और युवान लोग ही ज्यादा पाप करते हैं।

महाराजश्री : उनके प्रति आप लोगों के हृदय में क्या होता है? कैसे विचार आते हैं? द्वेष के या करुणा के? पापानुबंधी पुण्य के उदयवाले लोगों में ऐसा ही देखने को मिलेगा! भौतिक दृष्टि से सुखी लोग, धनवान, रूपवान, सत्तावान् लोग ज्यादा पाप करेंगे। पाप करने के साधन उनके पास ज्यादा हैं न? आजकल लोगों को पापानुबंधी पुण्य का उदय ज्यादा दिखता है। आप लोगों के पास जब तक भौतिक सुख के साधन नहीं हैं तब तक अच्छे हो! यदि आपको भी पापानुबंधी पुण्य का उदय आया हो आप भी यहाँ हमारे पास आना छोड़ दोगे। मंदिर में जाना छोड़ दोगे।

पाप करने में खुशी होती है?

सभा में से : तो क्या मंदिर-उपाश्रय में आनेवाले लोग पापानुबंधी पुण्य के उदयवाले नहीं होते हैं? वे सब पुण्यानुबंधी पुण्य के उदयवाले ही होते हैं?

महाराजश्री : ऐसा कोई नियम नहीं है। यदि पाप को पाप मानता है, 'पापों का त्याग करना चाहिए,' वैसा हृदय से मानता है, फिर भी पापों का त्याग नहीं कर सकता है, उनको हम पापानुबंधी पुण्य के उदयवाले नहीं कहेंगे! पापानुबंधी पुण्य का उदयवाला तो पापों को ही कर्तव्यरूप मानता है। हाँ, मंदिर, उपाश्रय में ऐसी मान्यतावाले आते हों तो वे भी पापानुबंधी पुण्य के उदयवाले कहलायेंगे। बहुरूपी होता है न? घर में अलग रूप, मंदिर में दूसरा। दुकान में अलग रूप, उपाश्रय में दूसरा। कितने रूप करते हो एक दिन में? पाप करने पड़ते हैं और करते हो, तब मन में दुःख होता है? पाप कर लेने के बाद भी दुःख होता है? पापानुबंधी पुण्य के उदयवाले को दुःख नहीं होता है। उसको तो पाप करते समय मजा आता है और कर लेने के बाद भी मजा आता है।

ऐसे जीवों के प्रति अपने हृदय में करुणा होनी चाहिए। 'मोहमूढ़ बनकर यह बेचारा पाप करता है, दुर्गति में चला जाएगा, घोर दुःख पाएगा... 'ऐसा विचार करना चाहिए। 'मेरा चले तो मैं उसको पापों से रोक दूँ, पापों से बचा लूँ, चाहे मुझे कष्ट भी उठाना पड़े तो उठाऊँगा, परन्तु उसको बचा लूँ।' ऐसा विचार करना चाहिए।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आलोचना भी तंदुरस्त हो सकती है :

धनवान है, परन्तु दान नहीं देता, तन्दुरस्त है, परन्तु तप नहीं करता... बूढ़ा हो गया है परन्तु शीलव्रत का पालन नहीं करता है, समय मिलता है फिर भी मंदिर नहीं जाता है, परोपकार के कार्य नहीं करता है, बुद्धि है फिर भी तत्त्वज्ञान पाने का पुरुषार्थ नहीं करता है... ऐसे मनुष्य के प्रति धिक्कार या तिरस्कार नहीं करना चाहिए। आजकल तिरस्कार करना सामान्य बात बन गई है। द्वेषपूर्ण समालोचना करना साधारण बात बन गई है। क्योंकि आजकल मनुष्य का हृदय करुणाहीन बनता जा रहा है। बाह्य दृष्टि से दुःखी जीवों के प्रति करुणा नहीं है, तो आन्तर दृष्टि से दुःखी जीवों के प्रति करुणा करने की तो बात ही कहाँ! निर्धन, रोगी, दीन-हीन जीवों के प्रति दया आती है? दूसरे नहीं, अपने स्नेही, अपने स्वजन ऐसी स्थिति में आ गए हों, उनके प्रति भी दया आती है? एक भगत को मैंने कहा : 'आपका भाई बहुत दुःखी स्थिति में है, आप उसकी सहायता करें तो उसकी स्थिति सुधर जाय।' फौरन भगत ने मुझे कह दिया : 'महाराज साहब, आप उसको अच्छी तरह नहीं जानते। वह तो ऐसा ऐसा है।' भगत ने अपने भाई की काफी बुराई की। मैंने कहा : 'आपने अपने भाई में जो-जो बुराई बताई, क्या आप में ऐसी कोई बुराई नहीं है न? दूसरी बात, भाई बुरा है, उसका परिवार तो वैसा खराब नहीं है न? आप परिवार को तो सहायता कर सकते हैं न?' ऐसे होते हैं ये भगत लोग! अब कहिए, आपसे क्या अपेक्षा रखूँ?

एक बात समझ लो : यदि हृदय में मैत्री, प्रमोद, करुणा और माध्यस्थ्य भाव धारण नहीं किए तो आपकी कोई भी धर्मक्रिया 'धर्म' नहीं बनेगी। ऐसी भावशून्य क्रियाएँ आपको दुर्गति से नहीं बचायेंगी। आप भरोसे में रह जाओगे कि 'इतनी इतनी धर्मक्रियाएँ करते हैं, अपन नरक में नहीं जायेंगे।' परन्तु आप बच नहीं सकोगे। इसलिए कहता हूँ कि मैत्री वगैरह भावनाओं का अभ्यास करो, आत्मासात् करो। चित्त को शुद्ध करो। शुद्ध चित्त ही धर्म है। शुद्धचित्त ही पुण्यानुबंधी पुण्य से पुष्ट बनता है। शुद्ध और पुष्ट चित्त ही मोक्षप्राप्ति का असाधारण कारण है।

'धर्म' तत्त्व के विषय में गंभीरता से सोचें। यहाँ जो बातें आप सुनते हैं, उन बातों पर चिन्तन-मनन करें।

आज, बस इतना ही।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

- ***मैत्री और करुणा की पहली शर्त है : न तो किसी भी जीव को अपना दुश्मन मानना और न ही किसी जीव को तनिक भी पीड़ा पहुँचाने का इरादा रखना।***
- ***अशुद्ध और मलिन विचारों से गंदे बने हुए दिल के आंगन में परमात्मा की कृपा कभी अवतरित नहीं हो सकती!***
- ***हमेशा सोचो : 'मैं तमाम जीवों को क्षमा देता हूँ। सभी जीव मुझे क्षमा कर दें। सभी जीवों के साथ मेरी मैत्री है। किसी के प्रति वैर नहीं है।'***
- ***सुव्रत सेठ ने अनित्य इत्यादि भावनाओं से सतत भावित होकर जड़-राग को उखाड़ फेंका था अपने दिल की धरती पर से! मैत्री, करुणा आदि भावनाओं से जीवद्वेष को जला दिया था।***
- ***क्रूर और निर्दय दिल में भला, धर्म के लिए कोई स्थान कभी हो सकता है क्या?***

प्रवचन : १८

परमकृपानिधि आचार्यदेव श्री हरिभद्रसूरीश्वरजी 'धर्म'तत्त्वका स्वरूप समझाते हुए कहते हैं : वह अनुष्ठान धर्म है कि जो जिनवचनानुसार है, यथोदित है और मैत्री, करुणा, प्रमोद और माध्यस्थ्य भाव से युक्त है। आप लोगों को अनुष्ठान तो शुद्ध ही मिले हैं, अनुष्ठान करने चाहिए यथोदित और साथ-साथ आपके हृदय में चाहिए मैत्री वगैरह भावनाएँ। इतना हो जाय तो अनुष्ठान 'धर्म' बन जाय। ऐसी धर्मआराधना आपको आनन्द से भर देगी। धर्मक्रियाएँ रसपूर्ण बनेंगी।

शास्त्रदृष्टि तो चाहिए ही :

'हम लोग धर्मक्रिया करते हैं परन्तु आनन्द नहीं आता है, मजा नहीं आता है।' ऐसी शिकायत करते हो न आप लोग? शिकायत दूर हो सकती है। जिस प्रकार अनुष्ठान करने का शास्त्रोक्त विधान हो, उस प्रकार अनुष्ठान करने का लक्ष बनाइए और हृदय को मैत्री आदि भावनाओं से भावित करते रहिए। प्रतिदिन मैत्री आदि भावनाओं का अभ्यास करते रहें। इसलिए विचारक्षेत्र को

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विस्तृत करना होगा। चौदह राज्यलोकव्यापी विचारक्षेत्र बनाना होगा। ऊर्ध्वलोक, अधोलोक और मध्यलोक में निरंतर परिभ्रमण कर रहे अनंत-अनंत जीवों का ज्ञानदृष्टि से, शास्त्रदृष्टि से विचार करना होगा। हाँ, शास्त्रदृष्टि तो चाहिए ही। शास्त्रदृष्टि के बिना कैसी कैसी गतियों में, किस किस प्रकार जीव जन्म-मृत्यु करता है, आप नहीं जान सकते। संसार कितना दुःखपूर्ण है, यह खयाल शास्त्रदृष्टि से ही आ सकता है।

शास्त्रदृष्टि में आप संसार की वास्तविकता देखोगे। पापकर्म बांधकर मनुष्य कैसे नरकगति और तिर्यंचगति में चला जाता है और उन दुर्गतियों में कैसे-कैसे दारुण दुःख अनुभव करता है! आपके पास हृदय में उन जीवों के प्रति अपार करुणा बहने लगेगी।

तीर्थंकर किसे कहते हैं :

विश्व की सर्वोत्तम आत्माओं के हृदय में संसार-अवलोकन से ही अपार करुणा जाग्रत होती है। 'मोह, अज्ञान के घोर अंधकार में बेचारे जीव कैसे-कैसे कुकर्म करते हैं और दुर्गति में चले जाते हैं, कैसी घोर वेदना अनुभव करते हैं, मैं उन जीवों को ज्ञान का प्रकाश दूँ, उनको दुःखों से बचा लूँ, परमसुख और परमशान्ति का मार्ग बता दूँ।' 'तीर्थंकरपद' पाने की योग्यता ऐसी करुणा में होती है। ऐसी करुणावाले जीव ही 'तीर्थंकरपद' पाते हैं।

'तीर्थंकर' किसे कहते हैं, जानते हो? तीर्थ का अर्थ है धर्मशासन। जो धर्मशासन की स्थापना करते हैं वे 'तीर्थंकर' कहलाते हैं। 'तीर्थं करोति इति तीर्थंकरः।' तीर्थंकर शब्द की यह व्युत्पत्ति है। जो तारे, वह तीर्थ! जिसके सहारे भवसागर तैरा जाय वह तीर्थ। तीर्यते अनेन इति तीर्थम्' भवसागर से यानी दुःखसागर से तारनेवाले जो होता है वह 'तीर्थ' कहलाते है, ऐसे तीर्थ की स्थापना करनेवाले तीर्थंकर कहलाते हैं। तीर्थंकर की यह श्रेष्ठ करुणा है...। सर्व जीवों को सर्व दुःखों से मुक्त करने की भावना!

तीर्थंकर की करुणा के हम पात्र बनें :

जो मनुष्य तीर्थंकर की करुणा का पात्र बन जाता है, उसके सर्व दुःख नष्ट हो जाते हैं। वह दुःखसागर तैर जाता है। बनना चाहिए तीर्थंकर की करुणा के पात्र! पात्र बनने के लिए हृदयपात्र शुद्ध करना होगा। शुद्ध हृदय-पात्र में तीर्थंकर की दिव्य करुणा अवतरित होती है। हृदय का पात्र शुद्ध होता है मैत्री, करुणा आदि भावनाओं से। किसी जीव को अपना शत्रु नहीं मानना

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

और किसी जीव को दुःखी करने का विचार नहीं करना, यह मैत्री और करुणा की प्रथम शर्त है। सभी जीवों को मित्र मानना और सब के दुःख दूर करने की भावना करना, यह है मैत्री और करुणा की दूसरी शर्त। दूसरे जीवों के दुःख देखकर अपना हृदय काँप उठना चाहिए। दूसरों की वेदना अपनी वेदना बन जानी चाहिए। तब अपनी सारी वेदनाएँ तीर्थंकर परमात्मा मिटा देंगे। उनकी करुणा अपने सर्व दुःखों को नष्ट कर देगी। पहले हम दूसरे जीवों के प्रति करुणावंत बने। अपने दुःखों की चिन्ता हम जब तक करते रहेंगे, तीर्थंकर की करुणा के पात्र नहीं बनेंगे।

'परमात्म-अनुग्रह' का दिव्य तत्त्व समझ लो, आपकी सारी दीनता दूर हो जायेगी! 'उपमिति भवप्रपंचकथा' ग्रन्थ में श्री सिद्धर्षि नामक महर्षि ने इस 'परमात्म-अनुग्रह' को बहुत ही मार्मिक ढंग से समझाया है। परमात्म-अनुग्रह यानी परमात्म-कृपा, परमात्म-करुणा। अपना हृदय शुद्ध होना चाहिए।

'उपमिति' ग्रन्थ की एक उपनय कथा :

एक नगर के राजा के मन में आया : 'मेरे नगर में कोई भिखारी नहीं रहना चाहिए।' उसने मंत्री को आज्ञा दी : 'नगर में जो कोई भिखारी हो, उसको राजमहल में बुलाकर वस्त्र, अन्न, भोजन आदि दो और उसका भिखारीपना मिटा दो।' मंत्री ने राजा की आज्ञा का पालन करना शुरू किया। अनेक भिखारियों का भिखारीपना दूर होने लगा। भिखारियों को व्यवसाय मिलने लगा। कुछ दिनों में तो नगर भिखारीरहित हो गया। एक दिन राजा ने महल के झरोंखे से नगर के मार्ग पर एक भिखारी को देखा। राजा ने शीघ्र ही मंत्री को कहलाया। मंत्री ने राजपुरुष को भेजकर भिखारी को अपने पास बुलाया और उसको स्नान करवाकर, अच्छे वस्त्र पहनाया। फिर भोजनालय में ले जाकर उसको कहा : 'तेरा जो भिक्षापात्र है, उसमें जो जूनापुराना और गन्दा बासी भोजन है वह बाहर फेंक कर पात्र साफ कर दे। भिक्षापात्र को शुद्ध कर दे, ताकि मैं तुझे उत्तम भोजन उसमें दे सकूँ।' भिखारी ने सोचा : 'मैं यदि मेरे भिक्षापात्र में से मेरा भोजन फेंक दूँ और यह आदमी मुझे भोजन नहीं दे, तो मेरा क्या हो? मैं तो दोनों तरफ से लटक जाऊँ? इसलिए मुझे मेरा भिक्षापात्र खाली नहीं कर देना चाहिए!' ऐसा सोचकर उसने मंत्री से कहा : 'आपको जो देना हो, आप इसी भिक्षापात्र में दो, मैं अपना पुराना भोजन फेंकूँगा नहीं। आपको देना हो तो दो।'

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मंत्री ने उसको समझाया कि तेरे भिक्षापात्र में कितना गन्दा और सड़ा हुआ भोजन है? ऐसा भोजन नहीं खाना चाहिए। तू इसको निकाल दे, पात्र को धोकर साफ कर दे, शुद्ध पात्र में उत्तम भोजन लेना चाहिए। अशुद्ध के साथ शुद्ध भी अशुद्ध बन जाता है। यदि मैं इस सड़े हुए भोजन में मेरा शुद्ध भोजन डालूँगा तो वह भी बिगड़ जाएगा।' मंत्री ने उसको भिक्षापात्र साफ करने को समझाया, परन्तु वह नहीं समझा! बहाना बनाकर वहाँ से भाग गया! भिखारी का भिखारी रहा।

हृदय को शुद्ध-स्वच्छ करना होगा :

ज्ञानी पुरुष कहते हैं पहले तुम्हारा हृदय साफ करो। साफ हृदय में परमात्मा की दिव्यकृपा उतरती है और वह दिव्यकृपा तुम्हारे सारे दुःख मिटा देगी। करना है हृदय साफ? क्रूरता, शत्रुता, ईर्ष्या, रोष धिक्कार-तिरस्कार... यह सब सड़ा हुआ माल है! बाहर फेंक दो। फेंकोगे बाहर? हृदय में यह सब सड़ा हुआ माल रखना है और उस हृदय में परमात्मा की करुणा उतरे, ऐसा चाहते हो? यह कभी नहीं होगा। मलिन, अशुद्ध और पाप-विचारों से भरपूर हृदय में परमात्मा की करुणा अवतरित नहीं होती है। शुद्ध हृदय को धर्म कहा है, इसका यही तात्पर्यार्थ है। शुद्ध हृदय में परमात्मकृपा उतरती है, वही ही धर्म है। जिस हृदय में परमात्मकृपा हो, उस हृदय में अधर्म नहीं रह सकता। जिस कमरे में प्रकाश होता है, उस कमरे में अंधकार नहीं रह सकता।

सभा में से : हृदय को शुद्ध कैसे करें? वह तो काम-क्रोध आदि से अशुद्ध बना ही रहता है! आज शुद्ध करते हैं तो कल पुनः अशुद्ध हो जाता है।

महाराजश्री : समस्या तो है ही! परन्तु सुलझे ही नहीं वैसी समस्या तो नहीं है। हृदय को शुद्ध करते रहो! रोज अशुद्ध होता है तो रोज शुद्ध करो। रोजाना शरीर गन्दा होता है तो रोजाना स्नान करते हो न? रोजाना वस्त्र गन्दे होते हैं तो रोजाना वस्त्र धोते हो न? वैसे हृदय रोजाना अशुद्ध होता है तो रोजाना शुद्ध करते रहो! रात को सोने के पूर्व हृदय शुद्ध करके सोया करो। निरन्तर यह काम करते रहो। एक दिन हृदय ऐसा शुद्ध हो जाएगा कि फिर कभी अशुद्ध नहीं बनेगा।

एक छोटा-सा प्रयोग :

दो श्लोक बराबर याद कर लो, अर्थ भी समझ लो, फिर प्रतिदिन त्रिकाल पाठ किया करो।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शिवमस्तु सर्वजगतः परहितनिरता भवन्तु भूगतणाः।
दोषाः प्रयान्तु नाशं, सर्वत्र सुखीभवतु लोकः ।।

एक श्लोक तो यह है। इसका अर्थ है :

'सारे जगत का कल्याण हो। सर्व जीव परहित करने में लगे रहो। जीवों के सब दोष नष्ट हों। सर्वत्र सभी जीव सुखी हों।'

दूसरा श्लोक सुन लो :

'खामेमि सव्व जीवे, सव्वे जीवा खमंतु मे।
मित्ति में सव्वभूएसु वेरं मज्झं न केणई ।।

इसका अर्थ भी समझ लो :

'मैं सभी जीवों को क्षमा देता हूँ, सर्व जीव मुझे क्षमा करें, सभी जीवों के साथ मेरी मैत्री है, किसी के प्रति मुझे वैर नहीं है।'

इन दो श्लोकों का सुबह, मध्याह्न और शाम को पाठ करो। अर्थचिन्तन करो। यदि अनुकूलता हो तो सारे परिवार के साथ पाठ करो। घर में सबको ये श्लोक याद करवा दो। ऐसा कुछ प्रयोगात्मक करो। रोजाना सुनते ही रहोगे और क्रियात्मक कुछ भी नहीं करोगे तो ठोस रूप से कुछ भी मिलनेवाला नहीं। हृदयशुद्धि का यह प्रयोग करते रहो। ज्यों-ज्यों आपका हृदय शुद्ध होता जायेगा, जीवमैत्री बढ़ती जायेगी त्यों-त्यों आपकी धर्मक्रियाएँ रसपूर्ण बनती जायेंगी, आपके सारे कर्तव्य विवेकपूर्ण बनेंगे।

सभा में से : दीन-दुःखी और रोगी के प्रति तो करुणा आती है, परन्तु जो हिंसा, चोरी आदि पाप करते हैं, उनके प्रति करुणा नहीं आती है, उनके प्रति तो गुस्सा आ ही जाता है! नफरत हो ही जाती है!

महाराजश्री : दीन, गरीब, अनाथ, रोगी वगैरह के दुःख प्रत्यक्ष आपको दिखते हैं इसलिए आपका हृदय दया से-करुणा से भर जाता है। जो लोग हिंसा, असत्य, चोरी आदि पाप करते हैं, उनका दुःख प्रत्यक्ष नहीं दिखता है! दुःख के कारण प्रत्यक्ष हैं, दुःख परोक्ष होता है। यदि आप पाप के फल का विचार करें तो आपकी कल्पना में दुःख आ सकते हैं : 'यह मनुष्य हिंसा करता है, हिंसा का फल रोग और शोक, दुर्भाग्य और प्रतिहिंसा। यह जानता नहीं है अथवा मानता नहीं है कि हिंसा के कटु फल मुझे भोगने पड़ेंगे।'

वैसे चोरी करनेवाले का प्रत्यक्ष दुःख नहीं दिखाई देता है। आपको ज्ञान

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

होना चाहिए कि चोरी करने से कैसा पापकर्म बंधता है और जब वह पापकर्म उदय में आता है तब कैसे कैसे दुःख जीव को सहन करने पड़ते हैं। यह ज्ञान होगा तो चोरी करनेवाले के प्रति रोष नहीं आयेगा, करुणा आयेगी। उसको चोरी से मुक्त करने का विचार आयेगा।

चोर के प्रति भी करुणा : एक सत्य घटना :

लन्दन में एक घटना बनी थी। एक युवान रात्रि के समय चोरी करने निकला। एक स्ट्रीट में से वह गुजरता है। पुलिस को शंका हो गई कि 'यह चोर होना चाहिए।' पुलिस सतर्क हो गई। वह युवान भी समझ गया। पुलिस से बचने के लिए वह एक चर्च में घुस गया। चर्च खुल्ला था। चर्च में उसने देखा कि धर्मगुरु अपने कुछ अतिथियों के साथ बैठे वार्तालाप कर रहे थे। वह भी वहाँ एक कुर्सी पर बैठ गया। टेबल पर चाय के बरतन पड़े थे। नौकर ने इस युवक को भी चाय का कप दिया। धर्मगुरु की नजर इस युवक के ऊपर नहीं थी, वह तो अपनी बातों में लीन थे। टेबल पर जो कप पड़े थे, चांदी के थे। उस युवक का मन ललचाया! चोरी करने तो निकला ही था...अवसर... 'चान्स' मिल गया! जब धर्मगुरु अपने मित्रो के साथ वहाँ से उठकर दूसरे कमरे में चला गया, इस युवक ने अपने कोट की बड़ी-बड़ी जेबों में कप भर लिए और शीघ्र ही चर्च से बाहर निकल गया। परन्तु बाहर तो पुलिस इसका इन्तजार कर ही रही थी! युवक पकड़ा गया। पुलिस ने उसको 'कस्टडी' में बंद कर दिया। चोरी का माल उसकी जेबों से पकड़ा गया। दूसरे दिन उसको न्यायाधीश के सामने खड़ा कर दिया गया। पुलिस ने कहा : 'यह चोर है, चर्च में से इसने चांदी के कप चुराए हैं, ये रहे सारे कप।' यूँ कहकर पुलिस ने सब कप कोर्ट में प्रस्तुत किये। कप के ऊपर उस चर्च का नाम था, जहाँ से इसने चोरी की थी। धर्मगुरु को कोर्ट में बुलाया गया। न्यायाधीश ने पूछा : 'क्या आपके वहाँ से कपों की चोरी हुई है? यह युवक कल रात चर्च में आया था? आपने देखा था?'

धर्मगुरु ने युवक के सामने देखा। न्यायाधीश को कहा :

'यह युवक चोर नहीं है, यह तो मेरा मेहमान है! रात को यह मेरे चर्च में आया था, मैंने ये सारे कप उसको भेंट दिये थे! उसको चोर समझ कर पकड़ लिया गया, इससे मुझे बहुत दुःख हुआ है। मैं विनती करता हूँ कि इसको मुक्त कर दिया जाय।'

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पुलिस शरमा गई। युवक को बड़ा आश्चर्य हुआ। न्यायाधीश ने उसको मुक्त करने का आदेश दे दिया और वे सारे कप भी उसको लौटाने का आदेश जारी कर दिया। पुलिस ने धर्मगुरु से क्षमा माँगी। धर्मगुरु उस युवक को लेकर कोर्ट से बाहर निकले, बाहर आते ही युवक धर्मगुरु के चरणों में गिर पड़ा। फूट-फूटकर रोने लगा। धर्मगुरु ने उसको अपनी छाती से लगाया और आश्वासन देने लगे। युवक ने कहा : 'मैं जीवन में अब कभी भी चोरी नहीं करूँगा। आपने मुझे बचा लिया। मुझ पर बहुत बड़ी दया की।'

धर्मगुरु ने कहा : 'तेरा चेहरा देखने से मुझे लगा कि इतना अच्छा युवक चोरी का धंधा नहीं कर सकता। कोई विकट परिस्थिति ने इसको मजबूर किया लगता है चोरी करने को। इसलिए मैंने न्यायाधीश को ऐसा कहा। अब मुझे तू बता कि तुझे चोरी क्यों करनी पड़ी?'

युवक ने कहा : 'मैं अभी दुःखी हालात में जी रहा हूँ। मेरे पास पैसे नहीं हैं। मेरी एक बहन है, उसकी शादी करनी है। माता-पिता का स्वर्गवास हो गया है। बहन के प्रति मुझे प्यार है। शादी के लिए पैसा चाहिए...मैंने मेरे स्नेही, मित्रों से सहायता माँगी, परन्तु किसी ने मुझे सहायता नहीं की, इसलिए चोरी करने निकल पड़ा और पकड़ा गया।' युवक ने सही बात बता दी धर्मगुरु को। धर्मगुरु उसको चर्च में ले गये और उसकी बहन की शादी के लिए पूरी आर्थिक व्यवस्था कर दी। युवक के हृदय में धर्मगुरु के प्रति अपार श्रद्धा स्थापित हो गई। चोरी नहीं करने का दृढ़ संकल्प कर लिया। उसका जीवन सुधर गया। उसका जीवन सुधारने के लिए तो धर्मगुरु ने असत्य बोला! दूसरों का जीवन बचाने के लिए, सुधारने के लिए कभी असत्य का आश्रय लेना पड़े, वह पाप नहीं है।

सत्य : असत्य-सापेक्ष धर्म :

मान लो कि एक परिवार है। परिवार के स्त्री-पुरुष-पति-पत्नी अपने दो छोटे-छोटे बच्चों को घर में छोड़कर बाहर गये हैं। जब वे वापस आते हैं, घर में आग लग गई है। दोनों बच्चे तो खेल रहे हैं। उनको आग का भय नहीं लग रहा है। माता-पिता उनको घर से बाहर आ जाने को कह रहे हैं। परन्तु वे तो खेलने में तल्लीन हैं। आग बढ़ रही है माँ-बाप भीतर जाने की हिम्मत नहीं कर रहे हैं... 'बच्चों को कैसे बाहर निकाले जाय?' माँ रो रही है... वहाँ बाप को एक उपाय सूझता है, उसने कहा : 'सुनो बेटे, तुम्हारे लिए मैं साइकिल ले आया हूँ, जो पहले बाहर आयेगा उसको साइकिल मिलेगी।' सुनते ही

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दोनों बच्चें दौड़ते बाहर आ गये! घर जल गया, बच्चे बच गये! पिता को असत्य बोलना पड़ा! बच्चों के प्राण बचाने के लिए पिता असत्य बोला। साइकिल लाया नहीं था, फिर भी कहा कि 'तुम्हारे लिए साइकिल लाया हूँ।' तो क्या असत्य बोलने का पाप लगा? नहीं, वहाँ असत्य पाप नहीं था। धर्म था! सत्य-असत्य साक्षेप धर्म है। एकान्ततः सत्य धर्म नहीं है, एकान्ततः असत्य पाप नहीं है।

वहाँ उस धर्मगुरु की दृष्टि थी उस युवक को चोरी के पाप से बचाने की। करुणादृष्टि थी। युवक को चोरी के पाप से बचा लिया। धर्मगुरु जानते थे कि 'चोरी करना पाप है, चोरी से इस युवक का पतन होगा... दुःखी हो जाएगा...।' चोरी के परिणाम-स्वरूप आनेवाले दुःख का उनको ज्ञान था, इसलिए युवक पर गुस्सा नहीं आया, करुणा आई!

सभा में से : हमारे तो दो रूपये के स्लीपर भी कोई ले जाय और पकड़ा जाय तो बुरी तरह पीटते हैं उसको!

महाराजश्री : जीव से भी जड़ ज्यादा प्यारा है आपको! जड़ पदार्थों के लिए जीवात्मा को कष्ट देते आप हिचकिचाते नहीं! जब तक चैतन्य के प्रति प्रीति, स्नेह जाग्रत नहीं होता है, आत्मा में धर्म का स्पर्श भी नहीं होता है। दो रूपये की स्लीपर के लिए मनुष्य को मारनेवाला, एक रूपये के झाडू के लिए बकरी को डंडा मारनेवाला क्या धर्म की आराधना कर सकता है? धर्म करने की योग्यता रखता है, क्या? आपको सोचना चाहिए कि 'इसने स्लीपर की चोरी क्यों की? वह कितना गरीब होगा? उसको चोरी करने के लिए किसने प्रेरित किया? वह इस दूषण से कैसे मुक्त हो सकता है?' सोचा है कभी? करुणा हो तो सोचो न! करुणा ही नहीं है और चले हो धर्म करने? कहलाते हो बड़े धर्मात्मा! क्रूर हृदय में धर्म हो ही नहीं सकता है। अंब क्रूरता को मिटा दो और करुणा को जाग्रत करो। हृदय में से क्रूरता की मिट्टी खोद-खोदकर बाहर फेंक दो, करुणा स्वयंभू प्रकट होगी।

ऐसा मत सोचना कि साधुपुरुष ही ऐसी करुणा कर सकते हैं! गृहस्थ भी ऐसी करुणा कर सकता है। गृहस्थधर्म करुणा से ही शोभायमान होता है। ऐसे अनेक सद्गृहस्थ हो गये भूतकाल में, जिनका हृदय करुणा से भरपूर था। दुःखी जीवों के प्रति अत्यंत करुणा धारण करते थे। वर्तमान में भी ऐसे सद्गृहस्थ हैं, जो दया के सागर हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अपराधी के प्रति भी करुणा :

धर्मग्रन्थों में श्रेष्ठि सुव्रत का उदाहरण आता है। करोड़पति था वह। ग्यारह करोड़ सोनामुहरों का मालिक था। ग्यारह पत्नियों का पति था और एकादशी-तिथि का आराधक था। सुव्रत के साथ '११' का अंक जुड़ गया था। एक बार एकादशी के दिन, जब सुव्रत 'पौषधव्रत' धारण कर अपनी हवेली के एक एकान्त कमरे में धर्मध्यान में लीन था, रात्रि के समय चोरों ने उसकी हवेली में प्रवेश किया। सुव्रत की सारी संपत्ति हवेली में ही थी! उस जमाने में बैंकें कहाँ थी? 'सेफ डिपोजिट वाल्ट' कहाँ थे? श्रीमंत लोग अपनी हवेली में ही संपत्ति रखते थे। कोई जमीन में गाड़ देता तो कोई तिजोरी में भर देता! कोई भित्ति में छिपाता तो कोई मकान की छत में छिपाता!

हवेली में सब सो गये थे, सुव्रत श्रेष्ठि ध्यान लगाकर खड़े थे। चोरों ने धनमाल इकट्ठा किया, गठरियाँ भी बांधी। सुव्रत ने जब ध्यान पूरा किया, उसको मालूम पड़ गया। परन्तु चोरों को रोकने कोई प्रयत्न नहीं किया। 'पौषधव्रत' में थे, संसार की कोई भी प्रवृत्ति नहीं करने की प्रतिज्ञा थी! वैसे, उनका हृदय इतना अनासक्त था कि 'मेरी संपत्ति, करोड़ो का धन चोर ले जाएँगे...तो मेरा क्या होगा?' ऐसा विचार भी नहीं आया। उसने तो सोचा कि 'जो वास्तव में मेरा है, उसको कोई ले जा नहीं सकता है और जो मेरा नहीं है, उसको कोई ले जाता है तो मुझे क्या? मेरा है सम्यक्ज्ञान, सम्यक्दर्शन और सम्यक्चरित्र। मेरे हैं अक्षय गुण! उसकी चोरी कोई नहीं कर सकता। यह भौतिक संपत्ति मेरी है ही नहीं। मैं क्यों चिन्ता करूँ उसकी?'

क्या था सुव्रत सेठ में?

ग्यारह करोड़ सोनामुहरों का मालिक क्या चिन्तन करता है? कुछ समझ में आता है? धन-दौलत के प्रति उसकी कैसी दृष्टि है? है कोई ममत्व? है कोई परिग्रह की वासना? धन के पर्वत पर बैठा है फिर भी उस पर्वत पर कोई राग नहीं! यदि संपत्ति पर राग होता, ममत्व होता तो क्या करता? पौषधव्रत को भंग कर देता! चिल्लाता... रक्षकों को बुलाता, धमाल कर देता वहाँ? चोरों को कैसी सजा करवाता? सुव्रत को चोरों के प्रति कोई रोष नहीं आया, द्वेष नहीं आया। जड़ पर राग होता तो जीव के ऊपर द्वेष अवश्य आता! जीव के प्रति राग था, जड़ के प्रति वैराग्य था, फिर द्वेष कहाँ से आता? जड़-राग और जीवद्वेष ही तो सर्व अनर्थों का मूल है। अनित्यादि भावनाओं के सतत

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अभ्यास से जड़-राग मिटाया था और मैत्री, करुणा आदि भावनाओं से जीवद्वेष दूर किया था उस महान श्रावक ने। धनवान होने पर भी धनप्रेमी नहीं था। श्रीमंत होने पर भी लक्ष्मीदास नहीं था। सुव्रत श्रेष्ठि तो परमात्मा के ध्यान में लीन हो गये! चोरों को तो मजा आ गया होगा न? धनमाल की गठरियाँ सिर पर उठाकर वे जाने लगे, परन्तु जाएँ कैसे? हवेली के द्वार पर ही चारों चोर चिपक गये! पैर जमीन के साथ ऐसे चिपक गये कि उखड़े ही नहीं! बहुत प्रयत्न करने पर भी बेचारे चिपके ही रहे! अब वे घबराये।

ज्ञानी पुरुषों ने कहा है : 'धर्मों रक्षति रक्षितः' आप अपने हृदय में धर्म को सुरक्षित रखो, धर्म आपकी सुरक्षा करेगा ही। जीवराग और जड़वैराग्य जैसा महान धर्म था सुव्रत के हृदय में! शुद्ध हृदय ही श्रेष्ठ धर्म था उसके पास! उसकी संपत्ति चोर कैसे ले जा सकते थे? दैवी तत्त्व जाग्रत हो गए...। चोरों को चिपका दिए जमीन से!

हाँ, एक बात बता दूँ यहाँ। सुव्रत ने कोई देव-देवी से प्रार्थना नहीं की थी कि 'हे क्षेत्र देवता, मेरी संपत्ति बचा लेना!' अथवा परमात्मा से भी प्रार्थना नहीं की थी कि 'हे भगवान, मेरी धनदौलत बचा लेना।' गृहस्थजीवन में भी अनासक्त योगी था सुव्रत श्रेष्ठि। उसके हृदय में धनसंपत्ति का राग ही नहीं था, फिर धनसंपत्ति को बचाने की प्रार्थना क्यों करे? अनासक्त हृदय ही महान धर्म है। अनासक्ति ही परमानन्द है और परम सुख है। जीवमात्र के प्रति मैत्री और करुणा जिस हृदय में भरी हो, वह हृदय कितना विशुद्ध, कितना निर्मल, कितना पवित्र और प्रशान्त होगा!

प्रातःकाल श्रेष्ठि ने अपना 'पौषधव्रत' पूर्ण किया और अपने कमरे से बाहर आये, उन्होंने चोरों को बुरे हाल में देखा! चोर बहुत घबराये हुए थे। श्रेष्ठि ने पूछा चोरों से : 'तुम यहाँ क्यों खड़े हो? चले क्यों नहीं गए अभी तक? कोतवाल आएगा तो पकड़ लेगा। तुम चले जाओ...जल्दी...।'

चोरों ने कहा : 'सेठ साब, हम कैसे चले जायं? हम तो जमीन से चिपक गये हैं। आपने कुछ किया है। कृपा करके 'हमको मुक्त करो। हम आपका सारा माल यहाँ छोड़कर जायेंगे। कभी चोरी नहीं करेंगे। हमको जाने दो।' सुव्रत ने चोरों को स्पर्श किया कि चोर चलने लग गये! परन्तु जायें कहाँ? उधर कोतवाल हाजर ही था! कोतवाल चारों चोरों को पकड़कर ले गया...राजा के सामने!

सुव्रत का सारा का सारा धनमाल बच गया न? फिर भी सुव्रत बेचैन था! माल बच जाय तो राजी होने का या नाराज? धनमाल बचने का आनन्द नहीं

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हो रहा है, चोर पकड़े गए और उनको सजा होगी...इस बात का दुःख हो रहा है सुव्रत को! 'राजा चोरों को सूली पर चढ़ा देगा। बेचारे चार आदमी मेरे धन के निमित्त मर जायेंगे...!' ऐसा सोच रहे हैं सुव्रत श्रेष्ठि।

आप क्या सोचेंगे ऐसे वक्त में! :

ऐसी घटना आपके वहाँ बने तो आप क्या करो? तुलनात्मक दृष्टि से सोचो जरा! धनसंपत्ति की लोलुपता क्या करवाये? चोर पकड़े जायें तो राजी या नाराज? अरे, नहीं पकड़े जायें तो पकड़वाने के लिए आकाश-पाताल एक कर दो! क्यों सही बात है न?

सभा में से : चोरों को तो सजा होनी चाहिए न?

महाराजश्री : यह सोचने से पहले यह सोचो कि इन्सान को चोरी क्यों करनी पड़ती है। चोरी के पाप से मनुष्य को बचाया जा सकता है या नहीं? सजा करने से, मारने से यदि वह चोरी का पाप छोड़ देता हो तो ठीक है, सजा करो! चोरी का पाप करनेवाला पहले तो करुणापात्र है, बाद में सजापात्र! सजा करने में भी हृदय तो करुणावाला ही चाहिए। 'कैसा पाप करता है यह जीव...। कितना दुःखी हो रहा है...?' उसके प्रति सहानुभूति चाहिए। सुव्रत श्रेष्ठि तो यह चाहते हैं कि 'चोरों को सजा नहीं होनी चाहिए, मैं उनको बचा लूँ, उनको मैं समझाऊँगा, वे चोरी नहीं करेंगे भविष्य में।'

उपवास का पारणा नहीं किया और पहुँचे राजमहल में राजा के पास। राजा को सुव्रत श्रेष्ठि के प्रति आदर था। राजा ने श्रेष्ठि का स्वागत किया और प्रातःकाल में आने का प्रयोजन पूछा। सेठ ने चोरों के लिए अभयदान माँगा। इतने में कोतवाल भी चारों चोरों को लेकर राजा के पास उपस्थित हुआ। सुव्रत जैसे धर्मात्मा की हवेली में चोरी करनेवाले चोरों के प्रति राजा को बड़ा गुस्सा आ गया। परन्तु सुव्रत ने राजा को शान्त करते हुए कहा : 'महाराजा, दोष इन चोरी करनेवालों का नहीं है, मेरा है। मैंने... मेरे जैसे श्रीमंत ने दुःखी मनुष्यों की चिन्ता नहीं की, उनके दुःख दूर करने का काम नहीं किया, इसलिए इनको चोरी का पाप करना पड़ रहा है। आप इनको मुक्त कर दें, मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि ये लोग अब चोरी नहीं करेंगे। उनको जो चाहिए मैं दूँगा।'

दुःखी को ही नहीं, दुःख को भी जानो :

दुःखी को सजा करने के बजाय दुःखी का दुःख दूर करने के लिए सोचो।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

चोरी करनेवाला पापी है, दुष्ट है, अधम है, ऐसा सोचने से पहले 'चोरी करनेवाला दुःखी है!' यह विचार करो। 'दुष्ट है', ऐसा सोचने पर द्वेष उभरेगा। 'दुःखी है' ऐसा विचार सोचने पर करुणा उभरेगी। सुव्रत चोरों को 'दुःखी' देखते हैं। इस भव में दुःखी और परभव के भी दुःखी। इसलिए उनके हृदय में करुणा उभरी।

सुव्रत की भाव करुणा का प्रभाव चोरों पर कितना गहरा पड़ा? चोर सुव्रत के चरणों में गिर पड़े। आँखों में से आँसू बहाते...गद्‌गद् स्वर से बोलने लगे : 'हे महात्मा पुरुष, हम कभी भी चोरी नहीं करेंगे। आपने हमको अभयदान दिया है। आपका उपकार कभी नहीं भूलेंगे। आपने हमारे भयंकर अपराध को क्षमा कर दिया। आप देवता पुरुष हो।'

राजा भी सुव्रत की अत्यन्त करुणा से काफी प्रभावित हुआ। सुव्रत का धर्मतेज हजारों सूर्य से भी ज्यादा चमकने लगा। जिस-जिस ने यह घटना सुनी होगी नगर में, उन सबके मन सुव्रत के प्रति कितने स्नेहयुक्त और श्रद्धायुक्त बने होंगे? करुणावंत पुरुष दूसरों के हृदय में धर्म की सच्ची स्थापना कर देते हैं। धर्म की श्रेष्ठ प्रभावना करुणावंत लोग ही करते हैं। जिसके पास धर्म हो, वह दूसरों को धर्म दे सकता है न? करुणायुक्त हृदय ही तो धर्म है। जिस हृदय में मैत्री, प्रमोद और करुणा नहीं, वहाँ धर्म है ही नहीं, फिर धर्मप्रभावना करेगा कैसे? दूसरों को धर्म देगा कैसे?

सुव्रत का एकादशी-आराधना का अनुष्ठान वास्तव में 'धर्म' था, क्योंकि वह अनुष्ठान जिनवचनानुसार था, यथोदित था और मैत्री-करुणा आदि शुद्ध भावनाओं वाला था। ऐसा अनुष्ठान ही 'धर्म' कहलाता है। धर्म की भाषा बराबर समझ लो। विस्तार से इसलिए समझा रहा हूँ कि आजकल 'धर्म' की मनमानी बहुत परिभाषाएँ होने लगी हैं। अपना स्वार्थ साधने के लिए अनेक धूर्त धर्म की बातें कर रहे हैं। हालाँकि ऐसी धूर्तता आजकल की नहीं है, हजारों वर्ष से चली आ रही है। इसलिए काफी सतर्क रहना पड़ता है। किसी से भी धर्म की बात सुनो, उस पर सोचना कि 'यह धर्मानुष्ठान जिनवचन से विपरीत तो नहीं है न? यथोदित है न? मैत्री-प्रमोद आदि भावनाओं से युक्त है न? मैत्रीभावना और करुणाभावना का विवेचन यहाँ पूरा करता हूँ। अब हम 'प्रमोदभावना' के विषय में चिन्तन करेंगे और तत्पश्चात् 'माध्यस्थ्य भावना' की अनुप्रेक्षा करेंगे।

आज, बस इतना ही।

❖ ❖ ❖

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

- ***आदमी को अपनी खुद की प्रशंसा सुनना ज्यादा अच्छा लगता है। स्वकेन्द्रित एवं अपने आपको औरों से अच्छा मानने-मनवानेवाला व्यक्ति हमेशा यही चाहता है : 'मेरी प्रशंसा हो। लोग सबसे ज्यादा मेरी तारीफ करें।'***
- ***दिमाग को जरा खुला रखकर थोड़ा सोचो तो सही : ईर्ष्या कितना भयंकर दोष है? ईर्ष्या का आवेग व्यक्ति को न तो गुरुवचन की इज्जत करने देता है और न ही विनय-विवेक की फुलवारी को खिला-खिला कर रख सकता है।***
- ***प्रमोदभावना के पानी से ईर्ष्या की आग बुझ जाती है। रोजाना, प्रतिदिन प्रमोदभावना का अभ्यास करो, सुखी और गुणी जीवों की कभी भी ईर्ष्या मत करो। उनकी बुराई मत करो।***
- ***'ईर्ष्या स्लो-पोइज़न' बनकर तन-मन को खत्म कर देती है।***

प्रवचन : १९

परम करुणावंत महान श्रुतधर आचार्यश्री हरिभद्रसूरीश्वरजी ने 'धर्मबिन्दु' ग्रन्थ में 'धर्म' की वास्तविक परिभाषा की है। हम इस परिभाषा को लेकर धर्मतत्त्व का चिन्तन कर रहे हैं।

प्रत्येक धर्मानुष्ठाने मैत्री, करुणा, प्रमोद और माध्यस्थ्य भावों से परिपूर्ण हृदय से होना चाहिए। इसका तात्पर्य यह है कि धर्म का परिशुद्ध हृदय के साथ घनिष्ट सम्बन्ध है। हृदय परिशुद्ध नहीं है और मनुष्य कितनी भी धर्मक्रियाएँ करे, वे क्रियाएँ 'धर्म' नहीं हैं। इसलिए हृदय को परिशुद्ध करना अत्यन्त आवश्यक है।

तत्त्वज्ञानी बन जाइए :

हृदय अनेक प्रकार के दोषों से मलिन है। जीवों के प्रति द्वेष, धिक्कार, मत्सर-ईर्ष्या और घृणा... बड़े दोष हैं। गंभीर दोष हैं। जीवस्वरूप के अज्ञान में से और कर्मसिद्धान्त के अज्ञान से ये सारे दोष पैदा होते हैं। जीवों का स्वरूप जानते हो? आप स्वयं जीव हैं न? आप अपना स्वरूप जानते हो?

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आपका स्वाभाविक स्वरूप क्या है और कर्मों के प्रभाव से प्रभावित वैभाविक स्वरूप क्या है, जानते हो? प्रत्येक संसारी जीवात्मा के दो स्वरूप होते हैं : स्वाभाविक और वैभाविक। सारे के सारे दोष वैभाविक स्वरूप का उत्पादन हैं। सारे के सारे गुण स्वाभाविक दशा का 'प्रोडक्शन' हैं! यदि यह तत्त्वज्ञान पा लो तो जीवों के प्रति आपके हृदय में द्वेष, धिक्कार, ईर्ष्या और घृणा जैसे दुष्ट भाव पैदा नहीं हो सकते। यह तत्त्वज्ञान जिन महापुरुषों ने आत्मसात् किया होता है उनके हृदय में जीवों के प्रति मैत्री, करुणा, प्रमोद और माध्यस्थ्य भाव बने रहते हैं। मोह और अज्ञान से ग्रस्त जीव भले ही द्वेष करें, ईर्ष्या करें, धिक्कार और घृणा करें, उनके प्रति भी तत्त्वज्ञानी द्वेष नहीं करेंगे, ईर्ष्या नहीं करेंगे। उनको धिक्कारेंगे नहीं, उनका तिरस्कार नहीं करेंगे। तत्त्वज्ञानी तो बनना पड़ेगा! तत्त्वज्ञान आत्मसात् करना पड़ेगा।

मैत्री की भावना से शत्रुता का दोष दूर होता है, करुणाभावना से धिक्कार का दोष नष्ट होता है, ईर्ष्या का दुर्गुण प्रमोदभावना से दूर किया जाता है और घृणा की वासना माध्यस्थ्य भावना से नष्ट होती है।

ईर्ष्यालु मत बनिए :

जीवों के प्रति ईर्ष्या का दोष बहुत खतरनाक है। ईर्ष्या को 'मत्सर' भी कहते हैं। ईर्ष्या से मनुष्य अपनी चित्तशान्ति, चित्तप्रसन्नता खो देता है। ईर्ष्या रोष उत्पन्न करती है। दूसरे जीवों का सुख देखकर, दूसरों की उन्नति देखकर अपने हृदय में आनंद नहीं होता है, खुशी पैदा नहीं होती है, प्रेम जाग्रत नहीं होता है तो समझना कि अपना हृदय ईर्ष्या से भरा हुआ है। ईर्ष्याग्रसित मन अशान्त और बेचैन ही बन रहता है। ऐसे मन का दुष्प्रभाव तन पर पड़ता है और तन रोगग्रस्त बन जाता है। ईर्ष्यालु मनुष्य का शरीर आप देखना, वह निरोगी नहीं होगा।

हृदय में ईर्ष्या भरी पड़ी हो और वह कितनी भी धर्मक्रियाएँ करें, वे धर्मक्रियाएँ मात्र जड़ क्रियाएँ बनी रहेंगी, वे 'धर्म' नहीं बन सकती। ईर्ष्या से तो मनुष्य का पतन ही होता है! फिर वह गृहस्थ हो या साधु हो! बालक हो या बूढ़ा हो! स्त्री हो या पुरुष हो! उसका पतन ही होगा।

एक प्रसिद्ध कहानी :

शास्त्रों में एक उदाहरण आता है, ऐतिहासिक उदाहरण है। एक आचार्य थे, संभूतिविजय उनका नाम था। उनके अनेक शिष्य थे। कोई बड़े तपस्वी थे,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कोई बड़े त्यागी और कठोर साधना करनेवाले थे। एक दिन मगध की राजधानी पाटलीपुत्र में एक युवक ने संभूतिविजय के चरणों में जीवन समर्पित किया। वह युवक था पाटलीपुत्र का महामंत्री शकडाल का पुत्र स्थूलभद्र!

स्थूलभद्रजी की प्रशंसा स्वयं गुरुदेव करते हैं :

आप लोग स्थूलभद्रजी के जीवनचरित्र से परिचित हो न? आप जानते हो कि स्थूलभद्रजी ने चारित्र्यधर्म स्वीकार कर, गुरुदेव की आज्ञा पाकर, प्रथम चातुर्मास अपनी पूर्व-प्रियतमा 'कोशा' नाम की नृत्यांगना के वहाँ किया था। क्योंकि वे नृत्यांगना को भी धर्म का मार्ग बताना चाहते थे! और बताया भी! कोशा को 'श्राविका' बना दिया। बारह व्रत दिये उसको और जब वे अपने गुरुदेव के पास पहुँचे, गुरुदेव ने उनका मधुर शब्दों से स्वागत किया। 'तुमने दुष्कर... दुष्कर... दुष्कर कार्य किया। स्वयं निर्विकार रहे और कोशा को धर्म प्रदान किया! धन्य हो तुम स्थूलभद्र!'

सिंहगुफावासी जल उठे ईर्ष्या से :

जिस समय गुरुदेव ने स्थूलभद्रजी की प्रशंसा की, उस समय वहाँ दूसरे शिष्य उपस्थित थे। वे भी अलग-अलग स्थानों में वर्षाकाल व्यतीत करके आये थे। अच्छी साधना करके आये थे। गुरुदेव ने उन सबका भी अच्छे शब्दों में अभिवादन किया था, परन्तु स्थूलभद्रजी का कुछ ज्यादा अभिवादन किया! दूसरों से यह कैसे सहन हो? एक मुनि चार महीने सिंह की गुफा के द्वार पर व्यतीत करके आये थे! उनमें ईर्ष्या उभर आई। स्थूलभद्र की प्रशंसा सुनकर उनका हृदय जलने लगा। वे सोचने लगे : 'गुरुदेव ने स्थूलभद्र की भरसक प्रशंसा इसलिए की क्योंकि वे महामंत्री के पुत्र थे। क्या बड़ी साधना की उसने? नृत्यांगना के वहाँ प्रतिदिन अच्छा-अच्छा भोजन किया, नृत्यांगना के नृत्य देखे। मजा किया है इसने चार महीना। कौन-सी दुष्कर साधना की है? फिर भी गुरुदेव ने उसकी भरसक प्रशंसा की और मैंने कितनी कठोर साधना की? फिर भी उतनी प्रशंसा मेरी नहीं की। इसमें क्या है? मैं भी आगामी वर्षावास व्यतीत करने कोशा के वहाँ जाऊँगा... फिर देखता हूँ कि गुरुदेव मेरी प्रशंसा करते हैं या नहीं!'

सिंहगुफावासी मुनि सिंह की गुफा के द्वार पर चार महीने रह सकते थे... चार-चार महीने के उपवास भी कर सकते थे... परन्तु दूसरे मुनि की प्रशंसा प्रेम से सुन नहीं सकते थे! प्रमोदभावना से उनका हृदय विशुद्ध नहीं था। ईर्ष्या

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

से मलिन था उनका हृदय! जैन शासन में ऐसी साधना का कोई मूल्य नहीं है। ऐसी तपश्चर्या को मुक्ति का कारण नहीं माना है। दूसरों के गुणों के अनुरागी बने बिना, दूसरों के सुख देखकर प्रमोद किये बिना घोर तपश्चर्या भी निष्फल जाती है। घोर तपस्वियों का भी पतन होता है। सिंहगुफावासी मुनि का हृदय स्थूलभद्रजी के प्रति ईर्ष्या से जलने लगा। ईर्ष्या की आग में उनका सुकृत भी जल गया! उनकी शान्ति भी जल गई। उनके मन में तो एक ही बात थी-मैं आगामी वर्षाकाल उस नृत्यांगना के आवास में व्यतीत करूँगा...। फिर गुरुदेव मेरी भी वैसी प्रशंसा करते हैं या नहीं, देखूँगा। नृत्यांगना के आवास में वर्षाकाल व्यतीत करना कौन-सी बड़ी साधना है? मैं भी स्थूलभद्र से कोई कम नहीं हूँ।'

प्रशंसा, अपनी प्रशंसा सुनना, एक बड़ा सुख है। अपनी प्रशंसा दूसरों की प्रशंसा ज्यादा हो, ईर्ष्यालु मनुष्य को जरा भी पसन्द नहीं आता। वह तो यह चाहता है कि 'मेरी ही प्रशंसा हो! सबसे ज्यादा मेरी प्रशंसा हो!' उसको दूसरों की निन्दा सुनने में मजा आता है! उसको दूसरे के दुःख जान कर मजा आता है! ईर्ष्यालु मनुष्य सुनेगा कि 'फलां व्यक्ति खूब दुःखी हो रहा है', तो वह खुश होगा। दूसरों के सुख से उसको हमेशा ज्यादा सुख चाहिए!

अपने आपको बड़ा मानना खतरनाक हो सकता है :

सिंहगुफावासी मुनि को प्रशंसा का सुख कम पड़ गया। स्थूलभद्र से भी उनको ज्यादा प्रशंसा चाहिए थी! और जब वर्षाकाल निकट आया, उन्होंने जाकर गुरुदेव से कहा :

'मैं यह वर्षाकाल कोशा नृत्यांगना के वहाँ व्यतीत करना चाहता हूँ।' गुरुदेव ने बहुत कोमल शब्दों में कहा : 'वत्स! कोशा के वहाँ वर्षाकाल व्यतीत करना और निर्विकार रहना, एक स्थूलभद्र के लिए ही संभव है, तेरे लिए नहीं और मेरे लिए भी नहीं!'

परन्तु सिंहगुफावासी मुनि गुरुदेव की बातें कैसे मान लें? उनको तो जाना ही था कोशा के वहाँ। उन्होंने गुरुदेव की बात नहीं मानी। गुरुदेव ने उनको काफी समझाया, परन्तु वे नहीं माने और कोशा के निवास पहुँच ही गए।

ईर्ष्या से जीव पतित बनता है :

ईर्ष्या ने गुर्वाज्ञा का अनादर करवाया। गुरुदेव की सच्ची बात नहीं मानने दी। 'सोचो, दिमाग से सोचो। ईर्ष्या कितना भयंकर दोष है। ईर्ष्या थी

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

स्थूलभद्र के प्रति, अनादर करवाया गुरुवचन का! सिंह की गुफा के द्वार पर खड़ा रहना सरल है, वेश्या के घर में निर्विकार रहना सरल नहीं है।' यह बात सिंहगुफावासी मुनि नहीं मान सके। 'यदि स्थूलभद्र निर्विकार रह सकते हैं तो मैं क्यों न रह सकूँ? मैं स्थूलभद्र से कम हूँ क्या?'

ईर्ष्याभरपूर आदमी अपनी आत्मस्थिति का वास्तविक दर्शन नहीं कर सकता है। अपनी भूमिका नहीं समझ सकता है। अपनी शक्ति-सामर्थ्य का सही मूल्यांकन नहीं कर सकता है। ईर्ष्याग्रसित मनुष्य हमेशा अपने आपको बड़ा ऊँचा मानता है। दूसरों से अपने को महान मानता है। कोई ज्ञानीपुरुष उसको समझायें तो भी वह नहीं समझ सकता।

गुरुदेव ने तो अपनी आचार-मर्यादा के अनुसार कह दिया : 'जहा सुखं देवाणुप्पिया! 'जैसे तुझे सुख हो वैसे कर सकता है!' साधु-जीवन की यह मर्यादा है। कोई अविनीत, उद्धत शिष्य गुरु की बात नहीं माने तो गुरु 'जहा सुखं...' कह दें। इससे गुरु का मन खिन्न नहीं होता है और व्याकुल नहीं बनता है। गुरु तो जानते हैं जीवों की वैभाविक अवस्था को! कर्मों के दुष्प्रभाव से ग्रसित मनुष्य कैसा गलत आचरण करता है, वह गुरुदेव भलीभांति जानते हैं।

कोशा के द्वार पर :

सिंहगुफावासी मुनि पहुँच गए कोशा नृत्यांगना के निवासस्थान पर। मुनि ने द्वार पर पहुँचते ही 'धर्मलाभ!' शब्द का उच्चारण किया। घर में से कोशा 'धर्मलाभ' शब्द सुनते ही अपने वस्त्र ठीक कर, बाहर आई। उसने संपूर्ण सादगी अपनाई थी। अब वह श्राविका बनी हुई थी। मुनिजीवन के प्रति उसके मन में आदरभाव था। उसने मस्तक नमाकर वन्दना की और पूछा : 'कहिए मुनिवर, मेरे यहाँ पधारने की कृपा किसलिए की?'

मुनि तो कोशा का रूप और कोशा के शब्द से ही विचलित हो गए! उन्होंने कभी कोशा का रूप देखा नहीं था। मगध की प्रसिद्ध नृत्यांगना का रूप असाधारण था। उसके शब्द भी वैसे माधुर्यप्रचुर थे। रूप और शब्द ने उस मुनि के सत्त्व को पल-दो पल में पराजित कर दिया। वे तो टकटकी लगाकर कोशा की ओर देखते ही रह गए। चतुर कोशा मुनि के बदलते भावों को भाँप गई! मुनि ने अपनी हिम्मत जुटाकर कहा : 'मुझे तेरे वहाँ वर्षावास व्यतीत करना है! कोशा ने समझ लिया कि 'ये महाराज स्थूलभद्रजी का अनुकरण करने आए हैं!'

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कोशा भी समझदार श्राविका बन गई थी :

कोशा के हृदय में मुनि के प्रति गुस्सा नहीं आया, करुणा आई। 'यह मुनि पथभ्रष्ट बन जायेंगे, पर मैं उनको पथभ्रष्ट नहीं होने दूँगी। क्योंकि मैं अब श्राविका हूँ। श्रमणोपासिका हूँ। मेरा कर्तव्य है कि कभी पापकर्मों के उदय से मनुष्य पथभ्रष्ट बन जाता हो तो उसको पथभ्रष्ट नहीं होने देना। परन्तु इस समय इस मुनि को उपदेश देने से अच्छा परिणाम नहीं आएगा... इनको सच्चा भान कराने के लिए दूसरा उपाय करना होगा।' कोशा ने तुरन्त ही मुनिराज से कहा :

'महाराज! आप जानते हो न कि हम लोग तो वेश्या हैं। वेश्या को तो पैसे से संबंध होता है। आप पैसे लाए हो?'

अब मुनि विचार में पड़ गए! उन्होंने कहा : 'मेरे पास पैसे तो नहीं हैं! मैं पैसा कहाँ से लाऊँ?'

कोशा ने कहा : 'कहीं से भी लाइए! पैसे के बिना मेरे यहाँ नहीं रह सकते। जाइए नेपाल! नेपाल का राजा साधु-संतों का भक्त है। लाख रूपये की कम्बल भेंट देता है। आप यदि वह रत्नकम्बल ले आते हैं तो मेरे यहाँ रह सकते हैं और सुख पा सकते हैं!'

मुनि के दिल-दिमाग पर अब कोशा छा गई थी। कोशा के रूप ने मुनि को विकारविनाश बना दिया था। कोशा के शब्दों ने और हावभावों ने मुनि के वैराग्य को नष्ट कर दिया था। वे अपने साधुपन को भूल गए और रत्नकम्बल लाने नेपाल की ओर चल पड़े!

ईर्ष्या तो आग है :

किसलिए वे कोशा के वहाँ आए थे और क्या हो गया? कुछ समझते हो या नहीं? ईर्ष्या से मनुष्य का पतन किस प्रकार होता है, समझ गए न? जब ऐसे तपस्वी और शूरवीर मुनि का भी पतन हो जाता है तो फिर आप लोगों का क्या होगा? इसलिए कहता हूँ कि ईर्ष्या का त्याग करो, प्रमोदभावना से ईर्ष्या दूर होती है। प्रमोदभावना का प्रतिदिन अभ्यास करो। सुखी और गुणवानों की ईर्ष्या कभी मत करो। कम से कम अपने स्नेही-स्वजन और संबंधी स्त्री-पुरुषों की तो निन्दा, ईर्ष्या मत करो। भाई भाई की ईर्ष्या कर रहा है! सास बहू की और बहू सास की, पिता पुत्र की और पुत्र पिता की ईर्ष्या कर

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

रहा है। अरे, त्यागमार्ग में भी जब ईर्ष्या का प्रवेश हो गया है, फिर संसार की बात क्या करूँ? गुरु शिष्य की और शिष्य गुरु की ईर्ष्या में जल रहा है! एक साधु दूसरे साधु की ईर्ष्या में तड़प रहा है। घोर विषमता छाई हुई है। ईर्ष्याभरे हृदय में 'धर्म' कैसे हो सकता है? अशुद्ध हृदय में धर्म नहीं रह सकता है।

दूसरे जीवों का भौतिक या आध्यात्मिक सुख देखकर ईर्ष्या मत करो। दूसरों के पास आपसे ज्यादा वैषियिक सुख हैं, आपसे ज्यादा आध्यात्मिक सुख है, आप उनके प्रति सद्भावना रखो, ईर्ष्या करने से यदि उनका सुख आपके पास आ जाता हो तो आप भले ईर्ष्या करें! दूसरों का सुख तो आपके पास आएगा नहीं बल्कि आपका आन्तर-बाह्य सुख चला जाएगा जरूर!

सिंहगुफावासी चले नेपाल की ओर :

अपनी प्रशंसा से स्थूलभद्रजी की प्रशंसा ज्यादा हुई और सिंहगुफावासी मुनि ईर्ष्या से सुलगने लगे! गुरुदेव का अनादर कर वे वेश्या के घर गए और वहाँ से वर्षाकाल में विहार कर के नेपाल गए! कोशा का रूपदर्शन करने के बाद 'मैं मुनि हूँ और मैं यहाँ वर्षावास करने आया हूँ'... यह बात भूल गए! अब उनका मन कोशा-संग के लिए आतुर हो गया। कोशा के लिए रत्नकम्बल लेने नेपाल चले गए! साधुता से गिरने लगे। पतन की गहरी खाई की ओर तीव्र गति से आगे बढ़ने लगे।

नेपाल पहुँचे, राजा से रत्नकम्बल मिल गया। मुनि खुश-खुश हो गए। शीघ्र ही पाटलीपुत्र के लिए रवाना हो गए। रास्ते में तकलीफें बहुत पाई...। परन्तु आखिर पाटलीपुत्र पहुँच गए। नृत्यांगना के वहाँ पहुँचे। वेश्यासंग की प्रचुर वासना से अभिभूत मुनि, कोशा के सामने जाकर खड़े रहे और बोले : 'प्रिये, तेरे लिए नेपाल जाकर यह लाख रूपये के मूल्य का रत्नकम्बल ले आया हूँ।' इतना कहकर रत्नकम्बल कोशा को दे दिया।

रत्नकम्बल को डाला गटर में :

कोशा ने भी रत्नकम्बल का मुनि से स्वीकार किया और बोली : 'आपने बहुत कष्ट उठाया' नहीं? वर्षाकाल में नेपाल जाकर आए। आपका मेरे प्रति कितना स्नेह है!' मुनि तो कोशा के एक-एक शब्द को अमृत का घूँट मानकर खूब प्रेम से पी रहे हैं। सुख पाने की कल्पना ने उनको बेहोश कर डाला है। कामवासना ने उनके विवेक सौष्ठव का ध्वंस कर डाला है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कोशा ने रत्नकम्बल लेकर उसको दो टुकड़े कर दिए और अपने पैरों को पोंछ कर वहीं पर गटर में डाल दिया! मुनि तो हक्केबक्के रह गए... व्याकुल चित्त से बोल उठे : 'अरे! क्या कर दिया तूने? लाख रूपये का कम्बल गटर में डाल दिया? मैंने कितनी मेहनत कर....' मुनि की आँखों में आँसू भर आए। कोशा के मुख पर नहीं थी ग्लानि, नहीं थी व्याकुलता! कोशा ने मुनिराज से कहा :

कोशा का सटीक प्रत्युत्तर :

'हे सिंहगुफावासी मुनि! शोक मत करो, लाख रूपये का रत्नकम्बल तो दूसरा भी मिल जाएगा, परन्तु आप अरबों रूपये देने पर भी नहीं मिलें वैसे पाँच महाव्रत संसार की गटर में फेंक रहे हो-मुझे इस बात का भारी दुःख है। आप मेरे रूप में मोहान्ध बन गए। वर्षाकाल में नेपाल गये। मुझे पाने के लिए रत्नकम्बल ले आए और अब आप अपना पवित्र साधुजीवन छोड़कर संसार के असार... तुच्छ वैषयिक सुख पाने को लालायित हो गए। कुछ सोचो। गम्भीरता से सोचो। मैं जानती हूँ कि आप महामुनि स्थूलभद्रजी का अनुकरण करने आये थे।'

सिंहगुफावासी मुनिवर! सिंह की गुफा के द्वार पर चार महीना निर्भय बनकर रहना सरल है, रूप और यौवन से छलकती यौवना के सामने निर्विकार रहना दुष्कर ही नहीं, अति दुष्कर है। ऐसा अति दुष्कर कार्य एक मात्र स्थूलभद्रजी कर सकते हैं। आप उनका गलत अनुकरण करने चले और मेरे सामने आते ही कामपरवश बन गये। स्थूलभद्रजी का प्रकर्ष आपसे सहा नहीं गया, आप ईर्ष्या से जलने लगे और गलत रास्ते पर उतर आए।'

मुनि तो कोशा की बातें सुनकर स्तब्ध हो गए। उनका कामोन्माद शान्त हो गया। मुनि होश में आ गए! कोशा ने नम्रता से, विनय से और सभ्यता से मुनि को जो कहना था कह दिया। उसने दृढ़ स्वर में कहा : 'हे महामुनि! श्री स्थूलभद्रजी ने मुझे व्रतधारी श्राविका बनाया है। आप मुझे मात्र नृत्यांगना मानकर आए, वह आपकी भूल है। चार-चार महीने मैंने स्थूलभद्रजी के सामने नृत्य किए थे, गीत गाए थे और उनको षड्रस से भरपूर भोजन कराये थे, फिर भी वे महामुनि विकारी नहीं बने! विचलित नहीं हुए। मैंने अपना पराजय स्वीकार किया, उनको मैंने कामविजेता के रूप में पाया।

आप भी महामुनि हैं। आपने अपने जीवन में अनेक कठोर साधनाएँ की हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आप अपनी साधना की मंजिल पर आगे बढ़ते रहें। संसार के वैषयिक सुख तालपुट जहर से भी ज्यादा खतरनाक है। दिखने में वे सुख बड़े सुन्दर दिखते हैं... परन्तु तत्काल भावप्राणों का नाश करते हैं। मेरी आपसे करबद्ध प्रार्थना है कि आप अपने संयम में सुस्थिर बन जाएँ और मोक्ष पाने का, मुक्ति पाने का लक्ष्य कभी भी चूकें नहीं।

हे मुनिवर! जब बात चली तो कह देती हूँ कि सच्चा सुख संयम धर्म में ही है। मेरे मन में भी संयम धर्म बस गया है। क्या करूँ मैं? पराधीन हूँ, विवश हूँ... अन्यथा अभी की अभी संसार छोड़कर चारित्र्यधर्म अंगीकार कर लेती। आपका अनन्त पुण्य का उदय है.... आपको महान चारित्र्यधर्म मिल गया है। अनन्त अनन्त जन्मों के पाप आपके धुल गए। आप कितनी अपूर्व कर्मनिर्जरा कर रहे हो! धन्य है आपका चारित्र्यजीवन...।'

सिंहगुफावासी वापस संभल गए :

सिंहगुफावासी मुनि जमीन पर दृष्टि गड़ाये खड़े थे। आँखों में आँसू भर आये थे। हृदय घोर पश्चात्ताप से जल रहा था। कोशा के प्रति सच्चा प्रमोदभाव जाग्रत हो गया था। श्री स्थूलभद्रजी के प्रति अब ईर्ष्या का दुर्भाव नहीं रहा था। उनके प्रति भी अपूर्व प्रमोदभाव छलकने लगा था। मुनिवर ने कोशा कहा :

'कोशा, तू सचमुच जिनशासन की सच्ची श्राविका है। मुझे पथभ्रष्ट होते तूने बचा लिया। दुर्गति में गिरते गिरते मेरा हाथ पकड़ लिया, मुझे बचा लिया। मुझ पर तेरा यह महान उपकार है... मैं तेरा यह उपकार कभी नहीं भूलुँगा। तूने मेरी मोहदशा मिटा दी, मुझे ज्ञानदृष्टि दे दी। अब मैं गुरुदेव के चरणों में जाऊँगा, मेरी गलतियों का प्रायश्चित्त करूँगा और आत्मकल्याण की साधना में लीन बनूँगा। श्री स्थूलभद्रजी जैसे कामविजेता महामुनि की पदरज मेरे सिर पर चढ़ाऊँगा... धर्मलाभ... मैं अब जाता हूँ।'

मुनि तो गुरुदेव के पास पहुँच गए और प्रायश्चित्त कर आत्मभाव को विशुद्ध कर लिया, परन्तु आप लोग कुछ समझे या नहीं? कोशा ने जो बातें महामुनि को सुनाईं, जिस प्रकार और जिस समय सुनाई हैं, यह महत्त्वपूर्ण है।

कोशा की ज्ञानदृष्टि व उदारता :

(१) गिरती हुई आत्मा को बचा लेने की परम करुणा चाहिए। कोशा के

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हृदय में यह परम करुणा थी। उसने ऐसा नहीं सोचा कि : 'मेरे गुरुदेव श्री स्थूलभद्रजी के प्रति ईर्ष्या होने से, उनकी तुलना करने यहाँ आए हैं... तो बता दूँ इसको, फँसा दूँ मेरे मोहपाश में गिरा दूँ इस ईर्ष्यालु को।' ऐसा गंदा और निम्न स्तर का विचार कोशा ने नहीं किया।

(२) कोशा ने मुनि को अपने घर आते ही और चातुर्मास करने की बात कहते ही उपदेश देना शुरू नहीं किया, बल्कि उनको नेपाल भेजा, रत्नकम्बल भी मँगवाया और बाद में जब रत्नकम्बल का मूल्य मुनि ने बताया, तब कोशा ने महाव्रतों का मूल्य बताया! उपदेश देने मात्र से कर्तव्य पूर्ण नहीं हो जाता है। उपदेश देकर गिरती हुई आत्मा को बचा लेने में कर्तव्यपूर्णता होती है।

(३) कोशा ने जो उपदेश दिया, बड़े विनय से, बड़ी गम्भीरता से और मुनिराज की मर्यादा का पालन करते हुए दिया। कोशा की बातों में कटुता नहीं थी, तिरस्कार नहीं था। मुनिराज के गुणों की प्रशंसा भी की थी।

आज ऐसी श्राविकाएँ कहाँ?

श्राविकाएँ यदि ऐसी हों और कभी कोई मुनि का पापोदय जाग्रत हो, तो श्राविका मुनि की अनुचित प्रार्थना का स्वीकार तो नहीं करें, वरन् मुनि को ऐसी बातें कहें कि मुनि होश में आ जाय। मुनि का कामोन्माद शान्त हो जाय।

आज तो दुर्भाग्य है अपना। ऐसी श्राविकाएँ लाएँ कहाँ से? अपने पतिदेवों को भी मार्ग पर... सन्मार्ग पर रखे तो बहुत है! श्राविका स्वयं सन्मार्गस्थित रहे तो भी बहुत है! आजकल श्राविकाएँ भी बीभत्स सिनेमा देखने जाती हैं, क्लबों में जाती हैं... अनेक व्यसनों की शिकार बन गई हैं। ऐसी श्राविकाओं से कौन-सी अपेक्षाएँ रखी जाय? कभी-कभी तो ऐसा सुनने को मिलता है कि अच्छे संयमी मुनि को ऐसी महिलाएँ गिराने का काम करती हैं। मुनि में भी रूप यौवन देखा, कि उसको भी पतित करने में देर नहीं!

सभा में से : मुनि का मन स्थिर हो तो औरत क्या कर सकती है?

महाराजश्री : मुनि का मन सदैव स्थिर रहे, ऐसा नियम नहीं है। कभी मोहनीय कर्म का प्रबल उदय आ भी सकता है। उस समय यदि सामने जिनशासन की श्राविका हो तो मुनि की कामाग्नि में घी डालने की चेष्टा नहीं करेगी, पानी डालने का काम करेगी। मुनि की कामवासना संतुष्ट करने की प्रवृत्ति नहीं करेगी, कामवासना को शान्त-उपशान्त करने का काम करेगी।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

चित्त के भाव भी तीन तरह के होते हैं :

आप लोग क्या मुनि-जनों को परिपूर्ण समझते हो? परिपूर्ण बनने का वे प्रयत्न करते हैं, पुरुषार्थ करते हैं, परिपूर्ण नहीं हैं। मुनि के चित्तपरिणाम भी तीन प्रकार के होते हैं :

१. वर्धमान २. हीयमान ३. अवस्थित।

प्रत्येक संसारी जीवात्मा की चित्तस्थिति ऐसी होती है। कभी अच्छे विचारों की धारा बहती रहे, कभी अच्छे विचार उतरते रहें और कभी अच्छे विचार स्थगित से... एक से बने रहें। वैसे ही बुरे विचारों में भी। बुरे विचार कभी बढ़ते रहते हैं, कभी घटते रहते हैं, तो कभी बुरे विचार एक सरीखे बने रहते हैं। मुनि का जीवन ऐसा होता है कि उनके मन में अच्छे विचार ज्यादा समय वर्धमान रह सकते हैं अथवा अच्छे विचार अवस्थित ज्यादा समय रहते हैं। परन्तु कभी मोहोदय हो जाता है तो अच्छे विचार चले जाते हैं और बुरे विचार हावी बन जाते हैं! उस समय यदि विवेकी पात्र सामने हो, ज्ञानी और समझदार पात्र सामने हो, तो मुनि के मोहोदय को शान्त कर सकता है। यदि पात्र अविवेकी, अज्ञानी और मोहग्रस्त मिल गया, तो काम तमाम हो जाएगा। सिंहगुफावासी मुनि का उतना पुण्योदय था कि उनके सामने कोशा जैसी विवेकी और ज्ञानी श्राविका थी। व्यवसाय से भले ही वह नृत्यांगना थी, परन्तु हृदय से एवं जीवनपद्धति से वह श्राविका थी। विषयोपभोग करने पर भी वह विषयोपभोग को उपादेय नहीं मानती थी। विषयोपभोग में उसकी आसक्ति नहीं थी। यदि ऐसा नहीं होता तो लाख रूपये का रत्नकम्बल ललचाने के लिए पर्याप्त था!

लालच सचमुच बुरी बला है :

आजकल दो रूपये का सिनेमा की टिकट भी ललचा देता है। कई मध्यम एवं गरीब परिवारों की लड़कियाँ एवं महिलाएँ दो रूपये के सिनेमा के टिकट पर अपना शील बेच देती हैं। लाख रूपये का माल मिलने पर तो पूरी जिन्दगी भी बेच दें! पैसे का लालच दुनिया में बड़ा लालच है। अच्छे-अच्छे लोग भी पैसे के लालच में गिर जाते हैं। लाख रूपये का रत्नकम्बल कोशा को नहीं ललचा सका! नृत्यांगना थी न? वेश्या कहते हो न कोशा को? वेश्या ही होती तो लाख रूपये का रत्नकम्बल उसको ललचाता या नहीं? इतना ही नहीं, कोशा ने तो महान परोपकार किया! चंचलचित्त बने मुनि को स्थिरचित्त बना

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दिया। मोह के अन्धकार में ज्ञान का रत्नदीपक जला दिया! कोशा इसलिए सच्ची श्राविका थी।

ऐसी ज्ञानी और विवेकी श्राविकाएँ जिनको नहीं मिली थीं, ऐसे कई महामुनि... जो कि कामवासना से ग्रसित हो गये थे, उनका पतन ही हुआ था। आषाढाभूति महामुनि का पतन क्यों हुआ? वे दो लड़कियाँ... जो एक नटराज की पुत्रियाँ थीं, श्राविकाएँ नहीं थीं, आषाढाभूति का पतन कर दिया दोनों ने मिलकर। नन्दीषेण महामुनि को वेश्या मिली थी, श्राविका नहीं थी, तो पतन हो गया था। अरणिक मुनि का पतन भी इसी वजह से हुआ था, वह महिला श्राविका नहीं थी।

श्राविका कब कही जाती है?

जैन परिवार में जन्म होने मात्र से कोई महिला श्राविका नहीं बन जाती है। मंदिर में जाने मात्र से, उपाश्रय में जाने मात्र से, सामयिक-प्रतिक्रमण की क्रियाएँ करने मात्र से श्राविका नहीं बना जाता। श्राविका बनने के लिए, श्राविका बने रहने के लिए अच्छा मनोबल चाहिए, अच्छा ज्ञान चाहिए, विवेक और पारलौकिक दृष्टि चाहिए। आज ये सारी बातें कहाँ से लायें? मनोबल खतम जैसा बन गया है। ज्ञान, तत्त्वज्ञान तो है ही नहीं। विवेक नष्ट होता जा रहा है और पारलौकिक दृष्टि रही नहीं है। वर्तमान जीवन के ही सुख-दुःखों के विचारों में मनुष्य उलझ गया है। ऐसी महिलाओं से कोई असाधारण, असामान्य आशा रखना व्यर्थ है। जो अपने जीवन को नहीं बना सकतीं, अपने परिवार के जीवन को नहीं बना सकतीं, वह दूसरों के जीवन-विकास में, आत्मकल्याण में कैसे सहायक बन सकती हैं? गिरते हुए मनुष्यों को कैसे बचा सकती हैं?

प्रमोदभावना से सदा खिले-खिले रहो :

ज्यों सिंहगुफावासी मुनि के अन्तःकरण में श्री स्थूलभद्रजी के प्रति प्रमोदभाव आया, उनकी अपनी भूल समझ में आ गई। पुनः संयमधर्म में स्थिरता प्राप्त हो गई। समताभाव में स्थिरता प्राप्त हो गई। दूसरे जीवों के प्रति ईर्ष्या न रहे और दूसरे जीवों के गुण देखकर प्रमोदभाव जाग्रत हो जाए, बस, समतासागर में गोते लगाते रहो और अपूर्व आनन्द पाते रहो। मन की प्रसन्नता निरन्तर बढ़ती जाएगी और आपके आत्मगुण विकसित होते जायेंगे।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्री शान्तसुधारस ग्रन्थ में उपाध्याय श्री विनयविजयजी ने कहा है :

प्रमोदमासाद्य गुणैःपरेषां येषां मतिर्मज्जति साम्यसिन्धौ।
देदीप्यते तेषु मनःप्रसादो गुणास्तथैते विशदी भवन्ति ।।

'दूसरों के गुण देखकर जिनको प्रमोद होता है उनकी मति सदैव समतासागर में निमज्जन करती है, उनका मनःप्रसाद शोभायमान होता है और उनके गुण विशेष रूप से विशद बनते हैं।'

इसलिए वे महापुरुष अपने आपको सम्बोधित कर कहते हैं :

विनय, विभावय गुणपरितोषम्।
परिहर दूरं मत्सरदोषम् ।।

'गुणवान पुरुषों के तू गुण ही गुण देख। गुण देखकर ही प्रसन्न रह, ईर्ष्या-दोष को दूर त्याग दे।'

प्रत्येक जीव में गुण तो होगा ही :

एक बात समझ लो! इस संसार में आपको कोई सम्पूर्ण गुणवान मनुष्य तो मिलेगा नहीं। जिनमें एक भी दोष न हो, सबके सब गुण हों, वैसा व्यक्ति मिलेगा नहीं। हर इन्सान में कोई न कोई दोष तो होगा ही। छद्मस्थ जीवात्मा में अनन्त दोष होते हैं। ऐसी वास्तविक स्थिति में, दूसरे जीवों में गुण देखना है। काम इतना सरल नहीं है। हालाँकि प्रत्येक जीवात्मा में गुण होते हैं अवश्य! देखने की दृष्टि चाहिए। दृष्टि हो तो गुण देखेंगे। गुणदृष्टि से ही गुण दिखते हैं। दोषदृष्टि से दोष ही दिखाई देंगे। दोषदर्शन करनेवाले में प्रमोदभाव हो नहीं सकता। प्रमोदभाव के बिना धर्मतत्त्व पाया नहीं जा सकता।

अनन्त जन्मों से जीवों में ईर्ष्या-मत्सर दोष सहज हो गया है। उस दोष को मिटाने का लक्ष्य बनना चाहिए। 'मेरे जीवन में ईर्ष्या को जरा-सा भी स्थान नहीं होना चाहिए।' ऐसा दृढ़ संकल्प होना चाहिए। ईर्ष्या से होनेवाले नुकसानों का पूरा खयाल होना चाहिए। 'प्रमोदभाव' से होनेवाले सभी लाभों का खयाल होना चाहिए।

ईर्ष्या को जलाने के लिए गुणानुवाद करो :

ईर्ष्या को मिटाने के लिए आप दूसरे जीवों के गुणानुवाद करना प्रारंभ करो। छोटा-बड़ा गुण देखने को मिले, आप उस गुण की मुक्त मन से प्रशंसा

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

करते रहो। हाँ, एक सावधानी रखना, दूसरों के आगे प्रकट में गुणानुवाद और प्रच्छन्न दोषानुवाद, ऐसा मत करना। मैंने एक साधु को भी देखा है वे प्रत्यक्ष में तो गुणानुवाद करते हैं परन्तु प्रच्छन्न रूप में दोषानुवाद ही करते रहते हैं। इस बुरी आदत से उनके मित्र नहीं रहे। जो मित्र थे वे भी उनसे दूर हो गये। उनके निकट के कुछ साथी भी उनको छोड़ गये।

गुणानुवाद करने से ईर्ष्या का दुर्गुण स्वतः दूर होता जाएगा। परन्तु याद रखना, गुणदर्शन के बिना, गुण-प्रेम के बिना गुणानुवाद नहीं होगा। गुणप्रेम गुणदृष्टि के बिना नहीं हो सकेगा। तो, प्रमोदभावना का मूल रहा है गुणदृष्टि में। गुणदृष्टि के बिना 'प्रमोदभाव' हृदय में जाग्रत नहीं हो सकता। गुणदृष्टि बनाये रखो। उसको बंद मत होने दो। गुणदृष्टि का अन्धापन चर्मदृष्टि के अन्धेपन से भी बहुत ज्यादा हानिकर्ता है।

मैंने कई ऐसे मनुष्य देख हैं कि जो धर्मक्रियाएँ तो करते रहते हैं, परन्तु कभी वे किसी गुणवान के गुण नहीं गाते। कभी-कभी तो वे बोलते हैं : 'आजकल संसार में कोई गुणवान मनुष्य रहा ही नहीं है।' हाँ, वे अपने आपको गुणवान मानते हैं! दूसरों को नहीं! दोषदर्शन से उनमें इतना ज्यादा जीवद्वेष बढ़ गया है कि उनकी कौन-सी गति होगी, भगवान जाने! जीवद्वेषी और जड़प्रेमी जीवों की अधोगति ही होती है। वर्तमान जीवन में भी उनको शान्ति, समता, प्रसन्नता नहीं मिलती है।

धर्मआराधना करनेवालों का हृदय मैत्री, करुणा, प्रमोद और माध्यस्थ्य-इन चार भावनाओं से भरपूर होना चाहिए, यह बात ग्रन्थकार आचार्यदेव बताते हैं। चार भावनाओं को अपने जीवन में प्रमुख स्थान देना अनिवार्य है। चार भावनाओं में से मैत्री और करुणा का विवेचन पूरा करके हम प्रमोदभावना पर चिन्तन कर रहे हैं। प्रमोदभावना के जो प्रमुख विषय हैं उनका विवेचन और प्रमोदभावना के प्रकारों का वर्णन अब करना है, परन्तु, आज नहीं।

आज, बस इतना ही।

❖ ❖ ❖

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

- ***किसी के गुणों को याद करके दिल बहुत उछलने लगे, भीतर में प्रसन्नता का पारावार उभरने लगे, हृदय भावविभोर बनकर नाच उठे... उसे 'प्रमोदभाव' कहते हैं। प्रशंसा भी दिल से होनी चाहिए।***
- ***गुणों के माध्यम से हुआ प्रेम दीर्घजीवी होता है। रूप और रुपयों की खातिर होनेवाला प्रेम अल्पजीवी होता है। ऐसा प्रेम हवा बनकर पलक झपकते उड़ जाता है।***
- ***गुणदर्शन से प्रेम होता है, दोषदर्शन से द्वेष!***
- ***जहाँ प्रेम होता है वहाँ चित्त आनंद की अनुभूति करता है, जहाँ द्वेष होता है वहाँ मन संताप से सुलगता रहता है।***
- ***हरिभद्रसूरिजी जैसे प्रकांड प्रज्ञावान आचार्यभगवंत भी अपनी धर्मदाता साध्वीजी याकिनीमहत्तरा को हर ग्रंथरचना के समय याद करते हैं... वह भी अपने आपको उनका 'पुत्र' कहकर!***

प्रवचन : २०

महान ज्ञानयोगी आचार्यश्री हरिभद्रसूरीश्वरजी ने 'धर्मबिन्दु' ग्रन्थ में 'धर्मतत्त्व' की परिभाषा दी है। दुनिया में अनेक लोग धर्म... धर्म तो बोलते हैं, परन्तु वास्तविक धर्मतत्त्व को ज्यादातर लोग नहीं जानते। दुनिया को धर्मतत्त्व जानने की परवाह भी कहाँ है? सकल संसार में सुख-शान्ति का मूल स्रोत ही धर्म है, फिर भी संसार ने हमेशा धर्म के विषय में बेपरवाही ही बरती है। संसार में हमेशा पाप के ही ढोल पीटते रहते हैं। परिणाम जानते हो? संसार में जो दुःख, त्रास, वेदनाएँ और विडंबनाएँ दिखती हैं, वे सब पापों का उत्पादन हैं।

धर्मतत्त्व जब जीवंत बनता है तब...:

मेरा यह कहना है कि आप सर्वप्रथम धर्मतत्त्व को सही रूप में समझ लो। धर्म का आचरण करना न करना, आपके विवेक पर छोड़ देता हूँ। आप पहले समझो, यदि धर्मतत्त्व पर प्रेम हो गया सुनते-सुनते या पढ़ते-पढ़ते, तो एक

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दिन आपके जीवन में धर्मतत्त्व जीवंत बन ही जाएगा। आपके जीवन-शरीर पर धर्म के अलंकार झगमगा उठेंगे ही। आपके मन-वचन और काया पर धर्म की शोभा बिखर जायेगी। आपके विचार धर्ममय बनेंगे, आपकी वाणी में धर्मतत्त्व का रणकार होगा, आपके प्रत्येक आचरण में धर्म का प्रबल असर होगा। आप अपूर्व शान्ति और आनंद पायेंगे।

यदि, पूर्वजन्मों का पुण्यकर्म उतना संचित नहीं होगा तो आपको बाह्य भौतिक सुख कम मिलेंगे, परन्तु जीवन में धर्मतत्त्व को स्थान दे दिया है तो आन्तरिक शांति और आत्मानन्द अपूर्व मिलेगा। सुख जितना महत्त्वपूर्ण नहीं है, उतनी शांति महत्त्वपूर्ण है। सुख जितना अनिवार्य नहीं है, उतना आत्मानन्द अनिवार्य है। शान्ति और आनन्द है तो सारे विश्व के सुख आपके पास हैं-ऐसा मानो। मानोगे आप लोग? भौतिक सुखों के पीछे पागल बनकर भटकनेवालो, आप शान्ति और आत्मानन्द का मूल्यांकन कर सकोगे?:

प्रमोदभाव क्यों नहीं है?

अच्छा, आज मुझे प्रमोदभावना के विषयभूत विश्व के श्रेष्ठ गुणवाले महापुरुषों का परिचय कराना है। आपको जब उनका परिचय होगा, तो आपकी विचारसृष्टि बदल जाएगी। आपको लगेगा कि इस विराट विश्व में अनन्त-अनन्त गुणों से भरपूर महान आत्माओं का अस्तित्व है। आप केवल अपने इर्दगिर्द ही देखते हो, आपकी दुनिया बहुत छोटी है। छोटी दुनिया में भी देखते हो छोटी दृष्टि से, छोटे हृदय से! इसलिए प्रमोदभावना से वंचित रहे हो।

प्रमोद यानी प्रेम :

जिनके गुणों का स्मरण कर अपने खुशी से, आनन्द से भर जायें, अपना हृदय गद्‌गद् हो जाये, अपनी अन्तरात्मा भावविभोर बन जाये, यह 'प्रमोदभावना' है। उन उच्चतम विभूतियों के प्रति गुणों के माध्यम से 'प्रेम' हो जाना चाहिए। एक विद्वान महात्मा ने 'प्रमोद' का अर्थ अंग्रेजी में Love प्रेम किया है! मुझे यह अर्थ पसंद आ गया। गुणों के माध्यम से श्रेष्ठ विभूतियों के प्रति प्रेम करना है।

दुनिया में अज्ञानी और मोहान्ध जीव स्वार्थ के माध्यम से ही एक दूसरे के साथ प्रेम-चेष्टा करते दिखाई देते हैं। प्रेम...प्रेम तो सब करते हैं, बोलते हैं, परन्तु वह प्रेम नहीं होता, प्रेम का आभासमात्र होता है, स्वार्थ की बदबू से भरी

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हुई वासनामात्र होती है, दूसरा कुछ नहीं। ज्ञानी और विवेकी मनुष्य ही गुणों के माध्यम से जीवों के साथ प्रेम कर सकता है।

सभा में से : हम लोग तो दुनिया में पैसे के माध्यम से प्रेम करना जानते हैं! हमारे मन में जितना मूल्यांकन पैसे का, रूपये का है, उतना गुणों का नहीं है! फिर गुणवान व्यक्ति के प्रति प्रेम कैसे होगा?

महाराजश्री : इसलिए तो कहता हूँ कि दृष्टि बदलो। धनवान् प्यारा लगता है आपको, चूंकि आपको धन प्यारा है! आपने धन का मूल्यांकन किया है। आप क्षमा, नम्रता, वैराग्य, परमार्थ, परोपकार इत्यादि गुणों का मूल्यांकन करते रहो, आपको गुणवान मनुष्य के प्रति प्रेम होगा ही अर्थात् उनके प्रति सद्भाव, उनके गुणों की अनुमोदना, गुणानुवाद आप करोगे ही।

रूप और रूपये से ही प्यार है!

सभा में से : ये पुराने लोग जो हैं वो तो धन से प्रेम करते हैं और युवक जो हैं, रूप से प्रेम करते हैं। आजकल सारी दुनिया में धन और रूप का प्रेम निःसीम बढ़ता जा रहा है!

महाराजश्री : इससे विपरीत अमरीका जैसे देशों में धन और रूप का प्रेम क्षीण होने लगा है! धन और रूप का त्याग कर हजारों स्त्री-पुरुष आजकल भारत में आ रहे हैं! धन और रूप क्षणिक सुख दे सकते हैं, परन्तु मनुष्य को आन्तरिक शान्ति नहीं दे सकते, आन्तरिक आनन्द नहीं दे सकते। आन्तरिक शांति के बिना जीवन कितना बोझिल बन जाता है, जीवन कितना असह्य बन जाता है, उन अमरिकनों से पूछो। ठीक है, आप धन और रूप का उपभोग किए बिना नहीं रह सकते, परन्तु आप उससे लगाव मत रखो। आप धन और रूप को जीवन के अभिन्न अंग मत समझो। 'धन और रूप के बिना भी आनन्दपूर्ण जीवन व्यतीत हो सकता है,' ऐसा मान कर चलो। धन और रूप के प्रति आपके हृदय में आदर नहीं रहेगा तो गुणों के प्रति, गुणवानों के प्रति आदर पैदा हो जाएगा ही और वह आदर बढ़ता ही चलेगा।

गुणमूलक प्रेम ही दीर्घजीवी :

दूसरी बात समझ लो। गुणों के माध्यम से प्रेम होता है, दीर्घजीवी होता है। रूप और धन के माध्यम से जो प्रेम होता है, क्षणजीवी होता है। क्योंकि रूप और धन-दोनों परिवर्तनशील हैं। रूप बदल गया, कुरूप हो गया व्यक्ति, प्रेम

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

समाप्त! धन चला गया, निर्धन हो गया व्यक्ति, प्रेम समाप्त! जबकि गुणों में ऐसा परिवर्तन नहीं आता। इसलिए प्रेम शीघ्र समाप्त नहीं होता है। गुणदृष्टि समाप्त नहीं होनी चाहिए।

प्रमोदभावना के चार प्रकार बताए गए हैं 'षोडशक' नाम के ग्रन्थ में।

१. सुख मात्र के प्रति प्रमोद।

२. इहलौकिक सुख के प्रति प्रमोद।

३. परभव-इहभव की अपेक्षा से सुख के प्रति प्रमोद।

४. परम शाश्वत् सुख के प्रति प्रमोद।

हम इन चार प्रकारों में से सर्वप्रथम चौथा प्रकार लेंगे। फिर तीसरा, बाद में दूसरा और तत्पश्चात् पहला प्रकार। आज और कल, दो दिन में चारों प्रकारों पर विवेचन सम्पूर्ण करना है।

तीर्थंकर परमात्मा के प्रति स्नेहभाव :

जिन तीर्थंकर परमात्माओं ने परमशाश्वत् सुख पाने का मार्ग बताया, मार्ग का उपदेश दिया, मार्ग में साथ दिया, उन तीर्थंकर परमात्मा के प्रति अपने हृदय में अपार स्नेह, अपार ममता होनी चाहिए। तीर्थंकर परमात्मा के गुण, उनका जीवन और उनके उपकारों का चिन्तन, मनन और स्तवन करने से उनके प्रति प्रेम जाग्रत होगा, प्रेम दृढ़ होगा। उनका ज्ञानगुण, दर्शनगुण, वीतरागता और अनन्त वीर्य-इन चार अक्षय गुणों का विचार करें, तो भी उनके प्रति हृदय प्रेम से भर जाय। जिनमें राग नहीं और द्वेष नहीं, जिनमें मोह नहीं और अज्ञान नहीं, उनके सुख का पूछना ही क्या? उनका सुख शाश्वत् होता है। उनका सुख अवर्णनीय होता है। दुनिया ने राग में सुख माना है, दुनिया को वीतरागताजन्य सुख की कल्पना भी नहीं होती है। रागी के सुख से अनन्तगुना ज्यादा सुख वीतरागी को होता है। 'प्रशमरति' में कहा है :

यत्सर्वविषयकांक्षोद्भवं सुखं प्राप्यते सरागिणा।
तदनन्तकोटिगुणितं मुधैव लभते विगतरागः ।।

रागी के सुख से वीतरागी का सुख अनन्त-अनन्त गुना ज्यादा होता है। वीतराग सदेह भी होते हैं और विदेह भी होते हैं। तीर्थंकर और दूसरे केवलज्ञानी सदेह वीतराग होते हैं। मोक्ष में गए हुए विदेह वीतराग होते हैं। सदेह, विदेह-दोनों वीतरागी का सुख समान होता है। ऐसे परमसुखी वीतरागी

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

परमात्मा के प्रति अपना हृदय प्रेम से भरपूर होना चाहिए। सुख की दृष्टि से यह प्रमोदभाव होना चाहिए। गुणों की दृष्टिसे भी उनके प्रति अपार प्रमोदभाव जाग्रत होना चाहिए। अरिहंत परमात्मा में अनन्त गुण होते हैं। उनके श्रेष्ठ पुण्यप्रकर्ष से उत्पन्न भी अनेक गुण होते हैं। दुनिया के लाखों-करोड़ों मनुष्य उनके प्रति आकर्षित होते हैं।

तीर्थंकरों का अद्वितीय पुण्यप्रकर्ष उनके समवसरण में जाकर देखो! मज़ा आ जाएगा!

सभा में से : कैसे जाये उनके समवसरण में? आजकल भारत में या वर्तमान विश्व में कहाँ हैं तीर्थंकर?

कल्पना से जाइए समवसरण में :

महाराजश्री : नहीं हैं भारत में तीर्थंकर, नहीं हैं वर्तमान विश्व में तीर्थंकर। महाविदेह क्षेत्र में हैं तीर्थंकर, परन्तु हम उधर जा नहीं सकते इसलिए नहीं के बराबर ही हैं! परन्तु हम चाहें तो मन से जा ही सकते हैं समवसरण में। कल्पनासृष्टि में समवसरण लाइए और ध्यान केन्द्रित कर तीर्थंकर परमात्मा की ओर देखिए। कितना अद्‌भुत रूप होता है तीर्थंकरों का! उनका रूप देखने के बाद दुनिया का कोई भी रूप भक्त हृदय को आकर्षित नहीं कर सकता। दुनिया के सारे रूप फीके लगते हैं। उनकी आठ प्रकार की शोभा, जिसको 'अष्ट प्रातिहार्य' कहते हैं, आप कल्पना से देखो। आपकी तबीयत खुश हो जायेगी।

अशोकवृक्ष, तीन छत्र, भामंडल, चामर, सिंहासन, दिव्य ध्वनि, देवदुंदुभि और पुष्पवृष्टि-ये अष्ट प्रातिहार्य होते हैं। देवनिर्मित समवसरण भी कितना मनोहर और आह्लादक होता है! कल्पनासृष्टि में भी किया हुआ परमात्मपरिचय, उनके प्रति प्रमोदभाव जाग्रत करता है, उनके प्रति स्नेह और सद्‌भाव जाग्रत करता है। परिचय के बिना स्नेह, प्रेम, सद्‌भाव कैसे जाग्रत होगा?

परिचय के बिना प्रेम कैसे होगा? :

इस दुनिया में भी किसी से परिचय हुए बिना प्रेम होता है? जिस जिस के साथ आपका प्रेम है, पहले उनसे आपका परिचय हुआ ही होगा। किसी का परिचय सहज रूप से हो जाता है तो किसी का परिचय करना पड़ता है। परमात्मा का परिचय करना पड़ता है। आज सदेह तीर्थंकर नहीं हैं तो कल्पनासृष्टि में परमात्मा का परिचय कर सकते हो। इसमें परमात्मा के मंदिर

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

और परमात्मा की मूर्ति सहायक बन सकती है। परमात्मा की मूर्ति में सच्चे परमात्मा की कल्पना साकार बन सकती है। परन्तु इस कल्पना को साकार करने के लिए परमात्ममूर्ति में मन और नयन स्थिर बनने चाहिए।

मंदिर में किससे परिचय करते हो?

आप लोग प्रतिदिन मंदिर जाते हो न? परमात्मा की मूर्ति के दर्शन और पूजन रोजाना करते हो न? क्या दर्शन-पूजन करते समय आपका यह लक्ष होता है कि 'मुझे, परमात्मा का परिचय करना है, क्योंकि मुझे उनसे प्रेम करना है!' नहीं, यह लक्ष्य ही नहीं बना है। इसलिए दर्शन-पूजन में न तो मन स्थिर होता है, न नयन! आँखें परमात्मा की मूर्ति पर स्थिर रहती हैं क्या? मन परमात्मा के गुणों के चिन्तन में स्थिर बनता है क्या? नहीं, कुछ नहीं! मन भटकता है संसार की गलियों में! चूँकि संसार से मतलब है! संसार से प्यार करना है! इसलिए संसार का परिचय करते रहते हो। मंदिर में भी संसारी जीवों का परिचय कर लेते हो न! मंदिर किसलिए बनाए गए हैं? संसारी जीवों का परिचय करने या परमात्मा का परिचय करने के लिए? मंदिर में संसार की, घर-परिवार की, समाज की बातें करते हो न? याद रखना, परमात्मा के मंदिर में, परमात्मा से ही प्रेम करना है, परमात्मा से ही परिचय करना है, यदि वहाँ दूसरे दूसरे काम किए तो कड़ी सजा होगी आपको। कर्मसत्ता सजा करेगी ही। इसलिए कहता हूँ कि सावधान रहना। भले ही आप धनवान हों, रूपवान हों या बुद्धिमान कहलाते हों, कर्मसत्ता किसी भी अपराधी को क्षमादान नहीं करती है।

अपनी कल्पनासृष्टि में परमात्मा को लाने का श्रेष्ठ स्थान है परमात्ममंदिर। श्रेष्ठ आलम्बन है परमात्मा की मूर्ति। दर्शन-पूजन और स्तवन करने का प्रयोजन भी यही है। परमात्मा से आन्तरिक प्रीति बाँध लेनी है। आन्तरिक प्रीति परिचय से, घनिष्ट परिचय से ही बँधती है।

परमात्मा के जीवनचरित्र पढ़ने चाहिए :

तीर्थंकर परमात्माओं के जीवनचरित्र पढ़ने चाहिए। जीवनचरित्र पढ़ने से, उनके जीवन के महान सत्कार्यों से उनके प्रति प्रीति बढ़ती है। 'तीर्थंकरों ने ऐसे-ऐसे महान अच्छे कार्य किए थे!' उनके प्रति 'अहोभाव' जाग्रत होता है। जब आप भगवान ॠषभदेव को जीवानन्द वैद्य के भव में पढ़ोगे जीवानन्द वैद्य की बीमार साधु की सेवाभक्ति देखोगे, चकित रह जाओगे! भगवान महावीर

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

स्वामी को जब आप नयसार के भव में पढ़ोगे, नयसार का अतिथि-सत्कार देखकर हर्षविभोर बन जाओगे! भगवान शान्तिनाथ का मेघरथ राजा का भव पढ़ोगे, तब एक पक्षी को बचाने के लिए अपना पूरा शरीर समर्पित करनेवाले मेघरथ के प्रति आपका हृदय प्रेम से भर जाएगा।

घोर उपसर्ग करनेवाले संगम के प्रति और गोशालक के प्रति भी गुस्सा नहीं। मात्र करुणा करनेवाले भगवान महावीर को कल्पनासृष्टि में देखने पर, क्या उनके प्रति प्रीति का भाव जाग्रत नहीं होता? दो कानों में कीलें ठोकनेवाले ग्वाले के प्रति भी किसी प्रकार का रोष नहीं करनेवाले उन परमपुरुष के प्रति स्नेह जाग्रत नहीं होता क्या? परमात्मा महावीर स्वामी का २७ भवों का जीवनचरित्र मननपूर्वक पढ़ो, आपको ऐसी ऐसी अद्‌भुत बातें जानने को मिलेंगी कि आपका परमात्मा के साथ घनिष्ट संबंध बंध ही जाएगा। प्रीति का भाव जाग्रत होगा ही।

परमात्मप्रेम से मनःप्रमोद :

प्रमोदभावना का प्रथम विषय है परमात्मतत्त्व! परम... शाश्वत् सुख के स्वामी परमात्मा के प्रति सम्पूर्ण प्रमोदभाव जाग्रत करने का है। अर्थात् परमात्मा से प्रीति बाँधने की है। ज्यों-ज्यों परमात्मा के प्रति प्रीति दृढ़ होती जाएगी, संसार के तुच्छ असार सुखों से मन उठता जाएगा। रागी-द्वेषी जीवों से प्रीति के बंधन छूटते जायेंगे। आपका मन प्रसन्नता से भरता जाएगा। आपका आन्तरिक आनन्द प्रतिक्षण बढ़ता जाएगा। परमात्मा के गुणों के अनुचिन्तन से मनःप्रसाद की प्राप्ति होती ही है। गुणों के चिन्तन से आप में गुण बढ़ते जायेंगे। आपकी गुण-समृद्धि बढ़ती जाएगी। आपका आत्मस्वरूप प्रकाशित होता जाएगा।

प्रमोदभावना के पात्र साधुपुरूष :

जिस प्रकार अरिहंत और सिद्ध भगवंतों ने परमसुख, परमानन्द और अव्याबाध स्थिति प्राप्त कर ली है उस प्रकार निर्ग्रन्थ साधुपुरुषों ने परम सुख-शाश्वत् सुख पाने का पुरुषार्थ किया है, इसलिए वैसे साधक महात्मा पुरुष भी अनुमोदना के, प्रमोद के पात्र हैं। सदैव जो धर्मध्यान में निमग्न रहते हैं, प्रशान्त रहते हैं, गम्भीर आशयवाले होते हैं, सर्व पापव्यापारों के त्यागी होते हैं, पंचाचार-ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्र्याचार, और तपाचार, वीर्याचार के पालक होते हैं, पांच महाव्रत (प्राणातिपात विरमण, मृषावाद-विरमण, अदत्तादान

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विरमण, मैथुनविरमण और परिग्रह विरमण) के धारक होते हैं, पर्वतों की गहन गुफाओं में जा-जाकर जो ध्याननिमग्न बनते हैं, ऐसे निर्ग्रन्थ महापुरुषों को कैसा अपूर्व आन्तरिक सुख, आत्मानन्द होता है, वह तो केवलज्ञानी ही बता सकते हैं। वे अपनी प्रमोदभावना के पात्र बनते हैं।

वैसे जो महात्मा पुरुष ज्ञानी हैं, सतत शास्त्राध्ययन में लीन रहते हैं, सदैव धर्मोपदेश देते रहते हैं, शांत होते हैं, इन्द्रियाँ जिनको वश होती हैं और जगत में जो परमात्मा जिनेश्वरदेव के शासन को प्रसारित और प्रज्वलित करते हैं, ऐसे महात्मापुरुष भी प्रमोदभावना के विषय बनते हैं अपने लिए।

अहंकार से पतन होता है :

ऐसे महात्मापुरुषों के प्रति, ज्ञानीपुरुषों के प्रति आपकी ज्ञानदृष्टि, आपकी गुणदृष्टि खुली रहनी चाहिए। यदि गुणदृष्टि नहीं होगी तो आपकी दृष्टि में इनके भी दोष दिखेंगे। छद्मस्थ जीवों में दोष तो होते ही हैं, दोषदृष्टि से दोष दिखते हैं, गुणदृष्टि से गुण दिखते हैं। आपकी गुणदृष्टि सलामत होगी तो आपको ऐसे महात्माओं में गुण दिखेंगे। अन्यथा महात्माओं में भी दोष दिखेंगे। जमाली मुनि को भगवान महावीर में भी दोष दिखाई दिया था! भगवान का कथन गलत लगा था! भगवान ने कहा : 'कड़ेमाणे कड़े' जो कार्य हो रहा है, वह कार्य 'हो गया' ऐसा वचनप्रयोग हो सकता है, संसार में वैसी व्यवहार-भाषा चलती है। भोजन बन रहा हो, तो भी 'भोजन बन गया' वैसा प्रयोग हो सकता है। जमाली मुनि को अनेक दिनों तक, अनेक दृष्टान्तों से भगवान ने समझाया भी था, परन्तु वह नहीं माना। भगवान का अनादर करके भगवान का त्याग कर, वह चला गया था। उसके प्रबल 'अहं' ने उसको पथभ्रष्ट कर दिया। प्रबल 'अहं' मनुष्य का पतन करवाता ही है।

ऐसे महामुनि कि जो आत्मसाधना में निरत होते हैं, उनको अपार आन्तरिक सुख होता है। वे दुःखी नहीं होते, वे परम सुखी होते हैं। उनके प्रति प्रमोदभावना होनी चाहिए यानी उनके प्रति अपने हृदय में प्रेम होना चाहिए।

श्रद्धावान-ज्ञानवान-चारित्र्यवान गृहस्थ भी प्रमोदभावना के पात्र :

वैसे जो गृहस्थ हैं, परन्तु जिनके पास ज्ञानमूलक श्रद्धा है, परमात्मा जिनेश्वरदेव के धर्मशासन के प्रति अविचल श्रद्धा है, विश्वास है और वे श्रद्धा से दान, शील, तप और शुभ भावना रूप चार प्रकार की धर्म-आराधना करते रहते हैं, वे भी प्रमोदभावना के विषय हैं। उनकी दानप्रियता, उनकी शीलद्रढ़ता,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

उनकी तपश्चर्या और उनके शुभ भाव देखकर हृदय में प्रीति होनी चाहिए। उनके प्रति हृदय में सद्भाव बढ़ना चाहिए। ईर्ष्या नहीं होनी चाहिए! जैसे, आपके किसी साधर्मिक भाई ने अच्छा दान दिया, लाख-दो लाख रूपये दान में दे दिये, समाज ने अथवा नगर के लोगों ने उसका अभिवादन किया, वह देखकर आप खुश होते हो न? उसके दानधर्म की अनुमोदना करते हो न? नहीं रे नहीं! अनुमोदना करोगे आप अपने साधर्मिक की? तब तो यहाँ से 'डायरेक्ट' सीधे सिद्धशिला पर-मोक्ष में पहुँच जाओगे! आप तो बोलोगे कि 'देखा देखा बड़ा दानेश्वरी। हम जानते हैं उसके दुश्चरित्र। एक तरफ तो कैसे बुरे काम करता है और दूसरी तरफ दान देता है! चाल है उसकी... अपने बुरे काम ढकने के लिए दान देता है।'

दोषदृष्टि बुराई करवाती है :

यह दोषदृष्टि है। गृहस्थ है, संसार के अनेक पापों में फँसा हुआ जीव है। बुराइयाँ तो हैं ही... जितनी बुराइयाँ आप संसारी जीव में, छद्मस्थ जीव में देखना चाहो देख सकते हो। इसमें कोई विशेषता नहीं है। बुराइयों से भरे हुए जीवात्मा में आप कोई अच्छाई देखो, तो उसमें विशेषता है। किसी गृहस्थ ने अच्छी मासक्षमण जैसी तपश्चर्या की और गुणानुरागी लोगों ने उसको बहुत-सी भेंट दी, यह देखकर आपके हृदय में उस तपस्वी गृहस्थ के प्रति प्रेम होगा? स्नेह उभरेगा? नहीं! आप तो बोलोगे : 'किया बड़ा तप इसने। जानते हैं इसके सारे कारनामे। तप किया किसलिए? जानते हो ढेर सारे रूपये इकट्ठे करने के लिए। अच्छी-अच्छी भेंट पाने के लिए।'

पाप में फँसे हुए भी कई मनुष्य अपने हृदय में अच्छी भावनाएँ भाते हैं, पापों से मुक्त होने की कामना करते हैं, उस भावधर्म की अनुमोदना करनी चाहिए।

साध्वीजी भी अनुमोदना का पात्र :

वैसे, जो साध्वीजी हैं, जो प्रतिदिन ज्ञान-ध्यान में लीन रहती हैं, सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र्य से जिनकी बुद्धि निर्मल बनी है, जो अपने पाँचों महाव्रतों की अच्छी पालना करती हैं, उनके प्रति भी प्रमोदभाव होना चाहिए। किन्हीं दो-चार साध्वीजी का अविवेकी आचरण देखकर सभी साध्वीजी के ऊपर दोषारोपण नहीं करना चाहिए। जो साध्वी साधनासभर है, ज्ञानध्यान में तल्लीन रहती है, अपने गुरुजनों की सेवा-भक्ति करने में तत्पर रहती हैं,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अपने शील की रक्षा में तत्पर रहती हैं, उनके प्रति कभी भी दुर्भावना न आ जाय, उसकी जाग्रति रहनी चाहिए।

परमात्मा जिनेश्वरदेव के धर्मशासन में साध्वीजी का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। साध्वीजी में अनेक प्रकार की उत्तम धर्म-आराधना देखी जाती है। जीवन में हजारों आयंबिल की तपश्चर्या करनेवाली अनेक साध्वीजी वर्तमानकाल में भी हैं। हजारों श्लोकों को कंठस्थ कर, प्रतिदिन स्वाध्याय में लीन रहनेवाली साध्वीजी भी आज देखी जाती है। गुरुजनों की सेवाभक्ति और विनय करनेवाली अनेक साध्वीजी के दर्शन होते हैं। ऐसे भोग-विलास और विषय-वासना से भरपूर काल में, संसार के सारे सुख-साधन छोड़कर संयमधर्म के कठोर व्रतनियम पालन करते हुए जीवन व्यतीत करना, आसान काम नहीं है, दुष्कर कार्य है। ऐसा दुष्कर कार्य करनेवाली साध्वीजी के प्रति अपने हृदय में सद्भावना होनी चाहिए।

अपने धर्मग्रन्थों में, भगवान ऋषभदेव के समय में साध्वी ब्राह्मी और सुन्दरी वगैरह का वर्णन आता है। बाहुबली को केवलज्ञान का मार्ग किसने बताया था? साध्वी ब्राह्मी और सुन्दरी ने! वैसे इसी 'धर्मबिन्दु' ग्रन्थ के रचयिता हरिभद्रसूरिजी को हरिभद्र पुरोहित से हरिभद्रमुनि किसने बनाया था? हरिभद्र पुरोहित के हृदय में सद्धर्म की स्थापना किसने की थी? याकिनीमहत्तरा नाम की एक साध्वी ने! हरिभद्रसूरिजी जैसे महान श्रुतधर ने इस साध्वी को 'माता' का स्थान दिया और अपने अनेक ग्रन्थों में अपने स्वयं का परिचय 'याकिनीमहत्तरासुनु' नाम से दिया। जानते हो न हरिभद्रसूरिजी का जीवन वृत्तान्त?

सभा में से : नहीं जी, हम लोगों को ऐसी बातें सुनने को ही नहीं मिलीं!

महाराजश्री : कोई चिन्ता नहीं, मैं सुनाऊँगा! इस चातुर्मास में सब सुन लो! परन्तु सुनने मात्र से कोई विशेष लाभ होनेवाला नहीं है। श्रवण के बाद चिन्तन और मनन करना चाहिए। सुनने के बाद घर जाते हो, दुकान जाते हो, जब समय मिले, यहाँ सुनी हुई बातें याद करो और चिन्तन-मनन करो।

आचार्यश्री हरिभद्रसूरीश्वरजी :

हरिभद्र, चित्तौड़ की राजसभा में पुरोहित का पद शोभायमान करते थे। चौदह विद्याओं वेद-वेदांगों के वे पारगामी थे। अच्छे प्रसिद्ध विद्वान थे। परन्तु विद्वत्ता के साथ-साथ एक बड़ा दोष था उनमें अभिमान का! वे अपने आपको संसार का सर्वश्रेष्ठ विद्वान मानते थे। इसलिए वे अपने पेट पर एक पट्टी बाँध

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कर रखते थे। वे कहते थे : 'मेरी विद्वत्ता इतनी ज्यादा है कि पेट फूट न जाय, इसलिए पेट पर पट्टी बांधकर रखता हूँ।'

हरिभद्र पुरोहित अपने हाथ में एक छोटी-सी सीढ़ी रखते थे! वे कहते थे : 'कोई विद्वान वादीपुरुष मेरे डर से आकाश में ऊपर चढ़ जाय तो मैं इस सीढ़ी पर चढ़ कर उसे पकडूँगा और उनसे वाद-विवाद करूँगा!' वे अपने पास एक जाल रखते थे छोटी-सी! वे कहते थे : 'यदि कोई विद्वान मेरे भय से कोई सरोवर में या नदी में छिप जाय तो मैं यह जाल डालकर उसको पकड़ लूँगा और उससे वादविवाद कर पराजित करूँगा। 'मैं विजयी बनूँगा,' इसका उनको पूर्ण भरोसा था। विद्वत्ता उनकी ठोस थी। चित्तौड़ की राजसभा में आनेवाला कोई भी विद्वान वादी विजयी बन कर नहीं लौट सकता था। हर विद्वान को हरिभद्र पुरोहित बुरी तरह पराजित कर देते थे।

एक दिन प्रातःकाल वे राजमार्ग पर से गुजर रहे थे, रास्ते पर जैन उपाश्रय था, उपाश्रय में साध्वीजी प्रातःकालीन स्वाध्याय कर रही थीं। एक साध्वीजी शुद्ध और स्पष्ट शब्दों में स्वाध्याय कर रही थीं, उनके शब्द मार्ग से गुजरनेवालों को भी सुनाई देते थे। साध्वीजी एक प्राकृत भाषा का श्लोक याद कर रही थी :

'चक्कीदुगं हरिपणगं पणगं चक्कीण केसवो चक्की।
केसव चक्की केसव दु चक्की केसी य चक्की य ।।'

(आवश्यक निर्युक्ति)

हरिभद्र पुरोहित ने यह श्लोक सुना। वे खड़े रह गये। श्लोक का अर्थ करने लगे, परन्तु अर्थ समझ में नहीं आया। वे पुनः-पुनः अर्थ समझने का प्रयत्न करने लगे, परन्तु असफल रहे। उनके मन में एक प्रतिज्ञा थी : 'यदि मैं कोई शास्त्र, कोई शास्त्र की बात नहीं समझ सकूँगा और कोई मुझे समझा दे तो मैं उनका शिष्य बन जाऊँ। वह शास्त्र समझाने के लिए, समझानेवाला जो शर्त रखे, वह शर्त मुझे स्वीकार्य होगी।' भले यह प्रतिज्ञा उन्होंने दुनिया के सामने जाहिर नहीं की होगी, परन्तु मानसिक प्रतिज्ञा के पालन में भी वे सुदृढ़ थे। यह उनकी मौलिक योग्यता थी। मानसिक संकल्प का पालन करने की दृढ़ता, मामूली बात नहीं है। वाचिक संकल्प को भी लोग भंग कर देते हैं, कायिक संकल्प का भी पालन नहीं करते हैं, तो मानसिक संकल्प, मानसिक प्रतिज्ञा का पालन करने की बात ही कहाँ?

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आजकल तो मनुष्य का मनोबल ही टूट गया है। हीनसत्त्व बन गया है मनुष्य। - व्रत-नियम का पालन दुष्कर बन गया है। ग्रहण किए हुए व्रत का भंग कर देना, आसान काम हो गया है। धार्मिक प्रतिज्ञा का पालन करने का जैसे सत्व नहीं रहा, वैसे सांसारिक जीवन में भी प्रतिज्ञापालन का सत्व नहीं रहा। आजकल तलाक कितने हो रहे हैं। शादी क्या है? जीवनपर्यन्त मन-वचन-काया से स्त्री-पुरुष पति-पत्नी के संबंध में प्रतिज्ञापूर्वक बंधते है न? हीनसत्ववाले लोग ऐसी प्रतिज्ञा भी निभा नहीं सकते।

महान पुरुषों में यह मौलिक विशेषता होती है कि वे सत्वशील होते हैं और ली हुई प्रतिज्ञा का पालन प्राणों की परवाह किए बिना करते हैं। यह विशेषता आत्मा की आध्यात्मिक विकासयात्रा के प्रारंभ में ही जाग्रत होती है।

'प्राणान् त्यजति धर्मार्थं, न धर्मं प्राणसंकटे।'

'धर्म के लिए प्राणों का त्याग करता है, प्राण बचाने के लिए धर्म का त्याग नहीं करता है।'

हरिभद्र पुरोहित साध्वीजी के उपाश्रय में :

'योगदृष्टि समुच्चय' ग्रन्थ में यह बात हरिभद्रसूरिजी ने स्वयं ही कही है! जो बात उनके स्वयं के जीवन में थी। साध्वी का स्वाध्याय का श्लोक 'चक्की दुगं...' उनकी समझ में नहीं आया। उन्होंने उपाश्रय में जाकर साध्वीजी से पूछने का सोचा। वे उपाश्रय में आये। उपाश्रय में एक काष्ठासन पर एक प्रौढ़ साध्वीजी विराजमान थीं। हरिभद्र पुरोहित ने अंजलि रचा कर, मस्तक नमा कर साध्वीजी को प्रणाम किया और पूछा : 'मैं भीतर आ सकता हूँ?' साध्वीजी ने 'धर्मलाभ' दिया और भीतर आने की अनुमति प्रदान की। साध्वीजी के आशीर्वाद वचन में हरिभद्र पुरोहित को अमृत का आस्वाद मिला। साध्वीजी के दर्शन से उसकी अन्तरात्मा ने प्रसन्नता अनुभव की। नमस्कार कर पुरोहितजी ने अभिवादन किया और बोले :

'हे पूजनीया, अभी अभी उपाश्रय में जो स्वाध्याय हो रहा था, उसमें वह 'चक्की दुगं...' वाला श्लोक मैंने सुना, उस श्लोक का अर्थ ठीक रूप से मेरी समझ में नहीं आया, मैं अर्थ जानने की जिज्ञासा से आपके पास आया हूँ, आप मेरे प्रति कृपा करेंगी?

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

साध्वीजी का सुयोग्य प्रत्युत्तर :

साध्वीजी याकिनीमहत्तरा ने ताड़ लिया था कि 'ये महानुभाव हरिभद्र पुरोहित ही होने चाहिए।' साध्वीजी बड़ी विचक्षण थीं। उन्होंने कहा : 'हे महानुभाव! हमारे जिनशासन में सूत्र का अर्थ बताने का अधिकार साधुपुरुषों का है, साध्वीजी अर्थज्ञान नहीं दे सकतीं, इसलिए आपको यदि अर्थज्ञान चाहिए तो आप हमारे गुरुदेवश्री के पास जाइए।' बड़ी करुणा और वात्सल्य से साध्वीजी ने हरिभद्र पुरोहित को कहा।

'कहाँ बिराजते हैं आपके गुरुदेव?' हरिभद्र ने पूछा!

'जिनमंदिर के पासवाले उपाश्रय में!' साध्वीजी ने प्रत्युत्तर दिया।

साध्वीजी की ज्ञानदृष्टि :

साध्वीजी कितनी विचक्षण होंगी? उन्होंने स्वयं उस श्लोक का अर्थ नहीं बताया! क्योंकि वह जानती थीं कि 'यह व्यक्ति मामूली नहीं है, कभी जैनमंदिर या जैनउपाश्रय में पैर नहीं रखनेवाला यह पुरोहित आज संयोगवश आ गया है तो आचार्यदेव से इसकी मुलाकात करा देनी चाहिए। आचार्यदेव द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से ज्ञाता होते हैं। यदि मैं श्लोक का अर्थ बता दूँगी तो यह विद्वान यहीं से ही लौट जाएगा, गुरुदेव के पास नहीं जाएगा। पाने आया है मात्र एक श्लोक का अर्थ, लेकर जाना चाहिए आत्मकल्याण की भव्य प्रेरणा! जैनशासन के अपूर्व तत्त्वज्ञान की सुवास!' साध्वीजी का हृदय कितना करुणासभर होगा? दूसरी आत्माओं के प्रति कैसा अपूर्व वात्सल्य है! जानती थी साध्वीजी को इसी हरिभद्र पुरोहित ने जैनमंदिर में जाकर, परमात्मा जिनेश्वरदेव की मूर्ति का उपहास किया था एक दिन। फिर भी उसके प्रति साध्वीजी को गुस्सा नहीं आया, 'उनको भी सद्धर्म की प्राप्ति हो!' ऐसी भावकरुणा आई। अपराधी के प्रति भी रोष नहीं परन्तु करुणा! यह संतहृदय की विशेषता होती है। अपराधी के प्रति रोष और तिरस्कार तो संसार में सभी करते हैं। संत की दृष्टि ही ज्ञानदृष्टि होती है।

हरिभद्र पुरोहित की सूक्ष्म दृष्टि ने साध्वीजी के उपाश्रय का शान्त, प्रशान्त और सुवासित वातावरण जान लिया। शिस्त और अनुशासन से प्रभावित हुए। उन्होंने साध्वीजी को पुनः नमस्कार किया और विनय से उन्होंने बिदा ली। साध्वीजी ने पुनः 'धर्मलाभ' का आशीर्वाद दिया।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हरिभद्र पुरोहित के हृदय में साध्वीजी के प्रति प्रमोदभाव जाग्रत हो गया था। इसलिए साध्वीजी की बात भी उनको जँच गई थी। वे वहाँ से सीधे जैनमंदिर पहुँचे। क्योंकि आचार्यदेव जैनमंदिर के पास ही बिराजते थे। रास्ता भी जैनमंदिर में से जाता था। आज हरिभद्र पुरोहित के दिल और दिमाग पर साध्वी, साध्वी की बातें और उपाश्रय का प्रशान्त-निर्मल वातावरण छाया हुआ था। जैनधर्म की आचार-मर्यादा के प्रति उनके हृदय में सद्भाव जाग्रत हुआ था, इसलिए मंदिर में जाकर उसने परमात्मा की मूर्ति की खूब प्रशंसा की।

यह वही मंदिर था कि हाथी के भय से हरिभद्र इस मंदिर में आश्रय लेने आ गये थे और परमात्मा की मूर्ति को देखकर उपहास किया था। उस समय उनके हृदय में जैनधर्म के प्रति विद्वेष था। आज विद्वेष नहीं था, सद्भाव था! प्रमोदभाव था! हृदय के भाव मनुष्य के आचरण में प्रतिबिंबित होते हैं। हाँ, मायावी और कपटी मनुष्यों की बात दूसरी होती है। वे लोग अपने हृदयगत भावों को आचरण में दिखने नहीं देते। सरल और निष्कपट मनुष्य के भाव उसके आचरण में प्रतिबिंबित होंगे ही। जिस व्यक्ति के प्रति, जिस धर्म के प्रति, जिस स्थान के प्रति प्रमोदभाव यानी प्रीति का भाव जाग्रत होता है, उस व्यक्तिका धर्म और स्थान के प्रति अच्छा आचरण ही होता है। अच्छा ही व्यवहार बनता है। हृदय में प्रमोदभाव आ जाना चाहिए। प्रमोद के स्थान पर यदि ईर्ष्या का, द्वेष का या तिरस्कार का भाव आया तो व्यवहार बिगड़ेगा ही। इसलिए कहता हूँ कि हृदय को, गुणवानों की प्रति एवं पुण्यशालियों के प्रति प्रमोदभाव से भरपूर रखिए। आप जहाँ जहाँ भी गुणदर्शन करोगे, वहाँ वहाँ प्रेम होगा ही। गुणदर्शन से प्रेम होता है, दोषदर्शन से द्वेष होता है। जहाँ प्रेम होता है वहाँ अपना चित्त आनन्द का अनुभव करता है, जहाँ द्वेष होता है वहाँ अपना मन संताप अनुभव करता है।

हरिभद्र पुरोहित आचार्य भगवंत के पास :

आज हरिभद्र पुरोहित ने परमात्मा जिनेश्वरदेव की मूर्ति में सच्ची वीतरागता पाई! उनकी आँखें आनंदाश्रु से भर गईं। उनकी स्तुति का श्लोक आचार्यदेव ने उपाश्रय में बैठे-बैठे सुन लिया था। हरिभद्र पुरोहित की आवाज परिचित थी! आचार्यश्री समझ गये कि 'हरिभद्र पुरोहित की यह आवाज है।' आचार्यदेव ने अव्यक्त आनन्द का अनुभव किया। उनकी दक्षिण चक्षु स्फुरायमान होने लगी। अनेक शुभ संकेत होने लगे।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हरिभद्र पुरोहित मंदिर में से उपाश्रय में आये। आचार्यदेव के दर्शन होते ही नमस्कार किया और 'मैं आ सकता हूँ?' की पृच्छा कर, आचार्यदेव की अनुमति पा कर, वे आचार्यदेव के चरणों में आए। पुनः प्रणाम कर विनय से वे आचार्यदेव के चरणों में बैठ गये। आचार्यदेव ने 'धर्मलाभ' का आशीर्वाद दिया और वात्सल्यभाव से कुशलता की पृच्छा की। हरिभद्र पुरोहित ने अपने आगमन का प्रयोजन बताया। गुरुदेव ने जान लिया कि इसके हृदय में साध्वीजी के प्रति प्रमोदभाव जाग्रत हुआ है, परमात्मा के प्रति भी सच्ची दृष्टि खुल गई है। उन्होंने हरिभद्र पुरोहित को कहा :

गुरुदेव का वात्सल्यभरा जवाब :

'महानुभाव! जैनदर्शन में क्रमिक अध्ययन करने का विधान है। जैनदर्शन इतना गहन, गंभीर और विशाल है कि इसका क्रमिक अध्ययन करने पर ही सही तत्त्वज्ञान प्राप्त हो सकता है। जैनदर्शन का रहस्यभूत ज्ञान साधुजीवन में ही पाया जा सकता है। अनेकान्तवाद और सप्तनयों की बातें जानने-समझने के लिए सतत गुरुकुलवास करना चाहिए। एक श्लोक का अर्थ जानने से क्या? यह तो जैन परिभाषा में लिखा गया श्लोक है। अर्थ भी सरल है। तुम्हारे जैसे मेधावी, मनस्वी और प्रज्ञावंत पुरुष तो महान श्रुतधर बन सकते हैं। ज्ञान की अपूर्व ज्योति अपनी आत्मा में प्रगट कर सकते हैं। अनेक अज्ञानी जीवों को प्रकाश प्रदान कर सकते हैं। मानवजीवन की यही तो सफलता है!'

आचार्य भगवंत की धीर, गंभीर और करुणामयी वाणी ने हरिभद्र पुरोहित के अन्तःस्तल को स्पर्श किया, सुखद स्पर्श था वह। हरिभद्र को अपनी प्रतिज्ञा का खयाल था। आचार्यश्री किस बात की ओर इंगित कर रहे हैं वह भी वे समझ रहे थे। उनके मन, हृदय, अन्तरात्मा में आनन्द की शहनाई बज रही थी।

समय पूरा हो गया है।

आज, बस इतना ही।

❖ ❖ ❖

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

- ***आजकल गुणवानों का अपमान करना, उनका हँसी-मजाक करना और सुखी लोगों को नफरत से देखना या उनकी टीका-टिप्पणी करना तो जैसे 'फेशन' सा हो गया है।***
- ***पूर्वजन्म में जिन्होंने दान-शील-तप वगैरह धर्म की उत्कृष्ट आराधना की होती है, वे वर्तमान जीवन में अनेक प्रकार की सुख-सुविधा को प्राप्त करते हैं। उनकी ईर्ष्या हमको नहीं करनी चाहिए।***
- ***प्रमोद-भावना की पहली शर्त यही है कि आप किसी के सुख की ईर्ष्या न करें।***
- ***प्रेम के लिए ईर्ष्या जहर है! ईर्ष्या के जहर ने प्रेम को हमेशा मारा है।***
- ***ईर्ष्या की मानसिक क्रूरता प्रेम के नाजुक फूलों को कुचल डालती है। बचो इस ईर्ष्या 'डायन' से!***

प्रवचन : २१

परम उपकारी महान श्रुतधर आचार्यश्री हरिभद्रसूरीश्वरजी ने स्वनिर्मित 'धर्मबिन्दु' ग्रन्थ में धर्म का बहुत ही अच्छा स्वरूप बताया है। धर्मक्रियाओं का जैसे स्वरूप समझाया वैसे, धर्मक्रिया करनेवाले मनुष्य का हृदय कैसा होना चाहिए, वह भी बताया है। धर्मक्रिया शुद्ध हो परन्तु धर्मक्रिया करनेवाले का हृदय अशुद्ध हो, तो वह क्रिया धर्म नहीं बनेगी! कैसी चोटदार बात कही है हरिभद्रसूरिजी ने! यदि आपको धर्म पाना है तो आप अपने हृदय को शुद्ध बनाइए। द्वेष, ईर्ष्या, तिरस्कार और घृणा के दुष्ट भावों को हृदय से निकाल दें। हृदय-उपवन में मैत्री, करुणा, प्रमोद और माध्यस्थ्य भावों के प्रति माध्यस्थ्य - इस प्रकार विद्वानों ने विभागीकरण किया है। अपना विवेचन प्रमोद-भावना पर चल रहा है।

आप क्या औरों के सुख में संतुष्ट हैं?

प्रमोद-भावना का दूसरा नाम है मुदिता-भावना। अर्थ समान है, शब्दरचना में ही थोड़ा अंतर है। 'प्रमोद' पुल्लिंग शब्द है, 'मुदिता' स्त्रीलिंग शब्द है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दोनों शब्द 'मुद्' धातु से बने हैं। दोनों का अर्थ होता है खुशी! दूसरों का सुख देखकर खुशी का अनुभव करना यह है मुदिता-भावना।

'परसुखतुष्टिर्मुदिता'

आप लोग अपने सुख में संतुष्ट हैं या दूसरों के सुख में संतुष्ट?

सभा में से : अपने ही सुख में संतुष्ट, प्रसन्न! दूसरों का सुख देख कर तो ईर्ष्या होती है।

महाराजश्री : हृदय को बदलो। अनन्त-अनन्त काल से जीव संसार में भटक रहा है, इसका कारण भी यही है! वह अपने ही सुख का विचार करता है, अपने ही दुःखों का विचार करता है। इस स्वार्थ ने ही जीव को पापी बनाया है और संसार में भटकाया है। स्वार्थी ईर्ष्यालु तो होगा ही।

पुण्यानुबंधी पुण्योदयवालों के प्रति :

जिस प्रकार अरिहंत परमात्मा एवं सिद्ध भगवन्तों का शाश्वत् सुख जान कर, उनके प्रति प्रमोद-भावना रखने की है उस प्रकार, जो जीव इस संसार में पुण्यानुबंधी पुण्य के उदय से, देवभव में या मनुष्यभव में सुख पाते हैं, सुख का उपभोग करते हैं, उनके प्रति भी प्रमोद भाव ही रखने का है। 'इतना इतना भौतिक-वैषयिक सुख मिला है, फिर भी ये इसमें आसक्त नहीं बनते! बहुत ही अलिप्त से रहते हैं। धन्य है इन्हें।' हृदय उनके प्रति सद्भावनावाला बन जाय। पुण्यानुबंधी पुण्य के उदय से जो सुख मिलता है, उस सुख में जीव निमग्न नहीं बनता है। अति आसक्त नहीं बनता है। पुण्यानुबंधी पुण्य के उदय से मिलनेवाले सुखों में मनुष्य पाप नहीं करता है परन्तु नया पुण्य बांधता है। पुण्य बंधता है धर्म के आचरण से। भरपूर सुख पास होने पर भी जो जीवात्मा धर्म का आचरण करता है, उनके प्रति आपके हृदय में प्रेम हो सकता क्या? होना चाहिए प्रेम।

जिस प्रकार दूसरों के कल्याणकारी सुख देखकर हृदय आनन्दित होना चाहिए वैसे आपके पास भी वैसे सुख हों कि जो सुख आपको पापों की ओर प्रेरित नहीं करते हों, आपको खुश होना चाहिए। सुख के अनेक साधन होने पर भी उसका अमर्यादित उपभोग नहीं करते हो, दुरूपयोग नहीं करते हो, तो समझना कि आपके पास पुण्यानुबंधी पुण्य का उदय है। मोक्षमार्ग की आराधना में यह पुण्योदय ही सहायक सिद्ध होता है। जितना भी पुण्योदय हो, उसमें

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

संतोष रखना चाहिए। दूसरों का पुण्योदय आपसे बढ़ कर है तो आपको असंतोष नहीं करना चाहिए।

देव भी प्रमोद-भावना के पात्र :

स्वर्ग में भी जो सम्यक्दृष्टि देव हैं, दैवी सुख-वैभवों में भी जो विरक्त रहते हैं यानी आत्मभान खोकर जो भोगसुखों में लीन नहीं बनते हैं, उनके प्रति भी अपने हृदय में प्रमोद-भावना रखने की है। वैषयिक सुख भोगने पर भी जो महानुभाव वैषयिक सुखों को उपादेय नहीं मानते, भोगने योग्य नहीं मानते, वे सचमुच प्रमोद के पात्र हैं। संसार में ज्यादातर लोग वैषयिक सुखों को उपादेय मानकर भोगते हैं और उसमें तल्लीन बनते हैं। इन जीवों की अपेक्षा जो जीव वैषयिक-सुखों को हेय मानते हैं, वे अनुमोदना के पात्र हैं। त्याज्य और मारक मानकर विषय-सुखभोगनेवाले आसक्ति में डूब नहीं जाते। डूबना नहीं है, जाग्रत रहो।

ईर्ष्या से बचकर रहना :

किसी की भी ईर्ष्या मत करो। साधु की ईर्ष्या मत करो, साध्वी की भी ईर्ष्या मत करो। श्रावक-श्राविका की भी ईर्ष्या मत करो। अन्य दर्शनों में यानी दूसरे धर्मों में रहे हुए मार्गानुसारी जीवों की भी ईर्ष्या-निन्दा मत करो। सर्वत्र गुणदृष्टि से देखो। गुणदृष्टि से देखने में आपका कुछ भी बिगड़नेवाला नहीं है। आपको कोई पाप लगनेवाला नहीं है।

जो साध्वी, जो श्राविका सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र का संपूर्ण अथवा आंशिक पालन भी करती है, अपने शीलव्रत का पालन करती है, वह प्रमोद के पात्र है। ऐसी साध्वियों के गुण गाते रहो, ऐसी श्राविकाओं के गुण गाते रहो। उनके दोषों के सामने देखो ही नहीं। कभी देख लिए दोष, तो उन दोषों पर विचार मत करो। याद रखना, दोष-दर्शन बड़ी क्रूरता है। क्रूर हृदय धर्म-आराधना के लिए अयोग्य माना गया है। समझते हो न मेरी बात? क्रूर हृदय को धर्म स्पर्श नहीं कर सकता। क्रूर हृदय में धर्म रह नहीं सकता। दोषदर्शन के बड़े पाप को छोड़ दो। दूसरों के सुख एवं दूसरों के गुण देखकर प्रसन्नता का अनुभव करना शुरू करो। जहाँ छोटा-सा भी गुण दिखाई दें, आनन्दित बनो। जहाँ किसी का छोटा-सा भी सुख दिखाई दे, आनन्दित बनो। यानी ईर्ष्या मत करो, तिरस्कार मत करो।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

गुणदर्शन के बिना प्रमोद-भावना आएगी कैसे ?

आजकल गुणवानों का अनादर करना और सुखी मनुष्यों के प्रति तिरस्कार करना सामान्य हो गया है। फैशन हो गया है। किसी सुखी मनुष्य की आलोचना-प्रत्यालोचना करना, कटु शब्दों का प्रयोग करना साधारण बात बन गई है। गुणवानों का तो मूल्यांकन ही समाप्त हो गया है! आज मूल्यांकन है धनवानों का और रूपवालों का! रूप और रूपयों के पीछे दुनिया पागल बनी है। पागलों को गुणदर्शन होगा भी कैसे? गुणदर्शन के बिना प्रमोद-भावना आए कैसे? प्रमोद के बिना धर्म का स्पर्श हृदय को मिले कैसे?

प्रेमभरा व्यवहार जरूरी है :

हरिभद्र पुरोहित के पास गुणदृष्टि थी। आचार्यदेव की बातें उनके अन्तःकरण को छू जाती है। आचार्यदेव ने उनकी पात्रता को परख लिया है। पुरोहित की प्रतिज्ञा से भी वे परिचित थे। आज प्रत्यक्ष उनकी विशेषताओं का परिचय मिला। आचार्यदेव की भी कैसी ज्ञानदृष्टि होगी? उन्होंने पुरोहित की पुरानी गलती याद नहीं की। 'यह वह पुरोहित है कि जिसने मेरे परमात्मा का क्रूर उपहास किया था, आज आया है मेरे पास, सुना दूँ उसको...क्या समझता है वह अपने आपको?' ऐसी गलती आचार्यदेव ने नहीं की। किसी के भूतकाल की बुरी बात याद कराने से उसको सुधारा नहीं जा सकता। किसी की क्षतियों के प्रति कटाक्ष या प्रहार करने से उनकी क्षतियाँ दूर नहीं होती हैं। यदि आचार्यदेव हरिभद्र पुरोहित को सुना देते कि : 'तुम ही हो न वह पुरोहित...जिन्होंने इसी मन्दिर में वीतराग परमात्मा का क्रूर उपहास किया था? जानते हो उसका परिणाम? आप राजपुरोहित हैं, इसका आपको घमंड होगा, परन्तु ध्यान रखना, परमात्मा के उपहास का कटुफल आपको भी भोगना पड़ेगा।' इत्यादि बातें सुनाते तो क्या हमको महान श्रुतधर हरिभद्रसूरिजी मिलते? हरिभद्र पुरोहित का मन आचार्य के प्रति खट्टा बन जाता। वे वहाँ से चले जाते और श्लोक का अर्थ कहीं से भी ढूँढ़ लेते।

जिनशासन के आचार्य कैसे होते हैं ?

जिनशासन के आचार्य समयज्ञ होते हैं, कालज्ञ होते हैं। वे व्यक्ति को अच्छी तरह पहचान लेते हैं। कुछ विशिष्ट ज्ञानी आचार्य तो सामने आनेवाले मनुष्य के भविष्य को भी जान लेते हैं। कहाँ पर क्या बोलना, कैसा बोलना, पूरा खयाल

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

रखते हैं। समय का उनको ज्ञान होता है। शास्त्रों का उनको अच्छा ज्ञान होता है। प्रज्ञावंत होते हैं आचार्य। ऐसे आचार्य ही जैनशासन की प्रभावना दुनिया में कर सकते हैं। जो मात्र नाम के आचार्य होते हैं वे तो प्रभावना नहीं, जैनशासन की विडंबना करवाते हैं। आचार्यपद की शान को नष्ट करते हैं। आजकल अपने दुर्भाग्य से अनुशासनहीनता फैल गई है जिनशासन में। अनुशासनहीनता की वजह से अनेक दोष प्रविष्ट हो ही जाते हैं।

हरिभद्र पुरोहित एक ऐसे महान जैनाचार्य के पास पहुँचे थे कि जो विशिष्ट ज्ञानी थे और करुणा के सागर थे। उन्होंने बड़े प्रेम से विद्वान पुरोहित के सामने चारित्र्य-जीवन का प्रस्ताव रख दिया। ज्ञान की तीव्र पिपासावाले पुरोहित को आचार्यदेव की कोई भी शर्त मंजूर थी। संसार के वैषयिक सुखों की स्पृहा से भी बलवती स्पृहा थी ज्ञानप्राप्ति की! ज्ञानप्राप्ति के लिए वैषयिक सुखों का त्याग करना उनके लिए आसान था! वैषयिक सुखों के लिए ज्ञानप्राप्ति का अवसर खो देना, उनके लिए असंभव था, आत्मघात जैसा था!

कृतज्ञभाव : मौलिक योग्यता :

हरिभद्र पुरोहित हरिभद्रमुनि बन गये और उन्होंने जैनदर्शन का दिन-रात अध्ययन किया। अध्ययन में उनकी तल्लीनता और प्रसन्नता बढ़ती ही गई। परमात्मा जिनेश्वरदेव के प्रति, उनके द्वारा प्रकाशित द्वादशांगी के प्रति, धर्म के प्रति अपूर्व आदरभाव जाग्रत हुआ। प्रमोदभाव से उनका हृदय भर गया। परमात्मा के और परमात्मा के धर्मशासन के उन्होंने बहुत गुण गाए। इसमें भी, साध्वी याकिनी महत्तरा को तो वे जीवन में कभी नहीं भुला पाए। अपनी माता के रूप में उन्होंने अपने अनेक ग्रन्थों में उनका उल्लेख किया है। उपकारी के प्रति कृतज्ञभाव महान आत्मा की मौलिक योग्यता होती है।

सभा में से : कृतज्ञभाव और प्रमोदभाव एक ही है या भिन्न?

महाराजश्री : दोनों भाव भिन्न हैं। प्रमोदभाव तो सभी पुण्यशाली और गुणवान जीवों के प्रति होता है, जब कि कृतज्ञभाव उपकारी जीवों के प्रति होना चाहिए। जिन-जिनका अपने ऊपर उपकार हो, छोटा या बड़ा उपकार हो, उनके प्रति कृतज्ञभाव होना चाहिए। प्रमोदभाव तो सभी जीवों के प्रति कि जो पुण्यशाली हैं, गुणवान हैं, होना चाहिए। आपसे जो ज्यादा सुखी हैं, उनके प्रति और आप से जो ज्यादा गुणवान हैं, उनके प्रति प्रमोदभाव होना चाहिए।

सभा में से : हमसे जो ज्यादा सुखी हैं, उनके प्रति प्रमोदभाव-प्रेमभाव

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

रखना क्या उचित है? भौतिक सुख तो संसार में डुबोनेवाला है, ऐसा आप फरमाते हो, फिर ऐसे सुखवालों के प्रति प्रेमभाव होना चाहिए या करुणाभाव?

महाराजश्री : यदि आपके हृदय में, आप से जो ज्यादा सुखी हैं, जिनके पास भौतिक वैषयिक सुख आपसे ज्यादा हैं, उनके प्रति ईर्ष्या का भाव जाग्रत नहीं होता है और आपके पास भी जो वैषयिक सुख हैं वे बुरे लगते हैं, त्याग करने योग्य लगते हैं, तो आप दूसरे भौतिक सुखवालों के प्रति भावकरुणा का भाव रख सकते हो! यदि आपको अपने सुख पुण्य का उदय लगता है, मीठा मीठा लगता है और दूसरों के सुख पाप का कारण लगता है, दुर्गति का कारण लगता है तो समझना कि वहाँ ईर्ष्या का भाव ही काम करता है। पापानुबंधी पुण्य के उदय से मिलनेवाले सुख, आपके पास हों या दूसरों के पास हों, संसारसागर में डुबोनेवाले ही हैं। दूसरों के भौतिक सुख देखकर, आपको दयाभाव करने की आवश्यकता नहीं है। आप तो प्रमोदभाव ही रखिए। हाँ, कोई पापाचरण करता है तो करुणाभाव रखना।

आज का सुखी : पूर्वजन्म का धर्मात्मा :

एक बात आप समझ लीजिए। कोई भी सुख धर्म की आराधना किए बिना नहीं मिलता है। आज जो सुखी है, पूर्वजन्म का वह धर्मात्मा है। पूर्वजन्मों में धर्म की आराधना किए बिना यहाँ सुख मिल ही नहीं सकता। धर्म-आराधना से पुण्यकर्म का बंध होता है और पुण्यकर्म के उदय से सुख मिलता है। यह जैनधर्म का अविचल सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त के अनुसार आज का सुखी जीव, पूर्वजन्म का धर्मात्मा है। धर्मात्मा के रूप में उसको देखो, तो प्रमोदभाव आएगा ही।

सभा में से : सुखी श्रीमन्तों को ज्यादा पाप करते हुए देखते हैं तो उनके प्रति द्वेष होता ही है।

पापी के प्रति नहीं, पापों के प्रति द्वेष करो :

महाराजश्री : पापों के प्रति द्वेष होता है न? उनके सुखों की ईर्ष्या तो नहीं होती है न? जरा अपने मन को टटोलो। देखो अपने भीतर! पापों के प्रति ही द्वेष होता हो तो अपराध नहीं है। ईर्ष्या-जन्य द्वेष होता है तो बड़ा अपराध है। पापों के प्रति द्वेष भले हों, पापी के प्रति द्वेष नहीं करने का है। पापी के प्रति तो करुणा अथवा मध्यस्थभाव ही रखने का है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मैं यह बात समझाना चाहता हूँ कि आज जिसके पास भौतिक सुख हैं, वैषयिक सुख हैं, वह पूर्वजन्मों का धर्मात्मा है। पूर्वजन्म में जिसने दान, शील, तप इत्यादि धर्म-आराधना की हुई होती है, वह वर्तमान जीवन में अनेक प्रकार की सुख-सामग्री का स्वामी बनता है। ऐसे जीवों के प्रति ईर्ष्या नहीं होनी चाहिए। 'इसको इतना सुख मिला और मुझे नहीं? मुझसे से ज्यादा सुख इसको क्यों मिला? इससे ज्यादा सुख मुझे मिलना चाहिए। अथवा इसके पास सुख होना ही नहीं चाहिए, यह तो दुःखी ही होना चाहिए।' ये सारे ईर्ष्या के रूप हैं।

ईर्ष्याग्रस्त बच्चा :

मैने एक गाँव में एक ऐसा बच्चा देखा, मैं हैरान रह गया। होगा पाँच-सात साल का लड़का। परिवार सुखी-संपन्न। लड़के के प्रति माता-पिता को अपार स्नेह था। लड़का एक ही था, लड़कियाँ तीन थीं। तीनों बहनें भाई से प्यार करती थीं...परन्तु भाई तीनों बहनों की घोर ईर्ष्या करता था! यदि माता-पिता ने लड़कियों को कुछ अच्छा दिया, तो भाई का दिमाग चकरा जाता। 'बहनों को कुछ भी अच्छा नहीं मिलना चाहिए।' यह उसकी हठ थी। बहनें इतनी अच्छी थीं कि अपने भाई को खुश रखने के लिए कोई भी अच्छी वस्तु नहीं लेती थीं। अच्छे वस्त्र नहीं, अच्छे खिलौने नहीं। अच्छा खाना भी नहीं। माता-पिता लड़के को कितना भी समझाएँ, समझे ही नहीं। पिता की मृत्यु हो गई, तीनों बहनें अपने-अपने ससुराल चली गईं, अब भाई का पतन होना प्रारंभ हुआ। माता का कहा माने नहीं, उद्धताई और अविनय, ईर्ष्या और द्वेष...अनेक दोषों से भर गया। जुआ और चोरी के पाप भी करने लगा। जेल में गया। स्नेही-स्वजनों ने बड़ी मुश्किल से छुड़वाया।

छोटी उम्र से ईर्ष्या का दोष मनुष्य के जीवन में प्रविष्ट हो जाता है, तब मनुष्य का जीवन नष्ट-भ्रष्ट होने में देरी नहीं लगती। आगे चलकर वह बालक साधु-जीवन में भी जाता है, तो भी ईर्ष्या का दोष नहीं जाता है। साधु-जीवन में भी दूसरे गुणवान साधुओं की ईर्ष्या करेगा ही। दूसरे कीर्तिप्राप्त, प्रतिष्ठाप्राप्त साधुओं के दोष देखता रहेगा और ईर्ष्या से जलता रहेगा! ईर्ष्या में से छल, प्रपंच वगैरह अनेक दोष पैदा होते हैं! क्लेश, अशान्ति और संताप से उसका हृदय सदैव जलता रहता है। मैंने ऐसे लोगों के जीवन देखे हैं, वे व्यर्थ में ही घोर अशान्ति के शिकार बन गये हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ईर्ष्या गलत काम करवाती है :

हनुमानजी की माता अंजना का पूर्वभव आप जानते हो क्या? पूर्वजन्म में वह एक राजा की कनकोदरी नाम की रानी थी। राजा की दूसरी भी एक रानी थी, उसका नाम लक्ष्मीवती था। लक्ष्मीवती परमात्मभक्त थी। उसने अपने महल में एक छोटा-सा परन्तु सुन्दर कलात्मक जिनमंदिर बनाया था। प्रतिदिन नगर की अनेक महिलाओं के साथ वह मंदिर में पूजापाठ व गीतगान करती थी। मंदिर की वजह से अनेक महिलाएँ उसके महल में आती जाती थीं। रात को भी देर तक लक्ष्मीवती के महल में परमात्मभक्ति होती रहती थी! नगर में लक्ष्मीवती की कीर्ति बढ़ती जाती थी। कनकोदरी ईर्ष्या से जलती थी! लक्ष्मीवती की प्रशंसा वह सुन नहीं सकती थी। लक्ष्मीवती का सुख, उसका आनन्द कनकोदरी के लिए असह्य बन गया। उसने लक्ष्मीवती का सुख छीन लेने का उपाय सोचा। एक अधम विचार उसके मन में आया। अपनी एक विश्वासपात्र दासी को अपना विचार बताया। दासी सम्मत हो गई।

लक्ष्मीवती के जिनमंदिर में से परमात्मा जिनेश्वरदेव की मूर्ति को ही वहाँ से चुरा कर, ऐसी जगह डाल देने की योजना बनाई कि मूर्ति किसी के हाथ नहीं लगे। कनकोदरी ने सोचा था कि 'लक्ष्मीवती के महल में अनेक महिलाओं की चहल-पहल इस मंदिर की वजह से है। मंदिर भी तब तक है, जब तक भगवान की मूर्ति है। यदि मूर्ति को ही गायब कर दें तो मंदिर का कोई महत्त्व नहीं रहता! फिर लोगों का आना-जाना बंद हो जाएगा।

'लक्ष्मीवती के महल में इतनी चहल-पहल और मेरे महल में कोई नहीं? लक्ष्मीवती की इतनी प्रशंसा और मेरी कोई प्रशंसा नहीं!' ईर्ष्याजन्य ये विचार कनकोदरी के हृदय को जला रहे थे। उसने एक दिन तीव्र द्वेष से परमात्मा की मूर्ति की चोरी करवाई और नगर के बाहर कूड़े-कचरे के ढेर में गाड़ देने के लिए वह स्वयं चल दी। उस ने नगर के बाहर आकर, कूड़े-कचरे के ढ़ेर में परमात्मा की पूजनीय प्रतिमा को गाड़ दिया।

परन्तु वहाँ अचानक एक साध्वी का संयोग मिल गया रानी को। विहार कर के आ रही थी साध्वीजी। उन्होंने रानी की आँखों में भय और आशंका देखी। उन्होंने सोचा कि 'इसने कोई बुरा काम किया है।' दूर से साध्वीजी ने देखा भी था कि यह स्त्री कचरे के ढेर में कुछ गाड़ रही है।' उन्होंने रानी से पूछा : 'बहन्, तू यहाँ क्या कर रही थी? इस कचरे के ढेर में तूने क्या छिपाया है!'

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अब रानी पसीने से नहा गई। घबरा उठी। साध्वीजी के प्रभाव और प्रताप से वह अभिभूत हो गई। उसने कह दिया : 'मैंने परमात्मा की मूर्ति इस कचरे के ढ़ेर में डाल दी है।'

साध्वीजी ने कहा : 'तूने बहुत बड़ा पाप किया है। तू शीघ्र ही परमात्मा की मूर्ति निकाल ले यहाँ से और जहाँ से मूर्ति लाई है वहाँ ले जा। तूने यह घोर पाप किया है। इस पाप का कैसा घोर दुःख आएगा, तू जानती है?' रोष और करुणा से मिश्रित वाणी से साध्वीजी ने रानी को समझाया। रानी ने सारी बात बता दी साध्वीजी को। दासी ने गाड़ी हुई मूर्ति निकाल ली और नगर में चली गई। साध्वीजी भी उसी नगर में जानेवाली थी, चली गई! साध्वी की बात सुनकर कनकोदरी को अपनी भूल समझ में आ गई। उसने मूर्ति को मंदिर में रखवा दिया और साध्वीजी के पास जाकर अपनी गलती का पश्चात्ताप भी किया... परन्तु उसने ईर्ष्याजन्य द्वेष से प्रेरित होकर परमात्मा की मूर्ति की जो घोर आशातना की, उसकी वजह से ऐसा पापकर्म बँधा कि अंजना के भव में २२-२२ वर्ष तक पति का वियोग रहा और कलंकित होना पड़ा। निर्दोष होने पर भी व्यभिचारिणी का कलंक उसके सर आया।

कर्मों का तत्त्वज्ञान समझना जरूरी है :

कैसी-कैसी प्रवृत्ति करने से, कैसे-कैसे शब्द बोलने से और कैसे-कैसे विचार करने से कैसे-कैसे कर्म बंधते हैं और उन कर्मों के उदय से कैसे दुःख आते हैं... कैसे-कैसे सुख मिलते हैं, यह तत्त्वज्ञान पाया है क्या? यह तत्त्वज्ञान पाने से ही आप अयोग्य और निषिद्ध प्रवृत्ति का त्याग कर सकोगे। पाप-वाणी और पाप-विचारों का भी त्याग कर सकोगे। इतना समझ लो कि पापकर्मों के उदय से ही दुःख आता है। पापकर्मों का उदय तभी आता है कि जब जीव ने किसी भी भव में वे कर्म बांधे हों। पापकर्म बंधते है पापाचरण से। मन-वचन और काया से जीवात्मा पापाचरण करता है और इससे पापकर्म बाँधता है। यदि दुःखों से डरते हो तो पापों से डरते रहो। दुःखों का भय लगता है तो पापों का भय लगना चाहिए। पापों का त्याग करो। ईर्ष्या बहुत बड़ा पाप है, क्योंकि ईर्ष्या में से असंख्य पाप पैदा होते हैं और मनुष्य का जीवन नष्ट हो जाता है। संसार की चार गतियों में जीव भटक जाता है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ईर्ष्या से प्रेम की मृत्यु हो जाती है :

दूसरे जीवों का किसी भी प्रकार का सुख देखकर ईर्ष्या मत करो। वह सुख पुण्यानुबंधी पुण्य के उदय से मिला हो या पापानुबंधी पुण्य के उदय से मिला हो। वह सुख उस जीवात्मा को भोगना आता हो या नहीं आता हो। वह अपने सुख का त्याग करे या न करे। आपको उसके सुख से कोई लगाव नहीं रखना चाहिए। प्रमोद-भावना की पहली शर्त यह है कि किसी भी सुखी के प्रति ईर्ष्या मत करो। ईर्ष्या से प्रेम मर जाता है। प्रेम के बिना प्रमोदभाव जाग्रत ही नहीं हो सकता।

जो जीव मिथ्यादृष्टि है यानी जिनको सम्यक्ज्ञान, सम्यक्दर्शन नहीं मिला है, जो मिथ्या मान्यताओं में भ्रमित हो गए हैं, उन जीवों में भी दया, दान, शील इत्यादि उत्तम गुण देखकर अनुमोदना करने की है। उनके गुण देखने से उनके प्रति भी द्वेष, तिरस्कार पैदा नहीं होगा। हाँ, संसार के कोई भी जीवात्मा के प्रति द्वेष, धिक्कार, तिरस्कार नहीं करना है। अपने हृदय को ऐसा बनाना का है।

सभा में से : मिथ्यादृष्टि जीवों के गुणों की अनुमोदना करने से उनके मिथ्यात्व की भी अनुमोदना नहीं हो जाती है? मिथ्यात्व की अनुमोदना का दोष नहीं लगता है?

गुण तो सबके अनुमोदनीय हैं :

महाराजश्री : नहीं, अनुमोदना का, प्रमोद-भावना का अपना विषय है गुण। मिथ्यात्व गुण नहीं है, दोष है। अनुमोदना हम गुणों की करते हैं, नहीं कि दोषों की। उनके मिथ्यात्व के प्रति तो करुणा होनी चाहिए। इस जीवात्मा का मिथ्यात्व दूर हो और सम्यक्दर्शन प्राप्त हो, सम्यक्ज्ञान प्राप्त हो, इसको परम सुख, परम शान्ति प्राप्त हो!' ऐसा विचार करना चाहिए। मिथ्यात्व की निन्दा ऐसी नहीं करो कि जिससे मिथ्यात्वी के पास रहे हुए गुणों की भी निन्दा हो जाय। गुणों की निन्दा कर दी तो बरबाद हो जाओगे।

निन्दा-प्रशंसा करने में इतनी सावधानी बरतना अति आवश्यक है। किसी व्यक्ति के दोषों की निन्दा करते समय आपका ध्यान उनके गुणों की ओर जाता है? गुणों की निन्दा न हो जाय, इसकी सावधानी रखते हो? यदि आप सामनेवाले के गुणों की ओर थोड़ा-सा भी देख लोगे तो आपका निन्दा-रस मंद हो जाएगा। परन्तु दोष-दर्शन इतना प्रबल होता है कि गुणदर्शन होने ही

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

नहीं देता। मिथ्यादृष्टि जीवों में रहे हुए दया, दान, शील, परमार्थ, परोपकार इत्यादि गुणों की अनुमोदना करने का विधान उपाध्याय श्री यशोविजयजी ने भी किया है :

'थोड़लो पण गुण परतणो, तेह अनुमोदवा लाग रे...'

गुणों को जहाँ भी देखो, अनुमोदना करो, यानी प्रसन्नता का अनुभव करो। पशु-पक्षी में भी गुण होते हैं। उसके विशेषज्ञ पुरुषों ने पशु-पक्षी के भी गुण बताए हैं। पशु-पक्षी के गुण देखे जा सकते हैं, मनुष्य के गुण नहीं! दुर्भाग्य है न? कुत्ते से प्रेम करनेवाली स्त्री, पति से द्वेष करती है! घोड़े से प्रेम करनेवाला पुरुष अपनी पत्नी से द्वेष करता है! कितनी विचित्रता है संसार की? मिथ्यादृष्टि जीवात्मा का मिथ्यात्व देखकर, गलत मान्यताएँ जान कर भी उसके प्रति रोष नहीं करने का है। उसका मिथ्यात्व दूर करने की करुणापूर्ण भावना रखने की है। उसके गुणों के ऊपर दोषों का आवरण चढ़ाकर निन्दा करने की आदत छोड़ दो! छोड़ोगे? दूसरों के दोष, दूसरों के पाप देखने का पाप छोड़ोगे क्या? नहीं छोड़ोगे तो दुःखी हो जाओगे।

'शांतसुधारस' ग्रन्थ में उपाध्याय श्री विनयविजयजी ने भी मिथ्यादृष्टि जीवों में रहे हुए सत्य-संतोषादि गुणों की अनुमोदना की है :

मिथ्यादृशामप्युकारसारम् संतोषसत्यादिगुणप्रसारम्।
वदान्यता-वैनयिकप्रकारम् मार्गानुसारीत्यनुमोदयामः ।।

मिथ्यादृष्टि जीवों में 'मार्गानुसारिता' हो सकती है। जैनदर्शन ने मार्गानुसारिता को आत्मविकास की प्रथम भूमिका बताई है। आत्मविकास की प्रथम भूमिका पर कोई भी जीवात्मा हो, उसकी मार्गानुसारिता अनुमोदनीय होती है।

मार्गानुसारिता : 'एप्रोच रोड' :

सभा में से : 'मार्गानुसारिता' का अर्थ क्या?

महाराजश्री : मार्ग + अनुसारिता = मार्गानुसारिता! मार्ग यानी मोक्षमार्ग। मोक्षमार्ग है सम्यक्दर्शन-ज्ञान-चारित्र्यात्मक। उस मार्ग की ओर ले जानेवाले गुणों को मार्गानुसारिता कहते हैं। नेशनल हाइ-वे-राजपथ होता है न? उस सड़क तक पहुँचनेवाला 'एप्रोच रोड़' नहीं होता? मार्गानुसारिता 'एप्रोच रोड़' है! मोक्षमार्ग तक पहुँचानेवाला मार्ग! इस मार्ग पर आये हुए जीवों में ३५ प्रकार के गुणों में से अनेक गुण होते हैं। जानते हो न ३५ प्रकार के गुण? इसी

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

'धर्मबिन्दु' ग्रन्थ में वे ३५ गुण बताये गये हैं और अब तीन-चार दिन के बाद उन ३५ गुणों का ही वर्णन शुरू करना है। चातुर्मास-वर्षावास में ३५ गुणों का विवेचन पूरा हो जाय तो अच्छा है! हालाँकि 'धर्मबिन्दु' ग्रन्थ तो बड़ा है। उसमें मार्गानुसारिता से लगाकर मोक्षप्राप्ति तक का क्रमिक विकास बताया गया है। क्रमिक आत्मविकास जिनकी साधना है, उनके लिए 'धर्मबिन्दु' ग्रन्थ अत्यन्त उपयोगी है।

दोषदर्शन की बुरी आदत छोड़ दो :

अपनी बात तो वह थी कि मिथ्यादृष्टि जीवों में जो मार्गानुसारी जीव हैं और उनमें जो सत्य-संतोष-विनय इत्यादि गुण हैं, उन गुणों की हार्दिक अनुमोदना करनी चाहिए। मैं आपको कई बार कहता हूँ कि संसार में प्रत्येक जीवात्मा में कोई न कोई गुण होता ही है। गुण के बिना चैतन्य का होना संभव नहीं। गुण देखने की अपने पास दृष्टि चाहिए। गुणदृष्टि से ही गुण दिखते हैं। गुण होने पर भी, गुणदृष्टि नहीं होती है, तो गुण नहीं दिखेंगे। दूसरों के दोष ही देखने की आदतवालों को दूसरों के गुण दिखे ही नहीं। ऐसे जीवों से कैसे अपेक्षा रखें कि वे गुण देखें। आदत को छोड़ना सरल बात नहीं है। बीड़ी की आदत जैसी मामूली आदत छोड़ना भी मुश्किल लगता है तो फिर दोषदर्शन जैसी गंभीर और पुरानी आदत को छोड़ना कितना मुश्किल होगा? हाँ, कोई महान भाग्योदय होनेवाला हो, कोई दिव्य-कृपा हो जाय और दोषदर्शन की लत छूट जाय वह दूसरी बात है। जैसे हरिभद्र पुरोहित! जैनधर्म और जैन धर्मस्थानों में वे दोष ही दोष देखते थे, परन्तु याकिनीमहत्तरा साध्वीजी के परिचय से परिवर्तन आ गया। परमात्मा की मूर्ति का उपहास करनेवाले वे, परमात्मा का स्तवन करनेवाले बन गये।

एक रोमांचकारी कहानी गोविन्दाचार्य की :

ऐसी ही एक दूसरी घटना है गोविन्दाचार्य की। ब्राह्मण पंडित थे। जैनधर्म के प्रति उनके हृदय में घोर घृणा थी। जैनधर्म के सिद्धान्तों का राजसभा में खंडन कर पराजित करने की तीव्र इच्छा थी। जिसके साथ वाद-विवाद करना हो, उसके सिद्धान्तों का भी समुचित ज्ञान होना चाहिए। गोविन्दाचार्य ने वैसे जैनधर्म के सिद्धान्तों का ज्ञान पाने का प्रयत्न किया, परन्तु जैनाचार्य के अलावा प्रामाणिक सिद्धान्तज्ञान वे पायें कैसे? गोविन्दाचार्य को चिन्ता हुई। वे जानते थे कि 'जैनाचार्य' सभी को अपने सिद्धान्तों का रहस्य नहीं बताते हैं। अपने

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विश्वासपात्र एवं आज्ञांकित शिष्यों को ही रहस्य बताते हैं। अतः मुझे उनका शिष्य बन जाना चाहिए। यदि मैं शिष्य बन जाऊँगा तो जैनधर्म की भीतरी स्थिति का भी अच्छा अध्ययन हो जाएगा और फिर मैं उसी जैनाचार्य से वाद करूँगा, उनको पराजित करूँगा, जैनधर्म को भारत में से निकाल दूँगा!'

गोविन्दाचार्य ने दीक्षा ली। गुरुदेव ने गोविन्दाचार्य को जैनधर्म के सिद्धान्तों का ज्ञान देना प्रारंभ किया। गोविन्दाचार्य भी काफी विनय और नम्रता से ज्ञानार्जन करने लगे। बनावट करनेवाले तो ज्यादा विनय करेंगे, नम्रता भी ज्यादा रखेंगे! पर ज्यों-ज्यों वे अध्ययन करते गये, जैनधर्म के 'अनेकान्तवाद' जैसे सिद्धान्तों का ज्यों-ज्यों तलस्पर्शी अध्ययन करते गये त्यों-त्यों जैनधर्म के प्रति द्वेष जो था, दूर होता गया। आचारमार्ग में अपरिग्रह का, सिद्धान्त और विचारों में अनेकान्तवाद का सिद्धान्त...अपरिग्रह और अनेकान्तवाद, जैनधर्म के अकाट्य सिद्धान्त हैं। आये थे दोष देखने, परन्तु दिखाई दिये गुण ही गुण! साधुजीवन की उत्तम जीवनचर्या से वे काफी प्रभावित हुए। उनके हृदय में जैनधर्म के प्रति आदरभाव बहुत बढ़ गया। दृष्टि बदल गई! गुरुदेव के चरणों में गिर कर क्षमा माँगी और कहा : 'गुरुदेव, पहले तो मैंने साधु होने का दंभ ही किया था, जैनधर्म के प्रति द्वेष होने से, जैनधर्म के सिद्धान्तों का खंडन कर, जैनाचार्यों को पराजित करने की भावना थी।

जैनधर्म के सिद्धान्त मुझे इसलिए जानने थे कि मैं उन सिद्धान्तों का वेदान्त के सिद्धान्तों से अच्छी तरह खंडन कर सकूँ। इसलिए मैं साधु बना और अध्ययन किया। परन्तु आपकी परमकृपा से मुझे जैनधर्म के सिद्धान्त ही परिपूर्ण और अकाट्य लगे। ऐसे सिद्धान्तों का खंडन हो ही नहीं सकता। ऐसा परिपूर्ण जैनदर्शन पाकर अब मैं खो देना नहीं चाहता हूँ। आप कृपा कर मुझे प्रायश्चित्त दीजिए और पुनः मुझे चारित्र्यधर्म प्रदान करें। सचमुच जैनधर्म-जैनदर्शन परिपूर्ण है, इसलिए सर्वश्रेष्ठ है।'

परिवर्तन आ गया दृष्टि में। दोषदृष्टि चली गई, गुणदृष्टि खुल गई। ऐसा किसी के जीवन में सहजभाव से बन जाता है, किसी को अभ्यास करना पड़ता है, यानी प्रयत्न से दोषदृष्टि मिटानी पड़ती हैं। दोषदृष्टि मिटाये बिना दोषदर्शन की आदत से मुक्त नहीं बन सकोगे। प्रमोद-भावना के लिए गुणदृष्टि चाहिए ही। गुणदृष्टि से दूसरों के गुण दिखते हैं और तभी प्रमोद-भावना जाग्रत होती है। दूसरों का सुख भी गुणदृष्टि से ही सहन हो सकता है, यानी ईर्ष्या नहीं होती है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पुत्र के सुख के प्रति माँ को भी ईर्ष्या :

एक माता है। उसने अपने एक ही एक पुत्र की शादी की। अच्छे खानदान की लड़की से शादी की। माता-पिता को अपने पुत्र पर प्रेम तो था ही, 'पुत्र हमारा ही बना रहना चाहिए, पत्नी का नहीं बन जाना चाहिए,' ऐसा भी भाव था। शादी के बाद लड़का अपनी पत्नी को लेकर कभी-कभी घूमने चला जाता है, माता से पूछता नहीं है, माता को बुरा लगा। अब यह लड़का मेरा मानता नहीं, मुझे कुछ भी पूछता नहीं। माँ ने लड़के को दो-चार बार टोका भी सही, परन्तु लड़के ने ध्यान नहीं दिया। अब माँ ने कुछ चाल चलने का सोचा। उसने एक बनावटी प्रेम-पत्र लिखा और पुत्रवधू की पहनने की साड़ी में रख दिया। दूसरे दिन जब अपने पति के सामने उसने साड़ी उठाई, खोली, तो अन्दर से वह प्रेम-पत्र जमीन पर गिर गया, झटपट वह पत्र लेने गई, परन्तु उसके पहले उसके पति ने पत्र को उठा लिया और पत्र को खोलकर पढ़ने लगे, उसका मनोभाव बदलने लगे, उसकी मुखाकृति बदल गई! पत्नी तो बेचारी घबरा उठी। पति ने पत्नी को खरीखोटी सुनाई। पत्नी गर्भवती भी बन गई थी। परन्तु पति का गुस्सा उस बनावटी प्रेम-पत्र से इतना भड़क गया था कि पत्नी उस गुस्से को शान्त नहीं कर सकी। लड़के की माँ तो बड़ी खुश हुई। 'अब मेरा बेटा मेरा कहा मानेगा।' अपने सुख के लिए माँ ने अपने पुत्र की और पुत्रवधू की जिंदगी में आग लगा दी। पुत्रवधू को उसके मायके भेज दिया। पितृगृह में आकर उसने पुत्र को जन्म दिया। अपने पति को समाचार भेजे, परन्तु वह नहीं आया। दो साल तक नहीं आया। माँ ने उस प्रेम-पत्र का रहस्य बेटे को बताया ही नहीं। दो साल के बाद पत्नी ने तलाक पसन्द किया और अपना जीवन नये उत्साह से शुरू किया।

ईर्ष्या जला डालेगी :

अपने पुत्र एवं पुत्रवधू का भी सुख माँ नहीं देख सकी और उनका सुख नष्ट करने का अधम मार्ग अपनाया, इससे बढ़कर ईर्ष्या का कार्य दूसरा क्या हो सकता है? पुत्र-परिवार के सुख की ईर्ष्या करनेवाले दूसरों के सुख की ईर्ष्या तो कितनी करते होंगे? इससे, ऐसा करने से क्या वे स्वयं सुखी बन जाते हैं? सुखी बनना हो तो दूसरों के सुखों की ईर्ष्या करना तत्काल छोड़ दो। सुखी और गुणवान् पुरुषों के प्रति प्रमोदभाव का विकास करो।

अरिहंत परमात्मा, सिद्ध भगवंत, साधुपुरुष, साध्वी, गृहस्थपुरुष एवं स्त्री

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

और मिथ्यादर्शनों में रहे हुए मार्गानुसारी जीव...इन सबमें गुणदर्शन करते रहो और प्रमोदभाव बढ़ाते रहो। वैसे, जो भौतिक दृष्टि से सुखी हैं, अर्थात् जिनके पास पुण्योदय से बंगला, मोटर, नौकर-चाकर एवं संपत्ति है-उनके प्रति ईर्ष्या मत करो। यदि वह अपने वैभव-संपत्ति का दुरूपयोग करता है तो भी उसकी कटु-आलोचना मत करो। उसके प्रति करुणा रखो। जो श्रीमंत अपनी श्रीमंताई का सदुपयोग करता है, उसके प्रति प्रमोद-भाव रखो। प्रमोद-भावना से आपका मन प्रसन्न रहेगा। आपकी आत्मा आनन्दित रहेगी। जीवन में और क्या चाहिए आपको?

आज हम प्रमोद-भावना का विवेचन पूर्ण करते हैं। चार भावनाओं में से तीन भावनाओं का विवेचन पूर्ण हुआ। मैत्री, करुणा और प्रमोद-भावना का विवेचन पूर्ण किया, अब चौथी माध्यस्थ्य भावना का विवेचन तीन दिन तक करेंगे।

आज, बस इतना ही।

❖ ❖ ❖

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

- ***जीवद्वेष जैसा और कोई पाप नहीं है। जीवपीड़ा जैसा दूसरा कोई दुष्कृत्य नहीं है। जीवद्वेष को मिटाने के लिए बार-बार मैत्री वगैरह भावनाओं की गंगा में स्नान करते रहना चाहिए।***
- ***'अहंकार' और 'ममकार' - 'मैं' और 'मेरा' के साथ तिरस्कार-नफरत की दोस्ती हो ही जाती है।***
- ***घर में या संसार में जिन बड़ों के दिल में उपेक्षा-भावना (माध्यस्थ्य भावना) नहीं होती ऐसे कई व्यक्तियों को मैंने घोर अशांति और संताप में झुलसते देखा है!***
- ***क्या सभी को सुधारने का ठेका हमने ही ले रखा है? क्यों हम अपनी मान्यताओं और इच्छाओं को औरों पर इतनी सख्ताई से थोपते हैं?***
- ***असहिष्णुता की आड़ में हमारी भाषा कठोर हो जाती है। शब्दों की कोमलता, मधुरता हमारे लिए जैसे कुछ माईने ही नहीं रखती है!***

प्रवचन : २२

परम उपकारी महान् श्रुतधर पूज्य आचार्य श्री हरिभद्रसूरिजी स्वरचित 'धर्मबिन्दु' ग्रन्थ में धर्म का स्वरूपदर्शन करवाते हैं। धर्म के अनुष्ठान करनेवालों में, धर्मक्रियाएँ करनेवालों में मैत्री, करुणा, प्रमोद और माध्यस्थ्य भावों की अनिवार्य आवश्यकता बतानेवाले ये आचार्य भगवंत जैनशासन में अपना गौरवपूर्ण स्थान बना गये हैं। जैन ही नहीं, जैनेतर विद्वान भी इस जैनाचार्य की मुक्त मन से प्रशंसा करते हैं। स्वदेशी ही नहीं, विदेशी विद्वान भी हरिभद्रसूरि की प्रशंसा करते हैं। भले ही आज उनके द्वारा लिखे गए १४४४ ग्रन्थ नहीं मिल रहे हैं, जो भी चालीस-पचास ग्रन्थ मिले हैं, अपूर्व हैं, अद्‌भुत हैं। कुछ ग्रन्थों का गुजराती भाषा में अनुवाद भी हो गया है। हिन्दी भाषा में भी कुछ ग्रन्थों का अनुवाद मिलता है। आप लोग पढ़ सकते हैं। चिन्तन-मनन कर सकते हैं। आपको बहुत आनन्द... आत्मानन्द प्राप्त होगा।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दुर्गति में गिरने से जो बचाये वह है धर्म :

दुर्गति में गिरने से जीवों को वह धर्म ही बचा सकता है, जो धर्म मैत्री आदि भावों से भरपूर हो। जो मनुष्य अपने हृदय को मैत्री आदि भावों से नवपल्लवित रखता है, वह मनुष्य दुर्गति में नहीं जाता है। मैत्री आदि भावनाओं से सुरभित हृदयवाला मनुष्य जो भी धर्मानुष्ठान करता है, वह धर्मानुष्ठान उसकी आत्मा को स्पर्श करता है। दुष्कर्मों का नाश करता है। सत्कर्मों का सर्जन करता है। मैत्री वगैरह चार भावनाओं से रहित मनुष्य की धर्मक्रियाएँ भी निष्फल जाती हैं। दुर्गति से वह बच नहीं सकता! 'जीवद्वेष' जैसा कोई पाप नहीं है। जीवपीड़न जैसा कोई दुष्कृत्य नहीं है। जीवद्वेष को मिटाने के लिए पुनः पुनः मैत्री आदि भावनाओं की गंगा में स्नान करते रहो। मैत्री आदि भावनाएँ प्रतिदिन पुनः पुनः गाने की हैं। इसलिए मैं विस्तार से इन भावनाओं को समझा रहा हूँ। आज हमको माध्यस्थ्य-भावना पर चिन्तन करना है। यह भावना बहुत ही अच्छी भावना है। वर्तमानकालीन ध्वस्त पारिवारिक जीवन में अपने मन को संतुलित रखने के लिए यह भावना 'रामबाण औषध' है।

जिन स्त्री-पुरुषों के ऊपर दूसरों की जिम्मेदारी होती है, उन स्त्री-पुरुषों के लिए यह माध्यस्थ्य-भावना अत्यंत उपयोगी है। अर्थात् उन स्त्री-पुरुषों को अपने हृदय में इस भावना-रसायण को सुरक्षित रखना चाहिए। पहले इस भावना के प्रकार बताऊँगा, बाद में इस भावना को कब और कैसे जीवन में उपयोगी बनाया जाये, वह बताऊँगा।

संसार में बुराइयाँ अनादि-अनंत :

माध्यस्थ्य-भावना को 'उपेक्षा'-भावना भी कहते हैं। यह 'उपेक्षा' चार प्रकार की बताई गई है।

१. करुणा सारा

२. अनुबन्ध सारा

३. निर्वेद सारा

४. सत्त्व सारा

यदि दुनिया में सभी लोग विनीत होते, सब लोग अच्छे होते तो उपेक्षा-भावना की आवश्यकता ही नहीं होती! परन्तु हमेशा दुनिया में अच्छाई-बुराई साथ रही है। तीर्थंकरों के काल में भी अच्छाई और बुराई थी न? जैसे संसार

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अनादि-अनन्त है वैसे संसार की बुराइयाँ भी अनादि-अनन्त हैं! बुराइयों का अन्त नहीं है। तीर्थंकरों ने और अनेक संत महात्माओं ने जीवों को बुराइयों से मुक्त करने का पुरुषार्थ किया है, कुछ जीवात्माएँ अवश्य बुराइयों से मुक्त भी हुई हैं। परन्तु बुराइयों का सर्वथा नाश नहीं हो पाया। यदि संसार में से बुराइयाँ चली जायें तो फिर संसार और मोक्ष में क्या अन्तर रहेगा? संसार बुराइयों से भरा हुआ है इसलिए दुःखमय है, मोक्ष में एक भी बुराई नहीं है इसलिए वहाँ एक भी दुःख नहीं है।

जिन्दगी में कभी नहीं सुधरनेवाले लोग भी होते हैं :

कुछ मनुष्य ऐसे होते हैं कि ज्ञानी पुरुषों के उपदेश से उनकी बुराइयाँ दूर हो जाती है, अर्थात् उपदेश से सुधर जाते हैं। कुछ बुरे लोग ऐसे निमित्त मिलने पर सुधर जाते हैं। कुछ लोग स्वयं काल परिपक्व होने पर सुधरते हैं! कुछ लोग जिन्दगी में कभी नहीं सुधरते! बुराइयों का त्याग कभी नहीं करते...लाख उपदेश देने पर भी नहीं सुधरते! उत्तम निमित्त मिलने पर भी नहीं सुधरते! ऐसे नहीं सुधरनेवाले बुरे लोगों के प्रति माध्यस्थ्य-भावना से, उपेक्षा-भावना से देखना है, बोलना है और सोचना है। ऐसा करने से बुरे लोगों के प्रति भी रोष नहीं होगा, धिक्कार या तिरस्कार के भाव जाग्रत नहीं होंगे। अपना मन मलिन नहीं होगा।

घृणा एवं नफरत से दूर रहो :

संसार है, संसार में सभी प्रकार के लोग मिल सकते हैं। स्नेही और स्वजन के रूप में भी ऐसे लोग मिल सकते हैं। जब अपने संबंध में आया हुआ मनुष्य बुरे काम करता है, अविनय और मर्यादाभंग करता है, तो उसके प्रति शीघ्र द्वेष हो जाता है, शीघ्र रोष हो जाता है! मनुष्यमन की यह भी एक निर्बलता है। इस निर्बलता को मिटाया जा सकता है। इसका उपाय है माध्यस्थ्य-भावना!

गलती तो बड़ों की भी होती है, अच्छे अच्छे विद्वानों की और महात्माओं की भी होती है, परन्तु जो अपनी गलती मानता है और गलती सुधारनेवालों के प्रति प्रेम, आदर और सद्भाव बनाये रखता है वह अपनी गलती सुधार भी लेता है। कुछ लोग अपनी गलती मानने को ही तैयार नहीं होते! 'मेरी भूल हो ही नहीं सकती...' ऐसा मिथ्या अभिमान लिए फिरते हैं। ऐसे लोग, उनकी भूल बतानेवालों के प्रति गुस्सा करते हैं। गुरु हो तो भी गुस्सा करते हैं, तीर्थंकर हो

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तो भी गुस्सा करते हैं! परन्तु वास्तव में जो गुरु होते हैं वे ऐसे अविनीत और अभिमानी शिष्यों के प्रति गुस्सा नहीं करते, उपेक्षा-भावना रखते हैं। उनके मन में गुस्सा आता ही नहीं। उपेक्षा-भावना से भावित मनुष्य में अपराधी के प्रति भी गुस्सा नहीं आएगा। बुरे से बुरे काम करनेवालों के प्रति भी गुस्सा नहीं आएगा।

सभा में से : दूसरे लोगों के प्रति गुस्सा नहीं आता है, परन्तु जिनको हम अपना मानते हैं और वे जब नहीं सुधरते हैं, गलतियाँ करते रहते हैं, तब उनके प्रति गुस्सा आ ही जाता है!

'मैं' और 'मेरा' गुस्से की जड़ है :

महाराजश्री : एकत्व भावना और अन्यत्व भावना का पुनः पुनः अभ्यास करके अपनत्व की वासना को निर्मूल कर दो। 'यह मेरा लड़का है और मेरा कहा नहीं मानता है?' यह गुस्सा लड़के की बुराई के प्रति नहीं, परन्तु आपका स्वमानभंग होने से पैदा हुआ! बात समझे न? ठीक प्रकार से समझ लो। जब आपकी पत्नी, आपका पुत्र या पुत्री या नौकर-चाकर आपकी अच्छी भी आज्ञा नहीं मानते, आपका कहा नहीं करते, बुरा काम नहीं छोड़ते हैं तब आपके मन में क्या होता है? गुस्सा क्यों आता है? 'वह बुरा काम करके पापकर्म बाँधेगा और पापकर्मों के उदय से दुःखी होगा...' इस विचार से गुस्सा आता है? नहीं न? 'यह मेरी पत्नी है, उसको मेरा कहा मानना ही चाहिए! यह मेरा लड़का है, मैं इसका पिता हूँ, मेरा कहा उसको मानना ही चाहिए, यह मेरा नौकर है, मैं उसका बॉस हूँ, मेरी बात उसको तो माननी ही चाहिए...' ऐसी अहंकारजन्य मान्यताएँ मन में भरी पड़ी हैं। इसलिए रोष होता है। इसलिए धिक्कार-तिरस्कार के दुर्भाव पैदा होते हैं। 'अहं' और 'मम' यानी 'मैं' और 'मेरा' का भाव हृदय से निकालना अत्यंत आवश्यक है।

सभा में से : मैं और मेरा-ये भाव तो आत्मसात् हो गये हैं। इनको कैसे मिटाया जाय? इन भावों को मिटाने से जीवन का आनन्द क्या रहेगा?

महाराजश्री : आपकी बात सही है। मैं और मेरा, अहंकार और ममकार के भाव इसी जीवन के नहीं है, अनन्त जन्मों से आत्मा के साथ चले आ रहे हैं। केवलज्ञानी महापुरुषों ने इसी को महामोह कहा और इस महामोह को संसार-परिभ्रमण का कारण बताया। जिस मनुष्य को संसार-परिभ्रमण मिटाना है उसको महामोह मिटाना ही पड़ेगा। महामोह मिटाया जा सकता है। मिटाने का पुरुषार्थ करना पड़ेगा। महामोह से जीवन में कतई आनन्द नहीं है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

महामोह से तो जीवन में राग-द्वेषजन्य घोर वेदना ही है। अहंकारजन्य आनन्द आनन्द नहीं होता है, आनन्द का मात्र आभास होता है। ममकारजन्य आनन्द आनन्द नहीं होता है, आनन्द का मात्र आभास होता है।

अहंकार-ममकार और तिरस्कार की त्रिपुटी :

अहंकार और ममकार के साथ तिरस्कार की मित्रता हो जाती है तब वह त्रिपुटी मनुष्य का सर्वतोमुखी पतन करती है। जमाली भगवान महावीरदेव के जमाई थे और परमात्मा के चरणों में दीक्षा ली थी-यह बात आप लोग जानते हो न? जमाली राजकुमार थे। दीक्षा लेने के बाद उन्होंने अच्छा ज्ञान संपादन किया था। परन्तु वह मात्र श्रुतज्ञान था, श्रुतज्ञान आत्मज्ञान नहीं बन पाया था। जब तक श्रुतज्ञान यानी शास्त्रज्ञान आत्मसात् नहीं बने तब तक उस त्रिपुटी का खतरा बना रहता है। अहंकार, ममकार और तिरस्कार! जमाली मुनि के भीतर यह त्रिपुटी बैठी हुई ही थी। निमित्त मिल गया और त्रिपुटी ने मुनि के मन पर धावा बोल दिया। भगवान महावीर ने सिद्धान्त बताया था कि 'जो काम होता हो, वह काम हो गया...ऐसा व्यवहार में बोला जा सकता है। जमाली मुनि जब बीमार पड़ गये, शिष्य साधु रात्रि में जब उनका संस्तारक बिछाते थे, जमाली ने पूछा : 'क्या संस्तारक बिछा दिया?' मुनियों ने कहा : 'जी हाँ, संस्तारक हो गया है, पधारें।'

जब जमाली सोने को गए, उन्होंने देखा तो संस्तारक बिछाया जा रहा था! शरीर अस्वस्थ था, जमाली असहिष्णु बन गए थे। उनको गुस्सा आ गया! 'संस्तारक तैयार नहीं हुआ है, फिर भी आप लोगों ने असत्य बोला...'संस्तारक हो गया है।' क्या आप लोगों ने अपने दूसरे महाव्रत का भंग नहीं किया?

मुनियों ने शान्ति से जमाली मुनि का आक्रोश सहन किया, परन्तु प्रत्युत्तर जरूर दिया! 'भगवान महावीर प्रभु ने कहा है कि 'कड़ेमाणे कड़े' जो कार्य होता हो वह कार्य हो गया, ऐसी व्यवहार-भाषा बोली जा सकती है।'

जमाली मुनि का अहंकार उछल पड़ा : 'गलत बात है, जो कार्य अभी पूरा नहीं हुआ है, उसको 'पूरा हो गया,' ऐसा बोलना क्या सत्य है? कार्य पूरा हो जाने पर ही 'कार्य हो गया' ऐसा बोला जा सकता है। 'कड़ेमाणे कड़े' नहीं, 'कड़े कड़े' बोलना चाहिए।'

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अपनी मान्यता का दुराग्रह खतरनाक चीज है :

मुनियों ने जाकर भगवान से बात कही। भगवान ने जमाली मुनि को अपने पास बुलाकर 'कड़ेमाणे कड़े' का सिद्धान्त समझाने का भरसक प्रयत्न किया। परन्तु जमाली अब तक अहंकार के साथ ममकार से भी बँध गये थे! उनके मन में अपनी बात का ममत्व बँध गया था! हजारों साधु-साध्वी में भी इस सिद्धान्त की चर्चा शुरू हो गई थी। जमाली मुनि के मन में मेरा सिद्धान्त है 'कड़े कड़े!' ऐसा सिद्धान्त-ममत्व बँध गया था। 'भगवान का सिद्धान्त गलत है, मेरा सिद्धान्त सही है' - ऐसा आग्रह बन गया था।

भगवान महावीर स्वामी ने बहुत समझाया जमाली को, परन्तु जमाली नहीं समझ पाये। अपना आग्रह नहीं छोड़ा। जमाली के मन में अब तिरस्कार का भाव उभर आया! परमात्मा के प्रति तिरस्कार हो गया। अहंकार-ममकार और तिरस्कार...उस त्रिपुटी ने जमाली मुनि का घोर पतन किया। जमाली भगवान को छोड़कर चले गए।

अविनीत के प्रति भी कुछ सोचना है, पर क्या?

जब परमात्मा जैसे परमात्मा की बात उनके जमाई-शिष्य ने नहीं मानी, तो फिर अपनी बात कोई नहीं माने, तो उसके प्रति रोष क्यों करना? अपनी हितकारी-कल्याणकारी बात भी कोई नहीं मानता है, तो उसके प्रति माध्यस्थ्य भाव ही रखना। माध्यस्थ्य भाव यानी न राग न द्वेष! अविनीत के प्रति द्वेष रखने की आवश्यकता नहीं।

जब कोई आपकी बात नहीं माने, आपकी आज्ञा नहीं माने, तब इस प्रकार सोचना कि 'तीर्थंकर परमात्मा जैसे उत्कृष्ट पुण्यशाली की भी बात उनके जमाई-शिष्य ने नहीं मानी, उनकी पुत्री-शिष्या प्रियदर्शना ने नहीं मानी तो फिर मेरे जैसे अति अल्प पुण्यवाले की बात कोई नहीं मानता है तो आश्चर्य किस बात का? मैं कौन हूँ? मैं कुछ भी नहीं हूँ। मेरा पुण्य भी कुछ नहीं है। हे आत्मन्! तू अहंकार और ममकार को तोड़ दे।' फिर किसी भी जीव के प्रति तुझे तिरस्कार नहीं होगा।

मिथ्याभिमान छोड़ दो!

अपने व्यक्तित्व का बहुत ऊँचा खयाल अपने को अभिमानी-अहंकारी बनाता है। समाज में या परिवार में थोड़ा-सा मान-सन्मान मिल गया, कि हम

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मान लेते हैं कि मैं भी कुछ हूँ! I am also Something आगे बढ़कर I am everything मैं सब कुछ हूँ! ऐसा मिथ्याभिमान उभरता है। मिथ्याभिमानी को मानसिक सुख नहीं होता है, शांति नहीं होती है। वह अपने आपको बहुत ऊँचा बनाये रखने में और ऊँचापन का प्रदर्शन करने में इतना उलझा हुआ रहता है कि उसके लिए स्वस्थता और प्रसन्नता स्वप्न भी नहीं बन सकती। इसलिए कहता हूँ कि मिथ्याभिमान का त्याग करो। अपने आपका ऊँचा खयाल छोड़ दो। ऐसा सोचो कि I am nothing मैं कुछ भी नहीं हूँ। मेरा मात्र अस्तित्व है, 'मैं हूँ' इतना ही, मेरा व्यक्तित्व कुछ भी नहीं है!

इस चिन्तन में एक सावधानी रखना 'मेरा व्यक्तित्व कुछ भी नहीं है।' इस विचार में दीनता नहीं आनी चाहिए। निराशा नहीं आनी चाहिए। मेरा व्यक्तित्व कुछ भी नहीं...' ऐसा रोते-रोते नहीं बोलने का। तत्त्वज्ञानी बनकर स्वस्थ चित्त से सोचने का है। महापुरुषों की अपेक्षा से सोचने का है। जब हम अपना व्यक्तित्व भूल जायेंगे, तब कोई अपना अविनय करेगा, अपने साथ औद्धत्यपूर्ण व्यवहार करेगा, तो उसके प्रति गुस्सा नहीं आएगा। उसके प्रति द्वेष या तिरस्कार नहीं उभरेगा। बस, यही तो माध्यस्थ्य-भावना है।

कर्मपरवशता का चिंतन करते रहो :

संसार में सभी जीव कर्मपरवश हैं, सभी जीव के अपने अपने कर्म होते हैं, उन कर्मों के अनुसार प्रत्येक जीवात्मा अच्छा या बुरा आचरण करती है। जीव स्वतंत्र तो है ही नहीं! फिर उस पर गुस्सा क्यों करना! जीव की कर्मपरवश स्थिति का चिंतन करते रहो।

जब कभी आपका स्नेही, स्वजन, मित्र या दूसरा कोई, अनुचित वर्तन करता हो, अभद्र व्यवहार करता हो, अविनय से पेश आता हो, तब आप उसके प्रति तिरस्कार नहीं करना, गुस्से से बौखलाना नहीं। आपके काफी समझाने पर भी, काफी उपदेश देने पर भी वह सुधरता नहीं हो, अपनी राह छोड़ता न हो, गलत कार्यों का त्याग नहीं करता हो, तो आप मौन रहिए। बोलने से कोई फायदा नहीं है। आपके मन में द्वेष होगा, तिरस्कार की भावना होगी और आप बोलते जाओगे तो आपकी भाषा कर्कश-कठोर बन जायेगी। सामनेवाला मनुष्य, जो कि अविनीत उद्धत और असंयमी है, आपकी कठोर वाणी से ज्यादा भड़केगा। ज्यादा खराब काम करेगा। जान-बूझकर, आपको परेशान करने के काम करेगा।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सभा में से : जिन जिन मनुष्यों की हमारे पर जिम्मेदारी होती है, उनको तो कभी कठोर शब्दों में भी कहना पड़ता है! नहीं कहें तो वे लोग ज्यादा बिगड़ जायँ!

असहिष्णुता जबान को कड़वी बनाती है :

महाराजश्री : कठोर भाषा में कहने से जो सुधर जाते हैं, उनको कहने का मैं इनकार नहीं करता। कटु शब्दों से प्रभावित होकर जो सुधरते हों, उनको कटु शब्द सुनाने का मैं निषेध नहीं करता हूँ। जो सर्जन डॉक्टर होते हैं, वे केस को-मरीज को पहले देखते हैं। उनको लगे कि 'ऑपरेशन थियेटर' में ही मर जाएगा! इसका शरीर ज्यादा कमजोर है...' तो डॉक्टर ऑपरेशन नहीं करते हैं। उसको सशक्त बनाने की दवाइयाँ देते हैं। ऑपरेशन करने का प्रयोजन होता है मरीज को जिंदा रखने का, यदि प्रयोजन सिद्ध नहीं होता हो तो ऑपरेशन करने से क्या? वैसे दूसरों को कटु शब्द, अप्रिय सुनाने का प्रयोजन क्या होता है? दूसरों को सुधारने का न? ऐसा लगता है कि 'कटु शब्दों से यह सुधरेगा नहीं परन्तु ज्यादा बिगड़ेगा,' तो कटु शब्द सुनाने की आवश्यकता क्या? परन्तु बात एक दूसरी है!

पराई चिंता छोड़ो, अपनी सँभालो :

दूसरों को सुधारने की बात ठीक है, अपने से दूसरों का अविनय, औद्धत्य, असंयम सहन नहीं होता है, इसलिए हम कटु शब्द सुनाते हैं! अपनी असहनशीलता कठोर शब्द इस्तेमाल करवाती है। असहनशीलता में से द्वेष जाग्रत होता है। अपने आश्रितों का अयोग्य आचरण देखकर अपने से सहा नहीं जाता है और कहने पर भी, उपदेश देने पर भी वे सुधरते नहीं हैं तब सहन नहीं होता है! सही बात है न? 'मैं तुम्हारा पालक हूँ, तुम्हारी आजीविका में चलाता हूँ, तुम्हें मेरा कहा मानना चाहिए।' है न ऐसी कल्पना आपके दिमाग में? यह कल्पना ही आपको राग-द्वेष करवाती है। जो आपका कहा मानता है उसके प्रति राग और जो आपका कहा नहीं मानता है उसके प्रति द्वेष! प्रतिदिन प्रतिघंटा ये राग-द्वेष होते रहते हैं! आप लोग अपने आपको दुःखी मानते हो! मन में तड़पते रहते हो! ऐसा क्यों करना? ऐसी परचिंता नहीं करनी चाहिए कि जिसका कोई फल नहीं मिलने का हो। जिससे अपनी चित्तप्रसन्नता चली जाती हो!

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

'शान्तसुधारस' ग्रन्थ में ग्रन्थकार उपाध्यायजी ने कहा है :

'निष्फलया किं परजनतप्त्या कुरुषे निजसुखलोपं रे।'

'निष्फल परजनचिंता करके तू अपने सुख का नाश क्यों करता है?' परन्तु अपने लोगों की आदत हो गई है परचिंता करने की! परचिंता करते रहना, राग-द्वेष करते रहना, पापकर्म बाँधते रहना और संसार की दुर्गतियों में भटकते रहना! अब भी भटकना हो संसार में तो अपनी आदत बनाये रखो! नहीं भटकना हो तो आदत को मिटाने का भरसक प्रयत्न करो। करोगे क्या? होती है आत्मचिंता? नहीं, परचिंता में इतने गहरे फँस गए हो, कि आत्मचिंता का अवकाश ही नहीं रहा! निष्फल परचिंता करना छोड़ो। सफल आत्मचिंता करना शुरू करो।

सभा में से : परचिंता की आदत कैसे छोड़ें?

महाराजश्री : परचिंता बुरी लगती है क्या? परचिंता की भयानकता समझ रहे हो क्या? यदि परचिंता त्याज्य लगती है तो उसका त्याग करने की बात है। परचिंता का भी एक रस है। कुछ लोगों को तो पराई चिंता किये बिना चैन नहीं पड़ता। बेचारे वे अज्ञानी और मोहान्ध होते हैं। उनको परचिंता करने के नुकसान भी कौन बताए? निष्फल परचिंता करना छोड़ो।

अविनीत को उपदेश नहीं देना : व्यवहार नहीं रखना :

जो आपकी हितकारी-कल्याणकारी और सुखकारी बात भी नहीं मानते हों, उसको कुछ मत कहो। आपके हृदय में उसके प्रति करुणा बनाये रखो। 'इस बेचारे का क्या होगा? ऐसे दुष्कर्मों से इसका कैसा घोर पतन होगा? परमात्मा की परमकृपा से इसको सद्बुद्धि प्राप्त हो!' करुणासभर चिंतन करने का, परन्तु उस व्यक्ति को कुछ भी कहने का नहीं। यह है 'करुणासारा माध्यस्थ्य-भावना।' कुछ भी व्यवहार उसके साथ करने का नहीं।

मैंने आपको पहले ही कहा है कि यह माध्यस्थ्य-भावना विशेष करके जो बड़े हैं, जिन पर किसी की जिम्मेदारी है, उनके लिए है। जो बड़े हैं, जो जिम्मेदार व्यक्ति हैं वे यदि इस उपेक्षा-भावना को आत्मसात् कर लें और अपनी जिम्मेदारी को निभाने का प्रयत्न करे तो उनका मन अशान्ति की आग में सुलगेगा नहीं। दूसरों के प्रति घोर तिरस्कार होगा नहीं।

जिन बड़े लोगों के हृदय में उपेक्षा-भावना नहीं होती है, ऐसे बड़े लोगों को

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मैंने घोर अशान्ति और संताप में सुलगते हुए देखे हैं। जब कभी उनकी इच्छानुसार कार्य नहीं हुआ, इच्छा के विपरीत कार्य हुआ, विपरीत कार्य करनेवाले अपने आश्रितों के प्रति उनका प्रचंड गुस्सा जाग्रत हो जाता है। वे आश्रितों को न कहनेवाली बातें कह देते हैं। उनकी बुराई करते रहते हैं, उनके प्रति तिरस्कारपूर्ण रवैया बनाये रखते हैं। परिणामस्वरूप, दूसरों को सुधारने की भावना नष्ट हो जाती है और 'यह तो कभी सुधरेगा ही नहीं...' ऐसा गलत खयाल वे बाँध लेते हैं।

कवि भारवि की एक घटना :

संस्कृत भाषा के एक महाकवि हो गए, जिनका नाम था भारवि। भारवि के यौवनकाल का एक दिलचस्प प्रसंग है। भारवि के पिताजी का नाम था त्रिलोचन और माँ का नाम था भगवती। भारवि जैसे शास्त्रज्ञ था वैसे मेधावी भी था। परन्तु अपनी शास्त्रज्ञता और बुद्धिमत्ता का उसको बड़ा अभिमान था। शास्त्रज्ञता और बुद्धिमत्ता के साथ नम्रता बनी रहे, तो तो वह मनुष्य महात्मा बन जाय! पिता त्रिलोचन भी प्रखर विद्वान और प्रज्ञावंत थे। 'युवान अभिमानी पुत्र को हितकारी बात...उपदेश देना प्रत्युत अनर्थकारी बनता है,' यह बात वे अच्छी तरह जानते थे। ऐसा कटु अनुभव भी उनको हुआ होगा। इसलिए उन्होंने भारवि को उपदेश देना इष्ट नहीं समझा होगा। पुत्र का अभिमानप्रेरित अयोग्य आचरण भी वे मध्यस्थ भाव से देखते रहते थे।

एक दिन नगर में राजा की ओर से उद्घोषणा हो रही थी। 'विदेशी पंडितों के साथ वाद-विवाद करके उनको पराजित करने की क्षमता रखनेवाले विद्वान राजसभा में पधारे।' उद्घोषणा सुनकर भारवि पहुँचे राजसभा में। महाराज को प्रणाम कर, भारवि ने कहा : 'महाराजा, मैं किसी भी पंडित के साथ वाद-विवाद कर सकता हूँ। मुझे आत्मविश्वास है कि मैं वाद-विवाद में विजय प्राप्त करूँगा।' महाराजा प्रसन्न हुए। भारवि का राजसभा में विदेशी पंडित के साथ वाद-विवाद हुआ। भारवि ने विजय प्राप्त की। महाराजा भारवि के प्रति अत्यंत आदरभाववाले बन गये। उन्होंने स्नेह से भारवि को आलिंगन दिया और हाथी पर भारवि को बिठाकर, स्वयं राजा चामर ढुलोता हुआ और महामंत्री छत्र धारण करता हुआ भारवि को उसके घर छोड़ने आये। भारवि के माता-पिता ने राजा का भावपूर्ण स्वागत किया। राजा ने दोनों को नमस्कार किया और कहा : 'आपके दर्शन करके मैं कृतार्थ हुआ।' त्रिलोचन ने कहा : 'हे दक्षिणापथ के राजेश्वर! आप जैसे नरेश्वर ने मुझ जैसे रंक के गृह को

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पावन किया, यह मेरा सद्भाग्य है।' राजा ने कहा : 'हे विद्वत्त्श्रेष्ठ! आपकी तपश्चर्या और विद्याधन के सामने मैं रंक हूँ...।'

राजा राजमहल चले गए। इधर भारवि माता भगवती के चरणों में वंदन करने जाता है, माता कहती है : 'बेटा, प्रथम तेरे पिताजी को नमस्कार कर।' भारवि ने पिताजी के चरणों में साष्टांग नमस्कार किया। पिता ने उसके सिर पर हाथ रखा और कहा : 'शतं जीव!'

त्रिलोचन के पुत्र के प्रति ऐसे रुक्ष व्यवहार से माता भगवती को दुःख हुआ। भगवती ने त्रिलोचन से कहा : 'बस, मात्र एक ही शब्द? विजयी पुत्र को छाती से भी नहीं लगाया? क्या आपके हृदय में पुत्र के प्रति इतना भी स्नेह नहीं?' भगवती की आँखों में आँसू आ गए।

त्रिलोचन ने भगवती की ओर देखा, भारवि की ओर भी देखा, वे बोले : 'देवी! पुत्र को आवश्यकता से ज्यादा मान मिल गया है। जब तक वह मान-सन्मान को पचाना नहीं सीखे, मान-सन्मान की पात्रता प्राप्त न करे, तब तक उसको गले से लगाने का भाव कैसे जाग्रत हो? महाराज स्वयं इसको हाथी पर बिठाकर घर छोड़ने आए। परन्तु यह अभिमानी पुत्र महाराजा को छोड़ने थोड़ी दूर भी नहीं गया। राजा कैसे गुणानुरागी... कि इसको हाथी पर बिठाया और इसने महाराजा को अपने पर चामर ढोने दिया।'

भारवि ने अपनी सफाई पेश करते हुए कहा : 'पिताजी, महाराजा ने स्वयं मुझे हाथी पर बिठाया था, अपनी इच्छा से उन्होंने चामर ढुलाया था।'

त्रिलोचन ने कहा : 'महाराजा ने तो अपना बड़प्पन बताया, तेरा विनय कहाँ रहा? तेरी नम्रता कहाँ चली गई?'

भारवि गुस्से से भर गया। तैश में आकर वह बोल : 'पिताजी, यह सम्मान मेरे पांडित्य का था, मेरा नहीं।'

त्रिलोचन ने भी दृढ़ता से कहा : 'अभिमान के साथ दंभ करने का प्रयास कर रहा है?'

'पिताजी! मैं इस प्रकार अपमान सहन करने का आदी नहीं हूँ।'

'बेटा, जिसमें पात्रता न हो, उनको मान देने की आदत मेरी भी नहीं है।' भारवि अपने कमरे में चला गया। त्रिलोचन अपने पूजाखंड में चले गए। भगवती त्रिलोचन के पीछे-पीछे पूजाखंड में पहुँची। आज उसके मन में कोई बड़े अनर्थ की आशंका उत्पन्न हो गई थी। भारवि के अभिमानी स्वभाव से माता सुपरिचित थी। पति की सिद्धान्तनिष्ठा से भी वह सुपरिचित थी। पुत्र के

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अभिमान को पुष्ट करनेवाले वे पिता नहीं थे। पुत्र के प्रति उनके हृदय में वात्सल्य था, परन्तु पुत्र के अभिमानपूर्ण कार्यकलाप से वे उतने ही दुःखी थे। त्रिलोचन ने भारवि को उपदेश देकर सुधारने की आशा नहीं रखी थी। आज त्रिलोचन ने प्रसंगवश इतना कह दिया था। यह उपदेश नहीं था, परन्तु मात्र थोड़ा-सा पथप्रदर्शन था। वह भी भारवि को रुचा नहीं था।

अभिमान : आज की शिक्षा की 'गिफ्ट आइटम' :

आज तो घर-घर में ऐसे अभिमानी भारवि पैदा हो गए हैं! आज की स्कूल-कॉलेज की शिक्षा ने हमारी युवापीढ़ी को अभिमान की भव्य भेंट दी है। शायद ही किसी को यह भेंट नहीं मिली हो। अंग्रेजों की चलाई हुई इस शिक्षाप्रणाली में विनय को स्थान नहीं है। नम्रता को देशनिकाला दे दिया गया है। सरलता का नामोनिशान मिटा दिया गया है। शील-सदाचार की भावना को ही नष्ट कर दी गई है। ऐसी शिक्षापद्धति कितने वर्षों से चल रही है? आजादी मिलने के बाद भी वैसी ही शिक्षा दी जा रही है। युवापीढ़ी का नैतिक अधःपतन होने में क्या शेष रहा है? पारिवारिक जीवन में कितने अधिक अनिष्ट प्रविष्ट हो गये हैं? फिर भी वही शिक्षा दी जा रही है और ली जा रही है।

अभिमानी उपदेश के लिए भी लायक नहीं :

वेशभूषा भी वैसी बन गई है कि मनुष्य में अभिमान उभर आए। अनपढ़ और मूर्ख लोग भी वैसी वेशभूषा कर रहे हैं और अभिमान की अंगड़ाइयाँ ले रहे हैं। अभिमानी मनुष्य परमात्मा का भी उपहास करता है। त्यागी, विरागी और ज्ञानी साधुपुरुषों की भी अवज्ञा करता है। धर्मनिष्ठ स्त्री-पुरुषों की अवहेलना करता है। वास्तव में तो अभिमानी अपनी ही मूर्खता का प्रदर्शन करता होता है। परन्तु कौन बताये उनकी मूर्खता? गधे को उपदेश देना और अभिमानी को उपदेश देना-समान है। लात खानी हो तो गधे को उपदेश देने जाओ। गाली या कटु वचन सुनने हों ऋतो अभिमानी को उपदेश देने जाओ। जिसके घर में अभिमानी लड़के-लड़कियाँ हों, जिसकी पत्नी अभिमानी हों, जिसका पति अभिमानी हो, जिसका बॉस अभिमानी हो...उनको पूछना कि वे अभिमानी के साथ शान्तिमय और सुखमय जीवन व्यतीत करते हैं या अशान्तिपूर्ण और दुःखमय जीवन व्यतीत करते हैं। जिनके शिष्य अभिमानी हों, वैसे धर्मगुरु से पूछना कि उनकी मनः स्थिति कैसी रहती है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

छोटे-छोटे बच्चे भी अभिमान के पुतले :

आज के युग की यह वास्तविकता बन गई है-छोटा हो या बड़ा, स्त्री हो या पुरुष, थोड़ा-बहुत अभिमान देखने को मिलेगा ही! अहमदाबाद में एक परिवार को मैं जानता हूँ। उस परिवार में एक छोटा-सा तीन-चार साल का लड़का था। यदि उस लड़के की माँ ने लड़के को कभी एकाध थप्पड़ मार दिया, जब तक लड़का माँ को एकाध धक्का नहीं मारता, उसको नींद नहीं आती! क्या था लड़के के मन में? 'मुझे माँ ने क्यों मारा?' यह अभिमान नहीं तो क्या है?

ऐसा ही एक किस्सा दूसरे परिवार का है। लड़का होगा दस-ग्यारह साल का। अपने पिता से कहता है : 'डेडी, मुझे दो रूपया दे दो। हमारे क्लास-टीचर ने मँगवाया है।' पिता ने पूछा : 'क्यों?' लड़के ने कहा : 'हमारे क्लास के लड़कों को एक पिक्चर देखने जाना है।' पिता ने कहा : 'नहीं, वैसा पिक्चर नहीं देखने का है। मैं रूपये नहीं दूँगा।' तो लड़के ने तनकर, जोश में कह दिया : 'डेडी, मुझे आपके रूपये नहीं चाहिए, मत देना, मैं स्टेशन पर जाकर मजदूरी करूँगा, पैसा कमाऊँगा और पिक्चर देखने जाऊँगा।

'कॉन्वेन्ट' स्कूलों का मोह :

पिता और माता, दोनों लड़के को देखते रहे गए। लड़का जो कि 'कॉन्वेन्ट' में पढ़ता था, अभिमान का मूर्तरूप था। माता-पिता का 'कोन्वेन्ट' स्कूल का मोह उतर गया। आजकल बड़े शहरों में बच्चों को अंग्रेजी माध्यम की 'कान्वेन्ट' स्कूलों में भेजने का 'फैशन' बन गया है। 'हम संपन्न परिवार के हैं...'-यह प्रदर्शन करने का यह एक मार्ग है।

आप लोगों के दिमाग में बात ठीक लगती है? कुछ गंभीरता से सोचोगे या नहीं? यदि सोचोगे नहीं और इस बुराई से मुक्त होने का निर्णय नहीं करोगे, तो निकट के भविष्यकाल में घोर संकट में फँस जाओगे। शतमुखी पतन होगा।

अभिमानी को अपनी खुशामद प्यारी होती है :

अभिमान में से क्रोध उत्पन्न हो जाता है। अभिमानी के अभिमान को जब टक्कर लगती है, तब क्रोध उत्पन्न हो जाता है। भारवि को वैसा ही हुआ। पिता की सच्ची बात भी उसको पसंद नहीं आई! कैसे आती? अभिमानी को सच्ची बात पसन्द नहीं आती, उसको तो स्वप्रशंसा ही पसन्द आती है। खुशामद ही पसन्द आती है। जो उसकी बात में 'हाँ जी', 'हाँ जी' करता रहे,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वह उसको पसन्द आता है। यदि त्रिलोचन भारवि के अभिमान को पुष्ट करते, यानी उसकी प्रशंसा करते और छाती से लगाते तो भारवि खुश हो जाता। वह अपने आपको पिता से भी महान मानने लगा था। 'जैसा भव्य राजसम्मान मैंने पाया वैसा मेरे बाप ने कहाँ पाया है?'

अभिमानी जमाली मुनि ने भगवान महावीर की भी अवगणना कर दी थी, तो बेचारा भारवि कौन था? उसने पिता के प्रति घोर रोष किया। परन्तु यह बात महत्त्व की नहीं है, यह तो संसार की स्वाभाविक बात है। विशेषता है पिता त्रिलोचन में। त्रिलोचन ने अभिमानी पुत्र के प्रति भी तिरस्कार नहीं किया। रोष नहीं किया। जब त्रिलोचन अपने पूजाखंड में पहुँचे, पत्नी भगवती भी वहाँ पहुँची। त्रिलोचन के मुख पर कोई रोष नहीं था, गंभीरता थी और कुछ उदासीनता। त्रिलोचन परमात्मा के दर्शन करके बाहर चले गए। जब शाम को घर लौटे, तब घर में अंधेरा देखा। उन्होंने भगवती को शोकमग्न देखा। त्रिलोचन ने पूछा : 'देवी, आज घर में दिया क्यों नहीं जलाया गया है?' भगवती रो पड़ी। रोते-रोते उसने त्रिलोचन से कहा : 'आज आपने भारवि को जो कुछ कहा, ठीक नहीं किया।' त्रिलोचन ने भगवती का उपालंभ सुन लिया। शान्ति के साथ उन्होंने भगवती से कहा :

'देवी, क्या मेरे हृदय में पुत्र के प्रति स्नेह नहीं है? तो फिर, मैंने सात दिन तक, जब तक राजसभा में भारवि वाद-विवाद करता रहा, मैंने उपवास क्यों किये? उसकी विजय हो, इसलिए अनुष्ठान क्यों करता रहा? क्या मैं नहीं जानता कि लड़का भविष्य में नाम कमाएगा? वह मेरी इकहत्तर पीढ़ी का नाम करे वैसा सामर्थ्य है उसमें। परन्तु एक दुर्भाग्य है... उसमें विनय और नम्रता नहीं है। सर्व गुणों की जड़ है विनय और नम्रता। यदि पिता अपने अभिमानी पुत्र की प्रशंसा करेगा तो वह पिता नहीं कहलाएगा, वह पुत्र का अहित करनेवाला शत्रु कहलाएगा। मैं भारवि में विनय और नम्रता देखना चाहता हूँ। तभी उसका विकास होगा, उन्नति होगी। यदि उसका यह अभिमान नहीं गया तो यह कभी किसी का प्राण ले लेगा।'

जीवन-परिवर्तन भारवि का :

जब माता-पिता का यह वार्तालाप चल रहा था, भारवि घर की छत में एक पाप योजना बना रहा था। मिट्टी का एक भारी कुंडा उसने उठाया था और पिता के सर पर पटक देने का सोच रहा था। कुंडा उठाकर जब वह नीचे आ रहा था, उसने माता-पिता का वार्तालाप ध्यान से सुना। पिता की गद्-गद्

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आवाज में उसने अपनी प्रशंसा सुनी, पिता के हृदय का वात्सल्य उसको स्पर्श कर गया और उसकी आँखें आँसुओं से भर आईं। उसने कुंडा वहीं जमीन पर पटक दिया। 'धड़ाम' जोरों की आवाज आई। त्रिलोचन और भगवती सीढ़ी की ओर दौड़े। इतने में तो भारवि ने आकर पिताजी के चरणों में नमस्कार किया। क्षमायाचना की। पितृहत्या के संकल्प का प्रायश्चित्त माँगा और भारवि के जीवन-परिवर्तन का सुप्रभात प्रगट हुआ।

माध्यस्थ्य-भावना यानी उपेक्षा-भावना ने त्रिलोचन की मनःस्थिति को बिगड़ने नहीं दिया। त्रिलोचन स्वस्थ रहे, तभी भारवि को जीवन-परिवर्तन का सुअवसर प्राप्त हुआ।

जब-जब किसी स्वजन-परिजन के अयोग्य आचरण देखो, उपदेश देने पर भी सुधरते नहीं देखो, आप बेचैन मत बनो। अशान्त मत हो उठो। उसके प्रति मध्यस्थ-भावना रखो। अपने शुद्ध आत्मस्वरूप का चिन्तन करो। शुद्ध आत्मस्वरूप का चिन्तन करने का अभ्यास करना पड़ेगा। मजा आता है उस चिन्तन में। परचिन्ता में से उत्पन्न सभी अकुलाहट दूर हो जाएगी। प्रसन्नता बनी रहेगी।

मध्यस्थ्य, भावना के दूसरे प्रकार आगे बताऊँगा।

आज, बस इतना ही।

❖ ❖ ❖

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

- ***जो आदमी जैसा उसे बनना होगा वह वैसा ही बनेगा। हम लाख उठापटक करें या झल्लाएँ आखिर तो जो होना है वह होकर ही रहेगा। आप या मैं, उसमें तनिक भी परिवर्तन नहीं ला सकते!***
- ***आज दिन तक आत्मा के विकारी स्वरूपों के बारे में सोचा, अब वह सब छोड़कर हमें कुछ वैसा आत्मध्यान करना है जो हमने आज दिन तक कभी किया ही नहीं!***
- ***पुण्यकर्म के उदय से मिलनेवाले तमाम भौतिक-पौद्‌गलिक सुख असार हैं, क्षणिक हैं, आत्मा का स्वाधीन सुख तो गुणरूप है...जो कि शाश्वत् है-सारभूत है।***
- ***सांसारिक कोई भी अच्छी या बुरी लगनेवाली चीजों में यह ताकत नहीं है कि जीवात्मा में राग-द्वेष पैदा कर सके। मोहविकार के वश हुआ अपना मन राग-द्वेष को पैदा करता है। वस्तुएँ या व्यक्ति तो बहाना मात्र होते हैं।***

प्रवचन : २३

परम करुणावन्त ज्ञानयोगी आचार्य श्री हरिभद्रसूरिजी 'धर्मबिन्दु' ग्रन्थ में धर्म का स्वरूपदर्शन करा रहे हैं। धर्म का भावात्मक स्वरूप समझाते हुए वे मैत्री, प्रमोद, करुणा और माध्यस्थ्य इन-चार भावनाओं की अनिवार्यता बताते हैं। अर्थात् जिस मनुष्य को धर्माराधन करना है, उस मनुष्य का हृदय इन भावनाओं से प्रभावित होना चाहिए। मैत्री, करुणा और प्रमोद-इन तीन भावनाओं के पश्चात् हम माध्यस्थ्य-भावना पर चिन्तन कर रहे हैं।

मनुष्य के जीवन में यह माध्यस्थ्य-भावना अथवा उपेक्षा-भावना अत्यन्त उपयोगी है। जब स्वजन, परिजन वगैरह की ओर से प्रतिकूल आचरण होता हो, मन अशान्त और उद्विग्न हो जाता हो, तब इस भावना का चिन्तन करो। इस भावना का सहारा लो। आपका मन शान्ति का अनुभव करेगा, आपका उद्वेग दूर हो जाएगा।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्रत्येक जीवात्मा का अपना भावि निश्चित :

आपको लगता है कि आपका स्नेही-स्वजन अहितकारी कार्य कर रहा है, आपने वह कार्य नहीं करने की प्रेरणा दी, बार-बार प्रेरणा दी, फिर भी वह उस कार्य का त्याग नहीं करता है, करता ही रहता है, तो आप उसको कहना छोड़ दो। करने दो जो उसे जंचता हो। आप उसको रोकने का प्रयत्न मत करो। घबराना मत! 'यह ऐसा बुरा काम करता है, क्या होगा उसका?' सोचो ही मत! जो उसका भविष्य होगा, वही होगा। होगा ही वह। आप नहीं रोक सकते। आपने उचित प्रयत्न कर लिया। अनुचित प्रयत्न करने का साहस मत करो। अनुचित प्रयत्न करने से न उसको लाभ होगा, न आपको लाभ होगा। Let go कर दो। आप अपने मन को वैसा बना लो। आप एक सत्य सिद्धान्त समझ लो :

'येन जनेन यथा भवितव्यं
तद् भवता दुर्वारं रे...'

जिस मनुष्य को जैसा बनना है, बनेगा ही। आप उसको रोक नहीं सकते, कतई नहीं रोक सकते। सर्वशक्तिमान ईश्वर भी नहीं रोक सकता। हर जीवात्मा का अपना भविष्य निश्चित है। जिसके पास 'केवलज्ञान' होता है यानी जो सर्वज्ञ होते हैं, वे हर जीवात्मा का भविष्य जान सकते हैं, देख सकते हैं। भविष्य निश्चित हो तभी देखा जा सकता है, तभी जाना जा सकता है। अपने पास केवलज्ञान नहीं होने की वजह से ही भविष्य के विषय में चिन्ता करते रहते हैं।

आत्मा के अविकारी स्वरूप के बारे में सोचो :

इतनी पर-चिंता नहीं करनी चाहिए कि हम अपना ही आत्मचिंतन भूल जायँ! हम अपनी ही आत्मा को भूल जायँ! छोड़ दो परचिंता। अपनी आत्मा का अविकारी स्वरूप समझो। परचिंता से मुक्त बनोगे तभी इस प्रकार का आत्मचिंतन, आत्मध्यान कर सकोगे, अन्यथा मन उस पर-व्यक्ति में चला जाएगा।

आत्मा के दो स्वरूप हैं : विकारी और अविकारी। अज्ञान, मोह, राग-द्वेष और शरीर वगैरह विकारों से व्याप्त जीवात्मा विकारी है। 'मैं रूपवान हूँ, मैं धनवान हूँ, मैं पिता हूँ, पत्नी हूँ, पुत्र हूँ, बलवान हूँ, बुद्धिमान हूँ...' वगैरह

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विकारी स्वरूप हैं। हम विकारी होते हुए भी अविकारी आत्मस्वरूप का चिंतन कर सकते हैं। मनुष्य निर्धन होते हुए भी धनवान की कल्पना में खो जाता है न? निर्बल होते हुए भी बलवान की कल्पना करता रहता है! वैसे हम विकारी होते हुए भी, कुछ क्षणों के लिए विकारों से मुक्त होकर अविकारी स्वरूप का चिंतन कर सकते हैं।

मैं ज्ञानमय हूँ, मैं वीतराग हूँ, मैं अजर-अमर, अमूर्त, अरूपी और अनंत हूँ, मैं अशरीरी हूँ। मैं सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हूँ। मैं परभावों का कर्ता नहीं हूँ, भोक्ता नहीं हूँ। मैं स्वभाव का ही कर्ता हूँ, भोक्ता हूँ। मैं अनंत शक्ति का भंडार हूँ।

सोचोगे क्या? ऐसा आत्मध्यान करोगे क्या?

सभा में से : ऐसा आत्मध्यान तो हम लोगों ने जीवन में कभी किया नहीं है... ऐसा करना तो मुश्किल-सा प्रतीत होता है।

महाराजश्री : कभी जो नहीं किया वही तो करना है! हमेशा जो किया है वह तो छोड़ना है! हमेशा परचिंताएँ की हैं, उनका त्याग करना है। हमेशा विकारी स्वरूप का मनन किया है, उसका त्याग करना है। जो आत्मध्यान नहीं किया है, वह करना है! अविकारी आत्मस्वरूप का ध्यान करना है। मुश्किल काम करने में ही मज़ा है। आप विश्वास के साथ करो, करते रहो, आनन्द का अनुभव होगा।

उपेक्षा-भावना का दूसरा प्रकार :

दूसरा प्रकार उपेक्षा-भावना का है 'अनुबंध सारा'। कोई मनुष्य है, आलस से भरा हुआ है, न धंधा करता है, न नौकरी करता है, सोता रहता है, घूमता रहता है आवारा की तरह। आपने उसको समझाया, काफी समझाया और वह समझ गया। प्रमाद का त्याग कर उसने व्यवसाय करना शुरू कर दिया, धीरे धीरे उसने अच्छी उन्नति की, तब आपने उसको प्रेरणा देना बंद कर दिया, उस व्यक्ति में रस लेना छोड़ दिया, इसको कहते हैं अनुबन्ध-सारा उपेक्षा! यह बड़ी अच्छी बात है। कइयों को ऐसी आदत होती है जिसको प्रेरणा देकर रास्ते लगाया हो, उसको बार-बार याद दिलाते रहते हैं : 'तुम पहले कैसे थे? तुम को रास्ते लगाते-लगाते मुझे कितना परिश्रम करना पड़ा है, जानते हो? अच्छा हुआ तुम रास्ते लग गए। अब ध्यान से चलना...' वगैरह। यह बात अच्छी नहीं है। सामनेवाले मनुष्य को आघात लगता है, बुरा लगता है। कभी ऐसा भी हो जाए कि वह मनुष्य अपना रास्ता छोड़ दे! पूर्ववत् स्थिति में पहुँच

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जाये। इसलिए हरिभद्रसूरिजी कहते हैं कि किसी को रास्ते पर लगाने के पश्चात् यदि उस व्यक्ति की क्षमता नहीं है आपका उपदेश ढोने की, तो उसको उपदेश देना छोड़ दो, उसमें आप रुचि ही मत रखो। उसको जँचे वैसे करने दो, उसको जँचे उस रास्ते पर चलने दो। उसके पीछे मत पड़ जाओ।

उपेक्षा-भावना का तीसरा प्रकार :

उपेक्षा-भावना का तीसरा प्रकार है 'निर्वेदसारा'। यह उपेक्षा दूसरे मनुष्यों के प्रति नहीं है, परन्तु प्राप्त-अप्राप्त भौतिक-सांसारिक सुखों के प्रति है। मनुष्य के ही भौतिक सुख नहीं, देवों के भी भौतिक सुखों में असारता और क्षणिकता का दर्शन करने से निर्वेद आ जाता है। विरक्ति आ जाती है। देवगति, मनुष्यगति, तिर्यंचगति और नरकगति-इन चार गतियों में परिभ्रमण करते हुए जीव जो अनेक प्रकार की घोर वेदनाएँ अनुभव करते हैं, उसे ज्ञानदृष्टि से देखनेवाले लोग संसार के वैषयिक सुखों के प्रति आकर्षित नहीं होते हैं।

निर्वेदसार-उपेक्षा सुखों की उपेक्षा है। वैषयिक सुखों की उपेक्षा! सुख के साधन पास में होने पर भी कोई लगाव नहीं। पांच इन्द्रियों के उत्कृष्ट विषय क्यों न हो, उन विषयों के प्रति कोई मानसिक आकर्षण नहीं। देवलोक का देव इस धरा पर उतर आए और 'ऑफर' करे दैवी सुखों की, तो भी कोई आसक्ति नहीं। आजकल तो देवलोक के देव इस धरती पर आते नहीं, परन्तु प्राचीनकाल में धर्मात्माओं के धर्मप्रभाव से देव आते थे और कुछ चमत्कार बताते थे। शास्त्रों में ऐसे उदाहरण पढ़ने को मिलते हैं। जो सच्चे धर्मात्मा होते हैं वे दैवीसुखों के प्रलोभनों के सामने भी विरक्त बने रहते हैं यानी आकर्षित नहीं होते हैं। ऐसे धर्मात्माओं में यह 'निर्वेदसारा' उपेक्षा होती है। उन्होंने गहरा चिंतन-मनन कर वैषयिक सुखों की 'क्वालिटी' को जान लिया होता है। कोई भी इन्द्रिय का विषय हो, वह निःसार होता है और क्षणिक होता है। वैषयिक सुखों में कोई सार नहीं होता है।

सुखों के प्रति निर्वेद जगा है ?

आप लोगों को तो सार लगता है न? कभी आपने इस विषय में चिंतन-मनन ही नहीं किया होगा। संसार के सुखों की 'क्वालिटी' को परखो। वे सुख सार हैं या असार हैं? वे सुख क्षणिक हैं या शाश्वत् हैं। परख कर लेना अति आवश्यक है। आपके पास बुद्धि है, आप लोग विचार कर सकते हो। यदि

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विचार नहीं करोगे और सुखों के प्रति निर्वेद नहीं आया तो दुःखी दुःखी हो जाओगे। क्योंकि सुखों के प्रति निर्वेद का अभाव यानी वैराग्य का अभाव ही तो सर्व दुःखों का मूलभूत कारण है।

सुखों के प्रति राग है तो सुख पाने की प्रबल इच्छा जाग्रत होगी ही। जब सुख मिलेंगे नहीं तब क्लेश और संताप होगा ही। होता है न आप लोगों को? सुख प्रिय हैं परन्तु मिलते नहीं, मिलते हैं तो टिकते नहीं...कभी टिकते हैं तो भोगने की क्षमता नहीं रहती, तब कैसी वेदना होती है? क्या जीवन इस प्रकार वेदनामय ही व्यतीत करना है? रो-रोकर ही आयुष्य पूर्ण करना है? क्यों प्रकाश होने पर भी अन्धकार में भटक रहे हो? अमृत पास में होने पर भी क्यों जहर पी रहे हो?

संसार के सर्व सुखों में असारता और क्षणिकता का ज्ञान हो जाना चाहिए। सारे के सारे वैषयिक सुख असार हैं और क्षणिक हैं-यह बात आत्मा के हर प्रदेश में पहुँच जानी चाहिए। फिर कैसा भी सुख आपके पास आये, आप कैसा भी सुख भोगो, आपका मन आसक्त नहीं बनेगा। आये हुए सुख चले जाने पर आपको कोई दुःख नहीं होगा।'

सुख के चार प्रकार :

मुख्य रूप से सुख चार विभागों में विभाजित हो जाता है :

१. स्वजनों का सुख

२. परिजनों का सुख

३. धन-वैभव का सुख

४. शरीर का सुख

जब निर्वेदसारा उपेक्षा-भावना को अच्छी तरह समझना है, तब इन चार प्रकार के सुखों को भी अच्छी तरह समझना ही चाहिए। सुखों की उपेक्षा तभी संभव है। आपके पास मान लो कि ये चारों प्रकार के सुख हैं, फिर भी आप इन सुखों से निर्बंध रहते हुए, बहुत कम सुखों का उपभोग करते हुए, प्रसन्नतापूर्ण जीवन जी सकते हो। यह तभी संभव है कि आप सुखों का 'एक्स-रे' लेकर सुखों के भीतर जो दुःख पड़े हैं, उनको देख लो। सुखों की भीतरी खराबी देख लो। भीतरी खराबी है असारता और क्षणिकता।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पुण्यकर्म का सुख : आत्मा का सुख :

सुख दो प्रकार के होते हैं : १. असार और क्षणिक एवं २. सार और शाश्वत्! पुण्यकर्म के उदय से मिलनेवाले सारे के सारे पौद्गलिक सुख असार और क्षणिक हैं। आत्मा के स्वाधीन गुणरूप जो सुख हैं वे सारभूत एवं शाश्वत् हैं। सुख में सारभूत तत्त्व है आनंद! अमाप आनंद! आत्मीय स्वाधीन सुख में निरंतर आनंद की अनुभूति होती रहती है। वैषयिक सुखों में आनंद का अनुभव होता हुआ लगता है, परंतु वह आनंद का विकृत रूप होता है। आनंद का आभास मात्र होता है। आभास शाश्वत् नहीं हो सकता, क्षणिक होता है। वैषयिक सुख इसलिए क्षणिक हैं। प्रिय शब्द सुनो तब तक मज़ा, फिर क्या? क्या सदैव प्रिय शब्द सुनने मिलेंगे? नहीं, शब्दों में प्रियत्व की धारा निरन्तर नहीं बहती है, कटुता भी बहने लगती है न? इसलिए श्रवणेंद्रिय का शब्द सुख क्षणिक है! वैसे कोई अच्छा रूप देखा तब तक खुशी! क्या आँखों को सदैव प्रिय रूप ही देखने को मिलेगा? क्या अप्रिय रूप नहीं देखना पड़ता? प्रिय रूपदर्शन सतत नहीं मिलता है आँखों को, इसलिए वह प्रियरूप का सुख क्षणिक है। जिह्वा को मधुर रस मिला, सुख मिला, परन्तु मधुर रस और जिह्वा का संयोग कब तक रहता है? जब वह संयोग टूट जाता है तब? अथवा कटु रस का अनुभव होता है तब क्या होता है? जिह्वेंद्रिय के रस का सुख इसलिए क्षणिक होता है। सुख की एक धारा नहीं रहती है। धारा टूट जाती है। वैसे ही प्रिय स्पर्श का सुख क्षणिक है। जब तक प्रिय व्यक्ति का स्पर्श होता रहता है तब तक सुखानुभव, परन्तु किसी से निरन्तर स्पर्श तो रह नहीं सकता है। वैसे कल जिसका स्पर्श सुखद लगता था आज उसका स्पर्श दुःखद लगता है! सुखानुभव की निरंतरता नहीं रहती है।

निर्वेदसारा उपेक्षा को जीवन में स्थान दे दो। वैषयिक सुखों में लीन नहीं बनोगे, आवश्यक सुखभोग करने पर भी उसमें खो नहीं जाओगे। शालिभद्र जैसे श्रेष्ठिपुत्र ने अपार धन-वैभव का और रूपवती बत्तीस पत्नियों का सुख सरलता से त्याग दिया था न? उत्कृष्ट वैषयिक सुख उनको मिले थे, फिर भी उपेक्षा कर दी उन सुखों की। सुखों में असारता का और क्षणिकता का ज्ञान हो जाने पर, चक्रवर्ती के सुखों का त्याग करना भी आसान है। वैसे सुखों में सार महसूस हुआ, स्थायित्व लगा तो भिखारी का भिक्षापात्र छोड़ना भी असंभव हो जाता है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

उपेक्षा-भावना का चौथा प्रकार :

चौथी उपेक्षा-भावना है तत्त्वसारा उपेक्षा।

'षोड़शक' ग्रंथ में आचार्य भगवंत हरिभद्रसूरिजी ने उपेक्षा-भावना के ये चार प्रकार बताये हैं। इतना सुन्दर विश्लेषण किया है उन्होंने कि आज का बड़े से बड़ा मनोवैज्ञानिक भी ऐसा विश्लेषण नहीं कर सकता! 'षोड़शक' ग्रन्थ अद्भुत ग्रन्थ है। आत्मसाधना के मार्ग में, जैनशासन को समझने के लिए, यह ग्रन्थ अच्छा मार्गदर्शक बन सकता है। आप लोगों को तो पढ़ने की फुरसत कहाँ? सुनने का समय भी कहाँ है? उपेक्षा-भावना बता रहे हैं। चौथा प्रकार है तत्त्वसारा उपेक्षा। वस्तु स्वभाव को कहते हैं तत्त्व। हर वस्तु का अपना स्वभाव होता है। वस्तु का सच्चा ज्ञान उसके स्वभाव के ज्ञान से होता है।

संसार की कोई भी मनोज्ञ-अमनोज्ञ, अच्छी या बुरी वस्तु में राग या द्वेष उत्पन्न करने की क्षमता नहीं है। राग या द्वेष उत्पन्न होते हैं जीव की मोहदशा में से। मोहविकार से राग-द्वेष उत्पन्न होते हैं। पदार्थ का स्वभाव ही नहीं कि वह जीव में राग-द्वेष उत्पन्न करे। यह एक पारमार्थिक सत्य है। जो मनुष्य इस पारमार्थिक सत्य को नहीं जानता है, वह अज्ञानी है। अज्ञानी जीव पदार्थों में राग-द्वेष की उत्पादकता मानता है। कभी रागी बनता है, कभी द्वेषी बनता है। अपने आपको मध्यस्थ नहीं रख सकता।

सुखदुःख का कारण : स्वयं के रागद्वेष :

कोई भी परपदार्थ जीवात्मा के सुख-दुःख का कारण नहीं है। यह वास्तविक सत्य है। इस सत्य को समझनेवाला ज्ञानी पुरुष किसी परपदार्थ पर आरोप नहीं मढ़ता कि 'यह पदार्थ मुझे मिला इसलिए मैं सुखी और यह पदार्थ मुझे नहीं मिला इसलिए मैं दुःखी।' किसी भी पदार्थ में वह अपराध नहीं देखता, किसी भी वस्तु में वह उपकार नहीं मानता। सुख-दुःख के कारण वह अपने ही राग-द्वेष को मानता है। एक वस्तु अच्छी है इसलिए अपन को प्रिय नहीं लगती है, अपन में राग है इसलिए वस्तु प्रिय लगती है। एक वस्तु अच्छी नहीं है खराब है, इसलिए अप्रिय नहीं लगती, हम में द्वेष की वासना पड़ी हैं इसलिए अप्रिय लगती है। इस प्रकार ज्ञानीपुरुष अपने आपको राग-द्वेष से बचा लेते हैं। इसको कहते हैं तत्त्वसारा उपेक्षा-भावना।

यह बात तात्त्विक है, फिर भी आप लोगों को समझने की है। बहुत अच्छी बात है। राग और द्वेष के दावानल को बुझाने हेतु यह बात 'फायर

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

बिग्रेड' - दमकल है। यदि यह बात समझ लो तो काम हो जाय। किसी भी वस्तु में, किसी भी पदार्थ में अच्छाई या बुराई नहीं है। प्रिय और अप्रिय की अपनी अपनी कल्पनाएँ हैं। इन कल्पनाओं में से सुख-दुःख की कल्पनाएँ उत्पन्न होती है।

कुछ उदाहरण से यह बात समझाता हूँ। आप एक छोटे-से मकान में रहते हो, मकान में उतनी सुख-सुविधाएँ भी नहीं हैं, आपको पसन्द नहीं है, आप सोचते हो कि 'कोई अच्छा मकान मिल जाए, सुविधाओं वाला मकान मिल जाए तो अच्छा, परन्तु वैसा मकान लेने के लिए रूपये चाहिए, उतने रूपये पास में नहीं।' एक मकान जो कि आपके पास है, आपको बुरा लग रहा है, जो मकान आपके पास नहीं है, परन्तु सुख-सुविधाओं वाला मकान अच्छा लगता है-यह क्या है? मकान में अच्छाई या बुराई, आपकी कल्पनामात्र है! मकान में अच्छाई होती तो सभी को मकान अच्छा लगता, मकान में बुराई होती तो सभी को मकान बुरा लगता, परन्तु ऐसा नहीं है, जो मकान आपको अच्छा लगता है, दूसरे को बुरा लगता है! जो आपको बुरा लगता है, दूसरे को अच्छा लगता है!

जो भोजन आपको प्रिय लगता है, दूसरे को अप्रिय भी लगता है! आपको भींडी की सब्जी प्रिय लगती है, आपके भाई को भींडी की सब्जी देखते ही उल्टी होने लगती है! आपको रसगुल्ले बहुत प्रिय हैं, तो आपकी पत्नी उस रसगुल्ले को देखना भी पसंद नहीं करती। यह क्या है? यदि भिंडी में बुराई होती तो सबको अप्रिय लगती...यदि रसगुल्ले में अच्छाई होती तो सभी को रसगुल्ले प्रिय लगते। परन्तु ऐसा नहीं होता। क्योंकि पदार्थ तो अपने-अपने स्वभाव में स्थित हैं। प्रिय और अप्रिय की कल्पना जीवात्मा करता रहता है, इससे राग और द्वेष के द्वन्द्व बने रहते हैं। सुख और दुःख की कल्पनाएँ बनी रहती हैं। इसलिए कहता हूँ कि व्यर्थ के राग-द्वेष छोड़ो, तत्त्वसारा उपेक्षा भावना अच्छी तरह आत्मसात् करो। मध्यस्थ भाव को स्थिर करने का प्रयत्न करो। 'यह अच्छा और यह बुरा-' इस कल्पना-जाल को ही नष्ट कर दो। कोई वस्तु अच्छी-बुरी नहीं है। अपने राग-द्वेष से उत्पन्न कल्पनाएँ ही हैं। व्यर्थ की कल्पनाएँ कर के क्यों अशान्त बनते हो?

अपनी आत्मा के साथ प्रेम किया है ?

चेतन जीवों के प्रति करुणासारा उपेक्षा और अनुबन्धसारा उपेक्षा-भावना

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

से भावित बनो। जड़ पदार्थों के प्रति निर्वेदसारा उपेक्षा-भावना से भावित बनो। विश्व में दो ही तत्त्व हैं : जड़ और चेतन। अपने को इन दो तत्त्वों के सम्पर्क में रहना ही पड़ता है। अपना स्वयं का अस्तित्व भी इन दो तत्त्वों के संयोजन से है। शरीर जड़ है, तो आत्मा चेतन है। आत्मा सदा के लिए शरीर के बंधन से मुक्त हो जाएगी तब इस संसार से छुटकारा हो जाएगा। परन्तु शरीर के बंधन से मुक्त होना आसान काम नहीं है।

'मैं सच्चिदानन्द स्वरूप आत्मा हूँ, मैं अशरीरी हूँ,' ऐसा चिन्तन कभी किया है? अपनी आत्मा से कभी प्रेम किया है क्या? आत्मा से प्रेम हो जाय तो ही उसको शरीर के बन्धन से मुक्त करने का पुरुषार्थ हो सके। शरीर बन्धनरूप लगे।

सभा में से : शरीर तो बड़ा प्यारा लगता है, शरीर कभी बन्धनरूप लगता ही नहीं!

महाराजश्री : यही तो बात है! शरीर प्यारा लगता है, तो आत्मा का विचार आता ही नहीं है। कभी-कभार रात्रि के समय, जब परिवार के लोग सो गये हों, आपकी निद्रा टूट गई हो, उस समय बिछोने में शान्ति से बैठकर, आत्म-चिन्तन किया करो। मकान की खिड़की से खुले नील गगन की ओर देखो...अनन्त आकाश की ओर देखो...फिर विचार करो :

कोऽहम्? 'मैं कौन हूँ?'

आप अपनी वर्तमान अवस्था को भूल जाना। 'मैं छगनलाल या मगनलाल हूँ या मैं सुरेन्द्रकुमार या महेन्द्रकुमार हूँ... मैं श्रीमंत हूँ या मैं गरीब हूँ... मैं दुर्बल हूँ या मैं पहलवान हूँ... 'यह सब याद नहीं करना। ये तो सारी परिवर्तनशील अवस्थाएँ हैं। जो स्थिर तत्त्व है, जो मूलभूत तत्त्व है - 'ओरिजनल मैटर' है वह मैं हूँ। वह है आत्म-द्रव्य। आत्म-द्रव्य अनामी है, अशरीरी है, अजर और अमर हैं। नहीं है उसकी वृद्धावस्था, नहीं है उसकी मृत्यु। अपार, अनन्त आनन्द है उसमें। अक्षय, अविनाशी सुख है उसमें। आप इस चिन्तन में डूब जाओ...थोड़े क्षणों के लिए भी डूब जाओ। डूबने में बड़ा आनन्द है। स्वभावदशा के चिन्तन में डूब जाओ। डरो मत, डुबकियाँ लगाते रहो।

परचिंता छोड़ो, आत्मचिंतन में डूबे रहो :

परायी चिन्ताओं के सागर में डूबने से तो आर्तध्यान और रौद्रध्यान बना रहता है। चित्त अशान्त और अस्वस्थ बना रहता है। परायी चिन्ताएँ करने से

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दूसरा क्या मिलता है? क्या धन-दौलत मिल जाती है? मिलता कुछ नहीं, खोने का ही धंधा है। अपने स्वयं के सुख को खो देने का है। स्वयं की प्रसन्नता खो देने की है। इसलिए परचिन्ता करना छोड़ दो।

दूसरों की योग्यता के अनुसार उनका पथ-प्रदर्शन करते रहो। दूसरों को अहित से बचाने के लिए प्रेरणा देते रहो, परन्तु जिनको आपकी प्रेरणा नहीं चाहिए, जिनको आपका मार्गदर्शन नहीं चाहिए, उनको आप जबरदस्ती प्रेरणा या मार्गदर्शन मत दिया करो। आपकी इच्छानुसार वे नहीं चले तो आप अशान्त मत बनो। एक बात समझ लो कि दुनिया में हर एक जीवात्मा के अपने-अपने कर्म हैं, अपने-अपने संस्कार हैं, उसी के अनुसार वे जीवन व्यतीत करेंगे। आप अपना मिथ्या आग्रह छोड़ दो। मन से आग्रह को निकाल दो।

बाह्य दुनिया के साथ जितना अति आवश्यक हो उतना ही संबंध रखो। आन्तर जगत विशाल है। आंतर विश्व की यात्रा करने निकल पड़ो। ऐसा मत समझो कि मात्र जो आँखों से दिखता है उतना ही विश्व है! पाँच इन्द्रियों से अगोचर एक विशाल भावसृष्टि है। अपने स्वयं का अनंत...अनादि अतीत-इतिहास है। अनन्त जन्मों की अनन्त कहानियाँ हैं। जब समय हो, जब परचिंता से ऊब जाओ, आप इस भावसृष्टि में चल पड़ो। प्रयत्न करते रहो, एक दिन आपको इस भावसृष्टि की यात्रा में सफलता मिलेगी। 'हम लोग तो ऐसी यात्रा नहीं कर सकते...हमारे पास वैसा ज्ञान नहीं, वैसी सूझ नहीं है' ऐसा मत सोचना। कभी भी निराशा से भरा चिंतन नहीं करना।

कौन स्वजन? कौन पराया जन ?

अशान्त और बेचैन करनेवाली व्यर्थ चिन्ताओं से मुक्त होने का दृढ़ संकल्प करो। 'मुझे ऐसी अशान्ति उत्पन्न करनेवाली व्यर्थ परचिन्ता नहीं करनी है। स्वजनों से मुझे क्या लेना देना? ये लोग तो मात्र इस जन्म के स्वजन हैं...पूर्व जन्मों में मैंने कितने-कितने स्वजन किये और छोड़े? ये भी स्वजन कैसे? मैं स्वजन मानता हूँ, वे लोग मुझे स्वजन मानते हैं? नहीं मानते हैं मुझे स्वजन, तो मैं क्यों मानूँ? कोई स्वजन नहीं है, कोई परजन नहीं है। इस संसार में स्वजन परजन बन जाता है, परजन स्वजन बन जाता है। कोई संबंध स्थिर नहीं है, शाश्वत् नहीं है। स्थिर और शाश्वत् है मेरी आत्मा! मैं अकेला हूँ। अकेला जन्मा हूँ, अकेला ही परलोक की यात्रा करूँगा। तो फिर अकेला ही जीवन क्यों न जीऊँ?

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

इस प्रकार एकत्व भावना द्रढ़ करो। माध्यस्थ्य-भावना की बुनियाद है एकत्व भावना। 'एकऽहम्' मैं अकेला हूँ-यह विचार निराशा या दुर्बलता का नहीं है। रोते-रोते मत बोलना कि 'क्या करूँ'? मैं अकेला हूँ...। किसी प्रकार की दीनता किये बिना चिन्तन करना कि 'मैं अकेला हूँ।' अन्तःकरण को एकत्व से भावित करना। आत्मभाव को पुष्ट करते रहो।

एकत्व के बिना माध्यस्थ्य नहीं :

सभा में से : इस प्रकार सोचना स्वार्थीपन नहीं है?

महाराजश्री : नहीं, आत्मभाव को पुष्ट करनेवाला ही सच्चा परार्थ और परमार्थ कर सकता है। जिसने आत्मा को नहीं जाना, आत्मा का एकत्व नहीं जाना, आत्मा की शक्ति नहीं जानी, वह सच्चा और निर्दंभ, परार्थ-परमार्थ नहीं कर सकता। करने जाएगा तो दंभ करेगा! साधेगा स्वार्थ, बताएगा परमार्थ! आजकल के देशनेताओं को नहीं देखते? क्या करते हैं वे लोग? कहते फिरते हैं कि 'हम लोग आपका कल्याण करना चाहते हैं, आप लोगों के सुख के लिए प्रयत्न करते हैं' और काम क्या करते हैं? अपना 'बैंक-बेलेन्स' अच्छा कर लेते हैं! कैसा भयंकर दंभ? जो अपने आपको नहीं जानता है, आत्मा का जो चैतन्य स्वरूप है, उसको नहीं जानता है, वह परमार्थ नहीं कर सकता है। इसलिए प्राचीनकाल में ऋषि-महर्षि छात्रों को जो शिक्षा देते थे, उस शिक्षा में सर्वप्रथम 'आत्मा' समझाते थे। चाहे प्रारंभ में दार्शनिक ढंग से नहीं समझाते होंगे, परन्तु आत्मा के प्रति प्रेम जाग्रत करते होंगे। आत्मप्रेमी मनुष्य ही सच्चा परिवारप्रेमी, समाजप्रेमी, राष्ट्रप्रेमी और विश्वप्रेमी बन सकता है। आत्मा को तर्कों से चाहे देर से समझो, आत्मा से प्रेम तो कर सकते हो। यानी आत्मा का जो एकत्व है, निर्द्वंद्वता है, उसके प्रति प्रेम करो। आत्मप्रेमी मनुष्य स्वार्थी नहीं बन सकता। वह सच्चा परमार्थी बनेगा। वही सच्चा परोपकारी बनेगा। जो आत्मज्ञानी नहीं है वह कभी भी सच्चा परोपकारी नहीं बन सकता। एकत्व के साथ माध्यस्थ्य का संबंध है। एकत्व के बिना माध्यस्थ्य नहीं!

आत्मज्ञान की प्रतिष्ठा कम होती जा रही है :

आज तो प्रजा का घोर दुर्भाग्य है। आत्मज्ञान की शिक्षा ही स्थगित हो गई। किसी भी स्कूल-कॉलेज में आत्मज्ञान नहीं दिया जाता। आत्मज्ञान से ज्यादा प्रतिष्ठा विज्ञान को मिल गई। आत्मज्ञानी से बहुत ज्यादा प्रतिष्ठा विज्ञानी को मिल गई। परिणाम बहुत ही विघातक आया है। थोड़े वर्षों में

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

परिणाम और विनाशक आयेगा। जो आत्मज्ञानी नहीं हैं और वैज्ञानिक बन गए, वे संसार के तारणहार नहीं बनेंगे, वे संसार के संहारक बनेंगे।

आत्मज्ञानी ही संसार के सर्व जीवों के प्रति प्रेम कर सकता है, करुणा प्रवाहित कर सकता है। विज्ञानी की दृष्टि प्रेम की होती ही नहीं। उनकी दृष्टि में तो पदार्थ और पदार्थों के पृथक्करण होते हैं। इस पदार्थ में इतने-इतने 'केमिकल्स' हैं...इसका ऐसा असर...इसका वैसा असर...बस, पदार्थ का विश्लेषण कर के रख देंगे।

आत्मज्ञानी सर्व जीवों में अपने समान आत्म-तत्त्व का दर्शन कर, सर्व जीवों के प्रति प्रेम मैत्री का भाव रख सकता है। वैज्ञानिक कौन-सा भाव रखेगा? इसलिए भारतीय संस्कृति और सभ्यता की नींव है आत्म-ज्ञान। इस देश में बच्चे को झूले में भी आत्मज्ञान के गीत सुनाये जाते थे...। व्यवहारिक शिक्षा के साथ यह ज्ञान दिया जाता था। आजकल आप लोग क्या अपने बच्चों को आत्मज्ञान देते हो?

सभा में से : हम लोगों के पास ही आत्मज्ञान नहीं है...हम कैसे देंगे अपनी संतानों को आत्मज्ञान?

महाराजश्री : आत्मज्ञान के बिना, आत्मा का चैतन्य और आत्मा का एकत्व समझे बिना, आत्मा से प्रेम किये बिना, कोई भी धर्मक्रिया फलवती नहीं बनेगी। आत्मविशुद्धि का फल प्राप्त नहीं होगा। जीवन-व्यवहार में आप सच्ची शान्ति, आंतर प्रसन्नता प्राप्त नहीं कर सकोगे। इसलिए पुनःपुनः कहता हूँ कि आत्मप्रेमी बनो, आत्मज्ञानी बनो। आत्मा के एकत्व का चिन्तन कर, संसार के सारे संबंधों का खोखलापन समझ लो। संसार का कोई संबंध वास्तविक नहीं है। इतना जानने पर, इन बातों को हृदयस्थ भाव आये बिना नहीं रहेगा।

'वह मेरा कहा नहीं मानता है, न मानें, मेरा उससे क्या लेना देना है? मेरा उससे क्या वास्ता है? उसका भला हो?!'

माध्यस्थ्य-भावना का अभ्यास मनुष्य को अच्छा विरागी बनाता है। विरागी के पास माध्यस्थ्य-भावना होनी ही चाहिए! इष्ट विषयों के संयोग और वियोग में रागरहित और शोकरहित बने रहने के लिए माध्यस्थ्य यानी उपेक्षा-भावना नितान्त आवश्यक है। अनिष्ट विषय के संयोग और वियोग में भी राग-द्वेष से बचना अनिवार्य होता है। उपेक्षा-भावना से विरागी आत्मा राग-द्वेष से बच सकती है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हृदय को चार भावनाओं से सराबोर कर दो :

धर्म-आराधना को प्राणवान् बनाने हेतु, आराधक का हृदय इन चार भावनाओं से-मैत्री, करुणा, प्रमोद और माध्यस्थ्य से भरा-भरा होना चाहिए। भावनाओं से हरा-भरा हृदय धर्म का ग्राहक बनता है। धर्म के स्वरूपदर्शन में इन भावनाओं को समाविष्ट कर के श्री हरिभद्रसूरिजी ने बहुत ही अच्छा प्रतिपादन किया है। आप लोग यदि इन भावनाओं को समझ लो और हृदय को भावित करने लगो तो आप अपूर्व शान्ति पाओगे। आपकी हर धर्म-क्रिया उल्लासमय बन जाएगी। आपकी धर्म क्रिया देखकर दूसरों को आपके प्रति और आपकी धर्म क्रिया के प्रति आदर एवं बहुमान पैदा होगा।

आज हम उपेक्षा-भावना का विवेचन समाप्त करते हैं। कल चारों भावनाओं का उपसंहार करने का विचार है। मैत्री, करुणा, प्रमोद और मध्यस्थ्य-भावना के विषय में और धर्म के स्वरूप के विषय में कल उपसंहार करूँगा। क्योंकि बाद में मार्गानुसारी जीवन के ३५ गुणों का वर्णन ग्रन्थकार महर्षि ने किया है। उन गुणों के विषय में हमको विवेचन करना है। ग्रन्थकार असाधारण विद्वान एवं महान आत्मज्ञानी थे। सूत्रात्मक भाषा में उन्होंने इस ‘धर्मबिन्दु’ ग्रन्थ की रचना की है। सूत्र बड़ा महत्त्व रखते हैं। छोटे से वाक्य में अनेक भाव भरे हुए होते हैं। हम उन सूत्रों पर चिन्तन करेंगे। जैन-अजैन सभी के लिए ये ३५ गुण जीवनोपयोगी हैं।

आज, बस इतना ही।

❖ ❖ ❖

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

- ***एक बात मत भूलना कि : अपने भविष्य का निर्माण हम खुद करते हैं। अपनी किस्मत और कोई न तो बनाता है न ही बिगाड़ता है!***
- ***जैसे भंग, चरस, शराब और मादक पदार्थों का नशा होता है वैसे ही राग-द्वेष और मोह वगैरह का भी एक तरह का नशा होता है... नशे में फिर होश कहाँ रहेगा?***
- ***आप यदि इन भावनाओं को हमेशा अपने जीवन-व्यवहार में स्थान देते रहोगे, तो एक दिन आपकी पूरी विचारधारा गंगा की भाँति निर्मल एवं पवित्र हो जाएगी।***
- ***विद्वत्ता अलग चीज है और भावना दूसरी बात है। भावनाशून्य विद्वत्ता भीतरी आनंद या आन्तरिक प्रसन्नता नहीं जगा सकती।***
- ***कोरी विद्वत्ता लोगों को प्रभावित कर सकती है, प्रेम से आप्लावित नहीं कर सकती! भावनाओं से रचीपची विद्वत्ता औरों को प्रेम से भर देगी!***

प्रवचन : २४

परम उपकारी महान श्रुतधर पूज्य आचार्य श्री हरिभद्रसूरीश्वरजी स्वरचित 'धर्मबिन्दु' ग्रन्थ में धर्म का स्वरूप समझा रहे हैं। एक श्लोक में आचार्यदेव ने बहुत सी बातें कह दी हैं। इनकी ग्रन्थ रचनाएँ ही ऐसी हैं, जो थोड़े शब्दों में बहुत कुछ कह देते हैं। भिन्न-भिन्न आचार्यों ने एवं ऋषि-मुनिवरों ने 'धर्म' की भिन्न-भिन्न परिभाषाएँ की हैं। इन सारी परिभाषाओं में यह परिभाषा श्रेष्ठकोटि की परिभाषा लगती है मुझे। आप लोग अच्छी तरह समझ लें इस परिभाषा को। ताकि इधर-उधर भटक न जायें। 'धर्म' के विषय में काफी सोच-समझकर निर्णय करना। क्योंकि धर्म के साथ अपने अनन्त भविष्य का संबंध जुड़ा हुआ है। यदि धर्म के विषय में गड़बड़ी कर दी तो भविष्य अंधकारमय हो जाएगा, भटक जाओगे दुर्गति में।

आत्मनिरीक्षण करना सीखो :

जो भी धर्मानुष्ठान करना हो, आप सोच लो कि यह धर्मानुष्ठान किसका बताया हुआ है। किसी रागी-द्वेषी मनुष्य का बताया हुआ तो नहीं है न?

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

बतानेवाला विश्वसनीय है न? निष्पक्ष, मध्यस्थ और जिन है ना? यदि निर्णय हो जाय तो, बतानेवाले ने जिस प्रकार वह धर्मानुष्ठान करने का कहा हो, उसी प्रकार करना। विधि का आदर करना। समय का खयाल करना। भावों का लक्ष्य रखना। इतना सब करने पर भी आपके हृदय को टटोलना। आपका हृदय मैत्री, करुणा, प्रमोद और माध्यस्थ्य भावों से शुद्ध बना हुआ है या नहीं। यानी आपके विचारों में संशोधन हुआ है या नहीं। आपके विचार मैत्रीभावना से भावित बने हैं? करुणा से आपके विचार कोमल बने हैं? प्रमोद से आपके विचार उन्नत बने हैं? माध्यस्थ्य से आपके विचारों में समत्व आया है?

अपनी किस्मत अपने हाथ :

अपने भविष्यनिर्माण में अपने विचार महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। यह मत भूलना कि अपने भविष्य का निर्माण हम ही करते हैं, कोई दूसरा नहीं करता। कोई ईश्वर नहीं करता। हम इस जीवन में अपने विचार-बीज जैसे बोयेंगे अपनी आत्मभूमि में, उन विचार-बीजों में से जीवन-वृक्ष पैदा होंगे। यदि बीज बोया है नीम का तो वृक्ष आम का पैदा नहीं होगा, नीम का वृक्ष ही पैदा होगा। आम का वृक्ष चाहिए तो बीज आम का बोना पड़ेगा। यदि विचार-बीजों को बोने में सावधान नहीं रहे, जाग्रत नहीं रहे, तो भविष्य अंधकारमय, दुःखमय और वेदनामय बनेगा। श्रमण भगवान महावीर प्रभु ने इसीलिए तो कहा कि : चलो सावधानी से, बैठो सावधानी से, खाओ सावधानी से, पीओ सावधानी से, बोलो सावधानी से...! सावधानी यानी जाग्रति! कोई गलत विचार का बीज आत्मभूमि में गिर न जाये इसके लिए जाग्रत रहो। विचारों के बीज आत्मभूमि में गिरते देर नहीं लगती।

विचारों से संसारी : विचारों से साधु :

कहिए, आपको कैसी फसल चाहिए? कैसे वृक्ष पसन्द करते हो? बबूल के? नीम के? यदि आपने शत्रुतापूर्ण विचार किए, क्रूरतापूर्ण विचार किए, ईर्ष्यायुक्त विचार किये, तिरस्कार और धिक्कारपूर्ण विचार किए तो समझ लो कि नरक सामने है। पशुयोनी सामने है। कोई भी हो, संसारी हो या साधु हो। विचारों से मनुष्य संसारी है, विचारों से मनुष्य साधु है। राजर्षि प्रसन्नचंद्र ने सातवें नरक में जाने के कर्म कैसे इकट्ठे कर लिये थे? वेष साधु का था परन्तु विचार संसार के थे! भरत चक्रवर्ती ने शीशमहल में केवलज्ञान कैसे पा लिया था? वेश संसारी का था, परन्तु विचार साधु के थे! विचारों ने उनको वीतराग बना दिया था, सर्वज्ञ बना दिया था! विचारशक्ति का अपार और अद्‌भूत प्रभाव हैं। जाग्रत बने रहो, तो ही विचार शुद्ध रह सकते हैं। जाग्रति चली गई, होश

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

चला गया, बेहोश हो गए तो काम तमाम है! बेहोशी बड़ी खतरनाक है। बेहोशी में न करने के विचार हो जाते है! जैसे भंग, शराब वगैरह के नशे होते हैं वैसे राग, द्वेष और मोह वगैरह के नशे होते हैं। नशे में होश नहीं रहता।

एक सरदारजी दिल्ली के बसस्टेन्ड पर खड़े थे। खड़े क्या थे, एक बेंच पर बैठे-बैठे उबासियाँ खा रहे थे। नशे में थे। किया होगा कोई नशा! एक पुलिसमेन ने देखा। उसने सरदारजी के पास आकर कहा :

'क्या कर रहे हो इधर?'

'उबासी खा रहा हूँ।'

'सरदारजी, तुम यहाँ उबासी क्यों खा रहे हो? यहाँ उबासी खाने के पैसे लगते हैं।'

'कितने पैसे लगते हैं?' सरदारजी ने पूछा।

'एक उबासी का एक रूपया...'

सरदारजी ने जेब से पच्चीस रूपये निकाल कर पुलिस को दे दिए। पुलिस चला गया। सरदारजी घर पहुँचे। नशे में थे। अपनी बीवी से बड़े गर्व के साथ कहते हैं : 'मैंने आज पुलिस को खूब उल्लू बनाया।'

'कैसे? क्या हुआ जी?' बीवी ने उत्सुकता से पूछा।

'मैंने उबासियाँ खाई होंगी पचास-साठ और पुलिस को रूपये दिये मात्र पच्चीस! पुलिस को कैसा मूर्ख बनाया!!'

बेहोशी में मनुष्य स्वयं मूर्खता करता है, मानता है दूसरे को मूर्ख! राग की बेहोशी, द्वेष की बेहोशी और अज्ञान की बेहोशी वैसी है। होश में रहो, बेहोशी में मत जाओ। नशा मत करो। जाग्रत रहो। विचारों में हो सके उतनी जाग्रति बनाए रखो। विचारों में से अशुद्धि दूर करने का प्रयत्न करते रहो। वह प्रयत्न है मैत्री वगैरह भावनाओं से भावित होने का। प्रतिदिन प्रातःकाल या सायंकाल इन भावनाओं का अभ्यास करो। यदि यह अभ्यास निरन्तर करते रहे तो आपकी विचारधारा गंगा की पवित्र धारा बन जायेगी। आप जाग्रत बन जाओगे। होश में आ जाओगे।

अब, आज हम मैत्री वगैरह भावनाओं का उपसंहार करेंगे।

मैत्रीभावना :

आपको मैत्री या शत्रुता, दो में से एक बात पसन्द करने की है। यदि आपको मैत्री पसन्द है तो मैत्री को अपना लो, यदि आपको शत्रुता से प्यार है तो शत्रुता अपना लो। होते हैं संसार में ऐसे मनुष्य जिनको शत्रुता करने में, शत्रुता बनाए रखने में और शत्रुता बढ़ाने में मजा आता है। परन्तु मजा तो

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पशुओं की कत्ल करनेवाले कसाई को भी आता है और शराब पीनेवालों को भी आता है। मज़ा आता है इसलिए सब कुछ नहीं किया जा सकता है। अज्ञानी को जिस-जिस कार्य में मज़ा आता है, ज्ञानी को नहीं आता। रागी को जिस कार्य में मजा आता है, विरागी को नहीं आता। यदि आपकी ज्ञानदृष्टि-तृतीय नेत्र खुल गया है तो आपको शत्रुता कतई पसंद नहीं आएगी। आप मैत्री ही पसन्द करेंगे।

अज्ञानी सोचता है : 'इसने मुझे कष्ट दिया है, मेरा सुख छीन लिया है, मुझे परेशान किया है, मुझे सुख नहीं देता... इसलिए इसको तो मैं मेरा शत्रु ही मानूँगा। इसके प्रति मैत्री कैसी? वह मुझे शत्रु मानता है तो मैं उसको मित्र कैसे मानूँ? मुझे भी संसार में जीना है, संसार-व्यवहार में तत्त्वज्ञानी बने रहने से नहीं चलता... हम कोई साधु संत तो है नहीं...।' ऐसी विचारधारावालों में मैत्री कैसे हो सकती है? यदि ऐसे मूढ़ मनुष्य किसी से मैत्री करते दिखाई भी दें, तो भी स्वार्थपरवश! सभी जीवों के प्रति ऐसे लोग मैत्री नहीं बांध सकते। 'सारे जीव मेरे मित्र हैं-' यह उदात्त भावना उनकी मनःसृष्टि में नहीं हो सकती है।

मैत्री : तीन प्रकार का चिंतन :

(१) ज्ञानी मनुष्य यों सोचता है : 'हे आत्मन्, तू सर्व जीवों के प्रति मैत्री को स्थापित कर, इस जगत में तेरा कोई शत्रु नहीं है, सब तेरे मित्र हैं, इस जीवन का तो विचार कर! कितनी छोटी-सी है यह जिन्दगी? पाँच-पचास साल की छोटी-सी जिंदगी में तू किस-किसके साथ शत्रुता बाँध रहा है? क्यों? शत्रुता से तुझे क्या मिलेगा? कुछ नहीं, मात्र क्लेश और अशान्ति!'

(२) 'हे आत्मन्, इस संसार में परिभ्रमण करते हुए तूने सभी जीवों के साथ सभी प्रकार के संबंध किये हैं। माता-पिता, भाई-बहन, पति-पत्नी... वगैरह सारे सबंध किये हुए हैं-उनके साथ अब क्या तूँ शत्रुता करता है? शत्रुता भी क्या कायम टिकनेवाली है? नहीं, पूर्व-जन्म का शत्रु इस जन्म में स्नेही बन जाता है, इस भव का स्नेही अगले जन्म में शत्रु बन जाता है। सारे संबंध ऐसे परिवर्तनशील हैं, तो फिर तू क्यों अपने हृदय में शत्रुता रखता है? सारी जीवसृष्टि तेरा कुटुंब ही है।

(३) 'हे आत्मन्! शत्रुता से तेरा ही सुकृत नाश होता है। शत्रुता का भाव शुभ कर्मों का नाश करता है। क्यों किसी से दुश्मनी रखना? सभी जीव कर्मपरवश हैं। कर्मों की विचित्रता अपार है। तेरे प्रति शत्रुता रखनेवालों का भी तू अशुभचिन्तन मत कर। सज्जनों के लिए कलह, शत्रुता शोभा नहीं देते।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तेरी सज्जनता समता में है। समता से मनुष्य सज्जन कहलाता है। शत्रुता से मनुष्य दुर्जन कहलाता है।'

मैत्रीभावना को इस प्रकार हृदय में स्थिर करने का प्रयत्न करते रहो।

करुणाभावना :

सारे गुणों का उद्भवस्थान है कोमल हृदय। हृदय की कोमलता में से ही गुणों का आविर्भाव होता है। इन गुणों में करुणा श्रेष्ठ गुण है। दूसरे जीवों के दुःख जानकर या देखकर, उन दुःखों को दूर करने की प्रबल इच्छा-करुणा है। आप लोग अपने दुःखों को दूर करना चाहते हो, या दूसरों को?

सभा में से : हम लोग तो हमारे ही दुःखों को रोते हैं।

महाराजश्री : तो फिर धर्मतत्त्व का आत्मा को स्पर्श होना संभव नहीं है। दुःखी जीवों के प्रति अत्यंत करुणा के बिना-धर्मआराधना की योग्यता ही पैदा नहीं होती। धर्म-आराधना करने की योग्यता अपेक्षित है। योग्यता के बिना की हुई धर्म-आराधना आत्मशुद्धि नहीं कर सकती। आत्मा महात्मा नहीं बन सकती। आत्मा के गुणों की उत्पत्ति या गुणों की उन्नति नहीं हो सकती। जिस मानवहृदय में करुणा नहीं होती है, उस मानवहृदय में क्रूरता होती है। क्रूर हृदय में धर्म का प्रवेश नहीं हो सकता। कोई हिंसा करता है, जीवों की कत्ल करता है, वोही क्रूर है, ऐसा नहीं है, आप दूसरे जीवों के दुःख देखने पर भी, जानने पर भी दुःखी नहीं होते हैं, तो आप भी क्रूर हैं। क्रूर मनुष्यों को धर्मक्षेत्र में प्रवेश नहीं मिल सकता!

सभा में से : हम लोगों का तो प्रवेश हो गया है!

महाराजश्री : अनधिकृत प्रवेश हो गया है! अधिकारयुक्त प्रवेश नहीं हुआ है। क्या कहूँ आप लोगों को? परमात्मा जिनेश्वरदेव के धर्म को लजाओ मत। जैन ही नहीं, आर्य भी नहीं कहला सकते। दया और करुणा के बिना आर्यत्व नहीं, जैनत्व नहीं। आर्य और जैन तो दूसरे जीवों के दुःखों से दुःखी होता है। दुःख दूर करने की तीव्र भावना और भरसक प्रयत्न करनेवाला होता है।

दुःखी भी दो प्रकार से :

संसार में दुःखी जीव दो प्रकार के होते हैं : द्रव्यदुःखी और भावदुःखी। जिनके पास पुण्योदय नहीं है वे द्रव्यदुःखी हैं, जिनके पास मोहनीय कर्म का क्षयोपशम नहीं है, वे भावदुःखी हैं। समझे इस बात को? समझ लो, अच्छी तरह समझ लो इस बात को।

पुण्यकर्म के ४२ प्रकार हैं। सारे के सारे भौतिक सुख, इन ४२ प्रकार के

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पुण्यकर्म के उत्पादन हैं, 'प्रोडक्शन' हैं। आप मनुष्यगति में हो, आपके पास मनुष्यगति का आयुष्य है, आप 'उच्च' जाति के कहलाते हो, आपका शरीर निरोगी है, आपकी पाँचों इन्द्रियाँ परिपूर्ण हैं, आपका रूप अच्छा है, स्वर मधुर है, आप लोकप्रिय हैं, आपकी बात दूसरे लोग मान लेते हैं, आपका यश फैला है, आपका शरीर सुगन्धयुक्त है, आपकी चाल हंस जैसी है, आपके पास अच्छा धन है, परिवार है... यह सब पुण्यकर्म के उदय से है। जिनको पुण्यकर्म का उदय नहीं है, उनके पास ये सारे सुख नहीं होते हैं। इससे विपरीत उनके पास दुःखो का ढेर होता है। वे दुःखी होते हैं, द्रव्यदुःखी कहलाते हैं ये लोग। द्रव्य यानी पैसा नहीं, अपितु द्रव्य यानी बाह्य, द्रव्य यानी भौतिक।

भावदुःखी वह है जिनको मोहनीय कर्म का क्षयोपशम नहीं है। प्रबल 'मोहनीयकर्म' का उदय है। इस पापकर्म के उदय से मनुष्य की मति कलुषित होती है। सुदेव-सुगुरु और सद्धर्म के प्रति इसको श्रद्धा नहीं होती। इतना ही नहीं, कुदेव को सुदेव मानता है। कुगुरु को सद्‌गुरु मानता है, असद् धर्म को सद्धर्म मानता है! इसी पापकर्म के प्रभाव से मनुष्य क्रोधी, अभिमानी, मायावी और लोभी होता है।

इसी पापकर्म के उदय से जीवात्मा में विविध प्रकार के विकार उत्पन्न होते है। विषयवासना भी इसी कर्म के उदय का फल है। रोना और हँसना, खुश होना और नाखुश होना, राग करना या द्वेष करना... इसी कर्म की प्रेरणा से होता है। ऐसे मोहमूढ़ जीव भावदुःखी हैं। ये सारे दुःख मानसिक हैं, मन के भावों से संबंधित हैं, इसलिए भावदुःख कहलाते हैं।

इन दोनों प्रकार के जीवों के प्रति अपने हृदय में करुणा होनी चाहिए। क्योंकि एक यहाँ दुःख भोग रहा है, दूसरा भविष्य को दुःखमय बना रहा है। पापाचरण करनेवाला स्वयं अपने भविष्य को दुःखपूर्ण बना रहा है। 'पापाद् दुखम्' - पाप का फल है दुःख! समझ गए इस बात को? दुःखी या पापी-दोनों के प्रति करुणाभावना रखने की है। करुणा से हृदय को नवपल्लवित रखने का हैं।

सभा में से : द्रव्य दुःखी के प्रति तो कभी करुणा आ जाती है, परन्तु पापी के प्रति करुणा नहीं आती है!

आप भी महात्मा बनना सीखें :

महाराजश्री : सही बात है आपकी, क्यूँकि आप निष्पाप हैं! निष्पाप को पापी के प्रति क्रूरता आना स्वाभाविक है!! कैसी पागल जैसी बात करते हो। आपके जीवन में पाप नहीं हैं क्या? आप लोगों के जीवन में असंख्य पाप भरे पड़े हैं और

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दूसरों के प्रति धिक्कार? एक भिखारी दूसरे भिखारी को कहे कि : 'तुझे शर्म नहीं आती भीख माँगते हुए? मेहनत कर... भीख मांगना अच्छा नहीं।' तो?

आपके हृदय में पापों के प्रति अरूचि पैदा हुई है? पापों के प्रति नफरत हो गई है क्या? पाप करने से पहले दुःख होता है? 'मुझे इस मानवजीवन में पाप करना पड़ेगा? कैसा मेरा दुर्भाग्य?' होता है ऐसा अफसोस? पाप करने के पश्चात् पश्चात्ताप होता है क्या? मान लो कि पाप करते समय सुख अनुभव करते हो, परन्तु पाप हो जाने के पश्चात् दुःख होता है? मेरा चले तो मैं भविष्य में ऐसा पाप नहीं करूँ।' ऐसे विचार आते हैं नहीं! आप पाप करो, आपको मज़ा आता है, दूसरा पाप करे इससे आपको घृणा होती है - सही बात है न? यह आपकी पाप के प्रति घृणा नहीं है, जीव के प्रति है।

पाप करनेवाले जीवों के प्रति भी करुणा होनी चाहिए। श्रमण भगवान महावीरदेव ने पापी जीवों के प्रति भी करुणा का स्रोत बहाया था। अनेक महापुरुषों ने इस करुणापथ पर चलकर भव्य उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। यदि हम उनके पद-चिह्नों पर चलें तो हमको भी महानता प्राप्त हो सकती है। अपनी आत्मा महात्मा बन सकती है। महात्मा बनना है न? महात्मा यानी साधु बनने की बात नहीं करता हूँ, हृदय को उदात्त बनाने की बात करता हूँ। अपना हृदय महात्मा का हृदय बन जाना चाहिए। आपका आदर्श बन जाए कि 'मुझे महात्मा बनना है,' तो ही इस दिशा में गति हो सकती है। यदि अधमात्मा ही बने रहना है, शत्रुता, तिरस्कार और क्रूरता को बनाये रखनी है, तो इन बातों से आपका कोई संबंध नहीं रहता। परन्तु आप यहाँ मेरे पास आते हो, प्रतिदिन आते हो, प्रेम से मेरी बातें सुनते हो, इसलिए मैं मानता हूँ कि आपको महात्मा बनना पसन्द तो है! सही बात है न?

प्रमोद-भावना :

'गुणीषु प्रमोदः' गुणवानों के प्रति प्रमोद-भावना चाहिए। प्रमोद यानी प्रेम! गुणवानों के प्रति प्रेम! गुणों के प्रति प्रेम होगा तो गुणवानों के प्रति प्रेम होगा। परन्तु एक बात पूछ लूँ आप से। क्या आपको इस संसार में कोई मनुष्य गुणवान दिखता है? सर्वगुणसंपन्न परमात्मा तो अभी सदेह है नहीं। अभी तो अपनी दुनिया में जो जीव हैं वे सभी गुण और दोष, दोनों से युक्त ही होंगे। हाँ, ऐसा कोई जीव संसार में नहीं है कि जो दोषों से परिपूर्ण हो और गुण एक भी न हो। प्रत्येक जीवात्मा में कोई न कोई गुण होता ही है। अपने पास गुणदृष्टि होनी चाहिए। गुणदृष्टिवाला मनुष्य ही दूसरों में गुणदर्शन कर सकता है और गुणों से प्रेम कर सकता है। जो दोषदृष्टिवाले हैं, वे गुणों से

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कभी भी प्रेम नहीं कर सकते। उन में प्रमोद नहीं हो सकता। गोशालक पूर्णपुरुष भगवान महावीर में गुणदर्शन नहीं कर सका था। गुणमूर्ति से प्रेम नहीं कर सका था। भगवान महावीर के प्रति भी उसने द्वेष किया था।

प्रेम गुणों से करना सीखें :

मोक्ष के प्रति भी द्वेष करनेवाले जीव होते हैं संसार में! मोक्ष यानी सर्वगुणसंपन्न सिद्ध भगवानों की सृष्टि। गुणसृष्टि से जिसको कोई परिचय नहीं है, मात्र दोषों से ही प्रेम है, ऐसे जीव मोक्षद्वेषी हो सकते हैं। सिद्धद्वेषी, अरिहंतद्वेषी, आचार्यद्वेषी, उपाध्यायद्वेषी और साधुद्वेषी जीव भी इस संसार में होते हैं। ये जीव गुणद्वेषी होते हैं। ऐसे जीवों को क्षमा से प्रेम नहीं होता, क्रोध से प्रेम होता है। इन्हें नम्रता से प्रेम नहीं होता, अभिमान से प्रेम होता है। इन्हें सरलता से प्रेम नहीं होता, माया और कपट ही उनको प्यारे होते हैं। इन्हें निर्लोभता से प्रेम नहीं होता, लोभ और परिग्रह से प्रीति होती है। इन्हें सत्य से प्रेम नहीं होता, झूठ ही उनको प्यारा होता है। इन्हें प्रामाणिकता प्रिय नहीं होती, बेईमानी से मुहब्बत होती है।

टटोलना अन्तरात्मा को। गुणों से प्रेम है या दोषों से, देखना जरा भीतर में। आत्मनिरीक्षण करना-'सेल्फ आब्जरवेशन' करना। 'प्रमोद' कोई एक-दो या पाँच-दस व्यक्ति तक सीमित नहीं है, प्रमोद का क्षेत्र बड़ा विशाल है, लंबा-चौड़ा हैं। 'लव आफ वरच्युज' गुणों से प्रेम सुलभ तत्त्व नहीं है, दुर्लभ तत्त्व है। पाँच-दश क्षण प्रमोद-भावना का चिन्तन कर लेने मात्र से हम गुणप्रेमी नहीं बन जाते हैं।

प्रमोद का विषय 'सब्जेक्ट' कितना विशाल है, कितना व्यापक है, जानते हो? सुन लो ध्यान से :

१. जो वीतराग-सर्वज्ञ हैं, जो सदेह परमात्मा हैं, जीवों के प्रति अपार उपकार करते हैं। वे हमारे सर्वश्रेष्ठ प्रमोद के विषय हैं।

२. जो देहातीत हो गए हैं, जो सिद्ध-बुद्ध-मुक्त हैं, अनन्त गुणों के सागर हैं-वे हमारे सर्वश्रेष्ठ प्रमोद के विषय हैं।

३. जो पहाड़ों की गुफाओं में, जंगलों में निर्मम और अविकारी महात्मा पुरुष धर्मध्यान में निमग्न रहते हैं, समतारस में लीन रहते हैं, घोर तपश्चर्या अप्रमत्तभाव से करते हैं - वे हमारे प्रमोद के श्रेष्ठ पात्र हैं।

४. जो साधुपुरुष ज्ञानी हैं, निरन्तर लोगों को धर्मोपदेश देते हैं, जिनके मन शान्त हैं, जिनकी इन्द्रियाँ उपशान्त हैं, जो जिनशासन की प्रभावना करते हैं - वे हमारे प्रमोद के पात्र हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

५. जो गृहस्थ स्त्री या पुरुष दानधर्म-शीलधर्म-तपधर्म और भावधर्म की श्रद्धा से आराधना करते हैं - वे भी हमारी प्रमोद-भावना के विषय हैं।

६. जो साध्वीजी अपने शील को सुरक्षित रखती हैं और ज्ञान-ध्यान में तन्मय रहती हुई गर्वरहित चित्त से मोक्षमार्ग की आराधना करती हैं-वे भी हमारे प्रमोद-भावना की पात्र हैं।

७. जिनको सम्यक्दर्शन-गुण प्राप्त नहीं हुआ है परन्तु जो परमार्थ-परोपकार एवं संतोष वगैरह मार्गानुसारी जीवन के गुणों के भंडार हैं, वे भी प्रमोद-भावना के विषय है।

गुणदृष्टि में थोड़ासा परिभ्रमण करने अपने मन को ले चलो। इस परिभ्रमण में मन आनन्द का अनुभव करेगा। सच्चे और सात्विक आनन्द की अनुभूति होगी। करनी है ऐसी अनुभूति? नहीं! दोषदृष्टि और दोषसृष्टि! दोषसृष्टि में भटकना ही अच्छा लगता है, इसमें ही मजा आता है! ध्यान रखना, यह मजा क्षणिक है, सजा बहुत लम्बी है। गुणवानों से प्रेम नहीं किया, गुणवानों से द्वेष किया तो दुर्गति में 'ट्रान्सफर' हो जाओगे। कुत्ते, बिल्ली का भव मिल जाएगा। गुणद्वेषी ज्यादातर श्वानयोनि में जाते हैं! गुणप्रेमी सद्गति में जाते हैं। देवत्व या मनुष्यत्व प्राप्त होता है।

सभा में से : आप गुणराग की बात करते हैं, परन्तु आप तो हमारे दोष बताते रहते हैं।

गुणानुरागी भी दोष देखेगा पर अलग ढंग से :

महाराजश्री : सच्ची बात है आपकी! आपके प्रति गुणानुराग है इसलिए दोष बताता हूँ। आपके दोष दूर हो जायें और आपकी गुणसमृद्धि बढ़ती जाय इसलिए दोष बताता हूँ। आप में जो जो गुण हैं, मैं उनकी प्रशंसा करता हूँ, आप में जो जो दोष हैं, उन दोषों को दूर करने के लिए दोष बताता हूँ। दोष बताये बिना आप दोष कैसे दूर करेंगे? आपके प्रति प्रेम नहीं होता तो दोष नहीं बताता। आप गृहस्थ हैं और मैं साधु हूँ, साधु भी गृहस्थों के गुणों का प्रशंसक होता है। महान् आचार्यों ने गुणवान गृहस्थों के भव्य चरित्र लिखे हैं। कलिकालसर्वज्ञ श्री हेमचन्द्रसूरिजी ने राजा कुमारपाल का जीवनचरित्र लिखा है। कुमारपाल की गुणदृष्टि बताई है। कुमारपाल के अनेक गुणों की बहुत प्रशंसा की है। साथ में सूरिजी ने राजा के दोष भी बताये थे। परन्तु निन्दा करने की दृष्टि से नहीं, दोष दूर करने की दृष्टि से।

गुर्जरेश्वर कुमारपाल ने अनेक सत्कार्य किये थे, परन्तु अपने हजारों साधर्मिक बंधुओं के दुःखों के प्रति उसका ध्यान नहीं गया था। गुरुदेव

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हेमचन्द्रसूरिजी ने राजा का ध्यान उस बात की ओर आकर्षित किया था, कितने अच्छे ढंग से! यह भी एक समझने की बात है।

सबेरे-सबेरे जब राजा वंदन करने आया, उसने गुरुदेव के शरीर पर फटी हुई और मोटी चद्दर देखी। वंदन कर, राजा ने हाथ जोड़कर गुरुदेव से पूछा : 'गुरुदेव, क्या पाटन में श्रावक इतने दुःखी हैं कि आपको ऐसी चद्दर ओढ़नी पड़ी है?'

गुरुदेव ने कहा : 'कुमारपाल, तेरे साधर्मिकों के पास देने को जैसा होता है वैसा वे देते हैं, तूने कभी साधर्मिकों के सुख-दुःख जानने का प्रयत्न किया?'

बस! कुमारपाल को अपनी गंभीर भूल समझ में आ गई। उस दिन से उसने साधर्मिकों का दुःख दूर करने का पुरुषार्थ शुरू कर दिया। प्रतिवर्ष करोड़ों रूपये खर्च करने लगा। गलती बतानेवाले गुरुदेव का उपकार मानने लगा। गुरु दोष नहीं बतायेंगे तो कौन बतायेगा?

माध्यस्थ्य-भावना :

राग की प्रबलता न हो, द्वेष की प्रबलता न हो, इसको कहते हैं मध्यस्थता। राग की प्रबलता में अशान्ति होती है, द्वेष की प्रबलता में भी अशान्ति होती है। दो अशान्ति में बड़ा अन्तर है। एक अशान्ति का प्रत्यक्ष अनुभव होता है, दूसरी अशान्ति का प्रत्यक्ष अनुभव नहीं होता। राग की प्रबलता में मनुष्य सुख का अनुभव करता है, परन्तु उस सुखानुभव के भीतर अशान्ति भरी पड़ी होती है। जिस सुख का परिणाम दुःख हो, उसको सुख कैसे कहा जाय? जिस आनन्द का, जिस खुशी का परिणाम अशान्ति और क्लेश हो, उसको आनन्द कैसे कहा जाय? उसको खुशी कैसे कहें?

मध्यस्थ बनो। मध्यस्थ बनानेवाली है माध्यस्थ्य-भावना, उपेक्षा-भावना। हालाँकि यह भावना ऐसे जीवों के लिए बताई गई है कि जो अविनीत हैं, उद्धत हैं, मनस्वी हैं और अपना पल्ला ऐसे जीवों के साथ पड़ा हो, उनके अनुचित और अहितकारी व्यवहार से अपना मन उद्विग्न रहता हो, अपना चित्त संक्लिष्ट रहता हो, अशान्त रहता हो। इस उपेक्षा-भावना से, इस भावना के पुनः पुनः अभ्यास से उद्वेग, संक्लेश और अशान्ति दूर हो जाती है।

गृहस्थजीवन में भी आवश्यक है यह भावना :

आप गृहस्थ हैं, घर में सभी लोग-परिवार के सदस्य आप का विनय, आदर और सम्मान करें, ऐसा शायद ही किसी परिवार में होगा। आप बड़े हैं, बुजुर्ग हैं, आपका कोई व्यक्ति अविनय करता है, अपमान करता है, औद्धत्यपूर्ण व्यवहार करता है तो आप इस माध्यस्थ्य भावना का अवलंबन लें। इससे आप अशान्ति से बच जायेंगे। संताप से और रोष से बच जायेंगे। जिस प्रकार आप

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

लोगों के लिए यह भावना काफी उपकारी हैं वैसे हम लोगों के लिए भी यह भावना अत्यंत आवश्यक है। हम लोग साधु हैं, फिर भी इन भावनाओं के अभाव में हम भी आन्तर शान्ति का अनुभव नहीं कर सकते। प्रतिदिन... प्रतिक्षण इन भावनाओं की अपने मन को आवश्यकता है। भले ही हम विद्वान हो, पंडित हो, भावनाओं के बिना शान्ति का अनुभव दुर्लभ है। 'शान्तसुधारस' ग्रन्थ में उपाध्याय श्री विनयविजयजी ने स्पष्ट कहा है :

'स्फुरति चेतसि भावनया विना
न विदुषामपि शान्तसुधारसः।'

विद्वत्ता और बात है, भावना और बात है। भावनाशून्य विद्वत्ता आन्तरिक आनन्द, आन्तरिक प्रसन्नता प्रदान नहीं कर सकती। विद्वत्ता का संबंध ज्यादातर दिमाग के साथ है, भावना का संबंध ज्यादातर दिल के साथ है, हृदय के साथ है। समग्र जीवसृष्टि के प्रति अपना हृदय मैत्री, करुणा, प्रमोद और माध्यस्थ्य - इन चार भावनाओं से परिपूर्ण रहे - बस, सदैव प्रसन्नता ही प्रसन्नता है। कभी अशान्ति नहीं, संताप नहीं।

एक ही रास्ता है : भावना का :

दूसरा कोई उपाय नहीं है शान्ति पाने का, यह बात सोच लेना। अलबत्ता, अनित्यादि बारह भावनाओं का चिंतन-मनन भी आवश्यक है ही। यों सोचा जाये तो अनित्य, अशरण, एकत्व, अन्यत्व और संसार वगैरह भावनाएँ मैत्री आदि चार भावनाओं की पूरक भावनाएँ हैं, सहायक भावनाएँ हैं। इसलिए उन अनित्यादि भावनाओं का भी प्रतिदिन अभ्यास करना चाहिए। आज उन भावनाओं को संक्षेप में बताता हूँ :

बारह भावनाएँ :

अनित्य-भावना : प्रियजनों का संयोग, वैभव, वैषयिक सुख, शरीर का आरोग्य, यौवन, शरीर और जीवन... यह सब अनित्य है। यानी सदा काल टिकनेवाली नहीं हैं। संयोग का वियोग होता ही है, इसलिए कोई भी संयोग-संबंध तीव्र राग से मत करो। किसी भी वैषयिक सुख से प्रगाढ़ प्रीति मत करो। यौवन का अभिमान मत करो, शरीर का भरोसा मत करो... जीवन का मोह मत रखो।

अशरण-भावना : जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु के भय से व्याकुल, व्याधि और वेदनाओं से भरपूर इस संसार में जिनवचन के अलावा दूसरा कोई शरण नहीं है। दूसरा कोई बचानेवाला नहीं हैं : दूसरा कोई सहारा नहीं है। दुःखों

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

से, वेदनाओं से बचने के लिए इधर-उधर भटकने की आवश्यकता नहीं, आप जिनेश्वर की वाणी का सहारा लो।

एकत्व-भावना : जीव अकेला जनमता है, अकेला मरता है। इस भीषण संसारचक्र में अकेला ही शुभ-अशुभ गतियों में भटकता है। अकेला ही सुख-दुख अनुभव करता है। तो फिर आत्मकल्याण की साधना अकेले ही कर लेनी चाहिए। 'दूसरा कोई साथी मिले तो धर्म का पुरुषार्थ करूँ,' ऐसी गलत भावना में बहना नहीं। 'मैं अकेला हूँ' ऐसी निराशा अनुभव करना नहीं। 'एकत्व' की भावना को परिपुष्ट करना।

अन्यत्व-भावना : 'मैं स्वजनों से भिन्न हूँ, परिजनों से भिन्न हूँ, वैभव से भिन्न हूँ, एवं शरीर से भी भिन्न हूँ,' इस विचार को पुनः पुनः करते रहो। इस विचार से अपनी आत्मा को भावित कर दो। यदि अपने विचारों में यह विचार घुलमिल गया, तो शोक-संताप अपन को सता नहीं सकते।

अशुचि-भावना : यह शरीर अशुचि-अपवित्र पदार्थों से भरा हुआ है। अच्छा भी पदार्थ, इस शरीर के संपर्क में आता है, गंदा बन जाता है। अशुचि बन जाता है। ऐसे शरीर से क्या राग करना? ऐसे शरीर से क्या मोह करना? शरीर के रूप-रंग परिवर्तनशील हैं। परिवर्तनशील पदार्थ पर क्या ममत्व करना?

संसार-भावना : संसार के सारे के सारे संबंध परिवर्तनशील हैं। कोई संबंध स्थायी नहीं है। माता मरकर पुत्री या भगिनी, पत्नी या माता बन सकती है। पुत्र मरकर पिता बन सकता है, भाई या शत्रु भी बन सकता है। शत्रु मरकर पिता या पुत्र बन सकता है। संसार के ऐसे संबंधों को क्यों और कैसे स्थिर मानें? कैसे ऐसे संबंधों में रागी-द्वेषी बनें?

आश्रव-भावना : मिथ्यात्व, अविरति, कषाय, अशुभयोग और प्रमाद-इन पाँच आश्रवों की कैसी भयानकता है? अनन्त-अनन्त कर्मों का प्रवाह इन आश्रवों के द्वारा आत्मा में आ जाता है। आत्मा में कर्मों को प्रवेश करने के ये द्वार हैं। अनन्त जन्मों से ये द्वार खुल्ले हैं... 'मैं अब इस जीवन में इन द्वारों को बन्द कर दूँ।'

संवर-भावना : मिथ्यात्व को सम्यक्त्व से, अविरति को विरति से, कषाय को क्षमादि धर्मों से, अशुभ-योगों को शुभ योगों से और शुभ योगों को अयोग से तथा प्रमाद को अप्रमत्त भाव से बन्द कर दूँ। इस जीवन का मेरा प्रमुख पुरुषार्थ यही रहेगा।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

निर्जरा-भावना : तपश्चर्या करके मैं मेरे कर्मों का क्षय कब करूँगा? बाह्य और आभ्यन्तर तपश्चर्या से ही कर्मों की निर्जरा संभव है। मैं मेरा जीवन तपोमय बना दूँ, ताकि विपुल कर्म-निर्जरा होती रहे, मेरी आत्मा विशुद्ध बनती चले। तपश्चर्या के बिना कर्म निर्जरा होती नहीं।

लोकस्वरूप-भावना : चौदह राजलोक में मेरी आत्मा जन्म-जीवन और मृत्यु द्वारा सतत परिभ्रमण कर रही है। ऊर्ध्वलोक, अधोलोक और मध्यलोक में विविध प्रकार के जीवन पाए हैं मैंने। नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवगति के जीवन अनन्त बार पाए हैं मैंने। कब इस परिभ्रमण का अन्त आएगा? कब मेरी आत्मा सिद्ध-बुद्ध बनकर सिद्धशिला पर शाश्वत् स्थिति प्राप्त करेगी?

धर्मस्वाख्यात-भावना : श्री जिनेश्वर भगवंतों ने विश्व के कल्याण के लिए ही धर्मतत्त्व प्रकाशित किया है। जिनेश्वरों का यह अनुपम उपकार है। जो जीव इस धर्म को अपने हृदय में बसाते हैं वे जीव सरलता से इस भीषण भवसागर को तैर जाते हैं। हे आत्मन्! तू भी इस धर्म की शरण ले ले।

बोधिदुर्लभ-भावना : मनुष्य जीवन पाया, कर्मभूमि में जन्म पाया, आर्यदेश में जन्म पाया, उच्चकुल मिला, आरोग्य और इन्द्रियों की पूर्णता पाई, सद्धर्म का श्रवण मिला... फिर भी सर्वज्ञ-वचन पर अविचल श्रद्धा होना दुर्लभ है! जिस भव्यात्मा की श्रद्धा हो जाती है, वह सचमुच धन्य है।

ये हैं बारह भावनाएँ। इन भावनाओं में अनित्य, अशरण, एकत्व, अन्यत्व, संसार और अशुचि-भावना का विशेष महत्त्व है। हृदय को निसंग, निर्लेप और निःस्पृह बनानेवाली ये भावनाएँ हैं। ऐसे हृदय में मैत्री, करुणा, प्रमोद और माध्यस्थ्य-भावना के पुष्प बहुत ही अच्छे खिलते हैं। मनुष्य गुणों की सुवास से सुवासित बन जाता है। अपने जीवन को आबाद बनाने के लिए इन भावनाओं से हृदय को सुवासित करें और धर्मपुरुषार्थ में आगे बढ़ें।

धर्म का स्वरूपदर्शन कर लिया। धर्म ऐसा होता है। ऐसा धर्म अपने जीवन को धन्य बना सकता है, आत्मा को विशुद्ध कर सकता है। आज हम भावनाओं का विवेचन समाप्त करते हैं। अब आगे धर्म के प्रकारों का वर्णन करेंगे। धर्म के अनेक प्रकार हैं। अपने जीवन में उन विभिन्न प्रकारों को स्थान देना है और आत्मविशुद्धि के मार्ग पर अग्रसर होना है।

आज, बस इतना ही।

❖ ❖ ❖

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आचार्य श्री कैलाससागरसूरि ज्ञानमंदिर
कोबा तीर्थ

Acharya Shree Kailasasagarsuri Gyanmandir
Shree Mahavir Jain Aradhana Kendra
Koba Tirth, Gandhinagar-382 007 (Guj.) INDIA
Website : www.kobatirth.org
E-mail : gyanmandir@kobatirth.org

ISBN : 978-81-89177-18-8
ISBN SET : 978-81-89177-17-1

For Private And Personal Use Only